# गबन : नारीत्व के जागरण की कहानी

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

---

"जालपा भारत का उगता हुआ नारीत्व है।"

—डॉ० रामविलास शर्मा

जालपा की जीवनयात्रा 'अंधेरे से उजाले की, मिथ्या से सत्य की' दिशा में की गई यात्रा है।

"हिन्दी उपन्यास साहित्य में मध्यमवर्गीय जीवन का सफल चित्रण करने की दृष्टि से 'गबन' का महत्त्व बेजोड़ है।"

# १
# गबन

मुंशी प्रेमचन्द की दृष्टि में साहित्य 'जीवन की आलोचना' करने वाला 'मानव-संस्कार का एक सशक्त अस्त्र है। इसीलिए उन्होंने 'विचारों का प्रचार' और 'उत्कर्ष का अनुभव कराने के उद्देश्य से 'मानवचरित्र का चित्र'[1] उपन्यास के माध्यम से उपस्थित किया। उन्होंने न केवल किसी देवता की कामना' की, अपितु 'उस देवता में प्राणप्रतिष्ठा करने का कठिन कार्य भी किया। उनके कथासाहित्य के पात्र कठपुतलियों के समान नहीं हैं जैसा कि उनके पूर्ववर्ती साहित्यकार देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासों में पाए जाते हैं। इसीलिए उन्हें कथाजगत् में मानव की प्रतिष्ठा करने का श्रेय दिया जाता है। मानव के लिए मानव की कहानी से अधिक रुचि का विषय और क्या हो सकता है? यही कारण है कि प्रेमचन्द को पाठकों का मन आकृष्ट करने के लिए अद्भुतरम्य कथानकों का सहारा नहीं लेना पड़ा। समाज के जीवित मानवों की उपेक्षा करके उन्होंने इतिहास के 'गड़े मुर्दे उखाड़ने' के चक्कर में पड़ना भी पसन्द नहीं किया। अपने समय के समाज का उन्होंने जितनी ईमानदारी से चित्रण करने का प्रयत्न किया है उतना अन्य किसी लेखक ने नहीं। विशेषतः मूक गरीब जनता को उन्होंने ही वाणी प्रदान की। वे स्वयं गरीबी में पलकर बड़े हुए थे। पिता ने उन्हें अपनी अतृप्त इच्छा के परिणामस्वरूप भले ही 'धनपतराय' के रूप में देखना चाहा, पर वे अपनी अन्तःप्रकृति के अनुकूल 'प्रेमचन्द' ही बने।

प्रेमचन्द का जन्म निम्न मध्यमवर्ग में हुआ था। इसीलिए उन्हें इस वर्ग की मनोवृत्ति की जानकारी निकटतम रूप से प्राप्त थी। 'गबन' उपन्यास में इसी वर्ग का चित्रण अत्यधिक सफल रूप में किया गया है। कामविषयक नैतिकता की दृष्टि से यह वर्ग सदा से जागरूक रहता आया है। वर्गगत इकाई के रूप में काम-समस्या इस वर्ग के लिए प्रायः गौण ही रही है। प्रस्तुत उपन्यास का एक भी पात्र काम-समस्या से प्रेरित नहीं है। रमानाथ की पत्नी बीस साल पहले मरी है, जब कि वे जवान थे। इसके बावजूद उनकी कामविषयक अतृप्ति या विकृति का लेखक ने कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी महदुद्देश्य को साकार करने के स्वप्न में वे इस ओर से बेखबर हों, ऐसी भी बात नहीं है। इसी प्रकार इसी वर्ग के, पर उच्च मध्यमवर्ग के

इन्दुभूषण वकील की पत्नी पैंतीस वर्ष पूर्व मरी थी, किन्तु उन्होंने पाँच वर्ष पूर्व जवान बेटे सिद्धू के मरने तक दूसरा विवाह नही किया। उन्होंने सिद्धू की मृत्यु के बाद वृद्धावस्था के प्रवेशकाल मे जवानी मे प्रवेश करती हुई रतन से विवाह किया। रतन को पति से 'पिता का स्नेह' और 'सदेह आधार' मिला, किन्तु विवाह का सुख नहीं। उसका जीवन शिवलिंग के ऊपर बूंद बूंद टपकने वाले जल के समान समर्पित था, जिसमे सरिता के जल के स्वच्छन्द प्रवाह का अभाव था।[३] युवा दम्पति रमानाथ और जालपा के प्रति उसका आकर्षण अवचेतन के स्तर पर कामप्रेरित होते हुए भी लेखक ने उसकी कामतृप्ति की समस्या पर बल नही दिया है। इतना ही नही, जोहरा नामक वेश्या की ओर रमानाथ के आकृष्ट हो जाने पर भी प्रेम-त्रिकोण का सहारा लेने की यत्किंचित् प्रवृत्ति भी लेखक ने नही दिखाई। कहने का आशय यह है कि इस उपन्यास की समस्या कामप्रेरित नही है। इसकी समस्या के मूल मे तो वित्तैषणा है।

65268

निम्न मध्यमवर्ग आमदनी की दृष्टि से निम्नवर्ग के निकट होते हुए भी सामाजिक सम्बन्धों की दृष्टि से उच्चवर्ग का नैकट्य पाने की लालसा मन मे लिए रहता है। जिस अंग्रेजी शिक्षा ने मध्यमवर्ग को जन्म दिया है, उसी ने उसमे नगर-सभ्यता की प्रदर्शनप्रियता भी भर दी है। यह प्रदर्शनप्रियता व्यक्तित्व की अन्दरूनी रिक्तता की मापक कही जा सकती है। यह प्रदर्शनप्रियता एक ओर रमानाथ जैसे पुरुषो मे टीमटाम और ठाठबाट का रूप ले लेती है तथा दूसरी ओर जालपा जैसी स्त्रियो मे आभूषण-लालसा का। स्त्री की आभूषण-लालसा का शिकार लेखक स्वयं रहे हैं। उन्होंने लिखा है—"बीबीजान की बरसों की जिद एक कड़ा बनवाया, जिसका सदमा अब तक न भूला।"[१] सम्भवत इसीलिए लेखक ने सन् १९०७ मे लिखे गए 'कृष्णा' नामक गबन के पूर्वाभासरूप उपन्यास के बरसों बाद फिर से आभूषणलालसा को अपने उपन्यास का विषय बनाया है। गबन मे एक भी स्त्री-पात्र ऐसा नही है जो इस लालसा मे ग्रस्त नही रहा है। जालपा की दादी सदा गहनो की चर्चा करती रहती है। मानकी की चन्द्रहार पाने की साध तो वसीयत मे पुत्री जालपा को मिली है। विवाह के समय चढ़ाने मे चन्द्रहार न पाकर जालपा को एक सखी कहती है कि चन्द्रहार तो गहनों का राजा होता है, तो दूसरी जालपा को सलाह देती है कि चन्द्रहार बनने तक घरवालों को चैन न लेने देना। तीसरी सखी ने तो अति ही कर दी है। उसकी सलाह है कि चन्द्रहार बनने तक जालपा कोई दूसरा गहना ही न पहने। रमानाथ की माता रामेश्वरी की भी आभूषणलालसा अतृप्त हो रही है। कंगनों की दो-दो जोड़ियों के बावजूद रतन का मन जालपा के नए डिजाइन के कंगनों पर लुभा ही गया है। जग्गो जैसी बुढ़िया का गहनों से पेट नहीं भरा है। इसी कारण डॉक्टर त्रिभुवन सिंह ने गबन की नारियों को अर्थ-भावनाप्रेरित कहा है।[४]

क्या शहर की और क्या गाँव की, क्या पढी-लिखी और क्या अनपढ, हर स्त्री इस आभूषणलालसा के चक्कर म फँसी हुई है । जालपा की इसी लालसा के कारण रमानाथ को गबन करने के कारण मुसीबत मे फँसना पडा । गबन के कारण ही देवीदीन को जेल की हवा खानी पडी थी । लेखक ने इस लालसा के दुष्परिणामो पर अत्यधिक बल दिया है । इसीलिए डॉक्टर एस० एन० गणेशन 'गबन' को "आभूषण प्रेम तथा उसके दुरन्त परिणामो की कथा" माना है तथा डॉक्टर रामरतन भटनागर की दृष्टि मे यह 'गहने की ट्रेजेडी है । श्री विष्णुप्रभाकर ने इस उपन्यास को नाटकरूप देकर उसे चन्द्रहार नाम दिया है । डॉक्टर रामविलास शर्मा ने भी इस उपन्यास मे गहना की समस्या पाई है परन्तु उन्होने इस समस्या के अतिरिक्त स्वाधीनता की समस्या को भी उपन्यास का विषय माना है ।' यहाँ यह प्रश्न खडा होता है कि आभूषणलालसा को अगर मूल समस्या माना जाए तो रमानाथ की प्रदर्शनप्रियता को खींच-तान कर ही इस समस्या का अग बतलाया जा सकता है । इसलिए आभूषण लालसा की समस्या पर अधिक गहराई से विचार करने की आवश्यकता है ।

मुशी प्रेमचन्द ने गहना की गुलामी को पराधीनता से भी बढकर मान कर दरिद्र देश मे सनक की सीमा तक बढे हुए इस रोग की व्यापकता पर दुःख व्यक्त किया है । महिलाओ के 'आभूषणमण्डित ससार' मे चर्चा का मुख्य विषय गहने ही होते हैं । महिलाए आभूषणो पर जान देती हैं और उनका आभूषणो पर जान देना पुरुषो ने स्वाभाविक भी मान लिया है । इतना ही नही उन्होने स्त्रियो की इस लालसा को भटकाने और मजबूत बनाने म सहयोग दिया है । उपन्यास का बिसाती जालपा की चन्द्रहार की कामना को विवाह के नाते से तदाकार कर देता है । जालपा के पिता भी खिलौनों का व्यर्थ समझकर अपनी बेटी के लिए नकली गहने लाया करते थे । भारत के मध्यकालीन इतिहास म सामन्तयुग से भारतीय पति ने अपनी पत्नी के 'रमणी' रूप को उभारने के लिए गहना का प्रयोग करना शुरू किया था । रमानाथ इसी परम्परा म आने वाला व्यक्ति है । इस प्रकार अलकरण रमणी के 'रम्य' रूप को अल (पूर्ण) करने का साधन रहा है । व्यक्तित्व की स्वतन्त्रता के छिन जाने के कारण स्त्री भी अपना मूल्य भोग्यत्व की दिशा मे ही बढा सकती थी । प्रेमचन्द के काल म मध्यमवर्ग की स्त्रियाँ अर्थोपार्जन की दृष्टि से शून्यवत् थी, क्योंकि पत्नी का अर्थोपार्जन करना पति की स्वामित्वभावना के विरुद्ध था । इन सब कारणो से स्त्रियो म आभूषणलालसा दृढता से बद्धमूल हो गई थी । यह लालसा, एक प्रकार से पुरुष की प्रदर्शनप्रियता का ही अग थी ।

मध्यमवर्ग की प्रदर्शनप्रियता वस्तुत अन्दरूनी रिक्तता की ही द्योतक है । निम्न मध्यमवर्ग का पुरुष अर्थाभावजन्य-हीनता को तथा स्त्री-अस्मिता के अभाव के कारण प्रदर्शनप्रिय बनने के लिए विवश थे । गबन के बाद रमानाथ के लापता हो

जाने पर जालपा ने प्रदर्शनप्रियता का खोखलापन अनुभव किया। वह 'रमणी' से 'विचारशील' बन गई। परिणामतः अन्दरूनी रिक्तता का स्थान व्यक्तित्व ने ग्रहण किया। यही कारण है कि उसमें विकास की सम्भावनाएँ अपने आप समाविष्ट हो गईं। जालपा में नवजीवन का सूत्रपात हुआ। इसके बाद ही वह परिवार और समाज का सच्चे अर्थों में अंग बनी और रमानाथ में आत्ममर्यादा को जगाने में सफल हो सकी। जालपा के समान ही पति की मृत्यु के बाद रतन को आत्मनिर्भर होने के लिए विवश होना पड़ा। इस आत्मनिर्भरता ने उसकी अस्तित्व की चेतना का जागृत किया। देवीदीन और जग्गो निम्नवर्ग के होने के कारण पहले से ही मेहनत मजदूरी करने के कारण आत्मनिर्भर थे। यही कारण है कि 'गबन' उपन्यास में स्वाधीनता के मर्म को उसी ने सबसे अधिक समझा है क्योंकि आत्मनिर्भरता और अस्मिता क्रमशः स्वाधीनता के व्यक्त और अव्यक्त रूप हैं। स्व की गुंजलक से मुक्त होने पर व्यक्ति और समाज का स्वस्थ विकास सम्भव है। 'गबन' उपन्यास का यही प्रतिपाद्य है। इसी प्रतिपाद्य के कारण उपन्यास के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध, अर्थात् प्रयाग और कलकत्ते के कथानक जुड़े हुए हैं।

'गबन' उपन्यास के कथानक पर सविस्तार चर्चा करने से पूर्व यह जान लेना उपयोगी है कि इस उपन्यास से पूर्व सन् १९२४ में प्रेमचन्द का 'रंगभूमि' नामक उपन्यास प्रकाशित हो चुका था। कुछ आलोचकों की दृष्टि में 'रंगभूमि' प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास के बाद सन् १९२७ में 'कायाकल्प' तथा सन् १९३० के अन्त में 'गबन' प्रकाशित हुए। 'रंगभूमि' की तुलना में ये दोनों ही उपन्यास उच्च स्तर के नहीं कहे जा सकते। आलोचकों को उपन्यास सम्राट के इस प्रतिविकास पर आश्चर्य हुआ है। प्रेमचन्द की जीवनी को समझे बिना इसके रहस्य का उद्घाटन नहीं किया जा सकता। इन उपन्यासों के लेखनकाल में प्रेमचन्द की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। उस समय लेखक को प्रतिपृष्ठ के हिसाब से पारिश्रमिक (कलम की मजदूरी) मिला करता था। इस विपरीतता के कारण ही प्रेमचन्द ने प्रदीर्घ कथानक लिखने के लिए 'कायाकल्प' में जन्मजन्मान्तरों की कहानी का सहारा लिया है। इसी काल में १९०७ ई० में लिखे गए 'प्रेमा' के कथानक को परिवर्तित करके 'प्रतिज्ञा' उपन्यास' लिखा गया है। 'कायाकल्प' और 'प्रतिज्ञा' के लेखनकाल में ही 'गबन' का लेखनकार्य चालू था। श्री मदनगोपाल के अनुसार 'गबन' के लेखन का प्रारम्भ सन् १९२६-२७ में किया गया था। श्री मदनगोपाल ने इस उपन्यास के लेखन की समाप्ति सन् १९२८ के अन्त में मानी है, किन्तु यह 'गबन' के पूर्वार्द्ध की समाप्ति का काल ही माना जा सकता है। वस्तुतः 'गबन' उपन्यास का पूर्वार्द्ध अपने आप में एक स्वतन्त्र उपन्यास है ही। इसीलिए श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने यह कहा है कि अगर यह उपन्यास प्रयाग से ही सम्बन्धित होता तो अधिक सुग-

ठित होना।' श्री अमृतराय ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा है कि सन् १९२९-३० के मार्च में इसका लेखन प्रारम्भ हुआ और मार्च में ही आधा समाप्त भी हुआ। उनके कथन का पूर्वार्द्ध असत्य है और उत्तरार्द्ध सत्य है। यदि यह उपन्यास एक ही मास में लिखा गया होता तो कथानक विषयक स्थूल असंगतियाँ उसमें इतनी अधिक न होतीं। दयानाथ की पत्नी का नाम कहीं जागेश्वरी है तो कहीं रामेश्वरी। रमानाथ का वेतन कहीं ३० रुपए दिया गया है तो कहीं २५ रुपए। प्रयाग के इन्दुभूषण वकील को कहीं-कहीं काशी का निवासी लिख दिया गया है। चन्द्रहार की कीमत में भी इसी प्रकार की गड़बड़ है। अतः 'गबन' के लेखन का प्रारम्भ यदि श्री मदन गोपाल के अनुसार मानकर पूर्वार्द्ध की समाप्ति श्री अमृतराय के अनुकूल स्वीकार की जाए तो इन असंगतियों का संगत कारण बताया जा सकता है। श्री अमृतराय के अनुसार 'गबन' का छपना प्रारम्भ होने की सूचना नवम्बर सन् १९३० में प्रथमतः मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि 'गबन' के आधा समाप्त होने के बाद प्रेमचन्द के मन में इसके कथानक को लम्बा बनाने का विचार आया और इसीलिए उन्होंने उसे कलकत्ते के नए कथानक की ओर मोड़ दिया। सन् १९२८ के प्रारम्भ में लाहौर कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज्य का महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किया था। इस प्रस्ताव का लेखक के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा था, जिसका प्रतिफलन हम देवीदीन के चरित्र में दिखाई पड़ता है। इस उपन्यास में आगे चलकर रमानाथ के पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए जाने के बाद प्रेमचन्द का ध्यान मेरठ षड्यन्त्र केस की ओर गया जो इस वर्ष का सनसनीखेज घटना था। जनकपुर डकैती केस की कल्पना कर लेने के बाद उन्होंने मेरठ षड्यन्त्र केस के प्रभावस्वरूप जनकपुर डकैती के मामले को राजनीतिक रंग दे दिया और पुलिस के हथकण्डों और न्यायालय के असली स्वरूप का भण्डाफोड़ किया। सम्भवतः इन्हीं कारणों से उपन्यास का उत्तरार्द्ध असंगठित सा बन गया है। 'गबन' को लम्बा अनपेक्षित रूप से बढ़ा दिए जाने का ही यह परिणाम है कि पारिवारिक क्षेत्र से हटकर राजनीतिक क्षेत्र में पहुँच गई और आभूषणों की समस्या स्वाधीनता की समस्या में परिवर्तित हो गई। सन् १९०७ में लिखी गई 'तृष्णा' की कहानी का पल्लवन करते हुए लेखक आदर्श ग्रामजीवन के स्वप्न में खो गया। यह जीवन निर्वासन या प्रेमाश्रम के हवाई आदर्श से भले ही मुक्त हो किन्तु 'गबन' के कथानक में से विशृंखलित अवश्य रहा है।

कथानक में प्रासंगिक कथाओं के रूप में रतन और देवीदीन की कथाएँ हैं। रतन की कथा [illegible] सुखान्त एवं आधिकारिक कथा की उपकारक है, किन्तु रतन का कलकत्ता तक धमाके से जाना और अन्त में मौत के हाथों सौंप देना अनावश्यक विस्तार है। इसके अतिरिक्त जालपा का अविकसित अन्त भी खटकता है। इसके सिवाय मुंशी जी के पास पिस्तौल का होना, मुकदमे की

दुबारा सुनवाई होना आदि बातें असम्भव एव असगत है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के कथानक दो पृथक उपन्यासो के कथानक हैं, जिन्हें लेखक ने अपने सम्बन्ध निर्वाह की कुशलता के कारण जोड रखा है तथा वर्णनक्षमता के सहारे आद्यन्त मनोरंजक बनाए रखा है। पूर्वार्द्ध की कथा का अन्त प्रदर्शनप्रियता के मोहभंग और पारस्परिक विश्वास पर आधारित दाम्पत्य-प्रेम के अनुभव के साथ होना चाहिए।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से गबन उपन्यास सफल है। छोटे-बडे सब मिला कर इस उपन्यास में पचास से अधिक पात्र है। लेखक ने पात्रो की बाहरी वेश भूषा और मुद्राओ के चित्रण पर अधिक ध्यान नहीं दिया है। अदालत के प्रसग में रमानाथ के बयान को सुनकर जालपा के मन में होने वाली प्रतिक्रियाओ का प्रतिफलन उसके चेहरे पर व्यक्त होता हुआ चित्रित किया है। लेखक ने एक स्थान पर मनोविज्ञान के आधार पर लिखी गई कथा को उत्तम माना है।[10] 'गबन' के चरित्रो में मनोविज्ञान का प्रयोग मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के समान नहीं किया गया है, क्योंकि उपन्यास में एक स्थान पर नींद में अवचेतन (निम्न चेतना[11]) के सक्रिय रहने का उल्लेख हुआ है। उपन्यास में विभिन्न स्थानो पर चार स्वप्नो का उल्लेख हुआ है। पहले स्वप्न में जालपा गहनो की चोरी हो जाने का स्वप्न देखती है तथा दूसरे स्वप्न में 'गबन' की घटना के बाद पुलिस के सिपाही को रमानाथ को पकड कर ले जाते हुए देखती है। इसी प्रकार तीसरे स्वप्न में रमानाथ के लापता हो जाने की भावी सूचना है। अन्तिम स्वप्न में जालपा दिनेश की फाँसी का फन्दा काटकर उसी तलवार से रमानाथ पर भी वार करती है। इन चारो स्वप्नो का उद्देश्य भावी कथा का सकेत देना मात्र है, मनोविज्ञान के अनुकूल किसी मानसिक गुत्थी का स्पष्टीकरण नहीं। अन्तिम स्वप्न में जालपा द्वारा रमानाथ पर वार किया जाना अवश्य अलग कोटि की बात है। रमानाथ जैसे स्वार्थी, कायर, आत्मकेन्द्रित व्यक्ति के विरुद्ध जालपा की यह प्रतिक्रिया कही जा सकती है। मृत्यु से पूर्व इन्दुभूषण वकील का हैल्यूसिनेशनग्रस्त होकर सिद्ध का दखना भी अत्यन्त उपयुक्त है। यह उनकी प्रबल पुत्रैषणा का सूचक है। पुत्रैषणा के कारण ही उन्होंने बुढ़ापे में दूसरा विवाह किया था और अपनी पत्नी से 'पिता का सा स्नेह' करते थे। इसी प्रकार रमानाथ का अपनी पत्नी के सामने डींगें हाँकना आत्महीनता की ग्रन्थि की ओर सकेत करता है।

पात्रबाहुल्य के बावजूद उपन्यास में दो-तीन पात्र ही सबसे अधिक महत्त्व के हैं। इनमें पहला महत्त्व का पात्र रमानाथ है, जिसके चारित्रिक परिवर्तन के साथ उपन्यास का अन्त हुआ है। यह शहरी निम्न मध्यवर्ग की दुर्बलताओ का प्रतीक पात्र है। दरिद्रताजन्य आत्महीनता इसके व्यक्तित्व के केन्द्र में है। वह पढा लिखा कम है, पर उसमें दिखावा अधिक है। सहकारिता के आधार पर ठाठबाट में रहता

है और ससुर के पैसों से बारात का टीमटाम भरा नाटक खड़ा करता है । विवाह के बाद भी पत्नी को प्रेम से जीतने के स्थान पर झूठमूठ के रौब से वश मे करना चाहता है । चुंगी दफ्तर का मामूली क्लर्क होते हुए भी अफसर की शान दिखाता है । उसे निर्धन रहकर जीना मरने से बदतर प्रतीत होता है । वैभवलालसा के सामने सात्विक जीवन का आदर्श उसे सुहाता नहीं है । इसीलिए उसे रिश्वत लेने मे किसी प्रकार का सकोच नहीं होता । वह अपने नैतिक मन को समझाने के लिए अपनी रिश्वत को दस्तूरी कहता है और बौद्धिकीकरण (Rationalisation) का सहारा लेकर कहता है कि बनियो से रुपया ऐंठने के लिए अक्ल चाहिए । वह रिश्वत के पक्ष मे वेतन की कमी का तर्क भी पेश करता है । उसका यह तर्क दिल की सच्चाई से उद्भूत माना जा सकता था अगर उसमे अतिरिक्त मात्रा मे दिखाई देने वाली प्रदर्शना-प्रियता न होती । वस्तुत उसके चरित्र की नींव म वैभवलालसा (वित्तैषणा) ही है । धनलोलुपता के कारण ही वह क्रांतिकारियों के विरोध मे बयान देने में उद्यत हो जाता है । विलासवृत्ति ने ही उसकी विवेकशक्ति को कुठित बना रखा है । देवीदीन और जालपा के पुन -पुन किए गये प्रयत्नो के कारण ही वेगुनाहो का खून करने मे सहायता देने से रुक पाता है । इस प्रसग मे वह पुलिस की सख्तियों का उल्लेख करता है, पर ऐसी किसी सख्ती का वर्णन उपन्यास मे कहीं नहीं है । भीरुता के कारण ही वह अपने सत्सकल्पो पर दृढ नहीं रह पाता । इस प्रकार आत्मकेन्द्रित रमा को स्वार्थपरता ने उसे जहाँ राक्षस बना डाला है, वहाँ कायरता के कारण वह पशु से भी गया-बीता बन गया है । निःस्वार्थ देवीदीन और साहसपूर्ण जालपा के कट्रास्ट मे उसकी स्वार्थ और भीरुता की वृत्तियाँ उभर कर सामने आई हैं ।

रमानाथ को 'सुख के लिए आत्मा बेचने वाला' भले ही कहा गया हो, पर उसमे आत्मा अवश्य है । वह पत्नी के गहने चुराने पर ग्लानि का अनुभव करता है । कलकत्ते म दान का कबल लेने पर उसकी आत्ममर्यादा को ठेस पहुँचती है । भीरुता के कारण सकल्पो पर दृढ न रह सकने की दुर्बलता पर उसे बुरा महसूस होता है । उपन्यास के अन्त म डूबते हुए को बचाने के लिए साहस न कर सकने पर लज्जा का अनुभव होता है । उसकी यह शर्मिन्दगी उसके व्यक्तित्व में सत्पक्ष की द्योतक है । वह पूरी तरह से दिल का बुरा आदमी नहीं है । वह कमजोर स्वभाव का अवश्य है । इसीलिए जोहरा ने रमानाथ के लिए कहा कि उसके लिए मरहम की जरूरत है, नश्तर की नहीं ।[11] उसने स्वय अपनी दुर्बलता पर दुःखानुभव करते हुए कातरतापूर्वक जालपा स कहा है कि तुम मुझे ऊँचाई पर मत चढ़ाओ, क्योंकि मुझमे इतनी शक्ति नहीं है ।[12] स्पष्टत ही वह रीढ़हीन व्यक्ति है ।

रमानाथ और जालपा का सम्बन्ध विदवाग का सम्बन्ध नहीं है । जालपा के अतिरिक्त रमानाथ का जोहरा से भी सम्बन्ध हुआ । जोहरा रमानाथ को विवेक-

विमुख बनाये रखने के लिए नियुक्त की गई थी किन्तु रमानाथ की सरलता के कारण जालपा इस 'अनुरागरत्न'[11] से प्रभावित होकर स्वयं विलासविमुख बन गई। जोहरा के द्वारा रमानाथ के 'अनुरागरत्न' समझे जाने में अधिमूल्यांकन ( Over estimation) दिखाई पड़ता है। उसका जालपा और जोहरा, दोनों के प्रति प्रेम का प्रदर्शन स्वयं को धोखा देना मात्र है। इसीलिए प्रेमोन्माद के आवेश में उसका दरोगा को धक्का देना भी अविश्वसनीय हो उठता है। जालपा, जोहरा और देवीदीन के सम्मिलित प्रयत्नों से वह जिस किसी तरह स्वार्थ की दलदल से बाहर निकल पाता है। इसीलिए एक रीढ़हीन व्यक्ति के रूप में उसका चित्रण करने में लेखक पूर्णत सफल हुआ है। श्री कोमल कोठारी ने इसी कारण इस पात्र के सम्बन्ध में लिखा है कि—"इस दुर्बल चरित्र का चित्रण प्रेमचन्द ने बहुत ही सबल कलम और विश्वास के साथ किया है।"[15] रमानाथ की तुलना में 'गोदान' का होरी अन्त में हारा अवश्य है, किन्तु अपने दृढ़संकल्प व्यक्तित्व के कारण वह रमानाथ से कहीं अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली है।

प्रस्तुत उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र जालपा है। वह जमींदार के कारिंदे की इकलौती बेटी है। चारों ओर के वातावरण के कारण आभूषण-लालसा के अंकुर बचपन से ही उसके मन में अंकुरित हो गये हैं। वह चन्द्रहार के पीछे इतनी पागल है कि उसे देह में आँख के समान चन्द्रहार का महत्त्व लगने लगता है। विवाह के बाद चन्द्रहार पाने पर ही उसमें पतिसेवा का भाव उदित होता है। आभूषण लालसा के इतना प्रबल होने के बावजूद उसमें एक अन्य गुण ऐसा है, जिसके कारण उसके व्यक्तित्व में विकास की सशक्त सम्भावनायें विद्यमान थीं। वह गुण है अस्मिता। इसी गुण के कारण आत्म-सम्मान के लिए बाधक समझकर गहनों की चोरी के बाद माता के द्वारा भेजे गये चन्द्रहार को जालपा ने लौटा दिया था। इसी के कारण गबन के बाद रमानाथ के लापता हो जाने पर मैके के आश्रय में नहीं चली गई। इसी के कारण अपने गहने बेचकर गबन की रकम भर देने के बाद उसे गर्वमय हर्ष का अनुभव हुआ। अस्मिता के कारण ही विलासिता की निर्बलता पर वह सहज ही विजय पा सकी। वैभवविलास की उसकी अभिलाषाएँ ज्यों-की-त्यों बनी रहीं और उसने इन अभिलाषाओं को जड़मूल से उखाड़ फेंकने के हिपोक्रेटिक बड़प्पन का प्रदर्शन भी नहीं किया, किन्तु किसी का अनभल करके स्वर्ग राज्य पाना उसे स्वीकार नहीं है। वह खून से तर रोटियाँ खाने की अपेक्षा कुलीगीरी करना अधिक श्रेष्ठ समझती है।[11] इसीलिए समय पड़ने पर इस 'प्राउड लेडी'[10] ने प्रदर्शन-प्रियता से सर्वथा मुक्त होकर मौत की सजा पाये हुए दिनेश की निराश्रित माता की सेवा की है। अस्मिता के स्फुलिंग प्रज्वलित होकर उसे जागृत नारीत्व का प्रतीक बना दिया है। इसीलिए डॉ॰ रामविलास शर्मा ने लिखा है कि—"जालपा भारत का उगता

हुआ नारीत्व है।"[१८]

जालपा के व्यक्तित्व में प्रेम की योग्यता भी मूलतः ही है। वह वेश्या की तरह पति को नोच-खसोट कर अपनी वैभवलालसा को तृप्त करना नहीं चाहती। उसकी वैभवलालसा के परिणामस्वरूप गबन करने तक पहुँचने की नौबत नहीं आती, अगर रमानाथ जालपा पर विश्वास करके अपनी परिस्थिति को पहले से ही स्पष्ट कर देता। इसके विपरीत सखियों को लिखे गये पत्रों में की गई पतिनिंदा को विश्वास के कारण अपने पति के सामने खुद होकर स्वीकार कर लेती है। पति प्रेम के कारण ही वैभवलालसा के होते हुए भी वह रमा को अपने निजी रुपये आवश्यकता पड़ने पर सौंप देती है। वह वैभवलालसा को पतिप्रेम में बाधक एवं पतिवियोग के कारण रूप में जानते ही प्रसाधन-विलास की वस्तुओं को गंगा में बहा डालती है। इसी के बाद उसके नवजीवन का आरम्भ होता है। वह मिथ्या का परित्याग करके सत्य के मार्ग पर चल पड़ती है। इसी मार्ग पर चलकर ही वह विलासिनी से त्यागिनी एवं देवी बनी है। जालपा का यह देवत्व का विकास मानवत्व के विकास का रूप है। यह मानवत्व से बाहर की वस्तु नहीं है, इसीलिए मानव सुलभ भावनाएं उसमें बनी रही हैं।" वह रमानाथ को स्वार्थपरता के कारण पशु से भी बदतर कहकर भी उस आग में झोंकने के लिए तैयार नहीं है।" गंगा की भरी बाढ़ में डूबते हुए व्यक्ति को बचाने से रोकती है। मानवप्रकृति की इस स्वाभाविक कमजोरी ने उसके चरित्र को निस्पंद देवचरित्र होने से बचा लिया है। व्यक्तित्व के इन केन्द्रीय गुणों के अतिरिक्त जालपा सूझबूझ, बुद्धिचातुर्य आदि अनेक अन्य गुण जालपा के चरित्र में है।

'सेवासदन' और 'निर्मला' के समान 'गबन' नायिकाप्रधान उपन्यास है। गबन की नायिका प्रधानता शेष दो उपन्यासों की नायिकाप्रधानता से भिन्न कोटि की है। सुमन और निर्मला के समान आधिकारिक कथा का सर्वप्रमुख पात्र होने के कारण ही जालपा नायिका नहीं है, अपितु परिस्थितियों को अपना अनुगमन करने के लिए बाध्य करने के कारण भी वह नायिका है। सुमन की तरह उसका विद्रोह क्षणिक नहीं है और न ही निर्मला की तरह अगतिक होकर घुट-घुटकर मरी है। उसका विद्रोह तात्कालिक कारणों से प्रेरित नहीं है। अतः वह प्रेमचन्द के साहित्य की यह अमर नारी है, जिसने अच्छे या बुरे पति को देवता मानकर उसका अनुगमन मात्र करने से इनकार कर दिया है। इतना ही नहीं उसने प्रतिगामी पति को अपना अनुगामी बनाकर छोड़ा है। उसी के हृदयपरिवर्तन से कथा का विकास हुआ है। उसके इस हृदयपरिवर्तन के मूल में जो क्रांतिकारी सामाजिक बोध है, वह प्रेमचन्द की किसी भी नायिका में नहीं है। 'गबन' के स्थान' पर प्रस्तुत उपन्यास का नामकरण यदि 'जालपा' कर दिया जाय, तो अधिक उचित होगा। दो कथानकों की

मिला दिये जाने के कारण 'गबन' नामकरण में जो अपूर्णता प्रतीत होने लगती है, उसे दूर करने के लिए 'गबन' का अर्थ 'गुणों का गबन'[11] आदि करने का प्रयत्न किया गया है। वस्तुतः उपन्यास का विकाससूत्र जालपा के चरित्र विकास के साथ जुड़ा हुआ है। जालपा ही प्रयाग और कलकत्ते के कथाविकास की सूत्रधारिणी है।

'गबन' उपन्यास का तीसरा प्रमुख पात्र देवीदीन है, जो पतावा कथानक का नायक है। वह खटिक नामक निम्न जाति का व्यक्ति है, पर उसका चरित्र इस बात का प्रतीक है कि आत्मा की उच्चता जाति पर निर्भर नहीं है। शापित समाज का व्यक्ति होने के कारण वह समाजशोषकों के रूप से भलीभाँति परिचित है। वह इस बात को जानता है कि पाप का धन पचाने के लिए ही शोषक समाज ने दान-धर्म के रक्षक कवच का निर्माण किया है।[11] वह शोषण प्रक्रिया का समाप्त करने के उद्देश्य से ही स्वदेशी का समर्थन करता है। स्वदेशी की खातिर उसके दो जवान बेटों की बलि चढ़ गई है। इसके बाद से उसके घर में विदेशी दियासलाई तक नहीं आती। विलायती शराबें पीकर विलायत का घर भरने वाले स्वदेशी आन्दोलन के नेताओं की पोल से वह खूब अच्छी तरह से परिचित है। ये ढोंगी नेता ही अगर स्वराज्य के रहेंगे, तो वे अपने भोगविलास के लिए साधारण जनता पीसकर पी जाएँगे,[11] इसे उसने अपनी पैनी दृष्टि से सन् १९३० में ही देख लिया है। वकील, अफसर और पुलिस वाले स्वराज्य की लूट करेंगे, इस बात की आशंका व्यक्त की है। देवीदीन के स्वराज्य विषयक चिंतन में स्वयं लेखक का ही चिंतन व्यक्त हुआ है। देवीदीन के धन से ही अन्त में प्रयाग के पास खेती खरीदी गई है, जिस पर उसका एवं रमानाथ का समस्त परिवार ही नहीं, अपितु निराश्रित रतन एवं समाज से बहिष्कृत जोहरा भी रहते हैं।

देवीदीन हँसोड़ प्रकृति का व्यक्ति है। अपने बेटों और बहुओं को खोने के दुःख को भुलाकर उसके व्यक्तित्व का स्वस्थ एवं सहज बनाये रखने में उसकी इस प्रकृति ने भी कवच का काम किया है। "जो दूसरों का गला काटे उसको जहर दे देना भी पाप नहीं है"[11]—कहने वाला देवीदीन कच्चे दिल के रमा के प्रति कठोर हो नहीं पाता, क्योंकि पुत्रहीन हो जाने की स्थिति ने उसकी कठोरता को गला दिया है। पुत्रतुल्य रमानाथ के प्रति उसकी ममता बढ़ पड़ी है। वह उसकी असहाय दशा में अकारण ही सहायक बन जाता है। पुत्रहीनता ने उसके हृदय की विशालता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। उदात्तीकरण ने उसके व्यक्तित्व को और भी अधिक समाजोपयोगी बना दिया है। उसकी अकारण ममता का सहारा पाने वाला रमानाथ उसके सम्बन्ध में कहता है कि—"तुमने ऐसे गाढ़े समय में बाँह पकड़ी जब मैं बीच धार में बहा जा रहा था।"[11]

जग्गो और दवीदीन मे गहरा प्रेम है। जग्गो का देवीदीन के पियक्कडपन पर उलाहने दना निश्शब्द प्रेमधारा का ही परिवर्तित होकर अभिव्यक्त हुआ रूप है। नेक और परदु खकातर दवीदीन इस उपन्यास का अविस्मरणीय पात्र है।

रमानाथ, जालपा और देवीदीन, इन तीन प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त जग्गो, जोहरा और रतन  य तीन पात्र द्वितीय स्तर के प्रमुख पात्र है। जग्गो का बुढापे मे भी गहनो से मन नही भरा है। वह साग-सब्जी की दुकान चलाती है और घर की व्यवस्था का भार उसी पर है। बेटो का खोने के कारण उसके दिल को गहरा आघात पहुँचा है। उसके अतृप्त वात्सल्य ने अपने बेटो की लकडी की बनी मुदगर की जोडी म जीवन डाल दिया है। वह रमानाथ के मुखबिर बनने के दुष्कर्म से चिढ कर कहती है कि—'अगर तुम मेरे लडके होते तो तुम्हे जहर दे देती।'"[२१] किन्तु इसके बावजूद उसका मातृवात्सल्य रमानाथ के लिए तडप उठता है।

रतन की कथा उपन्यास मे प्रकरी कथा के रूप मे आई है। माता पिता की सुखद छाया स वचित रतन का विवाह एक वृद्ध वकील से कर दिया गया है। उसे पति की जीविनावस्था म वैवाहिक सुख नही मिल पाया है और पति की मृत्यु के बाद हिन्दू समाज की सयुक्त परिवार के उत्तराधिकार के नियमो के कारण वैभव स भी वचित हो जाना पडा है। पति की जीवितावस्था म वह अपनी वैवाहिक सुख की अतृप्ति वैभवलालसा मे बहला लेती है किन्तु वैधव्य की विपन्नावस्था मे उसके पास सिवाय रान व और कोई सहारा नही रहा है। विवाहसुख की क्षतिपूर्ति के रूप मे उसका मन जालपा की ओर आकृष्ट हुआ है और वह सतति के अभाव के दु ख को पडास के बच्चो के साथ खेलकर यत्किचित् मात्रा मे कम कर पाती है। गबन की घटना क बाद रमानाथ क लापता हो जाने के बाद जालपा के प्रति उसका सहज बहिनापा प्रकट हुआ है। वह उसके साथ गेहूँ पीसते हुए चक्की का गीत गाते हुए जीवन के श्रमजन्य आनन्द मे अपने दु ख का डुबो देती है। मानिनी होने के कारण भतीजे के पास दीन होकर रहन के स्थान पर मजदूरी करके जीवन निर्वाह करना उसे अधिक पसन्द है। पीडा को भोगकर पराई पीडा को समझने की शक्ति उसमे आ गई है। जालपा का उसके जितना सहानुभूति का सहारा किसी अन्य से नही मिला है। मरणनिकट पहुँचे हुए अपने वृद्ध पति से वसीयत के रूप मे अपने लिए कुछ न लिखा लेना उसके हृदय की उच्चता का प्रमाण है।

जाहरा एक वेश्या है, जिस पुलिस वालो ने रमानाथ को विवेकविमुख बनाए रखने के लिए नियुक्त किया है, किन्तु जोहरा का प्रेम पाने के लिए लालायित मन रमानाथ की सरलता से आकृष्ट हो जाता है। किसी के प्रति अपने प्रेम को समर्पित करने की इच्छा ने रमानाथ की 'अनुरागरत्न' का रूप दे दिया है। उसका यह प्रेम ईर्ष्या के कलुष मे सर्वथा मुक्त है, इसीलिये वह रमानाथ को सन्मार्ग पर लाने के

लिए जालपा की सर्वतोभावेन सहायता करती है। उसे रमा पर तरस आता है। इसीलिए वह समझती है कि रमानाथ को मरहम की जरूरत है, जजीरो की नहीं। काजल की कोठरी मे रहकर भी उसका हृदय निष्कलक बना हुआ है इसीलिए रमानाथ को अधकारवत् समझी गई एक वेश्या की ओर से प्रकाश मिला है। उसका निष्कपट प्रेम रमानाथ को जालपा के हाथो सौप कर और भी अधिक उदात्त एव व्यापक रूप मे प्रकट हुआ है। इसी उदात्तता एव व्यापकता के कारण वह अपने जीवन को धोखे मे डालकर बहके हुए अन्जान व्यक्ति को बचाने के लिए उसे विवश कर देता है और वह इसी प्रयत्न मे बह जाती है। जोहरा के उपकार के कारण कृतज्ञ रमानाथ कहता है कि—"तुमने उस वक्त मुझे समाला, जब मेरे जीवन की टूटी हुई किश्ती गोते खा रही थी।"[१७] पर दुःख यह है कि जोहरा के अतृप्त प्रेम को कोई किनारा न मिल सका। उसका अभिशाप्त प्रेम उसे वेश्या से विधवा ही बना सका।

हिन्दी उपन्यास-जगत् के पात्रो मे प्राण फूँकने का सर्वप्रथम श्रेय मुशी प्रेमचद को ही है। जीवन्त बन जाने के कारण उनके पात्र स्वय बोलने लगे हैं। उनकी ओर से लेखक को बोलने की आवश्यकता बहुत कम हो गई है। 'गबन' मे इसी कारण दो तिहाई भाग सवादमय है। गबन के उत्तरार्ध के कुछ दीर्घ सवादो का अपवादात्मक भाग छोड दें, तो यह दिखाई देता है कि सवाद स्वाभाविक एव छोटे हैं। सवादो की प्रसगानुकूलता के उदाहरण के तौर पर रमानाथ द्वारा गहने लाने पर सोने से पूर्व पति पत्नी के बीच हुए प्रेमालाप को देखा जा सकता है।[१८] दरोगा के सवादो मे 'धरम' आदि शब्दरूप स्वाभाविक रूप मे आये है तथा डिप्टी के सवादो मे 'प्राउड लेडी' आदि सहज ही आ गए हैं। देवीदीन पूर्वी हिन्दी के 'देख लेव' जैसे स्वाभाविक प्रयोग करता है, पर उसके मुख से 'हलफ से कहता हूँ' जैसे वाक्य प्रयोग खटकते हैं। सवादो मे ही नही, अपितु वर्णनो मे भी छोटे-छोटे वाक्यो का प्राय प्रयोग हुआ है।

प्रेमचन्द ने बोल चाल मे प्रयुक्त होने वाले उर्दू, अग्रेजी आदि के शब्दो का प्रयोग करने मे सकोच नही किया है। गबन की भाषा मे उर्दू का प्रभाव कुछ अधिक ही है, क्योकि यह कायस्थ परिवार की कहानी है। कायस्थ समाज मुस्लिम सस्कृति से बहुत अधिक प्रभावित रहा है। उनमे उर्दू के अध्ययन का शौक भी पर्याप्त है। इसीलिए 'गबन' जैसे अनिवार्य शब्दो के अतिरिक्त 'पाकीजा' जैसे अल्पप्रचलित उर्दू शब्दो का भी जहाँ-तहाँ प्रयोग हुआ है। अदालत के प्रसग मे तो 'मुखबिर' जैसे उर्दू शब्दो का आना अनिवार्य ही था। 'गबन' मे डॉक्टर कमलकिशोर गोयनका के अनुसार १७० अग्रेजी शब्दो का प्रयोग हुआ है। इस्पेक्टर, डाक्टर आदि शब्द हिन्दी मे प्रचलित हैं। भाषा की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की भाषा मे

हिन्दीपन' पूर्णत है। हिन्दी का प्रवाही रूप मुहावरो और कहावतो के प्रयोग से व्यक्त हुआ है। 'मियाँ की जूती मियाँ के सिर', 'साँई के सौ खेल' आदि प्रयोग उन्होंने किए हैं। हिन्दी मे मुहावरो की शक्ति को सबसे अधिक प्रेमचन्द ने ही पहचाना है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'दौगडा', 'लवडिया' आदि ठेठ हिन्दी के सहज प्रयोग भी किए हैं। उनके पात्रो के नाम भी हिन्दी भाषी प्रदेश मे पाये जाने वाले बहुप्रचलित नाम है। इसीलिए उन्हे एक लेखक ने 'नामसस्कार' का सर्वश्रेष्ठ पुरोहित'' कहा है।

गबन मे एक तिहाई आमन्त्रेसकत्व के भाग मे प्रेमचन्द के वर्णन विवरण का सामर्थ्य दिखाई देता है। इतिवृत्त की रोचकता का देखने के लिए उदाहरण के रूप मे दीनदयाल के परिचय को लिया जा सकता है जिसमें जमींदार के कारिंदे की महत्ता पर व्यग्य करते हुए वे लिखते हैं कि दीनदयाल किसान न होते हुये भी खेती करते थे और अफसर न होते हुए भी शासन करते थे।'' विरोधाभासयुक्त इस वर्णन द्वारा परिस्थिति के शोषक रूप पर विदारक प्रकाश डाला है। प्रेमचन्द की भाषा मे अनायास उपमा उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का समावेश हुआ है। विशेषत प्रकरणगत या न्यास के रूप मे प्रयुक्त सूक्तियो के कारण प्रेमचन्द की भाषा शैली अत्यधिक सुन्दर एव प्रभावशाली बन गई है। "प्रेम अपने उच्चतम स्थान पर पहुँच कर देवत्व मे मिल जाता है", मनोव्यथा साँस की भाँति अन्दर घुट कर असह्य हो जाती है'' जैसी सूक्तियाँ उपन्यास मे सर्वत्र हैं। सवाद, भाषा और शैली की दृष्टि से 'गबन' सफल उपन्यास है।

उपन्यासकला के तत्व के रूप मे देशकाल पर दो दृष्टियो से विचार किया जा सकता है। देशकाल सबद्ध युगीन चेतना के रूप मे प्रारम्भ मे विचार किया गया है। स्वदेशी स्वराज्य पुलिस के हथकडे आदि से सम्बद्ध समस्याओं का उपन्यास पर प्रभाव स्पष्ट है। देशकालविषयक दूसरा स्वरूप उस देश और काल से सबद्ध है, जिसमे उपन्यास मे जगत् की घटनाएँ घटित होती है। यद्यपि गबन उपन्यास की कथा का आयाम काल तेरह वर्षों का है तथापि 'सात वर्ष कट गए' और 'तीन साल गुजर गए' कह कर उपन्यास मे दस वर्षों के काल को उल्लिखित मात्र कर दिया गया है। वस्तुत सम्पूर्ण उपन्यास केवल ६० दिनों की कहानी है और ये दिन दो वर्षों की माला र काल मे बिखरे हुए हैं। उपन्यास का घटनास्थल स्थूलत पूर्वार्ध मे प्रयाग है और उत्तरार्ध मे कलकत्ता। अन्तिम परिच्छेद मे इन दो नगरो के अतिरिक्त प्रयाग के समीपस्थ अनाम स्थान पर रमानाथ आदि जाकर रहते हैं। देश और काल के चित्रण की ओर लेखक ने ध्यान नहीं दिया है, क्योंकि लेखक का उद्देश्य चरित्रों के माध्यम से सामाजिक समस्याओं को उद्घाटित करना रहा है।

प्रस्तुत निबन्ध के प्रारम्भ मे ही यह स्पष्ट किया जा चुका है कि उपन्यास

की प्रमुख समस्या विशेषणा से सम्बद्ध है। इसी समस्या से सम्बन्धित जमींदारी व्यवस्था के अन्यायपूर्ण शोषण, पूँजीवादी वर्ग द्वारा शोषण से प्राप्त धन को पचाने के लिये दान धर्म का आश्रय, निम्न मध्यमवर्ग को मिलने वाला अपर्याप्त वेतन, अल्प वेतन के कारण निम्न वर्गों मे कर्ज लेने की प्रवृत्ति या रिश्वत लेने की मजबूरी आदि मुख्य समस्या से सम्बद्ध उपागो का प्रसगत स्थान-स्थान पर उल्लेख हुआ है। आर्थिक विपन्नता से उत्पन्न हीनता को छिपाने के लिये प्रदर्शनप्रियता का प्रसार निम्न मध्यमवर्ग के लिए अत्यन्त ही अपायकारक सिद्ध हुआ है। अग्रेजी शिक्षा के प्रभाव से वृद्धिगत हुई वैभवलालसा ने इस प्रदर्शनप्रियता को अत्यधिक सीमा तक बढा दिया है, जिसके परिणामस्वरूप गबन की घटनाएँ समाज मे आम हो गई हैं। चादर देख पाँव न फैलाने के कारण रमानाथ को विपत्तिचक्र मे फँसना पडा। लेखक ने विशेषणा के क्षेत्र की ही अर्थशोषण से सम्बद्ध विदेशी शासन की समस्या को उपन्यास के उत्तरार्ध का विषय बनाया है। स्वदेशी और स्वराज्य की आवश्यकता शोषण से मुक्ति पाने के लिये है।

'गबन' उपन्यास मे स्त्रियो से सम्बद्ध समस्याएँ भी बहुत बडे अश मे अर्थ से सहज ही जुडी हुई हैं। अर्थोत्पादन की दृष्टि से परतन्त्र मध्यम वर्ग की स्त्रियो का आभूषण लालसा से ग्रस्त होना स्वाभाविक ही है। दहेज न दे सकने की विवशता से कारण रतन जैसी मुग्धा स्त्रियो का वृद्धो के पल्ले मे पडना आश्चर्य की बात नही है। सयुक्त परिवार के उत्तराधिकार सम्बन्धी अन्यायकारक कानून के कारण विधवा स्त्री का दुर्दशाग्रस्त बनना भी आर्थिक समस्या का ही अग है। समाज मे वेश्या समस्या भी मूलत आर्थिक है। लेखक ने उस दृष्टि से उस ओर सकेत नही किया है। इसके अतिरिक्त रूढिगत विचारो के कारण कठिन बनी हुई वेश्याओ की समस्या का समाधानकारक उत्तर देने से लेखक ने अपने को बचा लिया है। वेश्या व्यवसाय से विरक्त होकर सन्मार्ग पर चलने के लिए दृढ सकल्प जोहरा के लिए लेखक ने समाज मे स्थान दिलाने के लिए कुछ नही किया है। वह समस्या से बचो काट कर–जोहरा को विधवा दिखाकर निकल जाता है। सभवत जोहरा को समाज मे यथोचित स्थान दिलाने मे असमर्थ होकर ही उसने जोहरा को बाढ के पानी मे बहाकर छुटकारा पा लिया है।

मुशी प्रेमचन्द शोषितो के लेखक है। समाज मे शोषित वर्ग के समान घर-घर मे शोषित व्यक्ति भी हैं। समाज का तथाकथित वरीयअर्धांग ( Better half ) इतरअर्धांग के अत्याचारो के कारण युगो-युगो से अभिशप्त जीवन जीने के लिए बाध्य है। इस अभिशप्त जीवन मे मुक्ति पाने के लिए पुरुषो द्वारा सचालित स्त्री आन्दोलनो की अपेक्षा स्वय अस्मितासपन्न स्त्रियो के द्वारा अपने पैरो पर खडे होने के प्रयत्न कही अधिक महत्त्व के हैं, स्थायी उपाय हैं। आत्मनिर्भरता के अभाव मे प्राप्त

सुख-सुविधाएँ पुरुषों की सद्भावना और दया पर आश्रित है। सब प्रकार की सुविधाओं के मिलने पर भी यह स्थिति अस्मिताहीन दयनीयता की स्थिति हैं। किसी का साधन बन कर जीने की स्थिति है। सुखसुविधाओं पर लात मार कर अपने ही कष्ट और श्रम पर निर्भर होने पर ही इस स्थिति से मुक्त बना जा सकता है। बिना मरे स्वर्ग कैसे पाया जा सकता है ? जालपा ने अपने क्रान्तिकारी व्यक्तित्व के द्वारा यही सदेश दिया है। विभिन्न दोषों के बावजूद 'गबन' की महत्ता इसी बात में है। प्रेमचन्द के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य में जालपा का महत्त्व इसी कारण है। इस दृष्टि से वह प्रेमचन्द के उपन्यास संसार की अद्वितीय नारी है। कोख के अँधेरे से कौमार, यौवन और वार्धक्य में क्रमशः पिता, पति, और पुत्र से रक्षा पाने के लिये परमुखापेक्षिणी बन कर मृत्यु के अंधकार में डूब जाने वाली नारी के लिए एकमात्र प्रकाश का दीपक जालपा का आत्ममर्यादा से प्रदीप्त जीवन ही है। नान्य पन्था, विद्यतेऽयनाय।

## टिप्पणियाँ

१ साहित्य का उद्देश्य (प्र संस्करण)—ले० प्रेमचन्द, पृ० ९४
२ गबन, पृ० १२१
३ प्रेमचन्द (द्वि० संस्करण)—ले० श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त, पृ० ४५
४ हिन्दी उपन्यास शिल्प और प्रयोग (प्र० संस्करण), पृ० ३७७
५ हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ६५
६ प्रेमचन्द और उनका युग (१८३७ ई० का संस्करण), पृ० ७३
७ गबन, पृ० २७
८ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन, पृ० ३६
९ प्रेमचन्द कलम का सिपाही, पृ० ४४८
१० साहित्य का उद्देश्य, पृ० ४५
११ गबन, पृ० १२४
१२ गबन, पृ० ३११
१२ गबन, पृ० २५५
१४ गबन, पृ० २९७
१५ प्रेमचन्द के पात्र (प्रथम संस्करण), पृ० १४७
१६ गबन, पृ० २७४
१७ गबन, पृ० २७४
१८ प्रेमचन्द और उनका युग (१९६७ ई० का संस्करण), पृ० ७०
१९ गबन पृ० १६१
२० गबन, पृ० ३०४

२१ प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्पविधान—ले० डॉ० कमलकिशोर गोयनका, पृष्ठ ४०७
२२ गबन, पृ० १६१
२३ गबन, पृ० १७२
२४ गबन, पृ० २३४
२५ गबन, पृ० १६७
२६ गबन, पृ० २०५
२७ गबन, पृ० २९०
२८ गबन, पृ० २२
२९ प्रेमचन्द के पात्र, पृ० ३२
३० गबन, पृ० २
३१ गबन, पृ० ३०९
३२ गबन, पृ० २८

—

# चित्रलेखा : पाप के रहस्य की खोज में

डॉ० चन्द्रभानु सोतवणे

'ससार मे पाप कुछ भी नही है । मनुष्य अपना स्वामी नही है, वह परिस्थितियो का दास है ।"

"हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं, जो हमें करना पडता है ।"

"स्त्री शक्ति है ! वह सृष्टि है, यदि उसे सचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है, यदि उसे सचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है ।"

"कामनाओ की पूर्ति से सम्बन्धित पाप-पुण्य विषयक समस्या को 'चित्रलेखा' मे स्पष्ट करने का प्रयत्न श्री भगवतीचरण वर्मा ने किया है ।"

# २
# चित्रलेखा

पश्चिमी संसार के संपर्क के फलस्वरूप भारत में आधुनिकता का प्रसार प्रारम्भ हुआ। इस आधुनिकता की विशिष्ट प्रवृत्तियाँ ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा हैं। इन प्रवृत्तियों के कारण ही आधुनिक काल मध्यकाल से पृथक पहचाना जाता है। ज्ञाननिष्ठा या बुद्धि प्रामाण्य की प्रवृत्ति मध्यकाल की शास्त्र प्रामाण्य की प्रवृत्ति की विरोधिनी है। शास्त्रप्रामाण्य श्रद्धा या विश्वास पर बल देता है तथा "श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्" ही नहीं कहता, अपितु 'संशयात्मा विनश्यति"[1] पर भी बल देता है इसके विपरीत *बुद्धिप्रामाण्य सात्त्विक संशय को अंधविश्वासों की खाई में गिरने से* बचने के लिए अनिवार्य समझता है। शास्त्रवादी और बुद्धिवादी दोनों ही भिन्न भिन्न रूप में ज्ञान की महिमा को मान्य करते हुए भी कर्म के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न ढंग से विचार करते हैं। शास्त्रवादी के अनुसार ज्ञान संसार की पवित्रतम वस्तु है तथा वह कर्मबन्धनों को भस्मसात् करने का एक मात्र उपाय है। इसके विपरीत बुद्धिवादियों के अनुसार ज्ञान मनुष्य को अनन्त सम्भावनाओं से परिचित कराता है। अनन्त सम्भावनाओं के परिचय के साथ मनुष्य में अनन्त कामनाएँ जग जाती हैं। इसीलिए ऋग्वेद ने मनुष्य के लिए कहा है कि—"पुरुकामा हि मर्त्य"[1] अर्थात् मनुष्य बहुकामनावान् है। अनन्त सम्भावनाओं और अनन्त कामनाओं के कारण मनुष्य अपूर्णता की पीड़ा से ग्रस्त और व्यस्त हो उठता है। अपूर्णता की पीड़ा से स्पन्दित होकर वह परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने के लिए जुट जाता है। अपूर्णता *से पूर्णता की ओर सतत गतिशील रहने के लिए किए गए संघर्ष ने ही मनुष्य को* ऐतिहासिक प्राणी कहलाने का अधिकार प्रदान किया है। ऐतिहासिक प्राणी के नाते *किए गये संघर्ष ने मानव-संस्कृति को जन्म दिया है।*

मनुष्य की कामनाएँ अनन्त हैं। इन कामनाओं को पूर्ण करने के लिए मनुष्य को दो प्रकार की बाधाओं से संघर्ष करना पड़ता है। प्रथम प्रकार की बाधाएँ प्राकृ-

तिक हैं। प्राकृतिक परिस्थितियों की असुविधाओं को दूर करने के लिए मनुष्य ने सभ्यता का विकास किया है। द्वितीय प्रकार की बाधाएँ सामाजिक हैं। सामाजिक बाधाओं का कम करने के लिये मनुष्य ने संस्कृति का विकास किया है। सामाजिक क्षेत्र में एक से अधिक मनुष्यों की समान कामनाओं में संघर्ष स्वाभाविक है। आहार-निद्रा-भय-मैथुन आदि के पशुसामान्य धरातल से ऊपर उठ कर संघर्ष को दूर करने वाली संस्कृति का विकास किया जा सकता है। संस्कृति ही पशु और मनुष्य के बीच का भेदक तत्त्व है। सांस्कृतिक संपन्नता के अभाव में सभ्यता का वैभव मौत का घाट बन कर रह जाता है। सामाजिक सम्बन्धों का समाजधारणा के अनुकूल नियन्त्रित करने के लिए नीतिनियमों का निर्धारण तर्क के आधार पर किया जाता है। समाज का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों और व्यक्ति-समूहों द्वारा निर्धारित नीति-नियम विरोधी तर्कों के कारण अस्थिर न बने रहे, इसीलिए उन्हें धार्मिक विश्वास का आधार दिया जाता है। इसी बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य चाणक्य ने धर्म को समाज-निर्मित बतलाया है। परिस्थितियों के बदलने के साथ नीति-नियमों में समय-समय पर स्मृतिकारों ने परिवर्तन किया है। इन्हीं परिवर्तनों के कारण शास्त्रप्रामाण्य के मानने वाले लोग दिग्भ्रमित बन जाते हैं। "श्रुतयो विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्" की स्थिति में भी मुनिविशेष के शास्त्र को प्रमाण मानकर चलने की परम्परा अंधश्रद्ध समाज में चल पड़ती है। ज्ञान-विज्ञान के प्रसार के साथ यह परम्परा खतरे में पड जाती है। बड़े-बड़े विचारक कर्म और अकर्म, पुण्य और पाप का निर्धारण करते समय चक्कर में पड जाते हैं। यदि यह कहा जाय कि सज्जनों को पाप-पुण्य का निर्धारण करते समय अन्तःकरण को प्रमाण मानना चाहिए, तो यह भी ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि अन्तःकरण या अन्तरात्मा समाज द्वारा निर्मित होती है। आचार्य चाणक्य ने इसे भली-भाँति विशद किया है।

कामनाओं की पूर्ति से सम्बन्धित पाप पुण्य विषयक समस्या का 'चित्रलेखा' में स्पष्ट करने का प्रयत्न श्री भगवतीचरण वर्मा ने किया है। मनुष्य जीवन में कामनाएँ अनन्त हैं। इन कामनाओं को सहज ही दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। कुछ कामनाएँ अस्तित्वरक्षा से सम्बन्धित हैं तथा कुछ सुरक्षा के बाद जीवन भोग से सम्बन्धित। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इन्हें आनन्द की साधनावस्था और आनन्द की सिद्धावस्था की कामनाएँ माना है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल आनन्द की सिद्धावस्था के काम सम्बन्धों पर ही पापपुण्य की दृष्टि से विचार किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि पापपुण्य का एकमेव क्षेत्र काम सम्बन्धित ही है।

मनुष्य के जीवन में काम का स्वरूप विचित्र है। उसके सम्बन्ध में यह धारणा प्रचलित रही है कि उपभोग के द्वारा काम को शान्त नहीं किया जा सकता।

काम का उपभोग घी की आहुति की तरह कामाग्नि को और भी अधिक भड़का देता है । इसीलिए काम के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही यह धारणा रही है कि जिस प्यास को बुझाया नहीं जा सकता, उसे बुझाने के प्रयत्न में जीवन को क्यों बरबाद किया जाए । क्यों न, सच्चे परलोक सुख को पाने के लिए साधना की जाए। कुमारगिरि इसी मत का समर्थक है । उसकी दृष्टि में 'वासना पाप है', क्योंकि वासना के कारण ही मनुष्य पाप करता है । "वासना के होते हुए ममत्व प्रधान रहता है ।"[1] और ममत्व के भ्रांतिकारक आवरण के रहते हुए आनन्द का पाना असम्भव है । कुमारगिरि को यह भी पता है कि "इच्छाओं का दबाना उचित नहीं ', *किन्तु उसकी यह धारणा है कि इच्छाओं को निर्मूल कर देने के बाद इच्छाओं के* दबाने का प्रश्न ही नहीं उठता । वह वासना के स्थान पर साधना का उपासक है । उसकी दृष्टि में "जीवन की उत्कृष्टता वासना से युद्ध करने में है ।"

कुमारगिरि का वासना विषयक विरागपरक दृष्टिकोण अस्वाभाविक है, क्योंकि यह नकारात्मक है । यदि इस विराग को ईश्वरानुराग का पर्याय भी मान लिया जाए, तो भी वासनाओं का हनन जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के प्रतिकूल है । यदि ईश्वरानुराग को ही अपनाना है, तो भी शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियां की उपेक्षा नहीं की जा सकती । शरीर की क्षुधा स्वाभाविक रूप से यदि शान्त न की जाए, तो वह ईश्वरानुराग में चित्त को केंद्रित ही नहीं होने देगी । इसीलिए *संत कबीर ने कहा है—"कबीर क्षुधा है कूकरी करत भजन में भंग । या को टुकरा* डारिकै भजन करौ निस्संग । आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से भी शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का दबाना घातक है । उसके अनुसार साधना के मार्ग पर ही अग्रसर होना हो, तो मनुष्य को जनक की तरह विदेह बनना चाहिए, शृंगी ऋषि नहीं । जनक बनने पर ही वासनामय संसार के बीच रहते हुए भी वह वासनाओं से अनासक्त बना रह सकता है । कुमारगिरि ने जनक बनने की अपेक्षा शृंगी ऋषि बनना चाहा और जीवन की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विरोध करने का फल उसे भुगतना पड़ा । मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ अस्वाभाविक रीति से दबा दी जाने पर विकृत रूप में फूट कर बाहर आ जाती हैं । इसीलिए कुमारगिरि वासना को दबाकर ममत्वहीन बनना चाहते हुए भी ममत्व का बुरी तरह से शिकार हो जाता है । उसकी सारी साधना एक तरह से ममत्व की दासता बन कर रह जाती है । *उसकी ममत्व के विस्मरण की बात निस्सार सिद्ध होती है, इसीलिए चित्रलेखा कहती* है—"वासना के कीड़े, तुम अपने लिए जीवित हो—ममत्व ही तुम्हारा *केन्द्र है ।"*[2]

महाप्रभु रत्नाम्बर की यह बात बिलकुल सत्य है—"मनुष्य में ममत्व प्रधान है ।" किन्तु यह बात भी उतनी ही सत्य है कि ममत्व का दूसरों तक विस्तार करके

मनुष्य ने अपने को पशुस्तर से ऊपर उठाया है। ममत्व के विस्तार की क्षमता ने ही मनुष्य को 'मनुष्य' बनाया है। मनुष्य के विविध सम्बन्धों में ममत्व विस्तार का ही विशेष महत्त्व है। मनुष्य के इन विविध सम्बन्धों में कामसम्बन्ध का स्थान अत्यन्त महत्त्व का है। काम भावना की स्वस्थ पूर्ति भिन्नलिंगी सहयोगी के अभाव में असम्भव है। आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है किन्तु भिन्नलिंगी व्यक्तियों का कामसम्बन्ध कई व्यक्तियों के साथ सम्भव होते हुए भी सामाजिक दृष्टि से अव्यावहारिक हो जाता है। इसका पहला कारण तो यह है कि किसी व्यक्ति के साथ एक साथ दो व्यक्तियों का सम्बन्ध सम्भव नहीं है। इसलिए कामसम्बन्ध के क्षेत्र में प्रतिद्वन्द्विता आ सकती है। इस प्रतिद्वन्द्विता या संघर्ष को दूर करने के लिए समाज ने विवाह-संस्था को विकसित किया है। विवाह के द्वारा स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को चिरस्थायी बनाकर संघर्ष को दूर करने का प्रयत्न किया गया है। स्त्री-पुरुष के कामसम्बन्ध की एक अन्य विशेषता यह भी है कि यह सम्बन्ध केवल दो व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं होता, अपितु इसके माध्यम से तीसरे व्यक्ति का भी जन्म हो जाता है, जिसका उत्तरदायित्व निभाने का कार्य कामसम्बन्ध की तरह क्षणिक न होकर दीर्घकालीन हो जाता है। इस दृष्टि से भी वैवाहिक सम्बन्ध की स्थिरता एवं सामाजिकता महत्त्वपूर्ण है। मृत्युञ्जय ने इसी दृष्टि से बीजगुप्त से कहा है—"विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है । चित्रलेखा की सन्तान बीजगुप्त की सन्तान न होगी और न वह सन्तान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी ही हो सकती है।" इस प्रकार के वैवाहिक सम्बन्ध के औचित्य पर बीजगुप्त ने कोई उत्तर न दिया। तत्कालीन समाज में प्रचलित अस्वाभाविक जातिभेद या उच्चनीच के भेदभाव के विरुद्ध बीजगुप्त ने कभी विचार ही नहीं किया था। वह तो केवल इतना ही जानता था कि उसके प्रेम की अधिकारिणी स्त्री चित्रलेखा के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकती। चित्रलेखा से शास्त्रानुसार विवाहित न होने पर भी वह अपने और चित्रलेखा के सम्बन्ध को पति-पत्नी के सम्बन्ध के समान ही मानता था। आत्मिक सम्बन्ध के लिए एक और सामाजिक उत्तरदायित्व के लिए दूसरे कामसम्बन्ध की बात वह सोच भी न सकता था। प्रेमोत्तर विवाह या विवाहोत्तर प्रेम के विवाद को छोड़ भी दिया जाए, तो भी यह निश्चित है कि प्रेम से रहित कामसम्बन्ध निरी पशुता है।

चित्रलेखा के कुमारगिरि के पास जाने के बाद भी बीजगुप्त यशोधरा से विवाह करने में संकोच करता है। उसे इस बात का विश्वास नहीं है कि वह विवाह के बाद यशोधरा से प्रेम कर सकेगा या नहीं? तात्कालिक उद्विग्नता के प्रभाव में यशोधरा से विवाह करके यशोधरा के जीवन को अपने सामाजिक उत्तरदायित्व के निर्वाह का साधन मात्र बनाने की उसकी इच्छा नहीं थी। इसके अतिरिक्त यशोधरा से उसका विवाह करना इसलिए भी अनुचित था कि यशोधरा श्वेतांक को चाहने

लगी थी। उसने श्वेताक से यह स्पष्टत कह दिया था—"मैं आर्य बीजगुप्त से प्रेम नही करती।" श्वेताक भी यशोधरा से प्रेम करने लगा था। ऐसी स्थिति मे बीजगुप्त का यशोधरा से विवाह करना अनुचित था। कामसम्बन्ध की पहली शर्त यह है कि सहभोक्ताओ मे पारस्परिक सौहार्दपूर्ण सहमति हो और सहभोक्ता अपने सम्बन्ध के भावी सामाजिक उत्तरदायित्व को निभाने की क्षमता और इच्छा रखते हो। इस दृष्टि से बीजगुप्त और कुमारगिरि के कामसम्बन्धो की तुलना की जा सकती है। बीजगुप्त के कामसम्बन्ध इस प्राथमिक शर्त को सब प्रकार से पूरा करते हैं, किन्तु कुमारगिरि के कामसम्बन्ध के विषय मे यह बात नही कही जा सकती। कुमारगिरि अपने काम की तृप्ति के लिए चित्रलेखा को धोखे मे डालकर उसकी सहमति प्राप्त करता है। परिस्थिति के स्पष्ट होने पर चित्रलेखा कुमारगिरि से इसीलिए कहती है—"नीच और झूठे पशु! अलग रहो। तुमने मुझे धोखा दिया।"

कामसम्बन्ध की दृष्टि से एक अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि असमय का विराग जीवन की भूल है। यह भूल कुमारगिरि ने की है। इसके विपरीत बीजगुप्त ने जीवन की प्रवृत्तियो का भोग सहजता के साथ किया है, इसलिए वह सहजता से उन प्रवृत्तियो से सम्बन्धित पशुता का त्याग सका है। वह श्वेताक से कहता है—"मैंने इस वैभव को काफी भोगा है—अब चित्त फिर गया है।"[1] बीजगुप्त उन व्यक्तियो मे से नही है, जो केवल अपने लिए जीते हैं। केवल अपने लिए जीने वालो की पशुता से वह मुक्त है। वह अपने वैभव को दान मे देकर यह सिद्ध करता है कि वह उस स्थिति को भी पार कर चुका है, जिसमे कोई व्यक्ति अपने साथ दूसरो के लिए भी जीता है। वह दूसरो के लिए निजी स्वार्थ का परित्याग करके देवत्व को प्राप्त कर लेता है। वैभव का परित्याग करके अकिंचन बन जाने के बाद भी वह चित्रलेखा के प्रेम को भुला नही सका है। वह 'प्रेम और केवल प्रेम' के आधार पर सर्वस्व का परित्याग करके घर से निकल पडा है। अकिंचनता के प्रति उसका यह आकर्षण इतना अधिक है कि वह चित्रलेखा के अतुल धनवैभव को भी अपनाने से इनकार कर देता है। बीजगुप्त का यह कार्य स्वच्छन्दतावादी आदर्श से प्रेरित है। धार्मिक परम्परा म प्रशसित अकिंचनता के आदर्श से अनजाने ही प्रभावित है। इस प्रकार का आदर्श जनसामान्य की पहुँच से परे है तथा वह पापपुण्य की समस्याओ के सुलझाने के लिए व्यवहार्यता के क्षेत्र स परे की वस्तु है। इसे आदर्शवाद की भावुकता ही कहा जा सकता है। डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान ने बीजगुप्त के इस विराग या पलायन को रोमाटिक बोध माना है।

महाप्रभु रत्नाम्बर ने श्वेताक और विशालदेव को पाप का पता लगाने के लिए बीजगुप्त और कुमारगिरि के पास रखा था। इतना ही नही, उन्होने पाप और पुण्य को पहचानने की कसौटी की और श्वेताक का ध्यान भी आकृष्ट करते हुए

कहा था—"अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरो के वास्ते भी अच्छी हो।"[1] अपने अनुभव के काल मे श्वेताक परिस्थितिवश अपनी स्वामिनी से प्रेम कर बैठा। यदि इसे अपराध मान भी लिया जाए तो उसने जिसके प्रति अपराध किया किया था, उससे अपना अपराध कह कर अपने अपराध को धो दिया था। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार की दृष्टि से अपराध की स्थिति कर्म मे ही मानी जा सकती है, विचार मे नही। मनुष्य शरीर के रहते हुए शरीर-जन्य कमजोरियो से मुक्त नही हो सकता। मानसिक दृष्टि से पूर्ण मनुष्य की कल्पना असम्भव कोटि की बात है, इसलिए सामाजिकता की दृष्टि से व्यवहार के क्षेत्र की पूर्णता का ध्यान अवश्य रखा जा सकता है। वह स्वतन्त्र विचार वाला प्राणी है। अपनी विचारशीलता के बल पर वह पशुसुलभ प्रवृत्तियो को समाजहित के अनुकूल नियत्रित कर सकता है। परिस्थितिचक्र मे पडकर भी वह चक्कर न खा कर कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार करके परिस्थितियो पर विजय पा सकता है। कर्त्तव्या-कर्त्तव्य या पापपुण्य के विचार के बिना मनुष्य अनगढ वासनाओ का पशु मात्र बना रहता है। कर्त्तव्याकर्त्तव्य के आत्मसशोधन के द्वारा वह अनगढ वासनाओ को सुगढ सस्कार देता हुआ सस्कृति के विकास मे सहायक बनता है। आत्मौपम्य की सामा-जिक दृष्टि के बिना यह सशोधन या सस्कार सम्भव नही है। वह अपनी सृजनशील चेतना के द्वारा विपरीत परिस्थितियो मे अपनी सस्कारशीलता बनाए रखने मे समर्थ होता है। इसलिए पापपुण्य का पता लगाने के लिए अपने शिष्यो को विजय वन से निकाल कर समाज के सम्पर्क मे रखने वाले महाप्रभु रत्नाम्बर का यह कथन सत्य नही है कि—"ससार मे पाप कुछ भी नही है ' । मनुष्य अपना स्वामी नही है, वह परिस्थितियो का दास है।" वे आगे यह भी कहते है कि—"हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं, जो हमे करना पडता है।"[2] महाप्रभु के इस कथन से उनके शिष्य कहाँ तक सहमत थे, यह नही कहा जा सकता, किन्तु हमारा सहमत होना असम्भव है। यह ठीक है कि व्यक्ति के चरित्र के कारण सामा-जिक परिस्थिति मे खोजे जा सकते हैं, किन्तु उससे भी अधिक यह सत्य है कि परि-स्थिति ही सब कुछ नही होती, बहुत कुछ मनुष्य का स्वतन्त्र कर्तृत्व भी होता है। परिस्थिति के परिवर्तन मे व्यक्ति का हाथ होता है। यदि मनुष्य परिस्थितियो का ही दास होता, तो मनुष्येतर भोगयोनियो के समान वह भी सस्कृति का विकास करने मे अक्षम ही बना रहता। इसके विपरीत उसने परिस्थिति की मृण्मयता पर अपनी चिन्मयता के सहारे विजय पाकर सस्कृति को विकसित किया है। इसे न पहचान पाना महाप्रभु रत्नाम्बर की सीमा है। खुली आँखो से कुमारगिरि की वासनावशता को देख-भाल कर भी उसे 'अजित' समझना विशालदेव का बुद्धूपन है। पाप-पुण्य का सम्बन्ध अगर सामाजिकता से है, तो सामाजिकता की भावना से सम्पन्न कोई

भी व्यक्ति हमारे इस मत से सहमत होगा ही।

प्रस्तुत उपन्यास मे काम सम्बन्ध विषयक जिस दृष्टिकोण वैविध्य को लेखक ने उपस्थित किया है, उस उपस्थित करते हुए उन्होंने चित्रलेखा को माध्यम बनाया है और इसीलिए उपन्यास का नामकरण भी उन्होंने 'चित्रलेखा' किया है। चित्रलेखा के चरित्र चित्रण के प्रसग मे हम उसे स्पष्ट करेंगे।

उपर्युक्त कथ्य को अभिव्यक्त करने के लिए लेखक ने कथानक आदि उपकरणो का बडी ही सुन्दरता से उपयोग किया है। 'चित्रलेखा' का कथानक लगभग समान आकार के बाईस परिच्छेदो म विभक्त किया गया है तथा प्रारम्भ और अन्त मे उपक्रमणिका' और 'उपसहार' के भाग है। 'उपक्रमणिका' मे समस्या का उपस्थापन किया गया ह तथा 'उपसहार' म समस्या का समाधान दिया गया है। उपन्यास को उपस्थित करने की शैली नीतिकथा शैली है। बडी ही योजनाबद्ध पद्धति के साथ बीजगुप्त और कुमारगिरि से सम्बद्ध कथानकों को क्रमश उपस्थित *किया गया है।* उपन्यास मे नाटकीयता का समावेश भी हुआ है। चित्रलेखा का कुमारगिरि के आश्रम म पहुँचना इसी प्रकार का है। कुमारगिरि एकात मे प्रकट रूप से ज्यो ही यह कहता है—" नर्तकी तुमने मुझसे पराजय स्वीकार की—यह क्यो ?", त्यों ही चित्रलेखा का यह कहते हुए प्रवेश होता है कि—"इसलिए कि मैं तुमसे पराजित हुई। *इसी प्रकार उपन्यास का अन्त भी रोमाटिक एव नाटकीय है।* अन्त मे बीजगुप्त चित्रलेखा को चूमते हुए कहता है—"हम दोनो कितने सुखी है।"

कथानक मे कही भी अनावश्यक विस्तार नही है। सम्राट् चन्द्रगुप्त के दरबार का दार्शनिक विवाद भी बडे सयम के साथ उपस्थित किया है। केवल बारहवे परिच्छेद म हिमालय यात्रा स सम्बन्धित प्रसग मे रक्तकुड के रहस्य की घटना का समावेश निरर्थक-सा प्रतीत होता है। इस आश्चर्यजनक घटना के निरर्थक रूप मे समाविष्ट किए जाने पर हम आश्चर्य ही होता है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से यह उपन्यास अत्यत सफल है। इस उपन्यास का सबसे अधिक प्रमुख चरित्र चित्रलेखा का है और इसीलिए उसी के नाम पर उपन्यास का नामकरण भी किया गया है। चित्रलेखा के माध्यम से प्रेमविषयक विविध दृष्टिकोणो को लेखक ने उपस्थित किया है। चित्रलेखा विधवा ब्राह्मणी थी। वह अठारह वर्ष की आयु मे ही विधवा हो गई थी। उसने पति के ईश्वरीय प्रेम मे आत्मबलिदान के सुख का अनुभव किया था। पति की मृत्यु के बाद उसने *वैधव्य के सयमपूर्ण जीवन को अपनाया, किन्तु सब ओर से विरक्त बना कर जीवन* के अनुराग को केन्द्रित करने वाली सत्ता के अभाव मे सयम का नियम टिक न सका। सुन्दर नवयुवक कृष्णादित्य ने उसकी तपस्या भग कर दी। चित्रलेखा के जीवन का अनुराग कृष्णादित्य मे केन्द्रित हो गया। इस बार अनुराग का रूप

आत्मबलिदान का नहीं, अपितु पारस्परिकता का था, जिसमें आत्मविस्मरण के साथ-साथ पिपासा भी थी। कृष्णादित्य के जीवन में से चले जाने के बाद उसे एक नर्तकी ने आश्रय दिया और वहाँ रहते हुए वह नर्तकी बन गई।

चित्रलेखा का सौंदर्य अप्रतिम था। जो कोई उसे एक बार देख लेता था, उसके मन में उसे पुन पुन देखने की अमिट साध उत्पन्न हो जाती थी। यही साध पाटलिपुत्र के सबसे सुन्दर तथा प्रभावशाली युवक सामंत बीजगुप्त में पैदा हुई। चित्रलेखा भी बीजगुप्त को देखकर स्तब्ध रह गई, वह साक्षात् कृष्णादित्य का प्रतिरूप था। चित्रलेखा ने फिर से अपने जीवन में किसी व्यक्ति के न आने देने का निश्चय किया, किन्तु वह अधिक दिनों तक बीजगुप्त की कृत्रिम रूप से उपेक्षा न कर सकी। उसके जीवन में बीजगुप्त ने प्रवेश किया। इस बार उसके और बीजगुप्त के प्रेम सम्बन्ध में पतिप्रेम का आत्मबलिदान तो था ही नहीं, कृष्णादित्य से किए गए प्रेम का आत्मविस्मरण भी अल्प मात्रा में ही था। उसने इस तीसरे संबंध में प्रेम की मादकता का अनुभव किया। मदिरा की मादकता ने इस सम्बन्ध में अल्पकालिक आत्मविस्मरण को उत्पन्न किया। उसने अनुभव किया कि आत्मविस्मरण प्रकृति से असम्भव है। उसने यह भी अनुभव किया कि प्रेम जीवन का एकमात्र आधार नहीं है। कहने का आशय यह है कि नगर की 'पवित्र नर्तकी' बीजगुप्त की हो गई। बीजगुप्त की होकर भी वह अपवित्र नहीं हुई, वेश्या नहीं बनी।

बीजगुप्त के साथ रहते हुए चित्रलेखा ने अनुभव किया कि साधना आत्मा का हनन है। उसकी दृष्टि में जीवन एक अविकल पिपासा हो गया। वह वासना की मादकता को जीवन का प्रधान अंग समझने लगी। मादकता के आधार यौवन के दुःखद अन्त का विचार आते ही वह जीवित मृत्यु के विचार से उद्विग्न हो उठती थी। वह भविष्य की इस उद्विग्नता को वर्तमान के मदिरापात्र में डुबो देने के लिए विवश थी। वह नहीं चाहती थी कि यौवन के उन्माद का सुख समाप्त हो जाए। उसकी दृष्टि में निजी यौवन की मादकता का ही पूरक रूप बीजगुप्त का उन्माद था।

चित्रलेखा ने कभी यह सोचा भी न था कि बीजगुप्त के रहते हुए कोई अन्य व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है, किन्तु आने वाला व्यक्ति आने की तिथि न बताकर अकस्मात् जीवन में आ ही टपका। चित्रलेखा कुमारगिरि की कुटिया में अतिथि के रूप में पहुँची और अनजाने ही उसके सौंदर्य से प्रभावित हो उठी। दूसरी ओर कुमारगिरि ने चित्रलेखा के सौंदर्य में वासना की मस्ती का अहंकार तो देखा ही, किन्तु स्त्री को अंधकार समझने वाले कुमारगिरि ने यह भी देखा कि चित्रलेखा सुन्दरी होने के साथ विदुषी भी है। वह उस नर्तकी के ज्ञान से सहमत न होते हुए भी प्रभावित हुए बिना न रह सका।

चित्रलेखा के हृदय म कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का क्षीण आभास बीजगुप्त ने पा लिया था। चित्रलेखा ने बीजगुप्त को धोखा देते हुए यह कहा— प्रियतम कुमारगिरि योगी है और मूर्ख है।" परन्तु चित्रलेखा स्वय को धोखा न दे सकी। चन्द्रगुप्त के दरबार म कुमारगिरि की आत्मशक्ति के चमत्कार के कारण वह पूरी तरह से कुमारगिरि की ओर आकृष्ट हो गई। इस प्रसग म चित्रलेखा की आत्मशक्ति का भी हमे परिचय मिलता है। चाणक्य के समान ही वह भी कुमारगिरि के चमत्कार से अप्रभावित बनी रही। इतना ही नही उसने अपनी, प्रखर मेधा स चाणक्य जैसे तर्ककर्कश व्यक्ति की रक्षा की। इसी के साथ अपने विजयमुकुट को आत्मशक्ति का दुरुपयोग करने के अपराध मे दण्डस्वरूप कुमारगिरि के सिर पर रख कर अपनी उदारता से भी उसे पराजित कर दिया। वह कुमारगिरि को पाने के लिए इतनी लालायित हो उठी कि उसने झूठ ही उसके सामने वासना को तिलाजलि देने के लिए दीक्षा ग्रहण करने की अभिलाषा व्यक्त की। वासना के आवश म वह अपनी जिदगी का सबसे बडा झूठ कह गई। कुमारगिरि ने उसके जीवन को बुरी तरह स प्रभावित कर दिया था।

कुमारगिरि चित्रलेखा को साधना के माग मे दीक्षित न कर सके। चित्रलेखा को दीक्षित नही किया जा सकता था, क्योकि उसका व्यक्तित्व कुमारगिरि के व्यक्तित्व स किसी भी प्रकार नीचा न था। कुमारगिरि की ओर आकृष्ट होने पर चित्रलखा को अपने मन को धोखा देने के लिए आदर्श के कवच की आवश्यकता महसूस हुई। बीजगुप्त के रहते हुए कुमारगिरि की आर आकृष्ट होने मे जो अनैतिकता का दद चित्रलखा के मन म कसक रहा था, उस दूर करने के लिए मृत्युजय के घर मे उसे बहाना मिल गया। उसने अपने मन को बहलाया कि प्रेम का सच्चा स्वरूप त्याग मे ही निखरता है और बीजगुप्त को विवाहित देखने के लिए वह बीजगुप्त से शारीरिक सम्बन्ध मात्र तोड रही है, प्रेम के आत्मिक सम्बन्ध को नही। दूसरी ओर वह कुमारगिरि को भी धोखा देते हुए कहती है—"आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियो से एक साथ सम्भव है।"[८]

चित्रलेखा ने वासना के आवेश मे पशुता से प्ररित होकर बीजगुप्त को छोड तो दिया, किन्तु कुमारगिरि की कुटी मे पहुँचने के बाद उसने यह अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रम नही कर सकती। वह आमोद प्रमोदमय जीवन के अति-सुख से उत्पीडित होकर कुटी के शात वातावरण म सात्त्विकता का सुख पाने के लिए शायद विकल हो उठी थी, किन्तु वहाँ उसने यह अनुभव किया कि वह बीज-गुप्त को भुला नही सकती। बीजगुप्त के विवाहित होने के समाचार से वह अवसन्न हो उठी। अवसाद की जडता म वह कुमारगिरि की वासना का शिकार बनने के बाद भी वह बीजगुप्त के सम्बन्ध मे जानने के लिए व्याकुल बनी रही। बीजगुप्त के

अविवाहित रहने का समाचार पाकर वह पश्चात्ताप की अग्नि में झुलस उठी। पश्चात्ताप में वह जितना ही रोती, उतना ही उसे सतोष मिलता था। बीजगुप्त के अकिंचन होकर नगर से निकलने पर वह भी अकिंचन बनकर निकल पड़ी। बीजगुप्त ने भी उसे अपनाते हुए यह कहा—"प्रेम के प्रागण में कोई अपराध ही नही होता।" चित्रलेखा और बीजगुप्त के जीवन का 'प्रेम और केवल प्रेम' ही आधार और ध्येय बना।

चित्रलेखा के काम सम्बन्ध शुद्ध रूप से पशुस्तर के काम सम्बन्ध नही हैं। उसके सम्बन्धो मे वह निष्ठा है, जिसे प्रेम कहा जाता है। उसकी प्रेमविषयक धारणा में भले परिवर्तन होता हुआ दीखता है, किन्तु निष्ठा का सूत्र सर्वत्र समान है। निष्ठा के आधार के विनष्ट होने पर ही उसने नवीन आधार खोजा नही, अपितु पाया है। उसने प्रेम किया नहीं, अपितु उसका किसी से प्रेम हो गया है। मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है। उसकी सामाजिकता के सम्बन्धो मे काम सम्बन्ध का महत्व असाधारण है और काम सम्बन्ध का व्यक्तिकेन्द्रित रूप ही प्रेम कहाता है। चित्रलेखा की दृष्टि से केवल बीजगुप्त के प्रसग मे शारीरिक सम्बन्ध के पाशवी आकर्षण के कारण वह कुछ दिनो के लिए केन्द्रच्युत हुई है, किन्तु शीघ्र ही उसे अपनी इस पशुता पर पश्चात्ताप होता है। कुमारगिरि से सम्बन्धित केन्द्रच्युति के प्रसग मे चित्रलेखा का यह सोचना खटकता है कि उसका और कुमारगिरि का युगयुगातर का सम्बन्ध है। तीन-तीन काम सम्बन्धों और प्रेम सम्बन्धो में से गुजर चाने के बाद भी चित्रलेखा जैसी तर्ककर्कशा स्त्री का अपने और कुमारगिरि के जन्म-जन्मान्तरों में साथ रहने की बात कहना असगत प्रतीत होता है।

स्त्रीपुरुष के कामसम्बन्धो को निवृत्तिवादी विचारधारा ने सदा ही हेय माना है। उसने वासना को पाप का मूल मान कर हमेशा ही उससे बचने का प्रयत्न किया है। पुरुष प्रधान समाज ने वासना के प्रबल आकर्षण को दूर करने के लिए उतनी प्रबलता के साथ स्त्री की निंदा की है। कुमारगिरि इसी विचारधारा का प्रतिनिधि पात्र है। वह स्त्री को ही साक्षात् अधकार, माया, मोह और वासना का रूप मान कर ज्ञान के आलोकमय ससार मे स्त्री के लिए कोई स्थान नही देना चाहता। निवृत्तिवादी पुरुष के लिए यह दृष्टिकोण स्वाभाविक है, किन्तु प्रवृत्तिवादी स्त्री के लिए इस प्रकार से सोचना ठीक नहीं कहा जा सकता। पुरुष अगर स्त्री को अबला मानकर विवाह के माध्यम से उसे आश्रय देने का अहकार कर सकता है, किन्तु स्त्री का इस प्रकार से सोचना गलत ही है। चित्रलेखा कुमारगिरि से कहती है—"मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष , मेरा क्षेत्र है वासना और तुम्हारा क्षेत्र है साधना।" यह कथन स्त्री-पुरुष के मौलिक भेद की ओर इगित करता है, जिसे पुरुष प्रधान समाज ने विकसित किया है। इसी प्रकार यह भी कहती है—"स्त्री शक्ति है! वह

सृष्टि है, यदि उसे सचालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है, यदि उसे सचालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है।' इस कथन मे भी पुरुष और स्त्री के सचालक और सचाल्य के भेद पर बल है। इतना ही नही, एक स्थान पर तो चित्रलेखा ने यह स्पष्ट कहा है—"स्त्री शासित होने के लिए बनाई गई है । पुरुष का प्रेम आधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ मे सौप देना है।'" चित्रलेखा की यह दृष्टि आधुनिकता की विचारधारा से मेल नही खाती। काम विषयक पापपुण्य की समस्या को जिस तर्कसगतता के साथ उपस्थित किया गया है, उससे यह विसगत है।

चित्रलेखा के बाद उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण चरित्र बीजगुप्त का है। बीजगुप्त भोगी है, किन्तु उसका भोग व्यक्तित्व का सम्मान करना जानता है। व्यक्तिनिरपेक्ष भोग की कामुकता उससे कोसो दूर है। वह सौदर्य का पूजक है, किन्तु उसकी यह पूजा भी व्यक्तिनिरपेक्ष रसिकता मात्र नही है। उसने चित्रलेखा को अपनाया है किन्तु उसके अपनाने मे कही पापभावना का दश नही है। इसलिए उसे यह कहने म जरा भी सकोच नही है कि उसका और चित्रलेखा का सम्बन्ध पतिपत्नी का सा है। उसने इस बात को मादकताजन्य उन्माद मे स्वीकार नही किया अपितु पूर्ण उत्तरदायित्व के साथ होशहवास की स्थिति म स्वीकार किया है। उसकी दृष्टि म उसका और चित्रलेखा का प्रेम सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध है, इसलिए उन्माद की क्षणिकता से वह मुक्त है। परिणामत वह स्पष्ट रूप से कहता है—'मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नही हो सकती।"

बीजगुप्त की दृष्टि म 'प्रेम मनुष्य का निर्धारित लक्ष्य है।' प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वह कहता है— जीवन म आवश्यक है एक दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना—एक दूसरे से प्रगाढ सहानुभूति और एक दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना ही प्रेम है जीवन का सर्वसुदर लक्ष्य है।'' वह अपनी ओर से इस लक्ष्य के प्रति पूर्णत समर्पित है। अपनी प्रेयसी के कुमारगिरि के प्रति आकृष्ट होने का आभास पाकर वह दुखी हो जाता है। बीजगुप्त की हितकामना की दृष्टि से चित्रलेखा के त्याग को जानकर उसे अपने चित्रलेखाविषयक अविश्वास पर ग्लानि होती है। चित्रलेखा के छोडकर चले जाने के बाद भी केवल शारीरिक सम्बन्ध के लिए यशोधरा से विवाह करने के लिए उद्यत नही होता। उसकी दृष्टि म विवाह और प्रेम का गहरा सम्बन्ध है।

चित्रलेखा से वियुक्त होने के बाद वह अपनी मानसिक पीडा को दूर करने के लिए काशीयात्रा की योजना करता है। काशीयात्रा के प्रसग म हमे उसके चरित्र एव मस्तिष्क की उच्चता का और भी अधिक प्रखर रूप मे ज्ञान होता है। काशीयात्रा से लौटने के बाद अपने जीवन के सूनेपन को दूर करने के लिए यशोधरा से

विवाह करने का विचार करने लगता है । किन्तु उसे अपनी निर्धनता पर दुःख होता है कि वह एक स्त्री से प्रेम करके दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए उद्यत हो रहा है । वह यह भी सोचता है कि अपनी उद्विग्नता को दूर करने के लिए यशोधरा से विवाह कर देने के बाद क्या वह उसे प्रेम कर सकेगा ? इसके अतिरिक्त यशोधरा श्वेतांक से प्रेम करने लगी है, इस बात को जानकर भी केवल अपने सुख की आशा पर दूसरों के सुख में बाधक बनना उसके लिये कहाँ तक उचित है । इन विचारों के बाद वह यशोधरा से विवाह करने का विचार अपने मन से निकाल ही नहीं देता अपितु यशोधरा और गुरुभाई श्वेतांक के विवाह के लिए अपनी सारी सम्पत्ति का दान भी कर देता है । उसकी इस चारित्रिक उच्चता को देखकर मृत्युंजय उससे कहते हैं—"आप मनुष्य नहीं हैं, देवता हैं । " भारतवर्ष का सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य भी उसके सामने मस्तक नमाता है ।

सर्वस्व का त्याग करके अकिंचन रूप में नगर से निकल पड़ने पर भी चित्रलेखा को वह भुला नहीं पाता । इसलिए वह चित्रलेखा की बात को टाल नहीं पाता और वह उसका आतिथ्य ग्रहण करने के लिए उसके घर पर रुक जाता है । वह कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी चित्रलेखा को प्रेम के कारण सहज ही अपना लेता है, क्योंकि "प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध नहीं होता ।" प्रेम बीजगुप्त के जीवन का केन्द्रीय तत्त्व है । बीजगुप्त के चरित्र की यह उदारता हमें श्वेतांक के प्रसंग में भी दिखाई देती है । वह श्वेतांक के चित्रलेखाविषयक अनुचित व्यवहार को इसी चारित्रिक उदारता के कारण क्षमा ही नहीं करता, अपितु सामान्य मनुष्य के लिए स्वाभाविक समझ कर भुला देता है । उसकी यह सरलता व्यवहार के लिए ऊपर से ओढ़ी हुई नहीं, अपितु उसके शील का अंग है ।

प्रस्तुत उपन्यास का तीसरा महत्त्वपूर्ण चरित्र कुमारगिरि है । कुमारगिरि योगी है । उसकी दृष्टि में वासना पाप होने के कारण त्याज्य है । संयम नियम से इस पाप से बचा जा सकता है, ऐसा उसका विश्वास ही नहीं, अपितु वह वासनाओं पर विजय पा लेने का दावा भी करता है । इसी दावे के अहंकार के कारण वह विशाल्देव से कहता है—"मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखा दूँगा और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे ।" वासना पर विजय पाने का दावा करने वाला यह योगी स्त्री को दीक्षा देने में संकोच करने लगता है । चित्रलेखा के सम्पर्क में उसका हृदय 'साकार' की पुकार मचाने लगता है । उसकी सारी आत्मशक्ति धरी की धरी रह जाती है । आत्मशक्ति के सहारे सत्य का साक्षात्कार कराने की क्षमता प्रदर्शित करने वाला यह योगी असत्य के सहारे चित्रलेखा के शरीर को अपनी वासना का शिकार बना लेता है । असत्य का भंडाफोड़ होने पर चित्रलेखा उससे कहती है—"नीच और झूठे पशु ! वासना के कीड़े ! तुम प्रेम क्या जानो ? तुम अपने

लिए जीवित हो—ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है।"

चित्रलेखा के द्वारा परिस्थितियो ने उसके अभिमान को तोड दिया है, किन्तु उसमे इतनी उदारता ही कहाँ है कि वह अपनी पराजय को स्वीकार कर ले और साधना के अस्वाभाविक मार्ग का परित्याग करके अपने अतिरिक्त दूसरो के लिए जीना सीख ले।

चित्रलेखा, बीजगुप्त और कुमारगिरि के अतिरिक्त श्वेताक और विशालदेव को भुलाया नही जा सकता। ये ही वे दो पात्र हैं, जो ससार मे पाप का स्वरूप जानने के लिए निकल पड हैं। श्वेताक यथा नाम तथा गुण पात्र है। उसका हृदय ससार की कालिमा से मुक्त अबोध बालक की श्वेतता लिये हुए है। बीजगुप्त के सेवक और गुरुभाई के नाते रहते हुए उसने चित्रलेखा के सम्पर्क मे प्रथमत अज्ञात चाह के कपन का अनुभव किया। चित्रलेखा के आकर्षण से आविष्ट होकर उसे यहाँ तक अनुभव हुआ कि मानो उसका चित्रलेखा से पारलौकिक सम्बन्ध है। चित्रलेखा के यौवन की मादकता का शिकार बन वह उसके हाथ की मदिरा को अस्वीकार न कर सका। इस प्रसग म श्वेताक के अबोध सरल चरित्र की झाँकी हमे मिलती है। वह बीजगुप्त से स्वामिनी स प्रेम करने के अपराध को सरलता से स्वीकार कर लेता है। इस स्वीकृति के बावजूद चित्रलेखा का मादक प्रभाव उस पर छाया ही रहता है। इसी के प्रभाव म अपने स्वामी बीजगुप्त से वह झूठ ही कह देता है कि चित्रलेखा दरबार के बाद चाणक्य के यहाँ आमन्त्रित थी। स्वामी को धोखा देना अनुचित था, भले ही स्वामिनी ने उसे इसके लिए प्रेरित किया है। स्वामी के माध्यम से ही स्वामिनी की सत्ता टिकी हुई थी। वह नैतिकता की अपेक्षा मादकता के प्रभाव म झूठ बोलने के लिए विवश हुआ था। इस पाप का दश उसमे अवश्य था और वह और अधिक पाप करने से बचना चाहता था। श्वेताक ने यह पाप उस दशा मे किया है, जबकि चित्रलेखा ने उसमे स्पष्टत यह कह रखा था कि 'तुम्हारे जीवन मे मेरा आना असम्भव है।

चित्रलेखा के बाद श्वेताक यशोधरा के सम्पर्क म आया। यशोधरा के प्रति वह इतना आकृष्ट हुआ कि उसने यशोधरा से अपना प्रेम निवेदित कर दिया। यशोधरा के द्वारा बीजगुप्त की प्रशसा सुनकर वह ईर्ष्यावश बीजगुप्त की कमजोरियो की निंदा करने लगता है। ईर्ष्या ने उसके विवेक को ढक लिया था, जिस पर यशोधरा ने हँसते हुए उसे मतक करते हुए कहा—'मनुष्य को पहले अपनी कमजोरियो को दूर करने प्रयत्न करना चाहिए।' यशोधरा ने श्वेताक के बीजगुप्त विरोध को सहानुभूतिमिश्रित प्रेम से दूर करना चाहा। विरोध के बावजूद बीजगुप्त की उदारता पर श्वेताक का विश्वास था। इसीलिए उसने यशोधरा के विवाह का प्रस्ताव बीजगुप्त के माध्यम से मृत्युजय तक पहुँचाया। वह बीजगुप्त की उदारता

के कारण ही सामंत बन कर यशोधरा का जीवन साथी बन सका ।

श्वेतांक के समान विशालदेव भी पाप का पता लगाने के लिए कुमारगिरि के आश्रम मे रखा गया है । वह वहा प्रारम्भ मे ही कुमारगिरि के वासनाविरोधी साधना का विरोध करते हुए कहता है—' वासनाओ का हनन क्या जीवन के सिद्धान्तो के प्रतिकूल नही है ?" चित्रलेखा के कुमारगिरि के पास आने पर वह आश्चर्यचकित होता है क्योकि "रहस्य को वह भली-भाँति समझता था ।" उसने चित्रलेखा का स्वागत करते हुए "कुमारगिरि पर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली ।' विशालदेव के चरित्र की इस भूमिका को देख लेने पर उपसहार भाग म उसका कुमारगिरि को 'अजित' समय कर उसकी प्रशंसा करना समझ से परे की बात है । विशालदेव का यह बुद्धूपन लेखक द्वारा आरोपित है, चरित्र की सभावनाओ के माध्यम से विकसित नही हुआ है ।

पापपुण्य की समस्या का उत्तर अपने चरित्रो के माध्यम से अभिव्यक्त करने वाले इन पात्रो के अतिरिक्त एक अन्य पात्र महत्त्वपूर्ण है । यशोधरा सामत मृत्युजय की कन्या है । वह अपने सौंदर्य से चित्रलेखा के सौंदर्याभिमान को नष्ट कर देती है । उसका भोलापन उसकी हरिणी-की सी आंखो से स्पष्टत झांकता रहता है । वह श्वेतांक से प्रेम करने लगती है तथा अन्त मे देवतास्वरूप बीजगुप्त के सहयोग से अपने प्रेमी से विवाहित हो जाती है ।

इन प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त रत्नाकर, चन्द्रगुप्त, चाणक्य आदि कुछ अन्य गौण पात्र भी हैं । इन गौण पात्रो मे कुमारगिरि के शिष्य मधुपाल का क्षण भर के लिए आना और फिर सदा के लिए लापता हो जाना विशेष रूप से खटकता है । चाणक्य के सर्वकर्कश सशक्त व्यक्तित्व की झाँकी देने मे लेखक सफल है ।

देश-काल की दृष्टि से 'चित्रलेखा' उपन्यास पर विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास नही है । इसका उद्देश्य मौर्य-कालीन इतिहास पर प्रकाश डालना नही है, अपितु यह पापपुण्य की समस्या को विशिष्ट कोण से उजागर करने वाला उपन्यास है । समस्याप्रधान उपन्यास होने के कारण देशकाल को इसमे गौण रूप से ही स्थान मिला है । इसमे देश मुख्यत पाटलि-पुत्र नगर है और पाटलिपुत्र नगर मे भी बीजगुप्त एव कुमारगिरि के निवासस्थान वर्णित हुए हैं । अल्पकाल के लिए पाटलिपुत्र से काशी की यात्रा का भी प्रसग चित्रित हुआ है । कहीं-कहीं अपवादस्वरूप लेखक का ध्यान प्रकृति की ओर गया है । अर्ध-रात्रि मे चित्रलेखा के कुमारगिरि के यहा दीक्षित होने के लिए पहुंचने पर "सौरभ से भरा मधुमास था, कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी ।" निर्जन प्रदेश मे रात्रि के गहरे सन्नाटे के वातावरण मे योगी और नर्तकी के मिलनकाल की उद्दीपक प्रकृति का वर्णन केवल इतना ही है । इसी

प्रकार काशी प्रस्थान के समय विषमोद्दीपन के रूप मे इतना ही कहा गया है—'चतुर्दशी का चाँद पूर्व दिशा के क्षितिज पर जल रहा था और बीजगुप्त के हृदय मे एक ज्वाला जल रही थी।'

'चित्रलेखा' उपन्यास की कहानी केवल एक वर्ष की कहानी है। यदि कथा से सम्बन्धित दिनो की गिनती ही करनी हो तो यह कहा जा सकता है कि उपक्रमणिका और उपसहार के दिनो को छोडकर यह केवल इक्कीस दिनो की कहानी है। ये इक्कीस दिन वर्ष के अन्तर्गत फैले हुए हैं। विशेषत ये दिन मधुमास और ग्रीष्म के दिन हैं। सूर्योदय से सूर्यास्त की अपेक्षा सूर्यास्त स सूर्योदय के काल को ही अधिक अपनाया गया है। केवल तीन चार परिच्छेदो मे ही रात्रि का वर्णन नहीं है। रात्रि मे भी अर्धरात्रि के समय का मोह लेखक को विशेष है। सम्भवत इसी मोह के कारण महाप्रभु रत्नाकर का श्वेताक के साथ बीजगुप्त के प्रासाद पर अर्धरात्रि म पहुँचाया है। इसी प्रकार बीजगुप्त के अकिंचन के रूप म प्रस्थान की घटना का काल भी अर्धरात्रि है।

शैली की दृष्टि से उपन्यास की कुछ विशेषताओ की ओर सहज ही ध्यान आकृष्ट हो जाता है। उपन्यास के कथानक की योजना मे तुलनात्मकता पर विशेष बल स्वाभाविक ही है। बीजगुप्त और कुमारगिरि की तुलना उपन्यास मे सबसे अधिक है। इनके अतिरिक्त स्थान स्थान पर यशोधरा और चित्रलेखा, यशोधरा और मृत्युजय, चित्रलेखा और कुमारगिरि आदि की भी तुलना की गई है। यशोधरा और चित्रलेखा की तुलना करते हुए लेखक ने कहा है—"एक शाति थी, दूसरी उन्माद। एक अन्य स्थल पर इनकी तुलना कुमारगिरि अपने मन मे करते हुए सोचता है—"*चित्रलेखा की मादकता भयानक थी—उसका नृत्य उसकी सजीवता की* प्रतिमूर्ति। पर साथ ही यशोधरा की शाति अथाह सिंधु की भाँति थी, जिसमे पड कर मनुष्य अपने को भूल जाता है।"[११] तुलना की यह प्रवृत्ति समतोल वाक्यो की योजना मे भी दिखाई देती है। मृत्युजय के घर पर रात्रि भोज के प्रसग मे चित्रलेखा द्वारा अनुराग के क्षेत्र मे ही बने रहने की बात कहने के बाद की परिस्थिति पर टिप्पणी करते हुए लेखक ने कहा है—"बात बनी और बिगड गई, मृत्युजय ने इसका अनुभव किया। बात बिगडी और बन गई। बीजगुप्त ने इसका अनुभव किया।" समतोल वाक्यो की इस योजना म विरोधवैचित्र्य का आस्वाद भी महत्त्वपूर्ण है।

'चित्रलेखा' उपन्यास समस्याप्रधान होने के कारण स्थान स्थान पर विचार गर्भ सूक्तियाँ भी दिखाई देती है। 'जीवन एक अविकल पिपासा है', "विराग मृत्यु का द्योतक है"[११] आदि अनेक सूक्तियाँ उपन्यास के आदि से अन्त तक भरी पडी है। अनेक स्थानो पर शाति, विराग आदि का स्पष्टीकरण करते हुए 'दूसरा नाम है शब्दावली का प्रयोग करो की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है, जैसे—"शाति

अकर्मण्यता का दूसरा नाम है"; "जिसको साधारण रूप से विराग कहा जाता है, वह केवल अनुराग के केन्द्र को बदलने का दूसरा नाम है"[१५] इत्यादि।

प्रस्तुत उपन्यास का कथानक मौर्ययुग से सम्बन्धित है। कथानक के इने गिने पात्र ही ऐतिहासिक कहे जा सकते है, किन्तु घटनाएं सभी कल्पित हैं। इसके बावजूद लेखक ने संस्कृतनिष्ठ भाषा के सहारे ऐतिहासिकता का आभास पैदा करने का प्रयत्न किया है। 'देवि', 'वत्स', 'स्वामिन्' आदि सम्बोधन इसी प्रकार के हैं। 'पाटलिपुत्र' 'विश्वपति' आदि व्यक्तिवाचक नाम ऐतिहासिकता के आग्रह के कारण ही दिए गए है। कहीं-कहीं नामकरण मे अशुद्धियाँ भी है। विश्वपति का निवासस्थान 'कौशल प्रदेश' है। वस्तुत 'कोसल नाम अधिक ठीक है। इसी प्रकार बीजगुप्त ने 'हिन्दूकुश' पर्वत देखने का उल्लेख किया है। 'हिन्दूकुश' नाम परवर्ती काल म प्रचलित हुआ है। संस्कृतनिष्ठता के आग्रह के कारण 'सुन्दरी 'रथारूढा आदि विशेषण भी खटकते हैं। इसी प्रकार 'सोमवार' के स्थान पर चन्द्रवार' का प्रयोग करने की आवश्यकता नही है। मुहावरे के तद्भव शब्द को परिवर्तित करके उसे तत्सम रूप देना भी अनुचित है। एक स्थान पर इस प्रकार का अनौचित्य दिखाई देता है, जैसे—"बहुत सम्भव है महासामत यशोधरा का पाणि देने से इनकार कर दें।" संस्कृतनिष्ठ भाषा के बीच मे 'शात' शब्द गले ही न अटके, किन्तु 'बैर-बैर' का प्रयोग अच्छा नही लगता। इसी प्रकार संस्कृतनिष्ठ भाषाशैली मे 'गौर' 'सौगात' 'वास्ते' आदि उर्दू शब्द असगत प्रतीत होते हैं। उर्दू के प्रभाव से काशीयात्रा के प्रसग मे 'चतुर्दशी के चाँद' का वर्णन लेखक ने किया है।

प्रकृति वर्णन के प्रसग उपन्यास मे अत्यल्प है, किन्तु जो थोड़े-से प्रसग हैं वे अत्यत सुन्दर रूप मे वर्णित है, जैसे—"सौरभ से भरा मधुमास था, कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी।"[१६] भाषा सौंदर्य को वृद्धिगत करने मे अलकारो का भी उपयोग किया गया है। अलकारो का अनावश्यक आग्रह कही भी नही दिखाई देता। सम्राट चन्द्रगुप्त के दरबार मे शृगारगृह से चित्रलेखा के प्रवेश का वर्णन देखिए—"धर्म का नीरस तथा शुष्क वायुमडल पराग से भरे सौंदर्य की मस्ती से विकपित हो उठा, काँपती हुई उषा के धुधलेपन को चीरते हुए मानो प्रात कालीन सूर्य के अरुण प्रकाश ने प्रवेश किया।"[१७] सभामडप के प्रसग के बाद अर्धरात्रि मे कुमारगिरि और चित्रलेखा के एकात मिलन के अवसर पर अकस्मात् विशालदेव के आगमन के बाद की स्थिति का वर्णन देखिए—"कुमारगिरि चौंक उठा। वह इस प्रकार से चित्रलेखा के पास से हट गया, जिस प्रकार वह मनुष्य चौंक कर हटता है जो सर्पिणी के पास तक उसे बिना देखे हुए पहुँच जाता है और उसी समय जब सर्पिणी उसे डसना चाहती है, कोई दूर पर खड़ा व्यक्ति उसे सचेत कर देता है।"[१८] उत्प्रेक्षा और उपमा के इन उदाहरणो के अतिरिक्त

रूपक का भी एक सुन्दर प्रयोग देखिए—यशोधरा की "हँसी की सुरीली झंकार मे यौवन से पराजित बचपन ने शरण ली थी।" मानवीकरण आदि के भी सुन्दर प्रयोग हमे दिखाई देते हैं। मानवीकरण का उदाहरण इस प्रकार है—"यौवन की उमंग मे सौंदर्य किलोले कर रहा था, आलिंगन के पाश मे वासना हँस रही थी।"[१९] पाश मे हँसने मे विरोधाभास का चमत्कार भी ध्यान देने योग्य है।

भाषा और शैली की दृष्टि से 'चित्रलेखा' को सफल रचना कहा जा सकता है।

## टिप्पणियाँ

१ श्रीमद्‌भगवद्‌गीता
२ ऋग्वेद, १।१७९।५
३ चित्रलेखा (ग्यारहवाँ सस्करण), पृ० २१
४ चित्रलेखा पृ० १७६
५ वही, पृ० १८५
६ वही पृ० १५
७ वही, पृ० १९४
८ वही पृ० ११६
९ वही पृ० ५३
१० वही पृ० १४७
११ वही पृ० ११०
१२ वही पृ० १८४
१३ वही, पृ० ८२
१४ वही, पृ० १४१
१५ वही, पृ० १५१
१६ वही पृ० ५०
१७ वही, पृ० ४२
१८ वही पृ० ५६
१९ वही, पृ० ९

# गोदान : दो समांतर संदेशों का उपन्यास

**डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे**

---

"प्रेमचन्द के साहित्य की कुरेदन जनकरुणा की भावना है।"

"गोदान में साहित्यगत करुणा की धारा उमड़कर सागर हो गई है, परिणामतः आदर्श के किनारे का दर्शन दुर्लभ-सा हो गया है।"

"प्रेमचन्द का गोदान समसामयिक शोषणग्रस्त जन जीवन का महाकाव्य है।"

"शोषण की व्यवस्था के आमूल परिवर्तन का सन्देश ही गोदान का उद्देश्य है।"

मुंशी प्रेमचन्द ने गोदान उपन्यास में व्यक्ति-विकास (मोक्ष) एवं समाज-विकास (धर्म) के अनुकूल अर्थ पुरुषार्थ की व्यवस्था करने का जहाँ सन्देश दिया है, वहाँ काम-पुरुषार्थ-विषयक चिन्तन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

यह उपन्यास अर्थ एवं काम से सम्बन्धित दुहरे सन्देश का उपन्यास है।

३

# गोदान

मुशी प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य के क्षेत्र म 'उपन्यास सम्राट' के रूप मे सर्व-विदित है। उनके साहित्यिक यशामन्दिर का कलश 'गोदान' है। उनकी सम्पूर्ण साहित्य-सृष्टि गोदान की भूमिका है। उनका 'गोदान' एव 'गोदान' का पूर्ववर्ती सम्पूण साहित्य अपने समय के साथ अनिवार्यत जुडा हुआ है। स्वय प्रेमचन्द ने यह लिखा है कि—'जब तक करेंट अफयर से लगाव न रहे, किसी मजमून पर लिखने की तहरीक नही होती और मजमून भी मुश्किल स सूझता है।"[1] इसी कारण प्रेमचन्द का सम्पूण साहित्य अपन युग का कलात्मक इतिहास कहा जा सकता है। यह इतिहास इतिहासकार की तटस्थता से नही लिखा गया, अपितु सवेदनशील साहित्यकार की 'कुरेदन और तडपन के साथ लिखा गया है। साहित्य के सम्बन्ध म उनकी मान्यता है कि— लेखक जो कुछ लिखता है अपनी कुरेदन से लिखता है।"

प्रेमचन्द के साहित्य की कुरेदन जनकरुणा की भावना है। इसी भावना क कारण *उनका वरदान हो या गोदान सर्वजनहितजनहिताय बहुजनसुखाय'* की दृष्टि परिव्याप्त है। इस दृष्टि के अनुसार उन्होने जहाँ एक ओर यथार्थ के सहारे समाज की करुण दशा का चित्रण किया है वहाँ दूसरी ओर दु खविमुक्त आदर्श समाज की झाँकी भी अपने साहित्य म उपस्थित की है। यथार्थ और आदर्श के दो किनारा के बीच उनके साहित्य की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है। गोदान' मे यह साहित्यगत करुणा की धारा उमडकर सागर हो गई है, परिणामत आदर्श के किनार का दर्शन दुर्लभ-सा हो गया है। वस्तुत वह कहीं खो नही गया, अपितु यथार्थ के तट से देखने वाली की दृष्टि का अग बन गया है। उसके 'है' मे ही होना चाहिए' की गूँज विद्यमान है। इसीलिए गोपालकृष्ण कौल न यह ठीक ही कहा है कि—गोदान अपने युग का प्रतिबिम्ब भी है और आने वाले युग की प्रसवव्यथा भी।'[2]

प्रेमचन्द का 'गोदान' समसामयिक शोषणग्रस्त जनजीवन का महाकाव्य है। जनजीवन के शोषण की नींव टकाधर्म पर अधिष्ठित पूंजीवादी महाजन-सभ्यता है। इस सभ्यता के विकास का मूल सूत्र वह वणिक्बुद्धि है, जो मानवीय करुणा और सहृदयता का लोप कर देती है। इसीलिए *रायसाहब का यह कहना बिलकुल सच है*

कि—''संपत्ति और सहृदयता में वैर है।''[१] संपत्ति के चक्कर में पड़कर मनुष्य कोरा स्वार्थी बन जाता है। वह अपनी वणिकबुद्धि के कौशल से दूसरों को मूर्ख बनाकर धनी बन जाता है।[२] वह येन केन प्रकारेण धनी बनने के लिए दूसरे के जलते हुए घर में हाथ सेकने के मौके की तलाश में ही रहता है। 'सकट की चीज लेना उसके लिए पाप की चीज नहीं रहती। एक बार धनी बन जाने पर वह निन्यानवे के फेर में इस प्रकार फँस जाता है कि उसे हमा-सुमा को पीस कर अपना घर भरने में किसी प्रकार का संकोच नहीं रह जाता। शोषित और शोषक के बीच का अन्याय-पूर्ण अन्तर बढ़ता ही जाता है। कचहरी-अदालत शोषण के इस दुष्ट चक्र को रोक सकने में असमर्थ सिद्ध होते हैं क्योंकि ''कानून और न्याय उसका है, जिसके पास पैसा है।''[३] सारी न्यायव्यवस्था शोषण की मशीन को तेल पिला कर निर्विघ्न रूप में चलाने का साधन मात्र बन कर रह जाती है।

शोषण की अन्याय्य व्यवस्था के अन्तर्गत कानूनी डकैतों की गतिविधियों को रोक सकने में अक्षम होकर शोषित मनुष्य पहले-पहल आत्मसम्मान खो बैठता है और बाद में मनुष्यता। इसी सत्य को प्रेमचन्द ने अपनी 'कफन' कहानी में बड़े ही सशक्त ढंग से अभिव्यक्त किया है। इस व्यवस्था के कारण आदमी का आदमी रह सकना कठिन है, देवत्व की प्राप्ति तो कल्पना से भी बाहर की बात है। धनकेन्द्रित व्यवस्था के अन्तर्गत 'व्यवसाय व्यवसाय है' का रक्तशोषक सिद्धान्त पनपता है, जिसके अनुसार ''इन्सान की कीमत ... इतनी ही है कि वह एक रुपया कमाने का साधन है।'' इस व्यवस्था के कारण इने गिने धनी लोग बहुसंख्य लोगों के श्रम पर मोटे होते चले जाते हैं और 'उपजीवी या पराश्रयी (parasites) बन कर उनके जीवन रस को सोखते चले जाते हैं। दूसरों का चूस कर मोटे होने वाले यह भी भूल जाते हैं कि उनका मोटापा ''आत्मा का सर्वनाश''[४] करने वाला पशुता का रोग है। समाज का सच्चा स्वास्थ्य और सुख तो तब है, कि सभी मोटे हों।''[५] इस मत का यह आशय कदापि नहीं है कि समाज में छोटे-बड़े का भेद नहीं रहना चाहिए। प्रेमचन्द यह स्वीकार करते हैं कि—''संसार में छोटे-बड़े हमेशा रहेंगे और उन्हें हमेशा रहना चाहिए। किन्तु इस छोटे-बड़े के भेद का आधार शोषण नहीं होगा। बुद्धि, चरित्र, रूप, प्रतिभा, बल आदि की असमानता अनिवार्य है, किन्तु धन की ऐसी विषमता नहीं होनी चाहिए, जिसके कारण शोषण हो सके। इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि बुद्धि आदि की विषमता व्यक्ति की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाती है, जब कि धन की विषमता वंश-परम्परा से बढ़ती ही चली जाती है और शोषण के अनर्थ का आधार बनती है।'[६] धनकेन्द्रित व्यवस्था में मेहता जैसा धन की लालसा से रहित व्यक्ति भी भावी जीवन के योगक्षेम के प्रत्याभूत (Guaranteed) न होने के कारण ऊँचा वेतन लेने के लिए विवश है।''[७]

दूसरे के सकट से लाभ उठाने का पाठ पढाने वाली शोषण केन्द्रित पूंजीवादी व्यवस्था का विषाक्त प्रभाव इस से सहज ही जाना जा सकता है कि शोषण के कोल्हू से गुजर कर पिसने का अनुभव पाने वाले व्यक्ति भी मौका पाकर दूसरो को पीसने के लिए निस्सकोच उद्यत हो जाते थे। विषाक्त व्यवस्था के कारण "गाँव वालो को लेन देन का कुछ ऐसा शौक था कि जिसके पास दस बीस रुपए जमा हो जाते, वही महाजन बन बैठता था। एक समय होरी ने भी महाजनी की थी।"[११] इसी प्रकार गोबर जिस प्रकार की महाजनी का खून चूसने' के समान समझता है, वही गोबर स्वय एक आना रुपया सूद की महाजनी करता है।

होरी और गोबर जैसे किसान और मजदूर ही नहीं, अपितु रायसाहब और खन्ना जैसे जमीदार और उद्योगपति भी पूजीवादी व्यवस्था के कारण दो रुखी जिन्दगी जीने को विवश हैं। 'व्यवस्था का गुलाम' या 'परिस्थितियो का शिकार' होने के कारण, आत्मबल का क्षय करने वाली सम्पत्ति का पैरो की बेडी मानते हुए भी रायसाहब अपनी जरूरता से हैरान' होकर 'भाले की नोक पर' अपने आसामियो से उनकी आहो का दावानल भडकाने वाली वसूली करते है। वे यह ईमानदारी के साथ चाहते हैं कि 'शोषक वर्ग को शासन और नीति के बल से अपना स्वार्थ छोडने के लिए मजबूर कर दिया जाए।'[१२] इतना ही नही, वे होरी से यहाँ तक कहते है कि—"हमारे मुंह की रोटी कोई छीन ले, तो उसके गले मे उँगली डालकर निकालना हमारा धर्म हो जाता है।"[१३] इस प्रकार के प्रसगो म रायसाहब के सम्बन्ध मे मीठी बोली बोलकर शिकार करने वाले शेर की बात कही जा सकती है, किन्तु वह बहुलाश मे ही सच है सर्वांश मे नही। वे जमीदार वर्ग का पूर्णत प्रतिनिधित्व नहीं करते। वे विचारो की यात्रा मे अपने पूर्वजो और समसामयिक जमीदारो से आगे है। भोग विलास की बेहयाई उनमे नही थी। "उनके मन के ऊँचे सस्कारो का ध्वस न हुआ था। परपीडा, मक्कारी, निर्लज्जता और अत्याचार को वह ताल्लुकदारी की शोभा और राय दाव का नाम देकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट न कर सकते थे, और यही उनकी सबसे बडी हार थी।"[१४]

रायसाहब के समान ही उद्योगपति खन्ना भी 'उँची मनोवृत्तियो' से शून्य नही थे। वे भी इसी कारण स्वय स्वीकार करते है कि—' मैंने अपने सिद्धान्तो की कितनी हत्या की है।'[१५] उपयुक्त विवेचन स यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने व्यक्तियो के विरुद्ध नहीं अपितु जनजीवन का शोषण करने वाली व्यवस्था के प्रति पाठको के मन मे घृणा पैदा करने का प्रयत्न किया है। 'घृणा का विज्ञान' ('द साइस ऑफ हेट्रेड') लिखने वाले शोलोखोव के समान प्रेमचन्द की यह धारणा है कि—' दुष्प्रवृत्तियो के प्रति हमारे अन्दर जितनी ही प्रचण्ड घृणा हो, उतनी ही कल्याणकारी होगी।"

प्रेमचन्द ने शोषण की विषम व्यवस्था को बनाए रखने मे मदद पहुँचाने

वाले बिरादरी, मर्यादा, धर्म आदि सभी तत्त्वों पर बेरहमी से प्रहार किया है। बिरादरी का आतंक भारतीय समाज की नस-नस में समाया हुआ था। इसी आतंक के अंकुश के नीचे होरी बिरादरी की आड़ में सारा अनाज डाँड के रूप में झोंक रहा था। किन्तु डाँड के बहाने माल मारना चाहने वाले पिशाच पंचों की लालसा से परिचित धनिया ने कहा कि—'हम नहीं रहना है बिरादरी में। बिरादरी में रहकर हमारी मुकुत न हो जायगी। अब भी अपने पसीने की कमाई खाते हैं, तब भी अपने पसीने की कमाई खायेंगे।'"[१६] किन्तु धनिया की बात सुनी नहीं गई। भोगप्रधान सामन्ती समाजव्यवस्था में स्त्री की बात मानी ही कब गई है? सामन्ती समाज-व्यस्था के प्रभाव के कारण ही जमीन-जायदाद आदि मर्यादा की अधिष्ठान बन गई थी। मजदूरों से भी बदतर स्थिति में पहुँचने के बाद भी छोटे छोटे किसान जमीन का मोह छोड़ नहीं पाते। होरी नौकरी और मजदूरी की अपेक्षा खेती में अधिक मर्यादा का अनुभव करता है। वह 'पूस की रात' के हल्कू के समान मर्यादा के इस बोझ को उतार कर अपने-आप को हल्का नहीं कर पाया था। इसी मर्यादा की रक्षा के लिए उसने अपनी जिन्दगी की सबसे गहरी चोट सह ली, वह लड़की बेचने की ग्लानि के अथाह गड्ढे में जा गिरा।

धनाधिष्ठित शोषण-व्यवस्था को बरकरार बनाए रखने में धर्म का हाथ सबसे अधिक रहा है। एक ओर पाप का धन पचाने के लिए धनी लोग भजन पूजन और दान-धर्म करते हैं, तो दूसरी ओर शोषितों के असन्तोष को उभरने न देने के लिए यह प्रचारित किया जाता है कि—"छोटे-बड़े भगवान के घर से बनकर आते हैं।" इसी कारण गरीब अपने मुँह की रोटी को छिनते देखकर भी चुपचाप सह लेते हैं। इस सहिष्णुता को वे देवतापन समझने लगते हैं। वे यह समझ ही नहीं पाते कि शोषण के "पंजों का शिकार बनना देवतापन नहीं, जड़ता है।" इसीलिए ऐसे लोगों को देखकर मेहता ने कहा—"काश ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते, तो यों ठुकराये न जाते।"[१७] उनका धर्मात्मापन ही सारी दुर्गति का कारण है।

धर्म के नाम पर ही समाज में जन्मगत जाति व्यवस्था के सहारे ब्राह्मण वर्ग राटी खाता रहा है। 'रामनाम की खेती' करते हुए 'तिलक मुद्रा का जाल' फैला कर 'मुफ्त का माल' उड़ाना इनका एक मात्र काम है। धर्म के शोषण की जड़ें इतनी गहरी हैं कि जमींदारी के मिट जाने के बाद भी जजमानी की जमींदारी मिट सकना आसान नहीं है। धर्म की मुफ्तखोरी का ही एक रूप सन्यास है, जिसे मेहता ने 'भीख माँगने का संस्कृत रूप' कहा है।[१८] धर्म के नाम पर मुफ्तखोरी करने वाले ब्राह्मण के महाजन बनने पर यह अतिरिक्त लाभ है कि उसकी साहूकारी को डुबाने का साहस कोई नहीं कर पाता, क्योंकि ब्राह्मण का पैसा कैसे पच सकता है? इसके अतिरिक्त पूजा-पाठ और चौके-चूल्हे को पकड़े रहने पर क्या मजाल है कि वह भ्रष्ट

आचरण के बावजूद भ्रष्ट हो सके ! रातियाँ ढाल बन कर हर अधम से उसकी रक्षा करती है मातादीन और सिलिया का प्रसग धम के इस रूप पर करारा *व्यग है  दातादीन जसा निदय साहूकार  जिसने होरी के जीवन को  भरपूर चसा* था होरी की मृत्यु के बाद पुराहित के नाते उसका परलोक सुधारने के बहाने गोदान ले पस पा जाता है । परलोक बनाने के नाम पर लोक का बिगाडने वाले धम के स्वरूप का देखकर ही महता नास्तिक बन गय है । उन्ह धम और ईश्वर की कल्पना का एक ही उद्देश्य प्रतीत होता ह कि वह मानवजीवन की एकता का साधन बन सके ।

उपयक्त विवचन स गोदान के वजनशील उद्देश्य का परिचय मिलता है । शोषणग्रस्त समसामयिक जनजीवन का एसा चित्रण दलभ है । वे इस चित्रण के द्वारा मानवता की भावना का जगा कर शोषणरहित समाजवादी सस्कृति क माग पर अग्रसर हाने की प्ररणा देते हैं । गाय बन कर शोषण का सहने के लिए विवश करने वाली आस्थाओ का यह गोदान है । गोदान का यह उद्देश्य उपन्यास म आदि से अत तक परोक्ष रूप म इस प्रकार सरल और अनायास ढग से भरा है कि वह सहज *ही पाठका के मन म पठ जाता है ।*

प्रमचन्द ने जनजीवन के शोषणग्रस्त रूप का चित्रण करने के लिय उसके विविध अगा को गोदान म स्थान दिया है । जनजीवन का प्रवाह गाँव और शहर की दो धाराओ म बहता हुआ दीखता है । इन धाराओ म ग्रामजीवन की धारा अधिक महत्त्वपूण ह गोदान म इस धारा की प्रमखता को दखकरे गोपाल कृष्ण कौल ने गोदान को भारतीय ग्रामदेवता की करुण आत्म पुकार माना है ।[११] वस्तुत सत्य यह है कि यह गाव और शहर दोनो के अचलो म रहने वाले समाज देवता की कहानी है । यह बात दूसरी है कि इन दोना कहानिया का अन्त सबन्ध यथोचित रूप म स्थापित नहीं हो सका है । इसीलिये श्री नन्ददुलारे वाजपेयी ने यह कहा है कि गोदान उपन्यास के नागरिक और ग्रामीण पात्र एक बड मकान के दो खण्डो म रहने वाले दो परिवारो के समान ह जिनका एक दूसरे के जीवनक्रम से बहुत कम सम्पक है ।[१२] गाँव और शहर की कहानिया के यथोचित सबन्ध के *अभाव के कारण श्री जनन्द्रकुमार का भी यह शिकायत है कि— शहर ने आकर* पुस्तक के गाव को चमकाया नहीं है बल्कि कहीं कुछ बिखरने और ढकने का प्रयास किया है ।[१३] इस कथन से यह ध्वनित सा होता है कि शहरी कथा की सायकता गाँव की विषमताग्रस्त कथा का उभारने म है किन्तु वास्तविकता यह नहीं है । शहर *और गाँव दोनो का जनजीवन विषमताग्रस्त है इस जनजीवन की विषमता को* उभारने का भार जमीदार और मिलमालिक स सम्बन्धित कथाभागा पर है । वस्तुत शहर और गाँव के कथानका का ऊपर से ता क्या भीतर स भी ठीक तरह स जुडा

हुआ न होने का मुख्य दोष है। यदि यह मान भी लिया जाय कि शिथिलशिल्प उपन्यासों के पक्षधर थे,'' तो भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि शहरी कथा पारसी थियेटर के नाटक के समान ऊटक नाटक अधिक है नाटक कम ( डॉ० बच्चन सिंह )।'' इसी कथा में पहलवानों और परियों के अखाड़ों में 'सारी दिलचस्पी रखने वाले मिर्जा खुर्शेद की 'बूढ़ी कबड्डी' की सनक दिखाई देती है। वस्तुतः इस प्रसंग में गरीबों की मेहनत पर पनपने वाली पूँजीवादी व्यवस्था का वह पहलू उजागर किया जा सकता था, जिसमें पूँजीवाद की भाड़ में अपनी जवानी का भस्म कर डालने वाले मजदूर की फटेहाल विवश बुढ़ापे की जिन्दगी उभर कर सामने आ जाती। इसी शहरी कथा में मिर्जा साहब वेश्याओं की गम्भीर समस्या को नाटक मंडली बनाकर उतने ही उथले ढंग से सुलझाते हुये दिखाई देते हैं।

शहरी कथा ग्रामीण कथा के निकट आकर भी ग्रामजीवन से दूर ही रही है। धनुषयज्ञ का नाटक देखने के स्थान पर शहरी मण्डली पठान के नाटक में ही अटक कर रह गई थी। शहरियों की 'जवाँमर्दी की परीक्षा' लेने वाले इस नाटक में मालती का 'मनचलेपन का आनन्द' भी आपाततः अस्वाभाविक प्रतीत होता है। इसी प्रकार शिकारकथा का प्रसंग भी रोजमर्रा के जीवन की स्वाभाविकताओं से वंचित है। मेहता का मालती को कन्धे पर बैठाना, मिर्जा द्वारा गरीब जंगली आदमियों के साथ पीते-खाते दिन बिता देना ऐसी ही बातें हैं। शहर के प्रसंगों में लम्बे-लम्बे वादविवाद भी खटकते हैं। वीमेंस लीग में दिये गये मेहता के भाषण की चर्चा का अनावश्यक विस्तार दस पृष्ठों में किया गया है। शहरियों से सम्बन्धित उपन्यास का लगभग ४० प्रतिशत भाग जनजीवन को सही ढंग से चित्रित करने में अधिक सफल नहीं है। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'कलम' का मजदूर काम की तलाश में शहर की चकाचौंध में भटकने वाले मजदूरों की समस्या को उस क्षमता के साथ उपस्थित नहीं कर सका है, जिस क्षमता उसने ग्रामीण किसानों की समस्या को उपस्थित किया है। यही स्थिति मध्यवर्ग के चित्रण के सम्बन्ध में है।

'गोदान' में प्रेमचन्द की दृष्टि मुख्यतः कृषकवर्ग की समस्या पर रही है और उस समस्या को उन्होंने सफल अभिव्यक्ति भी दी है। इसीलिए इस उपन्यास को कृषक जीवन का महाकाव्य भी कहा जाता है। धनसत्ता के शासन के अन्तर्गत जनता का यह प्रमुख अंग विभिन्न रूपों में यंत्रणा का शिकार बना हुआ है। किसान को तो जैसे अपना 'नरम चारा' समझ रखा है। सरकारी नौकर हुक्कामों के तलवे चाटने और अधीनों का खून चूसने में प्रसिद्ध हैं। थानेदार तो जैसे उसका दामाद है। गंडासिंह को तो यह घमंड है कि 'उसका मारा पानी भी नहीं मांगता', फिर फिर भला उसके अत्याचार के विरुद्ध बेचारा किसान न्याय कहाँ से माँग सकता है।

इसी प्रकार सरकार के सबसे छोटे नौकर पटवारी को भी यह अहंकार होता है कि वह जमीदार या महाजन का नौकर न होकर उस सरकार बहादुर का नौकर है कि जिसके राज म सूरज कभी नहीं डूबता' और जो जमीदार और महाजन दोनों का मालिक है। अगर किसान उसे नजराना और दस्तूरी न दे तो उसका गाँव मे रहना मुश्किल। पटवारी केवल सरकारी नौकरी ही नहीं करता, अपितु नौकरी की बदौलत महाजनी भी करने लगता है। पटेश्वरी ऐसे ही पटवारी है।

सरकारी नौकरो के अतिरिक्त शोषण जमीदार का शोषण भी अव्याहत चलता ही रहता है। उसके शोषण के अमर्यादित रूप को देखकर मेहता ने उसे 'समाज का शाप' कहा है और ओंकारनाथ ने 'कानूनी डकैत।' वह किसान से लगान ही वसूल नहीं करता, उसे समय समय पर शगून और बेगार के लिए भी विवश कर देता है। चाहे किसान एक एक कौडी को दाँतो से पकडे, मगर उसका लगान बेबाक होना मुश्किल हो जाता है। अगर बेबाक हो भी जाय, तो जमीदार का कारिंदा लगान की रसीद नही देता और बीच बीच म साल भर किसी न किसी बहाने से कुछ न कुछ वसूल करता ही रहता। यही कारण है कि वेतन के रूप ने प्रतिमास दस रुपये पाने वाले नोखेराम की साल की ऊपर की आमदनी हजार रुपये है। कारिंदे से डरते रहने मे ही किसान की कुशल है। जल मे रहकर मगर से बैर कैसे किया जा सकता है।

हुक्काम और जमीदार के अतिरिक्त महाजनो का शोषण भी किसान की दुर्दशा का बहुत बडा कारण है। होरी की दृष्टि से ही विचार किया जाय, तो उसका जमीदार तो एक ही है, किन्तु महाजन तो तीन तीन ही नहीं, अनेक है। उस पर दुलारी सहुआईन, दातादीन और मँगरू के अतिरिक्त बिसेसर साह और झीगुरीसिंह का भी कर्ज है। कर्ज भी ऐसा वैसा नहीं, एक आना रुपए सूद का कर्ज है। कर्ज देते समय झीगुरीसिंह तो पक्का कागज लिखाते थे, नजराना अलग लेते थे, दस्तूरी अलग और स्टाम की लिखाई अलग। पच्चीस रुपए का कागज लिखा, तो मुश्किल से सत्रह रुपये हाथ लगते थे, क्योकि वे एक साल का ब्याज भी पेशगी काट लेते थे। होली की नकल म झीगुरी का रूप भरे गिरधर ने जब दस रुपये का दस्तावेज लिखा कर नजराना तहरीर, कागज, दस्तूरी और सूद के रुपये काट कर किसान के हाथ पाँच ही रुपये पकडाए, तो रह सहे पाँचो रुपयो को लौटाते हुए वह किसान कहता है कि—"सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रुपया बडी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक बडी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपके क्रियाकरम के लिए।"[३१] कैसा करारा व्यग्य है! इसी झीगुरीसिंह के रिनियाँ कितने ही लोग थे। इनमे से शोभा भी एक है, जो यह चाहता है कि किसी तरह स झीगुरी को हैजा हो जाय, जिसके कारण

रूखी रोटी भी मयस्सर नहीं है। वह निराश होकर कहता है कि—"न जाने इन महाजनों से कभी गला छूटेगा कि नहीं।" इसी प्रकार झींगुरी ने गिरधर की ऊख का सारे का सारा पैसा ले लिया चबैने के लिए भी कुछ न छोड़ा। केवल इकन्नी बच गई थी, जिसे उसने मुँह म छिपा लिया था। उसने अपना गम गलत करने के लिए उस इकन्नी की ताड़ी पी लेकिन इकन्नी की ताड़ी स नशा क्या होगा केवल नशे के स्वाँग म वह झूठमूठ झूम सकता है।

होरी झींगुरी का कर्जदार तो था ही लेकिन वह 'काले साँप दातादीन का भी कर्जदार था, जिसने केवल बाआई के लिए उसे कर्ज देकर आधी फसल का स्वामित्व पा लिया था। इतने पर भी इस बेईमान बुड्ढे का पेट नहीं भरा। उसने बीज और मजदूरी का कुछ ऐसा ब्योरा बताया कि होरी के हाथ एक चौथाई स अनाज न लगा। मँगरू साह तो होरी को यह धमकी देता है कि—'यह न समझना कि तुम मेरे रुपय हजम कर जाओगे। मैं तुम्हार मुर्दे से भी वसूल कर लूँगा।" वह धमकी ही नही देता, अपितु होरी की ऊख का नीलाम भी करवा देता है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि किसानो के लिये 'कर्ज वह मेहमान है जो एक बार आकर जाने का नाम नहीं लेता।"[२५] उनकी कमाई का बड़ा भाग महाजनों का कर्ज चुकाने मे ही खर्च हो जाता है। इतना ही नहीं यही एक चीज है जिसे वे वसीयत म अपने बेटो को दे जाते हैं। 'गोदान' मे कर्जविषयक समस्या के विस्तार को देखकर डॉक्टर रामविलास शर्मा ने कर्ज की समस्या को ही 'गोदान' की केन्द्रीय समस्या मान लिया है।[२६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि हाकिम, जमींदार, महाजन आदि अनेक मालिकों की सूखी गुलामी करते हुए बैल की तरह जुते रहने मे ही किसान का जीवन समाप्त हो जाता है। गालियाँ सुनना तो उसके लिए साधारण सी बात है। वे तो जैसे कृषक जीवन का प्रसाद ही हैं। जमींदार उसे मुसके बँधवा के पिटवाता है और महाजन लात-जूतों से बात करता है। किसान विपन्नता के जाल से छुटकारा पाने के लिए जितना ही फड़फड़ाता है, उतना ही वह जकड़ता चला जाता है। इस गुलामी के जीवन से उसे पेंशन तभी मिलती है जब कि यमराज का बुलावा आ जाता है। शोषकों की जिन्दगी के रास्तों को तैयार करने में ही उसका जीवन समाप्त हो जाता है। उसे अपनी जिन्दगी मे दूध घी अजन लगाने तक नही मिलता। इसलिए साठे पर पाठे की बात तो दूर, साठे तक पहुँचने की नौबत ही नहीं आ पाती। दवा-दारू के अभाव में उसके बच्चे आँखों के आगे देखते-देखते ही मर जाते हैं। होरी ऐसा ही किसान है। गऊ की लालसा उसके जीवन की सबसे बड़ी साध है, किन्तु वह भी पूरी नहीं हो पाती। पूरी होने की बात तो दूर, यह लालसा ही उसके लिए अभिशाप बन गई।

शोषण के इस अन्याय को दूर करने मे शिक्षा भी सहायक न हो सकी। शापकों के बच्चे लिख पढकर शोषण की मशीन को अधिक कारगर रूप मे चलाने लगते हैं। अन्याय के विरुद्ध न्यायव्यवस्था भी लाचार है, क्योकि महँगा न्याय पैसे वालो के साथ है। पचायतो की तो बात ही बेकार है, क्योकि पच मुख रक्तशोषक पिशाच हैं। सम्पादकों से आशा लगाना भी व्यर्थ है क्योकि ओकारनाथ जैसे सपादको को रायसाहब खरीद लेते हैं। रही प्रजातत्र की बात किन्तु वहाँ भी हमे यह दिखाई देता है कि वोट नए युग का मायाजाल है। नोटो के सहारे वोटो को खरीदने वाले व्यापारी और जमीदार ही प्रजातत्र के मालिक बन जाते है और जनता को अपनी कार का पेट्रोल समझने लगते है। जब तक दौलत का राज्य बदस्तूर चलता रहेगा, तब तक सभी उपाय विषवृक्ष की पत्तियाँ तोडने के समान निरर्थक बनकर रह जायेंगे। जब तक शोषण के इस वृक्ष की जडा पर कुल्हाडे न चलेगे, तब तक कुछ न हो सकेगा। इसके लिए रक्तशोषक भेडियो के आगे भेडे बनने से काम नही चलेगा। देवतापन की जडता को झटक कर आदमी बनना पडेगा। शोषण की व्यवस्था के आमूल परिवतन का सदेश ही गोदान का उद्देश्य है।

ग्रामीण कथा मे भी हमे यह दिखाई देता है कि प्रमचन्द ने भूमिहीन कृषि मजदूरो पर अपना ध्यान केन्द्रित नही किया है। उनके होरी ने यह कहा है कि— 'मजूर बन जाय तो किसान हो जाता है। किसान बिगड जाय, तो मजूर हो जाता है।' सामान्यत गाव के भूमिहीन कृषि मजदूरो के सम्बन्ध मे इतना ही सत्य नही है। गाँव का कृषिमजदूर प्राय नीच जाति का होता है जिसके सम्बन्ध मे सामान्य धारणा यह है कि 'नीच जात लतियाये अच्छा। नीच जाति के इन लोगो को जब तब बेगारी करनी पडती है। इनकी बहू-बेटियो की इज्जत बहुधा ही लूटी जाती रही है। *दिग्विजयसिंह* जैसे जमीदार ही नीच जाति की बहू बेटियो पर डोरे नही डालते, अपितु गौरी महतो जैसे लोग भी चमारिनो से फँसे रहते हैं। पटवारी का लडका रमेसरी तो उन पर गिद्ध की तरह टूट पडता है। मातादीन ने तो चमारिन को अपने घर बैठा लिया था। चमारो ने अपने समय की दृष्टि से बडे साहस के साथ मातादीन के मुँह में हड्डी का टुकडा डालकर भ्रष्ट कर दिया था। इतना सब होने के बावजूद यह सत्य है कि नीच जाति के मजदूरो के आर्थिक शोषण की उपेक्षा हो गई है।

*मुशी प्रेमचन्द ने 'गोदान उपन्यास म व्यक्तिविकास (मोक्ष) एव समाज-विकास (धर्म)* के अनुकूल अर्थ पुरुषार्थ की व्यवस्था करने का जहाँ सदेश दिया है, वहाँ काम पुरुषार्थ विषयक चिंतन को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। उपन्यास को पढकर यह स्पष्ट प्रतीत होने लगता है कि यह उपयास अर्थ एव काम से सम्बन्धित दुहरे सदेश का उपन्यास है। काम एव प्रेमविषयक सपूर्ण चर्चा शहरी कथानक का

भाग बनकर आई है। अस्तित्वरक्षा की चिंता से सर्वथा मुक्त धनी व्यक्ति मुक्तभोग के सिद्धांत को स्वभावत ही मानने लगते हैं, क्योंकि आवश्यकता से अधिक धन व्यक्ति को हमेशा विलासिता की ओर मोडता है। विलासिता मे बाधक वैवाहिक बन्धनो को तोडने की प्रवृत्ति ऐसे व्यक्ति मे पाई जाती है क्योंकि बन्धनो को तोड-कर ही छूटे सॉड की तरह दूसरो के खेता म मुँह मारने की सुविधा मिल सकती है। मुक्तभोग का समर्थन करने वाले ऐसे व्यक्तियो मे से खन्ना भी एक हैं। वे तो यहाँ तक कहने का दुस्साहस करते हैं कि—"जो रमणी स प्रेम नही कर सकता, उसके देश प्रेम मे मुझे विश्वास नही।" मुक्तभोग के सिद्धात का समर्थन मिस्टर मेहता ने भी किया है, किन्तु उनके समर्थन की नींव विलासिता मे नही है। वे विवाह को आत्मा के विकास मे बाधक मानते हुए कहते हैं कि—"विवाह तो आत्मा को और जीवन को पिजरे मे बन्द कर देता है।'[१७] वे व्यक्ति की दृष्टि मे अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ समझते हुए भी समाज की दृष्टि म विवाहित जीवन को श्रेष्ठ मानते हैं। उनकी दृष्टि म विवाह वह सामाजिक समझौता है, जिसके करने के पहले व्यक्ति स्वाधीन होता है, किन्तु समझौता हो जाने के बाद उसके हाथ कट जाते हैं। उनके अनुसार ब्याह तो आत्मसमर्पण है। आत्मसमर्पण के अभाव म प्रेम ऐयाशी मात्र होता है।

मिस्टर मेहता स्त्रियो का क्षेत्र पुरुषो से बिलकुल अलग मानते हैं। उनका कहना है कि स्त्री अपनी कुर्बानी से अपने को बिलकुल मिटाकर पति की आत्मा का अंश बन जाती है, किन्तु पुरुष मे यह सामर्थ्य नहीं है। वह अपने को मिटायेगा, तो शून्य हो जाएगा। मेहता स्त्री को इतना ऊँचा उठा हुआ (या शून्य बना हुआ) देखना चाहते हैं कि पति के मारने पर भी उसमे प्रतिहिंसा की भावना न जागे और उसकी आँखो के सामने ही पति अगर किसी दूसरी स्त्री से प्यार करे, तो भी उसमे ईर्ष्या का लवलेश न आए। स्त्री की इस गरिमा को पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव मे स्त्री भूलती जा रही है, इस बात का मेहता को बडा दुःख है। पश्चिमी शिक्षा के प्रभाव मे विद्या और अधिकार की बात करने वाली स्त्री से उनका कहना है कि—"आपकी विद्या और आपका अधिकार सृष्टि और पालन मे है।"[१८] 'सृष्टि' और 'पालन' शब्दो पर चढे हुए बडप्पन के आवरण को हटाकर उनकी असलियत को समझा जाए, तो हमे यह दिखाई देता है कि पुरुष के लिए उत्तराधिकारी पैदा करने और उसे पाल पोस कर बडा करने की बात उनमे छिपी हुई है। आज के जमाने में पुरुषत्व के आधार पर स्त्री को उसके अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता, इसलिए इस छलबल का सहारा लेने के लिए पुरुष विवश है और वह स्त्री से कहने लगा है कि उसके लिए "त्याग ही सबसे बडा अधिकार है।"[१९] उसके इस त्याग का अधिकार क्षेत्र घर की चारदिवारी है। वह अपने पति के आश्रय मे इस

अधिकार को भोगे । माल्ती जैसी नए युग की देवी भी मेहता की इस बात को कोरी फिलासफी समझती है कि सुशिक्षित स्त्री मर्द का आश्रय न चाह कर मर्द के *साथ कधा मिलाकर चलना चाहती है । स्त्री का आश्रित बने रहने के लिए उसमे* श्रद्धा की आवश्यकता है । इस श्रद्धा के कारण वह पुरुष से श्रेष्ठ है क्योकि वह श्रद्धा त्याग आदि का दान करके 'देवता बनती है, पुरुष तो 'देवता' मात्र है ।'[१] *नारी तुम केवल श्रद्धा हो '' कहकर उसके अधिकारो को छीन लेने का कैसा सफाई-*दार ढग है ! नारी का घर की चारदिवारी तक सीमित रखने मे लज्जा का भी बडा भारी उपयोग है । प्रसाद के समान प्रेमचन्द ने स्त्री के लिए लज्जा को महत्त्व-पूर्ण *मानते हुए कहा है कि वह स्त्री का सबसे बडा आकर्षण है ।'*[११]

मुशी प्रमचन्द ने मेहता के माध्यम से स्त्री की प्रशसा करते हुए लिखा है कि—"स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है जितना प्रकाश अँधेरे से ।" वे इस प्रकाश से केवल घर को प्रकाशित करना चाहते हैं । घर से बाहर निकाल कर स्त्री को सामाजिक दायित्व का बोध कराने वाली उच्च शिक्षा के वे समर्थक नही है । उन्होने मुशी अहमदअली खाँ की इस बात का पूरी तरह समर्थन' किया है कि स्त्री-शिक्षा इस सीमा तक ही हो जिससे स्त्रियाँ 'दो चार हर्फ अपने रिश्ते कुनबे वालो को अपनी जरूरत के बारे मे लिख पढ सकें, घर का रोज का खर्च लिख ल, बच्चो को मामूली किताबे पढा सके "[१२] प्रेमचन्द ने अपनी इसी धारणा के कारण ही सभवत अपनी बेटी को पढाया लिखाया नही था ।

मेहता ने व्यक्तिविकास की दृष्टि से अविवाहित जीवन को श्रेष्ठ माना है । उनके अनुसार विवाह आत्मविकास मे बाधक है । मालती ने भी तितली से देवी बनने के बाद विवाह को 'असीम के निकट' पहुँच सकने की दृष्टि से बाधक माना है । यद्यपि वह यह भी स्वीकार करती है कि पूर्णता के लिए पारिवारिक प्रेम का महत्त्व है किन्तु उसे अपनी आत्मा की दृढता पर विश्वास नही है । वह यह सोचती है कि गृहस्थी की बडियाँ पैरो मे डालकर सम्मवत विकास के पथ पर चल नही सकेगी । इसलिए वह मेहता के साथ केवल मित्र बनकर रहने का ही निर्णय करती है ।[१] माल्ती *का यह निर्णय मानव की सहज प्रवृत्तियो के अनुकूल नही है । वस्तुत* उसका यह निर्णय प्रेमचन्द के अन्तर्मन मे प्रभावशाली ढग से छिपी निवृत्तिवादी विचारधारा से प्रभावित है ।

*अविवाहित न रह सकने की स्थिति मे अगर विवाह करना ही पडे, तो भी* प्रेमचन्द महात्मा गाँधी के समान ब्रह्मचर्य पर बल देते रहे हैं । उन्होने इसी कारण कृत्रिम सततिनिरोध को भोगलिप्सा के लिए वृद्धिकारक माना है और सततिनिरोध *के लिए ब्रह्मचर्य के 'मगलमय उपाय' पर बल दिया है ।*[१] वैवाहिक जीवन मे भी उन्होने स्त्री के वामपाविव्य पर अत्यधिक बल दिया है । मिर्जा खुर्शेद तो असमत

(सतीत्व) को 'हिन्दुस्तानी तहजीब की आत्मा' ही मानते हैं।[१९] कामपावित्र्यविषयक धारणा के कारण ही उन्होंने यह कहा है कि—"पुरुष में नारी के गुण आ जाते हैं, तो वह महात्मा बन जाता है। नारी में पुरुष के गुण आ जाते हैं, तो वह कुलटा हो जाती है।"[२०] इस उक्ति का 'कुलटा' शब्द स्पष्टत कामपावित्र्य की ओर संकेत कर रहा है। इसी प्रकार भारत मे कामपवित्र व्यक्ति के 'महात्मा' बनने मे देर नहीं लगती, इस बात को हर कोई जानता ही है। कामपावित्र्यविषयक इस धारणा के कारण ही उन्होंने विधवाविवाह का विरोध किया है। उन्होंने 'प्रेमा' उपन्यास का 'प्रतिज्ञा' में परिवर्तन करते समय इस मत को ही पुष्ट किया है। इसीलिए डॉक्टर रघुवीरसिंह को लिखे पत्र मे यह मत व्यक्त किया है कि—"मैंने विधवा का विवाह करके हिन्दू नारी को आदर्श से गिरा दिया था। उस वक्त जवानी की उम्र थी और सुधार की प्रवृत्ति जोरों पर थी।"[२१]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि 'गोदान' की अर्थविषयक दृष्टि सामाजिकता की चेतना से अनुप्राणित है, किन्तु कामविषयक दृष्टि में सामाजिकताविरोधी निवृत्तिवादी विचारधारा की स्पष्ट झलक है। व्यक्तिविकास की दृष्टि से विचार करने वाले निवृत्तिवादी विचारकों ने निष्कामता की सिद्धि को अत्यंत महत्त्व दिया है। काम की स्वस्थ पूर्ति दूसरे सहभोक्ता के बिना असम्भव है और दूसरे के सहयोग की स्थिति सामाजिकता की स्थिति है तथा वह भावी सामाजिक दायित्व की भूमिका भी है।

अर्थ एवं कामविषय इन उद्देश्यों पर संक्षेप में विचार कर लेने के बाद यह स्पष्ट है कि दोनों की चिन्तनधाराओं का मूल उत्स एक नहीं है और न ही दोनों धाराएँ गंगा और यमुना की तरह किसी एक स्थान पर सहयोगी रूप में मिलकर सामाजिक दृष्टि से किसी संगम-तीर्थ का निर्माण करती हैं। प्राय आलोचकों ने 'गोदान' पर यह आक्षेप किया है कि इस उपन्यास में ग्रामीण एवं शहरी कथाएँ परस्पर मिलकर नीरक्षीर की तरह एकरस नहीं हो सकी हैं। ये दोनों कथाएँ नीर-क्षीर की तरह भले ही एकरस न हो सकी हों, किन्तु वे खिचडी के मूंग-चावल या उडद-चावल की तरह अवश्य इस रूप में मिल गई हैं कि सामाजिक स्वास्थ्य के लिए वे पथ्यकर या पौष्टिक हो गई हैं। इसके विपरीत शहरी कथानक में समाविष्ट कामविषयक चर्चा उपन्यास की मूलधारा से पृथक् बहती हुई प्रतीत होती है तथा बहुत कुछ ऊपर से चस्पाँ की हुई लगती है। उपन्यास के अर्थ एवं कामविषयक सदेश परस्पर न मिलने वाले समातर सदेश हैं।

## टिप्पणियाँ

१. प्रेमचन्द : चिट्ठी-पत्री, प्रथम भाग, पृ० ५०

२ हिंदी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग पृ० ६३
३ गोदान (प्रथम संस्करण) पृ० ७४
४ धनी कौन होता है, वह जो अपने कौशल से दूसरों को बेवकूफ बना सकता है। —गोदान पृ० ४९४
५ गोदान पृ० ४१२
६ विविध प्रसंग (प्रथम भाग) पृ० २६४
७ गोदान पृ० ४९४
८ वही पृ० ६०८
९ वही पृ० ८९
१० वही पृ० ८८
११ वही पृ० १६६
१२ वही पृ० ८६
१३ वही पृ० १७
१४ वही पृ० ५०९
१५ वही पृ० ४९२
१६ वही पृ० २१२
१७ वही पृ० ५२२
१८ वही पृ० २०३
१९ हिंदी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग पृ० ५६
२० आधुनिक साहित्य, पृ० १९९
२१ प्रेमचंद एक कृती व्यक्तित्व पृ० १६६
२२ यह आवश्यक नहीं कि वे सब घटनाएँ और विचार एक ही केंद्र पर आकर मिलें। —कुछ विचार पृ० ४
२३ गोदान संपादक रामेश्वर गुरु पृ० १३३
२४ गोदान पृ० ३६५
२५ वही पृ० १९९
२६ प्रेमचंद और उनका युग पृ० १०१
२७ गोदान, पृ० ९७
२८ वही पृ० ९७०
२९ वही, पृ० ३२५
३० वही पृ० २६४
३१ कामायनी लज्जा सर्ग
३२ गोदान, पृ० ३००

३३ विविध प्रसंग (प्रथम भाग), पृ० ५६
३४ गोदान, पृ० ५७६
३५ विविध प्रसंग (तृतीय भाग), पृ० २५१
३६ गोदान, पृ० ५५४
३७ गोदान, पृ० २४४
३८ प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्पविधान—ले० डॉ० कमलकिशोर गोयनका, पृ० ५४५

---

# सुनीता : बाहर के प्रति घर की पुकार

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

जैनेन्द्रकुमार काम और प्रेम के साहित्यकार हैं।

"पत्नी सामाजिकता है और प्रेयसी दिव्यता है।"

"घर में बाहर के प्रति पुकार है, यही पुकार 'सुनीता' का विषय है।"

"आदमी अपने में अपने को पूरा नहीं पाता। दूसरे की अपेक्षा उसे है ही।"

"घरबार बसाकर तो आदमी अपने को ह्रस्व करता है।"

छोटे-से कथानक को व्यवस्थित ढंग से उपस्थित करने के कारण डा० इन्द्रनाथ मदान ने कहा है कि 'जैनेन्द्र के पास पकवान थोड़े होते हैं, किन्तु उनकी 'परोसने की कुशलता' ही उन्हें महत्त्वपूर्ण बना देती है।"

४

# सुनीता

जिस वर्ष उपन्यास सम्राट् मुंशी प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'गोदान' प्रकाशित हुआ, उसी वर्ष जैनेन्द्रकुमार का 'सुनीता' उपन्यास भी प्रकाशित हुआ। 'गोदान' ने अपनी व्यापक यथार्थवादी सामाजिक चेतना के कारण ख्याति अर्जित की तथा 'सुनीता' ने गहन अचेतन के सम्भावित यथार्थ की व्यक्तिवादी चेतना के कारण। 'गोदान' की चेतना में अर्थ और काम दोनों के लिए भरपूर स्थान है, किन्तु 'सुनीता' की चेतना अर्थ के प्रति उदासीन है तथा काम के प्रति सजग है। जैनेन्द्रकुमार काम और प्रेम के सहित्यकार हैं। काम और प्रेम की दृष्टि से भी 'गोदान' और 'सुनीता' की चेतना में भेद है। 'गोदान' का काम सामाजिक चेतना से नियन्त्रित होने के कारण विवाह में आस्थावान् है, किन्तु 'सुनीता' का काम विवाह को 'निवाहने योग्य संस्था' मानते हुए भी प्रेम को अधिक महत्त्व देता है। 'सुनीता' ही नहीं, *अपितु जैनेन्द्र के सम्पूर्ण उपन्यास साहित्य की केंद्रीय संवेदना प्रेम ही है।* जैनेन्द्र की दृष्टि में पत्नी सामाजिकता है' और 'प्रेयसी दिव्यता है।' वे यह मानते हैं कि "प्रेम गगनविहारी है, मुक्त होकर ही वह है।"[1] उनके अनुसार प्रेम बाँधकर भी खोलता है। इसके विपरीत विवाह की आबद्धता में केवल निर्वाह की बात ही रह जाती है। प्राय: ईर्ष्या के पहरे में रखकर ही विवाह की सुरक्षा की जाती है। ऐसी स्थिति में घर और बाहर की समस्या खड़ी हो जाती है।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने 'घर और बाहर' उपन्यास में बाहर के आक्रमण से घर की रक्षा का संदेश दिया है। जैनेन्द्र को घर और बाहर का विरोध मान्य नहीं है। वे कहते हैं—"असल में 'घर' और 'बाहर' में परस्पर सम्मुखता ही मैं देखता हूँ। उनमें कोई सिद्धान्तगत पारस्परिक विरोध देखकर नहीं चल पाता।"[2] इसलिए वे घर और बाहर के द्वैत को मिटा देना चाहते हैं। उनके अनुसार "भीतर का बाहर के साथ तन्मयता अनिवार्य है।"[3] इसीलिए उन्होंने 'बाहर' को निरे आक्रामक के रूप में घर के भीतर प्रविष्ट नहीं किया है। उनकी दृष्टि में "घर में बाहर के प्रति पुकार है।" यही पुकार 'सुनीता' का विषय है। उन्होंने स्पष्ट किया है

कि बाहर के कारण घर की निरानन्दता घटती है।

समाजशास्त्र के अनुसार दो सम्बन्धित व्यक्तियों का युग्मक समाज की सबसे छोटी इकाई होती है। इस प्रकार की इकाइयों में युवक और युवती के युग्मक का महत्त्व सबसे अधिक है। यह इकाई सृजनशील होने के कारण सामाजिक विकास एवं नैरन्तर्य के लिए विशेष रूप से उत्तरदायी है। इस इकाई की स्थिरता सामाजिक स्वास्थ्य एवं शांति के लिए आवश्यक है। इस स्थिरता की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए विवाह संस्था को विकसित किया गया है। स्वस्थ विवाह संस्था के कारण 'भूत का डेरा' भी 'घर' के अपनेपन के कारण स्वर्ग के समान आनन्ददायक बन जाता है। किंतु विवाह संस्था की स्थिरता के लिए अगर पति और पत्नी के युगल में से कोई एक व्यक्ति को घर की चार-दिवारी की घुटन अनुभव करे, तो विवाह संस्था घर को निरानन्द बना डालती है। बाहर के सहज संपर्क के अभाव में श्रीकांत और सुनीता का दाम्पत्य-जीवन घर में घिरा रहने के कारण जड़ता से आच्छन्न हो गया था। इसी कारण एक ओर श्रीकांत यह सोचने लगा था कि उसे 'निरन्तर पत्नी' के अतिरिक्त *कुछ और भी चाहिए* तथा दूसरी ओर 'वैचित्र्य के प्रति जिज्ञासु' सुनीता विश्ववैचित्र्य के लिए आतुर हो उठती है।[1] उसका मन पति के यमनियमादि के पालन करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध उद्विग्न हो उठता है। वह सोचने लगती है कि वह अपने पति को अपने में बाँधकर क्यों नहीं रख पाती।

घर की पत्र पुष्पहीन ऋतु को बदल कर वसंत ऋतु की बहार लाने के लिए श्रीकांत ने दशहरे की छुट्टियों में दिल्ली से दूर प्रयाग के कुंभ मेले में जाने का कार्य-क्रम बनाया। प्रयाग के कुंभ-मेले में चौदह वर्ष बाद उसे दूर से हरिप्रसन्न दिखाई दिया, किन्तु भीड़ के कारण भेंट न हो सकी। यह वही हरिप्रसन्न है, जो यह समझता है कि—"घर बार बसा कर आदमी अपने को छुद्र कर लेता है।"[2] श्रीकांत और सुनीता के दाम्पत्य जीवन के लिए हरिप्रसन्न बाहर का प्रतीक है। इस बाहर के संपर्क से दाम्पत्य जीवन की नवयुक्तता का स्वाद प्राप्त करने का निश्चय श्रीकांत करता है। बाहर की खुली दुनिया के सम्पर्क से ही दो के एक हो रहने की महत्ता का अनुभव किया जा सकता है। इस प्रसंग में कठिनाई यह है कि माया को मरीचिका समझने वाले और जाया को जिन्सी जाया करने का कारण समझने वाले हरिप्रसन्न में घर का आकर्षण किस प्रकार पैदा किया जाए। हरि प्रसन्न को घर की ओर आकृष्ट करने के लिए श्रीकांत अपनी पत्नी का उपयोग करता है। वह हरिप्रसन्न को लिखे पत्र में यह कहता है कि—"आदमी अपने में अपने को पूरा नहीं पाता। दूसरे की अपेक्षा उसे है ही।" इतना ही नहीं, अपने इस पत्र के साथ भाभी का परिचय देते हुए अपनी पत्नी की शादी से ठीक पहले की गजब की तस्वीर भेजने की योजना बनाता है। वह इस तस्वीर के सम्बन्ध में पत्र

मे यह लिखता है कि—"अपनी मामी की तस्वीर देखो, और कहो, तुम्हे स्त्री से छुट्टी चाहिए ?" श्रीकात मामी की तस्वीर के आकर्षण की भूमिका बनाने केसाथ हरिप्रसन्न से घर पर आने के लिए अनुरोध करता है और लिखता है कि—"मुझसे ज्यादा अपनी मामी का अनुरोध समझो।"[३] अपने पति की इस योजना मे सुनीता सहर्ष शामिल हो जाती है।

श्रीकात और सुनीता की इस घर और बाहर को परस्पर पूरक बनाने की योजना के बाद एक दिन सहज ही हरिप्रसन्न दिल्ली मे ही श्रीकात से मिलता है। श्रीकात हरिप्रसन्न को घर लिवा लाता है और हरिप्रसन्न के घर आने और घर मे कुछ काल रहने के बाद घर का सारा मौसम ही बदल जाता है। उसके कुछ काल घर मे रह जाने के कारण श्रीकात और सुनीता, दोनो कुछ भर आते है। श्रीकात ने यह अनुभव किया कि इधर कुछ वर्षों से इतने सहज रूप मे सुनीता से वह कभी कोई बात नही कह पाया है, जितने सहज रूप मे हरिप्रसन्न के घर मे आने के बाद वह अनायास कहने लगा है। दूसरी ओर सुनीता ने भी यह अनुभव किया कि यमनियमादि को ही सब कुछ समझने वाला उसका पति सरस हो उठा है। पिछले पाँच-छह वर्षों से जिसने कभी सिनेमा का नाम भी नही लिया था, वह 'राजरानी मीरा' को देखने के लिए सोत्साह आग्रह कर रहा है। इतना ही नही, स्वय अपने मे ही वह सुखद परिवर्तन का अनुभव करने लगी है। उसने वर्षों से भूली हुई सितार के तारो को फिर से छेड़ना शुरू कर दिया है। ऐसा लगता है कि जैसे वर्षों से जो भीतर रुका पड़ा था, वह हरिप्रसन्न के सम्पर्क मे आते ही सितार के सुरो मे बज उठा है।

बाहर के आनन्दोद्दीपक सम्पर्क को श्रीकात ने यही तक सीमित नही रहने दिया। वह हरिप्रसन्न और सुनीता के देवर-भाभीपन के नाते मे और भी अधिक प्रगाढ रग भर स्वय रगारग होना चाहता है। इसीलिए अदालत के काम से लाहौर जाते समय वह हरिप्रसन्न से जहाँ यह कहता है कि—"मेरे पीछे अपनी भाभी को जरा भी कम अपनी न समझना", वहाँ वह सुनीता से हरिप्रसन्न को पूरी तरह प्रसन्न रखने के लिए कहता है। इतना ही नही, वह लाहौर से अदालत का काम समाप्त होने के बाद भी जानबूझ कर जल्दी नही लौटता। इसीलिए वह लाहौर से भेजे पत्र म सुनीता को लिखता है कि—"अदालत का काम खत्म हुआ समझो। फिर भी मैं रहने के लिए यहाँ चार-पाँच रोज रहूँगा।" वह अपने पत्र मे यह भी लिखता है कि—"इन कुछ दिनो के लिए मेरे ख्याल को अपने से बिल्कुल दूर कर देना। तुम इन दिनो के लिए अपने को उसकी (हरिप्रसन्न की) इच्छा के नीचे छोड देना। यह समझना कि मैं नही हूँ, इस भाँति निषिद्ध कुछ भी कोई नहीं रहगा।"[४]

श्रीकात की ओर से उकसाए जाने के बाद सुनीता हरिप्रसन्न से कहती है

कि—'हरी, मेरे प्रेम की सौगन्ध, तुम अपने को मारोगे नहीं।" यह हरिप्रसन्न के कहने पर 'रणदेवी' 'मायारानी' बनकर अपनी माया के आकर्षण से दल के युवकों के उल्लास को जग ने के लिए उद्यत हो जाती है। रात की मीठी चाँदनी में गुलाबी सर्दी की बयार में हरिप्रसन्न सुनीता को समूची पाने के लिए व्याकुल हो उठता है। वह अपनी जघा के सहारे लेटी हुई सुनीता से कहता है कि—"मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।" इस पर सुनीता कहती है—'इनकार कब करती हूँ। मरो मत, कर्म करो। मुझे ले लो।" वह इतना कहकर ही नहीं रुक जाती, अपितु अपने को पूरी तरह से निर्वसन कर लेती है। उसको नग्न देखकर हरिप्रसन्न के भीतर उमड़ता हुआ लावा लज्जा के कारण जहाँ का तहाँ जम जाता है। उपन्यास के इस प्रसग के कारण जगदीश पाण्डे ने जैनेन्द्र को चीरहरण का कथाकार कह डाला है तथा कुछ अन्य आलोचकों ने इस 'साड़ी जम्पर उतारवाद' की कड़ी आलोचना की है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि सुनीता की नग्नता दमित वासना का विस्फोट न होकर नैतिक तर्क के रूप में उपस्थित की गई है। वह निर्वसन होकर भी इसीलिए नग्न नहीं हुई। इसके पीछे सुनीता की हरिप्रसन्न के प्रति सघन सहानुभूति विद्यमान है। इसलिए इस प्रसग मे अश्लीलता की भावना नहीं है। स्वय जैनेन्द्रकुमार का कहना है कि—"जहाँ छल है, वहाँ अश्लीलता है। जहाँ हमारा सम्बन्ध सघन सहानुभूति का है, वहाँ अश्लीलता रह ही नहीं जाती। वेदना प्रधान है जहाँ, वहाँ अश्लीलता है ही नहीं।"[1] इन तर्कों के बावजूद इस प्रसग के हल्केपन से इनकार नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यह वर्णन देखिए—"सुनीता अपने शरीर पर आहिस्ता आहिस्ता फिरते हुए इस पुरुष के हाथ का स्पर्श अनुभव करने लगी। कुछ देर तो वह यूँ ही पड़ी रही, फिर आँख खोलकर मानो कूज कर उसने कहा—'हरि बाबू ?"

जैनेन्द्र ने नग्नता के तर्क को शायद सबल बनाने के लिए हरिप्रसन्न में लज्जा का आविर्भाव दिखाया है तथा सुनीता बाद में हरिप्रसन्न के चरणों की रज लेती हुई प्रदर्शित की गई है। यदि तर्क देकर सुनीता ने हरिप्रसन्न को सच्ची दृष्टि प्रदान की है, तो हरिप्रसन्न को सुनीता के चरणों की रज लेनी चाहिए थी। इस प्रसग के बाद श्रीकांत ने सुनीता को अपने आलिंगन में बाँध लेना चाहा तो 'नववधू जैसा भाव' सुनीता में आ गया। "व्रीडा की लाली की विमलता को देखकर श्रीकांत के भीतर फूटता हुआ सदेह एकदम अपनी ही लज्जा में गलकर खो गया।"[2] आलिंगन में आबद्ध सुनीता ने व्याज-व्रीडा के भाव से कहा "हटो हटो।" उपन्यास नववधू की इस विमल व्रीडा के साथ समाप्त हुआ है। बाहर के सम्पर्क के कारण श्रीकांत और सुनीता का दाम्पत्यजीवन जो अकारण ही निरानन्द सा बन गया था, वह नव-विवाहितों के दाम्पत्य के समान उल्लास और आनन्द से सम्पन्न हो उठा है।

प्रस्तुत उपन्यास के प्रारम्भिक भाग में लेखक ने श्रीकांत और सुनीता के

क्रान्तिकारी इसी दृष्टिकोण के कायल होते हैं। इस प्रकार के दृष्टिकोण के कारण व्यक्ति में गाँठ पड़ जाती है। हरिप्रसन्न के चित्त में इसी प्रकार की गाँठ है जिसे खोलकर उसे सहज बनाने के लिए श्रीकांत ने सुनीता का उपलक्ष्य बनाया है। वह सुनीता से यह स्पष्ट कहता है कि—'तुम्हारी ही राह से मैं उसे दुनिया में लाने की सोचता हूँ।'[11] सुनीता भी हरिप्रसन्न के प्रति सकरुण होकर कहती है कि— बेचारे को कोई भी नहीं मिली।" इसलिए वह अपने पति को सहयोग देने के लिए सहर्ष तैयार हो जाती है। श्रीकांत और सुनीता अपने इस अभीष्ट को प्राप्त करने के लिए 'हरिप्रसन्न के प्रति सब कुछ करने के लिए उद्यत हो जाते हैं। सुनीता इसीलिए निर्वसनता के नैतिक तर्क से भी हरिप्रसन्न को दुनिया में लाने का प्रयत्न करती है। अन्त में श्रीकांत अपनी पत्नी से यह कहता है कि 'गाँठ उसके (हरिप्रसन्न) भीतर से खींच निकालने में उपलक्ष्य तुम बनी।[11] श्रीकांत की यह बात रोचाई का प्रलाप है। सुनीता के संपर्क में रहकर हरिप्रसन्न का काम उभड़कर बाहर निकल पड़ता है और वह समर्थी सुनीता को पाने की माँग पेश करता है। सुनीता ने भले ही यह कहा हो कि मैं इन्कार कब करती हूँ, किन्तु निवसन होने के बाद भी पर कीआपन का वसन उसकी नग्न देह को आवृत किए हुए था। उसने अपने को सज्जा से निर्वसन नहीं किया। सहज ढंग से निर्वसन होती तो साड़ी को 'फेंकने' का उल्लेख किया ही न जाता। सुनीता की निर्वसन देह को देखने की चेतना उसमें नहीं थी लज्जा ने उसकी चेतना को जमा दिया था। इस लज्जा के कारण ही यह सुनीता के लिए अदेय हो उठा है, परिणामतः हम सुनीता को हरिप्रसन्न की चरण छूते हुए देखते हैं। स्पष्ट है कि हरिप्रसन्न की गाँठ खुली नहीं, अपितु पहले से भी अधिक मजबूत बन गई है। यदि वह खुल गई होती, ना उसे हम किसी जीवनरागिनी से प्रतिबद्ध पाते! हाँ, इतना अवश्य सिद्ध हुआ है कि श्रीकांत ने हरिप्रसन्न के निमित्त से सुनीता को अपने और भी अधिक निकट अनुभव किया।[11] अपने दाम्पत्यजीवन के रुके हुए प्रवाह को फिर से गतिशील बनाने के लिए हरिप्रसन्न का साधन मात्र बनाया है। परोपकार करने के नाम पर अपने स्वार्थ को ही सिद्ध किया है। सभी प्रकार के सम्बन्धों में 'आत्मिक समर्पण के अतिरिक्त' 'आत्मिक स्पर्श' वाला अंश भी होता है। श्रीकांत और सुनीता के दाम्पत्यसम्बन्ध के सरोवर को संतुष्ट करने में हरिप्रसन्न निमित्त मात्र बना है।

घर और बाहर के सम्बन्ध के वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिए कथानक आदि का लेखक ने उपयोग मात्र किया है, उन पर बल नहीं दिया है। कथानक आदि उपकरण उद्देश्य कथन के लिए पूर्णतः समर्पित हैं। उपकरण विषयक निष्पत्ति को जैनेन्द्र के उपन्यासों में अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है। जैनेन्द्र का मत है कि— निर्माण आवश्यक नहीं है। कारीगरी की किसी तरह छोटी बात नहीं

समझा जा सकता। लेकिन उससे किनारे बनते हैं। नदी का पानी नहीं बनता।"[14]

'सुनीता' का कथानक यद्यपि बयालीस परिच्छेदों मे विभक्त है, किन्तु घटनाओ के आटोप का सर्वथा अभाव है। स्वय लेखक ने 'प्रस्तावना' मे यह स्पष्ट कर दिया है कि *"कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है।"* इसीलिए उपन्यास का कथानक कुतूहल्तत्व के प्रति उदासीन है। घटना के बाद घटना को क्षिप्र गति से बढ़ने वाला 'फिर क्या हुआ ?' का कुतूहल उपन्यास मे अत्यन्त गौण है। डॉक्टर नगेंद्र का यह कहना पूर्णत सत्य है कि—'जैनेन्द्र जी के उपन्यासो मे कहानी केवल निमित्त मात्र होती है।'[15] यह निमित्त मात्र कहानी भी मडूकप्लुति से कुछ कहते हुए और बहुत कुछ अनकहा रखते हुए आगे बढ़ती है। वस्तुत उनके उपन्यासो के कथानक रूपरेखात्मक होते हैं। उनमे दोहरे तिहरे कथानक के लिए स्थान प्राय नहीं होता। 'सुनीता' का कथानक अत्यन्त सरल एव घटनाविहीन सा है। इस कथानक मे नाटकीय विडबना (ड्रामेटिक आयरनी) का उदाहरण भी देखा जा सकता है। उपन्यास के प्रारम्भिक भाग मे "मुझ कौन कामदेव बनना है"—कहने वाला हरिप्रसन्न उपन्यास के अन्त मे कामदेव ही बन सा जाता है और वह प्रेम के नाम पर 'काम की लाली' से सम्पन्न सुनीता से समूचे काम की तृप्ति पाना चाहता है। छोटे-से कथानक को *व्यवस्थित ढग से उपस्थित करने के कारण डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान ने कहा है कि* जैनेन्द्र के पास 'पकवान थोड़े' होते हैं, किन्तु उनकी 'परसने की कुशलता' ही उन्हें महत्त्वपूर्ण बना देती है।[16]

जिस प्रकार 'सुनीता' मे इनी गिनी दो एक घटनाएँ हैं, उसी प्रकार पात्रो की सख्या भी अत्यल्प है। यहाँ उल्लेखनीय पात्र केवल साढे तीन हैं—श्रीकात, सुनीता, हरिप्रसन्न और आधा पात्र सत्या है। इनके अतिरिक्त सुनीता के मैके के लोग एव चन्द्रसेन आदि केवल मुँह दिखाने भर को उपन्यास के मच पर आते हैं। हम यहा केवल साढे तीन पात्रो के सम्बन्ध मे ही सक्षिप्त रूप से चर्चा करेंगे।

श्रीकात हरिप्रसन्न का बचपन का मित्र है। यद्यपि दोनो के स्वभावो मे बहुत बडा अन्तर है, किन्तु दोनो का सौहार्द अटूट है। हरिप्रसन्न का सर्वप्रमुख गुण *सार्वजनिकता या परार्थतत्परता है।* इसके विपरीत श्रीकात मे सार्वजनिकता का अभाव है। हरिप्रसन्न सामाजिक कार्य के लिए अविवाहित बना रहता है तथा श्रीकात का विवाह सुनीता से हो जाता है। विवाह हुए कुछ वर्ष बीत चुके हैं किन्तु वह अभी तक नि सतान है। सतान की उसे चिंता नहीं है, किन्तु घर के वातावरण की निष्कारण जडता से वह चिंतित है। इस निष्कारण जडता का निराकरण करने के *लिए वह हरिप्रसन्न को साधन बनाना हैं,* किन्तु *बचपन के मित्र को साधन बनाते* समय उसका मन किसी-न-किसी रूप मे सकोच का अनुभव करता है, सम्भवत इसीलिए हरिप्रसन्न के मन की गाँठ को खोलने का बहाना उसके मन ने ढूँढ लिया

हैं। वह स्वयं एक स्थान पर यह स्वीकार करता है कि—"मैं परमार्थ का कायल नहीं। मुझे तो मेरा अपना हित ही इसमें दीखता है।"[14] अपने स्वार्थ के लिए घर को बाहर के सम्पर्क में समय वह सब कुछ को उद्यत है, क्योंकि वह स्वभाव से ही "आधा मन देना नहीं जानता। वह सुनीता को इतनी छूट दे देता है कि उसके लिए कोई कर्म निषिद्ध नहीं रह पाता। इसके बावजूद सामाजिक नीतिसंस्कारों से वह सर्वथा मुक्त नहीं हो पाया है। हरिप्रसन्न के साथ सुनीता को मोटर में बैठकर रात को बाहर जाते देखकर वह उद्विग्न हो उठता है और बाद में सुनीता की क्रीड़ा की लाली में चारित्रिक निर्मलता का प्रमाण पाकर वह आश्वस्त हो जाता है। इस प्रकार तृतीय आहूत पक्ष की आवश्यकता अनुभव करने वाला उसका अंतर्मन जहाँ सन्तुष्ट होता है, वहाँ नीतिसंस्कार से युक्त उसका चेतन मन भी अनाहत बना रहता है। विवाह संस्था की सतीत्व की धारणा का निर्वाह हो जाता है।

श्रीकांत के समान ही सुनीता भी घर की जड़ता के बोझ से मुक्त होना चाहती है, इसलिए वह अपने पति की योजना में सहभागी होने के लिए सहर्ष उद्यत हो जाती है। उसमें बचपन से ही आवारगी में एक प्रकार का आकर्षण रहा है, इसीलिए वह पति के प्रति विसर्जित रहते हुए भी हरिप्रसन्न के साथ रात में भी जंगल में जाने में संकोच नहीं करती। उसका मन बचपन से ही 'वैचित्र्य के प्रति जिज्ञासु और सामर्थ्य के प्रति उन्मुख' रहा है। गृहणी सुनीता में छिपा बालिका सुनीता का रूप उभर कर सामने आया। इस प्रसंग में वह पति के प्रति पूर्णतः समर्पित होने के कारण पति की इच्छा को पूर्ण करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसी प्रतिबद्धता के कारण वह हरिप्रसन्न को दुनियाँ में लाने के लिए निमित्त बनने के लिए निःसंकोच तैयार हो जाती है। वह हरिप्रसन्न को अपने मनोमुग्धकर सन्नद्ध रूप के द्वारा आकृष्ट ही नहीं करती, अपितु हरिप्रसन्न द्वारा अपनी बाहु को चूमे जाने और अपनी कनपटी के नीचे लिए जाने पर कुछ भी नहीं कहती। इतना ही नहीं, अपने प्रेम की सौगंध देकर हरिप्रसन्न से अपने आप को न मारने के लिये कहती है। 'मरो मत, कर्म करो'[15] कह कर वह समूची लिये जाने के लिये निर्वसन तक हो जाती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से वस्तुतः यह दाम्पत्य सम्बन्ध के स्पर्धा से सम्बन्धित है या तृतीय आहूत पक्ष की आवश्यकता की पूर्ति करने वाली घटना है। स्पष्टतः सुनीता और श्रीकांत 'वर' के परस्पर पूरक अर्धांग हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में हरिप्रसन्न बाहर का प्रतीक है। वह 'परार्थतत्पर' होने के कारण विवाह को व्यक्तित्व के स्वच्छन्द विकास में बाधक समझता है। इसलिए सुनीता का यह कहना कि 'बेचारे को कोई भी नहीं मिली'—संगत नहीं है। वस्तुतः उसने घर बसाने का प्रयत्न ही नहीं किया है। वह सुनीता से इसीलिए कहता है कि-"मेरे साथ व्याह वह करे, जो मुझे छोड़कर किसी दिन भी चल देने की हिम्मत रखे,

*क्योंकि कौन कौन जानता है कि मैं उसे किसी दिन छोड़ कर नहीं चल पड़ सकता ।"* वह आन और कल के बीच नये दबे गृहस्थजीवन से जानबझ कर बचा रहा है। यद्यपि गहस्थ जीवन से बचे रहने का उसका तर्क सामाजिक दृष्टि से प्रेरित है, किन्तु गृहस्थजीवन के अभाव मे काम की सहज प्रवृत्ति की अतृप्ति के कारण कुंठा का आ जाना स्वाभाविक है। कुंठाग्रस्त व्यक्ति हिंसा के मार्ग पर अगर मुड़ जाय, तो उसे स्वाभाविक ही समझना चाहिए। हरिप्रसन्न भी केवल अहिंसक सत्याग्रही ही नहीं बना रहा किन्तु हिंसक क्रान्ति के मार्ग पर भी वह मुड़ गया है। यह बात दूसरी है कि उपन्यास म उसका क्रान्तिकारी रूप बिलकुल उभर नहीं सका है। 'मायारानी' *के आकर्षण के कारण वह क्रान्ति के ... को रसमय बनाने में ही जुट गया है, अत* संदेश प्राग मे क्रान्ति का उन्माद ... कहीं नहीं है। उसका सुनीता को 'रणदेवी बनाने का आदर्श उसका रतिदेवी बनाने म ही पर्यवसित हो कर *रह गया।*

हरिप्रसन्न के मन मे कामकुंठा कहीं गहरे में विद्यमान थी, परिणामत क्रान्तिकारिता का आवरण हटने मे कोई कठिनाई नहीं हुई। देवरभाभीपन के स्वरूप पर विचार करते करते सुनीता की किवाड पर पड़ी थपथपाहट को सुनने ही उसके मन मे खलबली मच जाती है। वह शैली की पुस्तक मे लिखे 'सुनीता' को 'श्रीमती सुनीता देवी' कर देता है। इतना ही नहीं वह सुनीता की तस्वीर को भी सुधारता है। सुनीता के नाम और तस्वीर म किये गये ये परिवर्तन उसके परिवर्तमान मन के बहिरंग सूचक है। इसके साथ ही *'मुझे कौन कामदेव बनना है'* कहने वाला हरिप्रसन्न *बाद म बिना किसी के अनुरोध के अपनी दाढ़ी मूंछ साफ करा देता है। वह इतना आगे बढ जाता है कि सुनीता की कलाई को पकड कर अपने पास बिठा लेता है।* उसके भीतर कुछ काला-काला धुन सा घुमड़ने लगता है। इसी घुमड़न के प्रभाव मे *वह रात के एकान्त मे ओसकीलित नग्न पुरुष का चित्र खींचता है, जिसे दिखाने के* लिए प्रात जब वह गड़बड़ म सुनीता के पास पहुँचा, तो सद्यस्नाता सुनीता को देख कर स्तिमित नमित रह जाता है। इसके बाद सुनीता के बाहु को रात के एकान्त मे चूम लेता है तथा उसके ... को कनपटी के नीचे लेकर लेटे रहता है। वह मन ही मन सुनीता की जाँघ का तकिया पाने की कामना मे डूब जाता है तथा अन्त मे मानो इसी कामना की पूर्ति के लिए रसीले संदेश की योजना बनाता है। सुनीता के प्रति उसका सम्पूर्ण व्यवहार उसे समूची पाने की अभिलाषा से प्रेरित है। किन्तु इस सम्पूर्ण व्यवहार को लज्जा ने चरमसीमा पर पहुँचते ही एकाएक रोक दिया है। *हरिप्रसन्न की कुंठा कम होने के स्थान पर बढ़ी ही होगी, यह निश्चित है।*

उपर्युक्त तीन पात्रों के अतिरिक्त सत्या का स्थान भी उपन्यास मे है। उपन्यास म सत्या का प्रवेश ट्यूशन आदि के बहाने हरिप्रसन्न को 'घर' में रोक लेने के लिए

दिखाई देती है । दृष्टांत का एक उदाहरण देखिए—"हरिप्रसन्न अपना मन थामे था, *जैसे कि बरहयास घोड़े को कोई ओर से लगाम खींच कर थामे हो।"* एक सर्वथा नई उपमा का रूप देखिये—'वह अर्धविराम के चिन्ह की भाँति वहाँ बैठा था।"

यद्यपि जैनेन्द्र की भाषा प्रायः बोलचाल की भाषा हैं, किन्तु बीच बीच में चावल के कंकर के समान कठिन शब्द जहाँ तहाँ बिखरे दिखाई देते हैं । बोलचाल की भाषा के आग्रह के कारण गिरस्तिन, गल, बयार, बिया, आदि मधुर तदभव शब्दों का प्रयोग एक ओर ओर हुआ है, तो दूसरी ओर कृपानुजीवी, उत्क्रुद्ध, जगड्वाल आदि शब्द भी दीख पड़ते हैं । उर्दू के सरल शब्दों के साथ 'मौकूफ' तरद्दुत आदि अप्रचलित शब्द भी कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं । इसी प्रकार अंग्रेजी के 'सिस्टम' आदि शब्द ही नहीं, अपितु एकाध स्थल पर रोमन लिपि में Who possed is little *so much the less possed* जैसे पूर्ण वाक्य भी प्रयुक्त हुआ है । भाषागत इन दोषों के कारण डॉक्टर नगेन्द्र ने यह ठीक ही कहा है—"अभिव्यक्ति के दो अंग हैं—उक्ति और भाषा । उक्ति कला है और भाषा शास्त्र है । जैनेन्द्र जी उक्ति के माहिर हैं । वक्रता पर ऐसा अधिकार कदाचित् ही किसी गद्य लेखक का हो—शायद निराला का है । परन्तु भाषावाला अंग जैनेन्द्र जी का कच्चा है।"[३१]

*जैनेन्द्र की भाषा का कच्चापन स्थान-स्थान पर प्रकट हुआ है ।* 'तुम देश देश में भटका किये हो', 'वहम में जीता किये हो', 'बहुत कुछ है, जो होना मांगता है, आदि ढंग के अटपटे वाक्य उनकी भाषा में पाए जाते हैं । 'निष्पुना' में निरर्थक संस्कृत भाषा का लिंगविधान है, तो 'अपने पराजय' में लिंगविपर्ययविषयक दोष है । 'ईप्सित होकर' 'आयत्त करो जैसे हिन्दी की प्रकृति के अननुकूल प्रयोग भी किए *गए हैं । 'पन्द्रह रुपये मुझे अभी चाहेंगे' का प्रयोग चिंतनीय है । 'निर्बंधा' जैसे समास* खटकते हैं । 'आवें' आदि प्रयोग भी न हों, तो अच्छा है । भाषागत इन दोषों के बावजूद जैनेन्द्र की अभिव्यक्तिक्षमता अद्वितीय है, इसमें कोई संदेह नहीं है ।

## टिप्पणियाँ

१ कल्याणी, पृ०
२ साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ११६
३ *कल्याणी पृ०*
४ सुनीता, पृ० १७
५ वही, पृ० १६०
६ वही, पृ० ६०
७ वही, पृ० १०
८ वही, पृ० १४०

९ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास—डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव, पृ० २३
१०. सुनीता, पृ० १८९
११. वही, पृ० १४
१२ वही, पृ० १९०
१३ वही, पृ० १३३
१४ साहित्य का श्रेय और प्रेय, पृ० ३२२
१५. आस्था के चरण, पृ० ६२१
१६ आज का हिन्दी उपन्यास, पृ० २३
१७ सुनीता, पृ० १४
१८ वही, पृ० १८४
१९ वही, पृ० ६२
२०. साहित्य का श्रेय और प्रेय (प्रस्तावना), पृ० १२
२१ जैनेन्द्र और उनके उपन्यास, पृ० १११

# कल्याणी : एक मनोवैज्ञानिक उपन्यास

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

---

"द्वन्द्व के माने हैं दो के बीच का अन्तर्विरोध। यह दो के, अथवा अनेक के, बीच एकता का अभाव ही हमारी समस्या है।"

—'कल्याणी'

"आदमी के भीतर की व्यथा ही सच है। उसे सँजोये रखना चाहिए। यह व्यथा ही शक्ति है।"

—'कल्याणी'

"कल्याणी का यह जीवन-चरित्र नहीं है। उनके व्यक्तित्व को चारों ओर से लेकर विश्लेषण द्वारा पुनर्निर्माण करने की मेरी इच्छा नहीं है। यह तो वह कहानी है जिसमें संवेदन हुआ तो मैंने भर पाया। सहानुभूति से आगे मुझे क्या चाहिये? पात्र यदि चाहिये तो उसी को टिकाने के लिए। चरित्र लिखने की मेरी ताब नहीं। बस कुछ याद की बातें कहता हूँ कि कहीं हमारा चित्त छू जाय और रस का स्रोत फूट आवे।"

—'कल्याणी'

"सब मिलाकर मन यह मानता है कि यह मानवात्मा (कल्याणी) विकास-पथ पर है।"

—'कल्याणी'

# ५
# कल्याणी

उपन्यास का इतिहास पाठक की दृष्टि से मानव-व्यक्तित्व के निकट से निकटतर पहुँचने का इतिहास है। इसी बात में उसका 'उपन्यासत्व' निहित है। हिन्दी उपन्यास के प्रारम्भिक काल में देवकीनन्दन खत्री ने मनोरंजन के उद्देश्य को सामने रखकर कुतूहलवृत्ति को तृप्त करने वाले उपन्यास लिखे। इन उपन्यासो में अद्भुतरम्य रहस्यमय कल्पना संसार का चमत्कार है। देवकीनन्दन खत्री के बाद मुंशी प्रेमचन्द ने उपन्यास के लिए मनोरंजन मात्र के उद्देश्य को अपर्याप्त मानकर उपयोगितावादी दृष्टि को अनिवार्य माना। उन्होंने साहित्य को दीपक के समान मार्गदर्शक मानकर सामाजिक जीवन पर अपनी दृष्टि केन्द्रित की है। गांधीवादी आदर्शभावना पर बल देने के बावजूद उनके उपन्यासो की आधारभूमि यथार्थवादी है। इसीलिए उनके उपन्यासो में मानवचरित्र के यथार्थ चित्र भरपूर रूप से भरे पड़े है। उपन्यास साहित्य में मानव की प्रतिष्ठा का श्रेय उन्ही को है। चरित्रप्रधान होते हुए भी प्रेमचन्द के उपन्यास कथानक की सरसता में यत्किंचित् भी पीछे नही है। इसी कारण डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने उन्हें कथासौन्दर्य का विशेषज्ञ कहा है।[1]

मुंशी प्रेमचन्द ने अपने सामाजिक उपन्यासो में मानव की प्रतिष्ठा तो अवश्य की किन्तु मानवचरित्र के मूल स्रोतों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उनके उपन्यासो में सामाजिक समस्याओं की व्यापकता है किन्तु व्यक्तित्व की गहराइयों का गहन मनोवैज्ञानिक विश्लेषण नहीं है। इसलिए उनके उपन्यास गांधीवाद के बहिर्मुखी व्यवहारपक्ष को जितना उपस्थित करने मे सफल हैं, उतना उसके अन्तर्मुखी अध्यात्मपक्ष को प्रकाशित करने में नहीं। इस पक्ष को उजागर करने का श्रेय जैनेन्द्रकुमार को है। वे हिन्दी के प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। मनोविज्ञान की विभिन्न शाखाओं की दृष्टि से विचार करने पर जैनेन्द्र को गेस्टाल्टवादी कहा जा सकता है। यह सम्पूर्णतावादी विचारधारा भारतीय अद्वैतवाद के समान जीवन की अखंडता को सत्य मानकर खंडता या अपूर्णता को मिथ्या मानती है। जीवन की पूर्णता आनन्दमय है तथा अपूर्णता दुखदायक। गांधीवाद के अनुसार पूर्णता की प्राप्ति का साधन

प्रेम या अहिंसा है। गांधीवाद की अहिंसा-विषयक धारणा जैनधर्म के समान आत्म-पीडन की समर्थक है। आत्मपीडन-सिद्धान्त को ही जैनेन्द्र ने ब्रह्मचर्य भी कहा है और इस ब्रह्मचर्य के विरोधी अहंचर्य (आत्मरति) का खण्डन किया है।[1] अहिंसा-नुकूल आत्मपीडन का सर्वोत्तम साधन कामदमन ही हो सकता है, क्योंकि कामवृत्ति ही जीवन की प्रबलतम प्रवृत्ति है। जैनेन्द्र के अनुसार 'प्रेम मे वासना नही हो सकती, उसमे इतनी अपूर्णता ही नही हो सकती।'[2] जैनेन्द्र के इस विश्वास के विपरीत आधुनिक मनोविज्ञान प्रेम की घनिष्टता के लिए इन्द्रिय सम्बन्ध की महत्ता का प्रतिपादन करता है। वह दमनशील नैतिकता का विरोधी है। पुरुषप्रधान समाज मे परम्परागत विवाहसंस्था की दमनशील नैतिकता का शिकार स्त्रियाँ को ही प्राय बनना पडा है। इस पारम्परिक नैतिक दृष्टि के कारण ही मनु ने न स्त्री स्वातन्त्र्य महति का फतवा दे दिया है। स्वातन्त्र्य के छिन जाने के बावजूद स्त्रियाँ जवान होती रही और जवानी के सपनो मे रंग भरती रही। अपने रंगीन सपनो से मायाविष्ट बनकर वे दुनिया की दृष्टि से कुपथ पर पाँव बढाती रही हैं। इसी बात को ध्यान मे रखकर बिहारी ने कहा है कि—"कितै न अवगुन जग करत नै वै चढती बार।" रंगीन सपनो के आवेश मे अवगुण करने वाली चढती उमर को दबाने के लिए किये गये प्रयत्नो के कारण स्त्री के दमित व्यक्तित्व ने अनबूझ पहेली का रूप ग्रहण कर लिया, परिणामत समाज मे 'स्त्रियश्चरित्र देवो न जानाति, कुतो मनुष्य' की उक्ति प्रचलित हो गई। प्रस्तुत उपन्यास मे पहेली बने हुए कल्याणी के व्यक्तित्व को बूझने का प्रयत्न लेखक ने किया है। मेरे सामने 'कल्याणी' उपन्यास का चौथा सस्करण है, जिसके आवरण-पृष्ठ पर वक्षदर्शक (स्टेथस्कोप) का चित्र है। हमे यह देखना है कि लेखक ने उप-न्यासरूपी वक्षदर्शक द्वारा डॉक्टर कल्याणी असरानी की हृदय की धडकनो को सुन कर जो निदान उपस्थित किया है, वह कहाँ तक तर्कसंगत है? यद्यपि लेखक के दृष्टिकोण के अनुसार 'तर्क सच्चाई को नही लपेट पाता'[3] तथापि सत्य के निकट तक पहुँचने के लिए हमारे पास तर्क के अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय भी तो नही है। यह ठीक है कि तार्किक के 'प्रश्न मे आग्रह' होता है और 'वह अस्वीकृति की पद्धति है',[4] किन्तु तर्क और प्रश्न की पद्धति का परित्याग करके केवल श्रद्धा का सहारा लेने पर तो वह चिंतन की गति ही अवरुद्ध हो जाती है, जो रचना के मर्म तक पहुँचा सकती है। जब तर्कानुसन्धान के बिना धर्म का ज्ञान भी प्राप्त नही होता, तब उसके बिना व्यक्तित्व का विश्लेषण कैसे सम्भव है?

'कल्याणी' उपन्यास के कथानक आदि अगो पर विचार करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि यह मनोवैज्ञानिक उपन्यास है। इस तथ्य को हृदयगम कर लेने पर ही इसके स्वरूप को भली भाँति समझा जा सकता है। यह 'सामाजिक

उपन्यास नही है, जैसा कि उपन्यास के प्रारम्भ मे शीर्षक के नीचे बघनी मे लिख दिया गया है। उपन्यास मे बहिर्मुखी सामाजिक समस्या की अपेक्षा अन्तर्मुखी व्यक्ति-समस्या को उपस्थित किया गया है। पारमार्थिक रूप से परिस्थिति और व्यक्ति ये दो भिन्न सत्ताएँ न भी हो, तो भी व्यवहारत उनमे भेद अवश्य है। इन दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध सघन होता है। "व्यक्तिचरित्र के कारण तात्कालिक समाज स्थिति मे खोजे जा सकते है।"[1] तथापि उपन्यास मे देश काल से सम्बन्धित सामाजिक परिस्थितियो का अत्यन्त गौण रूप मे उल्लेख हुआ है। दो तिहाई से अधिक उपन्यास पढ लेने के बाद कही यह ज्ञात हो पाता है कि कथानक का घटनास्थल *दिल्ली शहर है जिसकी खूबसूरती पत्थर की और गुरूर की है*" और जहाँ रुपये वालो के हाथो मे रुपया मेहनत से नही आता। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि लेखक को देश-काल परिस्थिति से सम्बद्ध सामाजिक समस्याओ से कुछ लेना-देना नही है।

प्रस्तुत उपन्यास की कथा उडिया कवयित्री डॉ० कुन्तलकुमारी के देहान्त की घटना स तात्कालिक रूप मे प्रेरित होकर लिखी गई है।[6] मनोवैज्ञानिक उपन्यास होने के कारण लेखक ने इस उपन्यास को देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासो के समान घटनानन्दन उपन्यास बनाने का प्रयत्न नही किया है। डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने यह ठीक ही कहा है कि जैनेन्द्र को पोथी बाँचने का ज्ञान कम है। 'कल्याणी उपन्यास के लेखक वकील साहब ने यह स्वय स्वीकार किया है कि उन्हे कहानी मे रग भरना नही आता।'[1] इस प्रसग मे वस्तुस्थिति यह है कि कथानक उपन्यास का स्थूल अश होता है। कथानक के स्थूल दिलचस्प, पर अनावश्यक अशो को लेखक ने सतर्कतापूर्वक दूर ही रखा है, क्योकि कहानी सुनाना जैनेन्द्र के उपन्यासो का उद्देश्य ही नही होता।[1] इसके अतिरिक्त लेखक को यह भली भाँति मालूम है कि घटनाओ के स्थूल कुतूहलजनक रहस्यो की अपेक्षा अवचेतन के सूक्ष्म रहस्य कही अधिक वैचिश्य-पूर्ण होते है। इसीलिए वे स्थूल घटनाओ का वर्णन विवरण देने के स्थान पर सूक्ष्म मानसिक प्रतिक्रियाओ के विश्लेषण मे अधिक रमे हैं। इसके अतिरिक्त क्रियारत रूप की अपेक्षा अनुचिन्तनरत रूप ही मानव व्यक्तित्व का सच्चा स्वरूप होता है। अत मनोवैज्ञानिक उपन्यास के कथानक मे बाहरी वस्तुनिष्ठ घटनाओ के स्थान पर आन्तरिक मानसिक अनुभूतियो और विचारो को महत्व दिया जाता है।

आजतक 'अनुज्झितार्थ सम्बन्ध' कथा प्रबन्ध की प्रशसा की जाती रही है, किन्तु मनोवैज्ञानिक उपन्यासो म बाहरी कथासौष्ठव की प्राय उपेक्षा कर दी जाती है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासो मे जगह जगह कहानी म तार की कडियाँ तोड दी *है।*[11] *कल्याणी के सम्पादक 'चार मे तीन हिस्से झूठ अनकही'* रखकर *'सिर्फ एक* हिस्सा' कहते हैं।[11] परिणामत पाठक को कथाभाग की कडियाँ जोडने का काम

स्वयं करना पड़ता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उनके उपन्यासों का पाठक 'अंधे धृतराष्ट्र' के समान निष्क्रिय गृहीता ही नहीं होता, अपितु स्रष्टा भी होता है। डॉक्टर देवराज उपाध्याय ने इस स्थिति का विश्लेषण करते हुए स्पष्ट किया है कि इस प्रकार के उपन्यासों में पाठक की भावकता का बोध कम हो जाता है और वह स्वोपार्जित रस का आस्वादन करके विशिष्ट आनन्द का भोक्ता बनता है।[11] कथा-की कड़ियों अनजुड़ी रखने के पीछे गेस्टाल्ट के स-पूर्णतावादी सिद्धान्त का भी बहुत बड़ा हाथ है, क्योंकि टूटी कड़ियों की अपूर्णता के पीछे से पूर्णता की विद्युद्दीप्ति अपूर्णता के अन्धकार को तड़ित्वेग से दूर देती है।

लेखक ने 'कल्याणी' उपन्यास में कथासूत्रों को न केवल अनजुड़ा रखा है, अपितु उपन्यास में समाविष्ट की गई घटनाओं को घटित रूप में न दिखा कर कथित रूप में उपस्थित किया है। किसी भी घटना का महत्त्व घटित होने में उतना नहीं है, जितना कि उस घटना के प्रति व्यक्त हुई मानसिक प्रतिक्रिया में है। कल्याणी और रायसाहब के सम्बन्ध, कल्याणी के घर से गायब हो जाने और पति के द्वारा पीटे जाने आदि की घटनाएँ जिन्दादिल प्राध्यापक श्रीधर ने वकीलसाहब को सुनाई हैं। जिस प्रकार नए-से-नए काट के कपड़े उसके शरीर पर रहते हैं, उसी प्रकार नए-से-नए नमक की बातें उसकी जीभ पर रहती हैं। यद्यपि वकीलसाहब ने उसे बे-मैल मन का ग्रन्थिहीन व्यक्ति बतलाया है,[12] तथापि उसमें छिप कर रहस्य-दर्शन की वृत्ति आवश्यकता से अधिक है। न जाने लेखक ने उसे दर्शनशास्त्र का प्राध्यापक क्यों बनाया है? कहीं श्रीधर के माध्यम से दार्शनिक जैनेन्द्र की यह रहस्यदर्शनवृत्ति (Voycurism) ही तो व्यक्त नहीं हुई है! वैसे प्रत्येक साहित्यकार में रहस्यदर्शन की वृत्ति होती ही है।

कथानक की शृंखलाओं को तोड़ने के बावजूद मार्मिक स्थलों के चयन में जैनेन्द्र कुशल हैं। उन्होंने उपन्यास का प्रारम्भ ही कल्याणी की मृत्यु के भावदीप्त स्मरण के द्वारा किया है। इस प्रकार *अन्त से आरम्भ की गई कल्याणी की कहानी* पाठक का मन अपनी ओर बरबस खींच लेती है। पाठक उस अभागिनी नारी की बदकिस्मती से आहत हो उठता है, जिसका पति अपनी पत्नी की मृत्यु के दो-चार रोज बीतते-न-बीतते पुनर्विवाह की चहल-पहल में मग्न हो जाता है। भावदीप्त स्मरण के बाद रूप में *विगत घटनाओं का सिंहावलोकन घटनाओं की स्थूलता से कथा को मुक्त करके कथानक में आन्तरिक दृष्टि का समावेश करता है।* यादों की गहराई में डुबकी लगाने वाला लेखक कथा के उपसंहार तक पहुँचने से पहले चौदहवें और सोलहवें परिच्छेदों में चिन्तन के बहाने मानों साँस लेने के लिए कुछ क्षण सतह पर आ जाता है। सिंहावलोकन की पद्धति से कथा को उपस्थित करने का यह तन्त्र मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की खास विशेषता है।

अन्य पुरुष मे कही गई कहानी की अविश्वसनीयता से बचने के लिए कल्याणी की कहानी आत्मकथात्मक शैली मे कही गई है । उपन्यास का 'प्रारम्भिक' भी कहानी की विश्वसनीयता को पुष्ट बनाने के लिए ही लिखा गया है । इस प्रकार कथा को आसन्नलेखकत्व से मुक्त करके आत्मनिष्ठ रूप मे कथा उपस्थित करने की पद्धति मनोवैज्ञानिक उपन्यासो की बहुप्रचलित पद्धति है ।

प्रस्तुत उपन्यास के कथानक मे कालविपर्यय पद्धति का भी सहारा लिया गया है । *कल्याणी के जीवन का पूर्ववृत्त कालविपर्यय की पद्धति से सम्पूर्ण उपन्यास मे* आठ दस स्थानो पर विकीर्ण रूप से दिया गया है । कल्याणी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर छाए हुए प्रीमियर के सम्बन्धो का स्पष्टीकरण दो तिहाई उपन्यास पढ लेने के बाद ही हो पाता है । कल्याणी के पति की विवाह से पूर्व कल्याणी को पाने के लिए की गई कारगुजारी की जानकारी तो लगभग उपन्यास के अन्त मे ही होती है । पूर्ववृत्त की इन जानकारियो को पाने के बाद कथा म पूर्वकथित प्रसगो मे नया अर्थ भर जाता है । उपन्यास को बार-बार पढने पर उसके गूढ से गूढतर अर्थ उत्तरोत्तर अधिकाधिक स्पष्ट होते चले जाते हैं । इस प्रकार उपन्यास घटना प्रधान उपन्यास के समान केवल एक बार पढ कर कुतूहलवृत्ति को शान्त करने का साधनमात्र न रहकर पुन पुन *पढने के लिए प्रेरित करने लगता है । उपन्यास पढकर समाप्त कर दिए* जाने के बाद भी पाठक का मन गतिशील या चिन्तनशील बना रहता है । यह सच ही उपन्यास की श्रेष्ठता का निर्विवाद प्रमाण कहा जा सकता है । इसीलिए मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के सम्बन्ध म यह ठीक ही कहा जाता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यास केवल एक बार पढने मात्र के लिए नही होते, अपितु वे पुन-पुन पढकर चिंतन करने के लिए होते हैं ।'[५]

उपन्यास म क्रान्तिकारी ब्रजपाल से सम्बन्धित सात आठ पृष्ठ हैं । वह यूसुफ के नाम से छिपकर सातेक दिन कल्याणी के घर टिका था, जिसके कारण पुलिस ने कल्याणी के घर की तलाशी ली तथा उसको कुछ देर हिरासत मे रख कर छोड भी दिया । *यह प्रसग उपन्यास की मूल कथाधारा मे विशेष उपयोगी नहीं है । लेखक ने* अपनी हिंसा एव अहिंसा विषयक धारणाओ का प्रतिपादन करने के लिए इस प्रसग के बहाने स्थान निकाल लिया है, जिसका विश्लेषण आगे किया जाएगा । 

क्रान्तिकारी ब्रजपाल के अनावश्यक प्रसग की चर्चा के साथ ही एक अन्य आवश्यक प्रसग की ओर ध्यान चला जाता है, जिसको उपन्यास म स्थान नही मिल सका है । कल्याणी अपने गर्भस्थ बच्चे के लिए जी रही है पर अपनी विमा और प्रभा नाम की जीवित लडकियो के सम्बन्ध मे उतनी चिन्तित नही है । इनका उल्लेख छोटी और बडी के नाम से किया गया है । पता नही कि इनम से कौन सी छोटी है और कौन-सी बडी है ? बडी सदा की रोगिणी है और वह अधिक दिन जीवित नहीं

रहने वाली है। प्रकृति से कविहृदय कल्याणी का उसकी उपेक्षा करना असंगत है, जब कि वह पात्र के प्रसंग में स्नेह के बल का आवेशपूर्वक प्रतिपादन करती है। इन लड़कियों के सम्बन्ध में यह भी नहीं कहा जा सकता कि इनकी ओर उनके पिता का पूरा ध्यान है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो कल्याणी अपनी मृत्यु के बाद छोटी को अपने घर रख लेने के लिए वकील साहब से कहती ही नहीं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से उपन्यास पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि इस उपन्यास में इने गिने ही पात्र हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में कम पात्रों से ही काम चल जाता है, क्योंकि पात्रों के अधिक हो जाने पर चरित्र चित्रण में गहराई नहीं आ पाती। 'कल्याणी' उपन्यास में कल्याणी से लेकर डोरी (कल्याणी का नौकर) तक सब मिलाकर कुल पन्द्रह पात्र हैं। इन पात्रों में कल्याणी, डाक्टर असरानी और वकीलसाहब ही प्रमुख हैं। ये ही उपन्यास के आदि से अन्त तक दीख पड़ते हैं। इनमें से डॉक्टर असरानी का महत्त्व कल्याणी के चरित्र की गुत्थियों को समझने में सहायक पात्र के रूप में है। कल्याणी से असम्बन्धित पहलू का उनके चरित्र में कहीं कोई उल्लेख नहीं है। उपन्यास के बाईस परिच्छेदों में से ग्यारह परिच्छेदों में उन्हें स्थान मिला है। वकीलसाहब का स्थान उपन्यास में आद्यन्त होते हुए भी इस पात्र की योजना विश्वसनीयतापूर्वक आत्मकथाशैली में 'कल्याणी' की कहानी कहने के लिए है। यह पात्र कल्याणी के लिए अभिभावक के समान है और विश्वस्त होने के नाते मानसिक गुबार को व्यक्त करने के लिए थोड़े-बहुत आधार बनाकर इस पात्र को उपस्थित किया गया है। विश्लेषण द्वारा पुनर्निर्माण करके कल्याणी का जीवन-चरित्र उपस्थित करने की भी लेखक की इच्छा नहीं है। इसीलिए उसने कहा है कि—"चरित्र लिखने की मेरी साध नहीं।"[१६] केवल संवेदन और सहानुभूति को टिकाने के लिए उसे पात्र की आवश्यकता है। कल्याणी ऐसा ही पात्र है। इस पात्र की प्रमुखता के कारण ही उसके नाम पर उपन्यास का नामकरण किया गया है।

किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व में तह-पर-तहें होती है। कल्याणी के व्यक्तित्व में भी अनेक तहे हैं। व्यक्तित्व की इन तहों को खोलकर उनका स्वरूप समझने के लिए प्रारम्भिक जीवन की घटनाओं का महत्त्व कुंजी की तरह होता है। कल्याणी उच्च-मध्यमवर्ग में जन्मी, पली और बड़ी हुई है। आभिजात्य के शील और संस्कार उसके व्यक्तित्व के अभिन्न अंग हैं। उसका व्यक्तित्व परिष्कृत है। विलायत जाकर उसने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। वहाँ पर ही उसका एक युवक से परिचय हुआ, जो प्रगाढ़ दशा तक पहुँचा। कॉलेज की पढ़ाई के इन दिनों में उसके मन में सपने झूमने लगे। इसी काल के स्वप्नमय वातावरण में उसका प्रकृत कविहृदय कविताओं के माध्यम से व्यक्त होने लगा। जब वह कॉलेज में पढ़ती थी, तभी उसकी पहली

कविता पुस्तक भी प्रकाशित हुई। फिर एक कम्पीटीशन मे प्रथम भी आई थी। विवाह से पूर्व वह प्रान्तभर की रत्न थी और अच्छे से अच्छा वैवाहिक सम्बन्ध उसके लिए सुलभ था। कल्याणी के जीवन के इस पूर्वरूप का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने पर यह सहज ही ज्ञात हो जाता है कि उसके जीवन मे जीवन और मरण की प्रवृत्तियो का स्वस्थ सतुलन था। फ्रायड ने अपने प्रवृत्तियो के ध्रुवीकरण के सिद्धात मे इन प्रवृत्तियो की महत्ता का प्रतिपादन किया है। ये प्रवृत्तियाँ जीवन की काम-मूलक मूलशक्ति ( लिबिडो ) की अगभूत प्रवृत्तियो के रूप मे विद्यमान होती हैं। यदि इन प्रवृत्तियो का स्वस्थ सतुलन जीवन मे हो तो व्यक्ति के विकास को अवरुद्ध करने वाली ग्रन्थियो से मुक्त रहता है। कल्याणी का पूर्वजीवन ग्रन्थियो से मुक्त स्वस्थ व्यक्ति का जीवन प्रतीत होता है।

किसी ने कहा है कि मर्द का पहला पालतू जानवर स्त्री है। स्त्रीविषयक इस सामतीय दृष्टिकोण के कारण स्त्री को भी धन विशेष के रूप मे देखा जाने लगा। कन्या पराया धन बन गई, इसलिए कन्यादान के द्वारा उसे अपने असली मालिक (पति) को सौपने का विधान प्रचलित हुआ। इस कारण पत्नी होने से पूर्व स्त्री केवल कन्या होती थी, परन्तु कल्याणी निरी कन्या न थी, वह तो डॉक्टर थी। पढाई लिखाई के कारण उसका निजत्व विकसित हो गया था। डॉक्टर असरानी ने उसके इस निजत्व की उपेक्षा करके उसे अपनी पत्नी के रूप मे पाने के लिए क्या नहीं किया ? केवल उसके निजत्व का विचार ही तो नही किया था। उन्होने अपनी भावी पत्नी के विषय मे झूठे लाछनो का प्रचार किया जिससे कि उसका कुलीन विवाह असम्भव हो जाये। इसी कारण कल्याणी बडी उम्र तक कुंवारी बनी रही। वह चाहती तो अपने प्रियकर बैरिस्टर (प्रीमियर) से विवाह कर सकती थी, किन्तु उसने अपने को खीचे रखा और अपने प्रेमी को निराश कर दिया। अपने प्रेमी से विवाह करने से इनकार करने के पीछे सम्भवत कल्याणी की यह सदभावना रही होगी कि अपने बदनाम व्यक्तित्व के सम्पर्क से प्रेमी को क्यो सामाजिक दृष्टि से हीन बनाया जाय। इस कारण दिया हुआ भी नही दिया जा सका और लेने वाला अपना लेने का दावा भूल गया।"[१] डॉक्टर असरानी का उपाय कारगर सिद्ध हुआ और कल्याणी डॉक्टर के जाल पत्नी के रूप मे जा गिरी। कल्याणी को पाने का डॉक्टर असरानी का मनोरथ पूरा हुआ, पर क्या सचमुच ही वह कल्याणी को हृदय से पा सका ? कल्याणी की देह उसे अवश्य मिली पर उसका स्नेह क्या असरानी को मिल सका ? कृपापूर्वक स्वीकार करके कल्याणी के उद्धार करने का उनका अहकार पति पत्नी के बीच मे द्वन्द्व का कारण बन गया।

डॉक्टर असरानी कल्याणी को अपना मातहत बनाकर रखना चाहते थे, जैसा कि उन्होने कल्याणी को लिखे गये अपने पत्र मे उल्लेख किया है। पर यह कैसे

सम्भव था, क्योंकि एक तो कल्याणी अविकसित व्यक्तित्व की स्त्री मात्र नहीं थी तथा दूसरी बात यह है कि परम्परानुसार मातहत पत्नी बनकर रहने के लिए जिस आर्थिक निराधारता की परिस्थिति की आवश्यकता है कल्याणी उस परिस्थिति से मुक्त थी। वह शास्त्रानुमोदित 'भार्या' नहीं थी बल्कि 'भर्त्री' थी। इसके विपरीत डॉक्टर असरानी को ही चाहे तो 'भर्ता' के स्थान पर 'भार्य' कहा जा सकता है। घर का सारा धन कल्याणी का ही है। यह धन या तो उसे अपने विवाह में पिता की ओर से मिला है या कल्याणी का कमाया हुआ है। उसे मनचाही आमदनी है। इसलिए 'इकॉनॉमिक डिपेन्डेन्स'' का तो सवाल ही नहीं है जैसा कि घर से कुछ दिन गायब रहने के बाद पति द्वारा खबर लिए जाने पर एक सार्वजनिक नेता ने गल्ती से कह डाला है। स्त्रियों के सम्बन्ध में जैसा कि कहा जाता है— पीछा मारी न हो तो आगा सहारा नहीं देता''—यह कल्याणी के लिए पूरी तरह गैर लागू है, क्योंकि न तो कल्याणी का पीछा हलका है और न ही उसे आगे के सहारे की ही आवश्यकता है।

वर्तमान अनुकूल तो अतीत पर रहना कठिन हो जाता है। कल्याणी का वर्तमान अननुकूल होने से उसका मन थकित सिन्दु-नौका के खग की तरह अतीत के जहाज की ओर चला ही जाता है। यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि कल्याणी के पास क्या नहीं है? सब कुछ होने के बावजूद वह इतनी शापग्रस्त क्यों है? उसे कहीं भी सान्त्वना क्या नहीं मिल सकी? पति ही यदि उसके आक्रोश और तिक्तता के मूल में है तो वह पति का परित्याग क्यों नहीं करती? ऐसा करने पर उसे अपने बच्चों की देखभाल अधिक सुचारु रूप से करने के लिए आवश्यक मानसिक स्वास्थ्य मिल गया होता। न जाने वह कैसी पढ़ी लिखी है? पति के खिलाफ कानून की मदद क्यों नहीं लेती? ऐसी कौन-सी बाधा है जो उसे यह सब करने से रोक रही है? वह यदि चाहे तो उसे पुनर्विवाह करने से भी कौन रोक सकता है? जो काम अकेलेपन को खोने की औषधि कहा जाता है वह उसके लिए विष क्यों बन गया है? यह पति के प्रति इतनी उन्मन क्यों है? उसके मन पर ऐसा कौन-सा बोझ है जो उस कुचल रहा है? ऐसे एक नहीं, बल्कि अनेक प्रश्न पाठक के मन को बेचैन कर देते हैं। इन सब प्रश्नों का उत्तर खोजते खोजते हमारी दृष्टि कल्याणी के मन में घर बनाकर बसी हुई अपराधभावना ( Guilt feeling ) पर जाकर रुक जाता है। *डॉक्टर असरानी से विवाह कर लेने के बाद मन्त्र की के मन से अपने प्रेमी के* प्रति समर्पित न होने की बात ने इस अपराधभावना को जन्म दिया है। अपने दरबार पर वह पश्चात्ताप करती रहती है। एक ओर डाक्टर असरानी के असहृदय व्यवहार ने इसे बढ़ाया है, तो दूसरी ओर कल्याणी के प्रेम की खातिर आजीवन अविवाहित प्रीमियर के आदर्श व्यवहार ने इसे पल्लवित एवं पुष्पित किया है। यह

अपने इस अपराध के लिए खुद को माफ करने के लिए तैयार नही है । दडित होकर ही उसके मन को सात्वना मिल सकती है । इसीलिए वह अपने को पुन पुन दुश्चरित्र आदि कहकर दडित कर रही है । कही वह कहती है कि उसका स्त्री के रूप मे जन्म लेना ही अपराध है । कही पर उसका कहना है कि स्त्री होकर अग्रेजी पढ लिखकर मोटर चलाना क्या शास्त्रानुकूल है ? इतना ही नही पत्नी होकर पातिव्रत्यविरोधी डॉक्टरी करना तो बिल्कुल ठीक नही है । इसके अतिरिक्त पति को अपराधी मानने का अपराध तो सतीत्व के एकदम विरुद्ध है, क्योकि "सती को यह सोचने का अधिकार नही है कि पति सदोष हो सकता है । पति देवता है । स्मरण रहे कि वह देवता अपने आप म नही सतीत्व की महिमा के प्रभाव मे ही वह देवता है ।' [¹¹] वह अपने को दुश्चरित्र समझे जाने का विरोध न करके स्वय यह कहती है कि—'फावडा बनने के लिए भी सुई तो चाहिये ही ।" [¹¹] अन्त मे तो वह दूसरो के अपराध को अपना ही अपराध मानकर प्रायश्चित्तस्वरूप दडित होना चाहती है । वह कहती है कि—'मेरे ही कारण डॉक्टर को धन की चाह है और मेरे ही कारण अगर होगे तो प्रीमियर कर्तव्यच्युत होगे । ओह, मुझे क्या प्रायश्चित्त काफी होगा ? [¹¹] यहाँ यह ज्ञातव्य है कि इन सब बातो के पीछे जो अपराध-*भावना काम कर रही है उसे कल्याणी पूर्णत पहचानती नही है ।* रायसाहब, भटनागर आदि के साथ उसके अनैतिक सम्बन्धो की चर्चा मे समाज का ही दोष अधिक है, क्योकि डॉक्टरी के व्यवसाय मे उसे हर किसी से मिलना पडता है । सदद्धील पति के लिए यह खुला व्यवहार नागवार हो उठता है । भटनागर जो अच्छा आदमी कह दने पर तो उनके मन मे पत्नी के सम्बन्ध मे गाँठ बैठ जाती है । वे कल्याणी को पुश्चली समझने लगते हैं । कहने का आशय यह है कि अपने को दडित करने की अज्ञात प्रेरणा से ही वह सदा ही अपने पर दाँतेदार छुरी चला जीवन को मृत्यु से कम विषम नही रहने देना चाहती । स्थूल सामाजिक दृष्टि से वह अगर सचमुच ही दुश्चरित्र होती, तो वह अपनी दुश्चरित्रता का प्रचार नही करती फिरती । इसीलिए वकील साहब की पत्नी ने कल्याणी की दुश्चरित्र होने की बातो पर विश्वास नहीं किया है ।

कल्याणी ने अपने को दडित करने के लिए जिस अपराधभावना को अपने मन म पोषित किया है, उसी के परिणामस्वरूप वह कहती है— जितना मुझसे छीना जाता है उतनी मुझ पर कृपा की जाती है । उतना ऋण उतरता है ।' [¹²] इसी अपराधभावना के परिणामस्वरूप वह सफलताभयाक्रात ( Afraid of success ) भी है । इसीलिए वह निरी मामूली-सी बात पर अपनी कविता की कापी फाड देती है । वह इसी कारण आरम्भशूर भी है । आरम्भ किए हुए काम को सफलता की सीमा तक वह पहुँचाना नही चाहती, क्योकि सफलता की स्थिति म अपराधभावना

से उत्पन्न दंडित होने की कामना बाधित होती है। इसी सफलताभय से आक्रान्त होने के कारण वह कहती है कि—"मेरे पेट का बच्चा क्या मेरी सब विडंबना झेल लेगा ? • बच्चा न होगा।"[११] बच्चे का होना भी तो कल्याणी के मातृत्व की सफलता है। इस प्रकार कल्याणी के अवचेतन में अपराधभावना और सफलता के भय की जड़ें दूर तक पहुँची हुई हैं। अपराध की गुरुता कम करने के लिए दंडित होने की भावना भी उसमें प्रबल रूप में विद्यमान है। डॉक्टर असरानी की पत्नी बनी रहकर दुर्व्यवहार सहन करते रहना भी इसी दंडित होने के सन्तोष का साधन है। यही कारण है कि *कल्याणी घर नहीं छोड़ती और दुतकारी जाने के बावजूद घर* में बनी रहती है।

पति-पत्नी के सम्बन्धों की दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि कल्याणी भारतीय पत्नी होने के नाते पति का प्रतिरोध नहीं कर सकती। इसलिए उसके जीवन की मरणप्रवृत्ति का पर आक्रमणावेग अवरुद्ध होकर स्व-आक्रमणावेग में परिवर्तित हो जाता है। परिणामत कल्याणी के चरित्र में मृत्युतत्त्व का आकर्षण उपन्यास के प्रारम्भ से ही दिखाई देने लगता है। "वह जीवन का आरम्भ जैसे नये सिरे से करना चाहती है।"[१२] जीवन उसके लिए दु:ख की कविता के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह वकील साहब से कहती है कि—"मैं इस पेट के बच्चे के लिए जी रही हूँ।"[१३] उसने अकाल मृत्यु के बाद आत्मा की गति के सम्बन्ध में जो प्रश्न किया है, वह उसके अकालमृत्यु का वरण करने के चिन्तन से ही सम्बद्ध है। उसे अपने जीवन की दवा मौत ही प्रतीत होती है। इसीलिए वह वकील साहब से कहती है कि—"मुझ पर जहाँ मेरा वश नहीं है वहाँ क्या करूँ ? कुछ बताइए कि एकदम जड़ हो जाऊँ। एक दवा है मौत, लेकिन उसके तो आप कायल नहीं मालूम होते हैं।'[१४] उपन्यास के अन्त में प्रीमियर से अपने तपोवन के लिए नकार पाकर वह दु:ख से कहती है कि—"एक थे। अब वह गांधी के हैं।"[१५] "उन मेरे गांधी के भक्त की मर्जी यही न है कि मैं अपनी राह पर अकेली रह जाऊँ ? अकेली ! अकेली ! अकेली ! !"[१६] *अन्त में कल्याणी ने पुत्र को जन्म दिया* और उसके कुछ देर बाद उसके हृदय की गति अचानक बन्द हो गई। अचानक यह आकस्मिक मृत्यु कल्याणी द्वारा अपने को दण्डित किये जाने का चरम रूप है। इस प्रकार अपराध-भावना, सफलताभय और मृत्यु का आकर्षण कल्याणी के अवचेतन में प्रवाहित चेतना-धारा के रूप हैं।

कल्याणी के व्यक्तित्व में निहित मरणप्रवृत्ति ( Thantos ) पर विचार करने के बाद उसमें निहित जीवनप्रवृत्ति ( Eros ) पर विचार कर लेना भी उपयुक्त होगा। जीवन की विपरीत परिस्थितियों में भी व्यक्ति अगर अपने मन में थोड़ी सी भी ललक न ला सके तो जीना दूभर हो जाता है। कल्याणी अपने पति को

प्रसन्न करने के लिए भरसक प्रयत्न करती है  पर फिर भी मन का कुछ भाग बच ही जाता है क्योंकि मन सत स्थल नैतिकता के राजमार्ग पर ही नही चला करता। इसके अतिरिक्त पति ने अपने व्यवहार से उसे अपने ही घर मे विराना बना डाला है। वह अपने मन का बोझ उतारे भी तो कहा उतारे। इस स्थिति मे भी कल्याणी ने अपने उच्छवासो को कविता के माध्यम से निकालने का प्रयत्न किया। उसकी कविता मे वर्णित बटोही और कोई नहीं स्वयं कल्याणी ही है। यह बटोही न जाने कहाँ से बिछडकर इस सराय मे आ टिका है जिसमे उसका कुछ नही है। कल्याणी का यह प्रयत्न पति की असहृदयता की छाया मे पल्लवित न हो सका। इसके बाद उसने आरोग्य भवन के उपयोगी कर्म मे अपने मन को भुलावे मे रखने का प्रयत्न किया किन्तु पति के असहयोग के कारण भुलावा अधिक काल तक न चल सका। उसने अपने घर म जगन्नाथ के मन्दिर की स्थापना भी की किन्तु उसके एक बार खाने और चार बार स्नान करने से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि उसकी यह धर्म भावना किसी न किसी विवशता से रुग्णरूप मे परिवर्तित हो गई है। जीवन की हर प्रवृत्ति मिकदार म हो तभी उसे स्वस्थ कहा जा सकता है। वह अपने मन को मनाने के विरोध करके विवाहसंस्था का बेहद समर्थन करती है तो इस समर्थन से भी उसके मानसिक असन्तुलन का समर्थन होता है। इसी असन्तुलन की चपेट मे आकर वह पहनावे आदि म उच्छनातीत आधुनिक होते हुए भी विज्ञापन की सस्कृति का धाज्जियाँ उडाती ह। इन सारे प्रयत्नो के बावजूद उसका मन का तनाव कम होने के स्थान पर बढता ही है। परिणामत वह हेल्यूसिनेशन के भ्रम म फस जाती है। अस्वास्थ्यकर मानसिक तनाव का अन्दाज इस बात से सहज ही लगाया जा सकता है कि हेल्यूसिनेशन ( Halluc nat on ) की स्थिति इल्यूजन ( Illus on ) और डिल्यूजन (Delusion) की स्थितियो के बाद आती है। इल्यूजन और डिल्यूजन के भ्रम मे वाह्य वस्तु का आधार होता है किन्तु हेल्यूसिनेशन मे भ्रम पूर्णत विषयी निष्ठ होता है। कल्याणी के हेल्यूसिनेशन मे गला घोटकर मारी जाने वाली गर्भवती युवती स्वय कल्याणी ही है। नैतिक मन के दबाव के कारण दमघोट वातावरण मे रहनेवाला कल्याणी का अवचेतन मन ससुर के प्रहरियो को धोखा देने के लिए परिवर्तित वेश मे व्यक्त हुआ है। कल्याणी ने ईश्वर पर विश्वास करके सच्चाई की राह पर चलना चाहा किन्तु ईश्वर की राह पर उसे अनीश्वरता ( देवलालीकर की उपस्थिति अर्थात दमघोट वातावरण द्वारा पत्नी की हत्या करने वाले पति की उपस्थिति) मिलती है। इस अनीश्वरता की स्थिति म अगर चारो ओर से अविश्वास ही अविश्वास घर हो तो मृत्यु से बचकर जिया ही कैसे जा सकता है। अन्त मे कल्याणी का यही तो प्रश्न है कि— है कोई जिसे मेरी भलाई म भरोसा हो। '
कोई है  जो मुझसे स्फूर्ति ले  जिसकी मैं स्वप्न हू।  नहीं है तो जीवन

मेरा क्यों वृथा नहीं है।" प्रीमियर द्वारा तपोवन अर्थात् कल्याणी के स्वप्न को सकार करने से इंकार कर देने पर तो संसार में रहने भर के लिए भी कल्याणी का कोई नहीं रह जाता। वह निपट अकेली रह जाती है। मृत्यु के अतल जल में डूबने से बचाने वाला तिनके का सहारा भी नहीं रहता और वह मरण प्रवृत्ति के आत्मपीडक रूप का शिकार हो जाती है। वह अस्वस्थ प्रकार के दाम्पत्य की वेदी पर बलि हो जाती है। इस बलि के मूल में जो त्रवियत के पिटस है उन्हें कल्याणी के अवचेतन में प्रविष्ट हुए बिना समझा नहीं जा सकता। ऐसे समझ लेने पर, कल्याणी के वक्र एवं ऊबड़ खाबड़ जीवन का परिचय पाने के बाद कल्याणी के चरित्र को दटे छँटे रूप में खरा या खोटा कह सकना क्या संभव है?

कल्याणी के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य सब पात्र कल्याणी के व्यक्तित्व को विशद करने के लिए उपलक्ष्यमात्र हैं। डॉक्टर असरानी के लिए ईश्वर भी पैसे का है।" उनके लिए कल्याणी भी एक इन्वेस्टमेंट है। इसीलिए कल्याणी के प्रेम की मित्रता उनके लिए भले ही ईर्षणीय हो लेकिन उनका प्रीमियरपन अस्पृश्यनीय है। कल्याणी के स्नेह सूत्र को यह जग पर लगाना ही है। उपन्यास के तीसरे प्रमुख पात्र वकील साहब हैं। लेखक ने आत्मनिवेदकत्व से बचने के लिए उपन्यास जगत् में वकील साहब के रूप में अवतार ग्रहण किया है। लेखक और वकील साहब की चिन्तन प्रणाली एकदम अभिन्न है।

कथोपकथन की दृष्टि से उपन्यास अत्यन्त सफल है। उपन्यास का ८५ प्रतिशत भाग कथोपकथन के रूप में है। इसलिए उपन्यास में नाटकीय वर्तमानता का समावेश-सा हुआ है। बोलचाल के समान कथोपकथन के वाक्य छोटे छोटे हैं। लेखक स्थानीय होते हुए भी वकीलसाहब में अपनी ही कहने की मज नहीं है। जब जब उन्हें प्रयोग रूप में अपनी बात कहने की इच्छा हुई है, तब तब उन्होंने वर्ण विवरण के प्रसंग में ही उसे कहा है। आवश्यक समझने पर वकीलसाहब ने अपने चिन्तन को अभिव्यक्त करने के लिए पृथक रूप से परिच्छेद ही लिखा है। उपन्यास का चौदहवाँ परिच्छेद इसी प्रकार का है। कहने का आशय यह है कि लम्बे-लम्बे अस्वाभाविक कथोपकथन प्रदीर्घ हो गये हैं, वहाँ पर भी वे अस्वाभाविक नहीं बने हैं। इस प्रकार के प्रदीर्घ संवादों में भी वाक्य छोटे छोटे हैं। जैसे तपोवन के प्रसंग में कल्याणी के दीर्घ संवाद के वाक्य इस प्रकार है क्या आप गरीं तरह है? आप स्त्री है? आप डाक्टर है? आप पर किस्मत का शाप है? क्या रोक है आपको? मैं तो मशीन हूँ। कट-कट कट कट रुपया बनाती हूँ। हर काम रुपया माँगता है न? यह दुनिया का सच है।"

कहीं कहीं कथोपकथन के वाक्य अधूरे रखे गये हैं। कहीं पर चिंतन के तनाव के कारण ऐसा हुआ है जैसे उपन्यास के अन्तिम अंश में ग्रस्त कल्याणी वकीलसाहब

से कहती है मैं क्या करूँ ? नही, आप जाइए नही । मुझे कहने दीजिए । मेरा त्रास ।"[11] कही पर अधूरापन किसी विघ्न आदि के कारण है । एक स्थान पर कल्याणी वकीलसाहब से "मैं एक की भी विश्वास के पात्र नहीं हूँ । मैं—"[1] कहते-कहते रुक जाती है, क्योंकि इसी समय डॉक्टर असरानी के जूतो की खट्-खट् सुनाई दी । यही वाक्य का अधूरापन बहुप्रचलित उक्ति को अपूर्ण रखने के कारण है । पाल से चर्चा करते समय वकील साहब कहते हैं—"बहुत सकुचो मत तुमसे इतना बडा नही हूँ कि—। और प्राप्ते तु षोडशे वर्षे ।' तुम जानते हो । और अब यह नियम भी पुराना हुआ कि बुजुर्ग को बुजुर्ग समझा जाय ।"[1] इस प्रकार की वाक्यगत अपूर्णताओ के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार की अपूर्णता भी कही कही है । कहना चाहे तो इसे टेलीफोनिक अपूर्णता कह सकते हैं । इस अपूर्णता मे कथोपकथन के एक पक्ष के प्रश्नो को अध्याहृत ही रखा जाता है और एकतर्फा कथोपकथन को दिया जाता है । नाटको मे इस प्रकार के आकाशभाषित प्राय देखे जाते हैं । प्रस्तुत उपन्यास मे कही कही एकतर्फा कथोपकथन है । जैसे उपन्यास के प्रारम्भ मे ही वकीलसाहब डॉक्टर असरानी से श्रीधर का परिचय कराते हुए कहते हैं—'आप श्री श्रीधर मेरे मित्र, यहाँ कालिज मे लेक्चरार है ।—जी, गवर्नमेट कालिज मे ।" यहाँ पर "किस कालिज मे लेकचरार हैं ?'"[1] यह प्रश्न अध्याहृत है ।

*कथोपकथन को व्यञ्जक बनाने के लिए बोलने के लहजे के अनुसार* प्रश्नचिह्नो और विस्मयादिबोधक चिह्नो का प्रयोग तो किया ही जाना चाहिये और इस उपन्यास मे किया भी गया है, जैसे सर्वतोभावेन निराश कल्याणी कहती है—" *उन मेरे गाधी के भक्त की मर्जी यही न है कि मैं अपनी राह पर अकेली रह* जाऊँ ? अकेली । अकेली ।। अकेली ।।।'"[1] इन चिह्नो के अतिरिक्त भावबोधक, 'उँह', 'ओह' आदि शब्दो का भी प्रयोग हुआ है । कही कही लहजे की मात्रादीर्घता को *दिखाकर आश्चर्य आदि* को व्यक्त किया गया है । डॉक्टर असरानी के पुनर्विवाह का समाचार पाकर वकील साहब कह उठते हैं—"क्या-आ ?"[1] इसी प्रकार वकील साहब के द्वारा कल्याणी से यह पूछे जाने पर कि "यह साहित्यसभा का मानपत्र है न ?'—कल्याणी उत्तर मे कहती है—"हाँ-आँ ।"[1] कहने का आशय यह है कि कथोपकथनो मे बोलचाल की स्वरभगिमा का पूर्णत ध्यान रखा गया है ।

कल्याणी उपन्यास के कथोपकथनो पर उर्दू का प्रभाव दिखाई पडता है । इसका कारण यह है कि असरानीदम्पति सिंध के है । सिंध मे अरबी फारसी के शब्दो का प्रचलन काफी अधिक है । इसके अतिरिक्त वकीलसाहब यू० पी० के हैं । वकालत के व्यवसाय मे उर्दूबहुलता प्रचलित ही है । प्रीमियर की पार्टी मे शरीक *होने के लिए कहे जाने पर वकीलसाहब कहते हैं—"मैं अहसानमन्द हूँ लेकिन मेरी* शरकत मे शक होने की उन्हे वजह मिली है ?"[1] इसी प्रकार प्रीमियर की भेट मे

देने के लिए लाई वस्तुओं की चर्चा के प्रसग मे वकीलसाहब कहते हैं—"आपकी पसद पर क्या मुझे नुक्ताचीनी की जुरअत है ?"[१] यहाँ यह ज्ञातव्य है कि कथोपकथन की भाषा की तुलना मे वर्णन विवरण की भाषा पर उर्दू का प्रभाव काफी कम है। कथोपकथन के नाते बोलचाल के 'गिरस्ती' 'बिथा' आदि शब्दों का लेखक ने सहज रूप मे प्रयोग किया है। कही-कही बोलचाल के अनुकूल विशिष्ट शब्दो को सानुनासिक रूप मे भी रखा है। वकीलसाहब 'पूछते हैं' किन्तु वकीलसाहब की अनपढ पत्नी 'पूँछती है।'

मनोवैज्ञानिक उपन्यास होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास मे देशकाल का चित्रण उपेक्षित होने के लिए बाध्य है। दो तिहाई उपन्यास समाप्त हो जाने के बाद यह ज्ञात होता है कि कथा का घटनास्थल दिल्ली है और कल्याणी का तपोवनाश्रम दिल्ली से दस-बारह मील दूर स्थित है। इसी प्रकार उपन्यास के प्रारम्भ मे ही कथानक के काल के सम्बन्ध मे कहा है—"हाल ही की तो बात है। ऐसा लगता है जैसे कल की हो।—न सही कल की। पर दो ढाई बरस से अधिक नही हुए।"[२] वस्तुत सम्पूर्ण उपन्यास मे ३६ दिनो की कहानी है। ये ३६ दिन सम्भवत दो वर्ष से कम समय के लगते हैं। उपन्यास का तीसरा परिच्छेद 'शुरू जाड़े के दिन' का है, किन्तु चौथे परिच्छेद मे रात के समय बिजली के पखे के चलने का उल्लेख है। उपन्यास के दसवें परिच्छेद मे प्रथमत कल्याणी के गर्भवती होने की सूचना मिलती है, अत यहा से उपसहार मे कल्याणी की प्रसूति तक का समय नौ महीनो से अधिक नही कहा जा सकता है। कहने का आशय यह है कि देशकाल के चित्रण मे लेखक की रुचि नही है।

भाषा और शैली की दृष्टि से विचार करने पर पाठक जैनेन्द्र की सामर्थ्य का कायल हो जाता है। कथोपकथन के प्रसग मे कथोपकथन की दृष्टि से विचार किया जा चुका है। जैनेन्द्र की भाषा अत्यन्त व्यञ्जक एव सकेतपूर्ण है। अपूर्ण मे मे सम्पूर्ण के पूर्वास्तित्व के सिद्धान्त को मानने के कारण उन्होंने न केवल घटनाओ को अनकहे रूप मे रखा है, अपितु भावो और विचारो का भी कुछ हिस्सा ही कहा है। वह कुछ हिस्सा भी बोधगम्य छोटे छोटे वाक्यो मे उपस्थित किया गया है। 'थोरे आखर' और 'अमित अर्थ' से युक्त उनकी शैली नाव के तीर के समान गम्भीर घाव करने मे समर्थ है। कही-कही कहते-कहते ही लेखक रुक जाता है और वाक्य अधूरे रह जाते हैं। इन अधूरे वाक्यो की मार तो पूर्ण वाक्यो की मार को भी मात कर देती है। प्रीमियर के दिल्ली से अकस्मात वापस चले जाने के प्रसग मे लेखक कहता है कि—"सचमुच मेरी लालसा है कि सब सरल हो जावे, रहस्य कुछ न रहे, और मैं कह सकूँ—'राजनीतिक परिस्थिति।' लेकिन हाय, यही अगर कह कर छुट्टी पा सकता तो ।"[३] इसी प्रकार जब डॉक्टर असरानी वकीलसाहब के सामने

अपने मन की भड़ास निकाल कर चले जाते हैं तब लेखक कहता है कि—'डॉक्टर मेरे पास से गये तब अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थचित्त थे। लेकिन मेरे चित्त का स्वास्थ्य—।'' इस प्रकार रहस्यमय शैली मे रहस्यो को उदघाटित करके पाठको के चित्त को अस्वस्थ बनाने की स्वस्थ सामर्थ्य जनेन्द्र की बडी विशेषता है। व्यक्तित्व की तहो के समान लेखक की भाषा म तह पर तह दिखाई पडती हैं। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा मे अनिवचनीय वाक्यलीला भी पाई जाती है। वे लीलया इस प्रकार के वाक्य लिख जाते हैं— गांधी की तपस्या लीला है लीला तपस्या है। सड़के रास्ते पर वह सड़के साथ है। वह पति है पिता है सब हैं।'' उपयुक्त विशेषताओ के आधार पर ही सम्भवत डाक्टर देवराज उपाध्याय ने भाषाभिव्यक्ति को दृष्टि से रखकर कहा है कि जनेन्द्र का संस्करण सम्भव नही है।

जैनेन्द्र की भाषा उदधरणो और सूक्तियो से समृद्ध होती है। प्रस्तुत उपन्यास मे उद्धृत उदधरणो म से कुछ इस प्रकार हैं— त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा — गतासून गतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता। उनकी भाषा मे सूक्तियाँ तो अनगिनत होती हैं जिनमे से नमूने के तौर पर कुछ सूक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं— जिन्दगी नाम चलने का है नर के अन्दर मे नारायण की पूजा है,'' प्रीति की रीत है आरती प्रसाद है उसका विधान है'' सत्य अहरूप नहीं है और जितना सब अहरूप है माया की लीला म भी लीलाकार तो सत्य ही है न ? इत्यादि। प्राय ये सूक्तियाँ (सामान्य कथन) विषय का समर्थन करती हैं या कभी-कभी इनके समर्थन मे विषय का वर्णन हुआ है। इसीलिए डाक्टर देवराज उपाध्याय ने इन्हे प्रकरणगत अर्थान्तरन्यास भी माना है।

जनेन्द्र का शब्द भण्डार समृद्ध है। उनकी भाषा मे बोलचाल की भाषा के शब्द भरे पड़े हैं इसीलिए उर्दू के नफरत मजा गुल्जार गुमान आदि प्रचलित शब्दो का व्यवहार जहाँ-तहाँ हुआ है। एतिहातन जुरअत मुस्तहक आदि कुछ क्लिष्ट शब्दो का प्रयोग भी अवश्य हुआ है। इसी प्रकार अंग्रेजी के कालिज कम्पटीशन दरेस (ड्रेस) वाइफ आदि शब्दो का स्थान-स्थान पर प्रयोग हुआ है किन्तु एक्सप्लॉइड जसे शब्दो का प्रयोग खटकता है। कहीं कहीं सविशेषण अंग्रेजी संज्ञाओ का भी प्रयोग किया गया है जैसे इकानमिक डिपेंडेंस कम्प्लीट रेस्ट इत्यादि। पुस्तक मे रोमन लिपि मे काम्प्लेक्स (Complex) और रेड रिवोल्यूशनरी (Red revolutionary) का प्रयोग उचित नही कहा जा सकता। अंग्रेजी और उर्दू शब्दो के संस्कृत के भी कुछ अल्पप्रचलित या अप्रचलित शब्दो का प्रयोग स्तुत्य नही कहा जा सकता जसे मौक्य पुच्छकी'' शब्द घुस गया है जिसका अर्थ सम्भवत डाक्टर असरानी नही बता सकेंगे। कही कही लखर न अकुलायनीर रहना तबियत के

फिट्स' जैसे प्रयोग भी किए हैं, जो अभिव्यक्ति की दृष्टि से उपयुक्त कहे जा सकते हैं। कुछ स्थलों पर 'पासबुदा' जैसे दो भाषाओं से बने शब्दों का प्रयोग हुआ है। कथोपकथन के माध्यम से कथानक का विकास होने के कारण 'बयार', 'गिरस्ती' आदि शब्द भाषा में सहज ही आ गए हैं। एक स्थान पर 'समाचार' के अर्थ में बंगाली भाषा का 'सवाद'[१०] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि लेखक का शब्द-भण्डार समृद्ध है और कुछ अपवादों को छोड़कर शब्दों का प्रयोग उपयुक्त रूप में किया गया है। इसके अतिरिक्त उनकी भाषा में मुहावरों और कहावतों का प्रयोग भी सहज रूप में पाया जाता है। 'छिपी दंगवार', 'तिल का ताड़ बनना' आदि अनेक मुहावरे उपन्यास में हैं। एकाध स्थान पर 'दूसरे का तिल ताड़, अपनी आँख का पहाड़ कुछ नहीं' जैसी कहावतें भी हैं।

'कल्याणी' उपन्यास में अलंकारों का प्रयोग जहाँ कहीं हुआ है, वहाँ सायासता नहीं है। 'व्यथा का विष' जैसे शब्दालंकार के प्रयोग अल्प हैं और अनायास रूप से आ गए हैं। अर्थालंकारों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—"एक सौम्य व्रीड़ा हल्के बादलों से छन कर आई धूप की मानिन्द वहाँ खेलती दीखती है" (उपमा); "वह क्षण भर मुझे देखती-की-देखती रह गई। मानो किसी हरिणी हो। बिंध कर ही चकित बन उठी हो, लेकिन हो प्रकृत हरिणी ही" (उत्प्रेक्षा), "आज की राजधानी नई दिल्ली क्या ऊपर और क्या भीतर पत्थर नहीं है? खूबसूरती उनकी पत्थर की और गुरूर की है। पानी और घास की ठंडक कहीं बिछी है, तो उनके ऊपर तन कर मगरूर पत्थर गुर्राता दीखता है" (मानवीकरण), "डॉक्टर को विश्वास था कि भविष्य उनका उज्ज्वल है, बादल कहीं है तो सिर रहेगा और जीवन में फिर सुनहरी धूप ही रह जायगी" (रूपक), "प्रीति का मोल है त्याग"[११] (विरोधाभास), इत्यादि।

प्रस्तुत उपन्यास का प्रस्तुतीकरण आत्मकथात्मक शैली में किया गया है। कथात्मक गीतों के समान इसमें घटनाओं का समावेश अत्यल्प रूप में हुआ है। कल्याणी की पीड़ा का घनीभूत रूप में उपस्थित करना ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। इसलिए यदि इसे गीति-उपन्यास कहा गया हो, तो वह सर्वथा सार्थक है।

उद्देश्य की दृष्टि से प्रस्तुत उपन्यास पर विचार करने से पूर्व लेखक के जीवन-विषयक दृष्टिकोण को सर्वप्रथम समझ लेना समीचीन होगा। जैनेन्द्र अद्वैतवादी या सम्पूर्णतावादी हैं। उनकी दृष्टि में बाहर और भीतर, व्यक्ति और परिस्थिति भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं। इनकी भिन्नता या द्वन्द्व ही जीवन की मुख्य समस्या है। इसीलिए उन्होंने कहा है—'जगत् नाम द्वन्द्व का है। द्वन्द्व के माने हैं, दो के बीच का अनिर्वाह। यह दो के, अथवा अनेक के, बीच एकता का अभाव ही हमारी समस्या है।'[१२] यह द्वन्द्व की समस्या अहं के कारण उत्पन्न होती है। अहं का विसर्जन प्रेम के द्वारा ही

सम्भव है, ज्ञान के द्वारा नही। इसीलिए उन्होने कहा है—"ज्ञान की जड मे अह है।" 'सत्य अहरूप नही है और जानना सब अहरूप है।' इसलिए "तर्क सचाई को नही लपेट पाता है।" तर्क की पद्धति अस्वीकृति की पद्धति है, अत यह पद्धति उपलब्धि मे अनुपयोगी है। सत्य की उपलब्धि प्रेम द्वारा ही सम्भव है, क्योकि "प्रेम अह के *विसर्जन का नाम है।" यह प्रेम या अहिंसा "निज की ओर ही दुर्धर्ष है, शेष सब* ओर वह स्निग्ध है।" 'बिछोह मे ही स्नेह का निवास है।" यही कारण है कि "भोग मे स्नेह की समाप्ति है।" इसलिए "प्रीति का भोग है त्याग।" गांधीवाद और जैनधर्म की अहिंसा या प्रेम का यह आत्मपीडक दृष्टिकोण जैनेन्द्र को पूर्णत मान्य है। इसीलिए उन्होने कहा है कि—'आदमी के भीतर की व्यथा ही सच है। *उसे सँजोते रहना चाहिए। वह व्यथा ही शक्ति है। उसमे किसी का साझा नही।*"[१] उनके लिए दर्द पीयूष है रस है। इसी रस या सवेदन को टिकाने के लिए पात्र की आवश्यकता है। कल्याणी इसी प्रकार का पात्र है, विषाद के रस का स्रोत है। इसीलिए सब मिलाकर वह विकास के पथ पर है। आत्मबल के कारण अपवादो मे भी अविचल है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से उपर्युक्त आत्मपीडन (Masochism) का सिद्धान्त स्वस्थ सिद्धान्त नही कहा जा सकता। आत्मदमन के कारण व्यक्तित्व मे ग्रथियाँ आ जाती हैं, जिसके कारण व्यक्ति का स्वभाव विभाव बन जाता है। इसी दमन से उत्पन्न ग्रन्थि के विवर्त मे डूबकर कल्याणी मर गई। इसके अतिरिक्त उसका आत्मपीडन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परपीडन से मुक्त नही कहा जा सकता। परपीडन मे प्रत्यक्षत अक्षम होकर ही व्यक्ति स्व आक्रमणावेग के आत्मपीडन द्वारा परोक्षत परपीडन किया करता है। अत पीडा का सिद्धान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से गलत है। पीडा मानसिक असतुलन और असतोष से उत्पन्न होती है। मानसिक असतुलन अस्वास्थ्य का द्योतक है, विकास का नही। इसलिए लेखक द्वारा कल्याणी को विकासपथ पर अग्रसर"[१] बताना सत्य का अपलाप है। कल्याणी दमन के कारण विषादोन्माद (मेलेनकोलिया) से ग्रस्त है। विषादोन्माद के काल मे व्यक्ति का नैतिक मन (Super Igo या सुप्राह) अपने अह के प्रति अत्यन्त कठोर हो जाता है और अपने म अनेक कमियों की कल्पना करके अपने को दोषी ठहरा कर दण्डित करना चाहता है। कल्याणी के चरित्र मे ये बातें हैं, जिनका चरित्र चित्रण के प्रसग मे स्पष्टीकरण किया जा चुका है। दमन के कारण उत्पन्न अत्यधिक तनाव के कारण वह हेल्यूसिनेशन या मिथ्या प्रत्यक्षीकरण के पाश मे फँस गई है। कल्याणी का विषादोन्माद पाठक के लिए करुणरस की स्थिति उत्पन्न कर सकता है, किन्तु कल्याणी के सम्बन्ध म उपन्यास के अन्त मे लेखक का यह कहना कि—"व्यथा का विष बह गया है और विषाद का रस ही शेष रह गया है'"[१]—ठीक प्रतीत नही लगता। यह

वैसा रस है, जो उसके जीवन को ही मौत के द्वारा सोख लेता है। कल्याणी की यह मृत्यु व्यक्ति और परिस्थिति के द्वन्द्व का चरम परिणाम है। इसीलिए उपन्यास के अन्त में कल्याणी का "अपराध में से आत्मा प्राप्त"[४] होने की बात कहना समझ से परे की बात है।

अहिंसा विषयक विशिष्ट आत्मपीडनपरक दृष्टिकोण के कारण लेखक में अहिंसा-ग्रन्थि आ गई है। परिणामतः वह क्रान्तिकारी पात्रों को अपने उपन्यासों में स्थान देकर उनमें अपने आपको पकड़वाने की भावना भर देता है। प्रस्तुत उपन्यास में पाल ऐसा ही पात्र है। उस पर सरकारी वारण्ट है और उसे पकड़वा देने के लिए कई हजार का इनाम घोषित किया गया है। पाल शहीदों के बेसहारा परिवारों की सहायता के लिए अपने को पकड़वाने की बात सोच रहा है। इस पर उसे वैसा आत्मसमर्पण करने के लिए लेखक ने सलाह दी है। इसी प्रसंग में वह क्रान्तिकारियों की 'वीरता' की तुलना में अहिंसापूजकों की 'वीरता'[५] का महत्त्व भी प्रतिपादित करता है। वह यह भी कहता है कि कानून को सुधारने-तोड़ने के लिए सामने से अहिंसक प्रतिकार ही श्रेयस्कर है। कानून का छिप कर पीछे से सामना करने वाले शहीद उसकी दृष्टि में कहीं-न-कहीं पराजित है। अस्वस्थ आत्मपीडनमूलक सिद्धान्त के अनुकूल किया गया यह प्रतिपादन भ्रममात्र है। यदि इसे सत्य मान भी लिया जाए तो भी हम यह कह सकते हैं कि प्रस्तुत उपन्यास में इससे सम्बन्धित प्रसंग का उपयोग भी नहीं है। कल्याणी के चारित्रिक विकास में पाल के प्रसंग की निरर्थकता स्पष्ट है।

लेखक के चिन्तनादर्श से असहमत होते हुए भी अन्त में हम यह कह सकते हैं कि लेखकीय सामर्थ्य के कारण ही कल्याणी की कहानी केस-हिस्ट्री होने से बच गई है। यह कृति साहित्यिक सौन्दर्य से सम्पन्न है तथा पाठकों के मन में अनुगूंज पैदा करने में समर्थ है।

## टिप्पणियाँ

१. आधुनिक हिन्दी कथासाहित्य और मनोविज्ञान (द्वि० सं०), पृ० १४२
२. जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक, स० बाँकेबिहारी भटनागर, पृ० ८५
३. कल्याणी, (च० संस्करण), पृ० १३६
४. वही, पृ० ८२
५. वही, पृ० ८१
६. वही, पृ० ९५
७. वही, पृ० १२२
८. जैनेन्द्र : व्यक्ति, कथाकार और चिन्तक, पृ० १३

९ कल्याणी, पृ० १०७
१० 'कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नही है।" ('सुनीता' की भूमिका) ।
११ 'परख' की भूमिका ।
१२ कल्याणी, पृ० १२३
१३ जैनेन्द्र के उपन्यासो का मनोवैज्ञानिक अध्ययन, (प्र० सस्करण) पृ० १२८
१४ कल्याणी पृ० १०४
१५ साहित्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन,, ले० डॉ० देवराज उपाध्याय, पृ० १३६
१६ कल्याणी, पृ० ९७
१७ वही, पृ० ११९
१८ वही, पृ० २२
१९ वही, पृ० ६६
२० वही, पृ० १५
२१ वही, पृ० १४५
२२ वही पृ० ७४
२३ वही, पृ० १४५
२४ वही, पृ० १२
२५ वही पृ० ५४
२६ वही, पृ० १११
२७ वही, पृ० १४२
२८ वही, पृ० १४४
२९ वही, पृ० १३४
३० वही, पृ० १३६
३१ वही, पृ० १२९
३२ वही, पृ० १२४
३३ वही, पृ० १४५
३४ वही, पृ० १३७
३५ वही, पृ० ८६
३६ वही, पृ० ३
३७ वही, पृ० १४४
३८ वही, पृ० २
३९ वही, पृ० ४१
४० वही, पृ० ११४
४१ वही, पृ० १४२

४२ वही, पृ० ३
४३ वही, पृ० १२१
४४ वही, पृ० १३२
४५ वही, पृ० १४४
४६ वही, पृ० ६३
४७ वही, पृ० ६७
४८ वही पृ० ७४
४९ वही पृ० १७
५० वही पृ० ५७
५१ वही, पृ० ९५
५२ वही, पृ० ८४
५३ वही, पृ० ९६
५४ वही पृ० १४४
५५ वही, पृ० १४४
५६ वही, पृ० ८९

---

# सागर, लहरें और मनुष्य : शक्ति और सीमाएँ

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

"अचल विशेष के सामाजिक जीवन का सर्वांगस्पर्शी सजीव चित्रण करना ही आंचलिक उपन्यास का ध्येय है।"

'सागर, लहरें और मनुष्य' की "जीवनदृष्टि समष्टिमूलक न होकर व्यष्टिमूलक है जो नवस्वच्छन्दवाद से अनुप्राणित है।" —डॉ इन्द्रनाथ मदान

"आदर्शवादी स्पर्शों के कारण उसमे ('सागर, लहरें और मनुष्य' मे) यथार्थ से पलायन की वृत्ति मिलती है, यह प्रवृत्ति आंचलिकता की प्रकृति की विरोधी भी पड़ती है।" —डॉ० सावित्री सिन्हा

"सांस्कृतिक प्रमाणीकरण की दृष्टि से उपन्यास उतना समृद्ध नहीं हो पाया।" —डॉ० प्रेमशंकर

## ६
# सागर, लहरें और मनुष्य

यदि साहित्य जीवन की व्याख्या है, तो इस दृष्टि से उपन्यास साहित्य की सशक्ततम विधा है। इस विधा म वैयक्तिक या सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्रण का समावेश ज्यो ज्यो अधिकाधिक होता गया, त्यो-त्यो इस विधा का व्यक्तित्व या 'उपन्यासत्व' निखरता गया। इस निखार के कारण वैयक्तिक जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यासो म गहराई आती चली गई तथा सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यासो म व्यापकता का समावेश होता चला गया। आचलिक उपन्यास सामाजिक जीवन का चित्रण करने वाली औपन्यासिक धारा का एक अग है। यह प्रजातन्त्र और समाजवादी विचारधारा के द्वारा विकसित समष्टिमूलक जीवन दृष्टि की उपज है। हिन्दी साहित्य म समष्टिमूलक प्रगतिवादी विचारधारा के विकास के परिणामस्वरूप आचलिक कथासाहित्य पल्लवित एव पुष्पित हुआ। आचलिक कथा-साहित्य के सृजन मे युग सवेदना से सम्पन्न लेखक का गहरा सामाजिक लगाव ही कारणीभूत होता है। इस लगाव के अभाव मे सफल आचलिक रचना की निर्मिति सम्भव नही है। देश की स्वाधीनता के बाद सामाजिक बोध से सम्पन्न साहित्यकारो का ध्यान अविकसित एव नैसर्गिक जीवन शक्ति से सम्पन्न अचलो की ओर गया। प्रायद्वीपकल्प विशाल भारत देश मे इस प्रकार के अचलो की कमी नही है। दुर्गम पर्वतीय एव वन्य प्रदेशो मे ही इस प्रकार के अचल नहीं हैं, अपितु बम्बई जैसे महा-नगरो के उदरो म भी गजभुक्त कपित्थ की तरह शोषित अचल भरे पडे हैं। मछली-मार कोलियो का वरसोवा गाँव इसी प्रकार का एक अचल है, जिसे श्री उदयशकर भट्ट ने अपने 'सागर लहरें और मनुष्य' नामक उपन्यास का विषय बनाया है। मछलीमार सागर पुत्रो के जीवन पर लिखा गया यह पहला हिन्दी उपन्यास है। यह उपन्यास सन् १९५५ ई० मे लिखा गया है।

बाबू गुलाबराय, डॉ० महेन्द्र चतुर्वेदी आदि आलोचको ने 'सागर लहरें और मनुष्य' को आचलिक उपन्यास माना है। स्वय श्री उदयशकर भट्ट ने प्रस्तुत उपन्यास को आचलिक रूप देने की दृष्टि से मछलीमार समाज से सम्बन्धित विस्तृत जानकारी देने का प्रयत्न ही नही किया है, अपितु विशिष्ट भाषा के प्रयोग का साग्रह प्रयत्न भी

किया है। एक आंचलिक उपन्यास के नाते इस उपन्यास को परखने से पहले आंचलिक उपन्यास की कसौटियों को सूत्ररूप में समझना आवश्यक है।

आंचलिक उपन्यास में अंचल विशेष के जीवन का सर्वांगस्पर्शी चित्रण किया जाता है। अंचलविशेष के सर्वांगस्पर्शी चित्रण के लिए कथाबाहुल्य अनिवार्य है, परिणामतः आंचलिक उपन्यास में कथाविखराव-सा आ जाता है। कथाबिखराव के बावजूद उपन्यास के आतरिक सगठन को बनाए रखना आंचलिक उपन्यास के लिए महत्वपूर्ण है। समष्टि जीवन के चित्रण की प्रधानता के कारण इसमें वर्ग प्रतिनिधि पात्रों की बहुलता स्वाभाविक ही है। आंचलिक उपन्यास में 'व्यक्ति' नहीं, अपितु अचल विशेष का समस्त जीवन ही नायक होता है। समष्टि जीवन के नायकत्व के कारण कुछ आलोचक इस प्रकार के उपन्यास को नायकशून्य उपन्यास भी मानते हैं। व्यष्टिमूलक सुधारवादी दृष्टि आंचलिकता की आतरिक लय के लिए विसवादी बन जाती है। आंचलिक उपन्यास की भाषा भी आंचलिकता के रग से रगी हुई तथा आंचलिक जीवन के गन्ध-संगीत से परिपूर्ण होती है। आंचलिक जीवन की समस्याओं पर प्रकाश डालना ही उसका उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यथार्थ चित्रण का आधार अत्यन्त आवश्यक है। इसीलिए इस प्रकार के उपन्यास की सफलता में आदर्शवाद अनुपादेय ही सिद्ध होता है। आंचलिक उपन्यास से सम्बन्धित इस संक्षिप्त रूपरेखा के आधार पर यहाँ प्रस्तुत उपन्यास का विवेचन किया जा रहा है।

आंचलिक उपन्यास के कथानक का अंचल दो प्रकार का होता है—भूगोल-मूलक एवं जनजातिमूलक। इन प्रकारों के क्रमशः उदाहरण 'मैला आँचल' और 'कब तक पुकारूँ' हैं। 'सागर, लहरें और मनुष्य' भूगोल विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी 'मैला आँचल' की तरह प्रदेश विशेष के समस्त समाज की कहानी नहीं है, अपितु 'कब तक पुकारूँ' के समान जनजाति विशेष की कहानी है, जो जनजाति 'कब तक पुकारूँ' की करनट नामक जनजाति के समान घुमतू न होकर प्रदेश विशेष में स्थायी रूप से आबाद है। आलोच्य उपन्यास की कोली नामक मछलीमार जन-जाति महाराष्ट्र के कोंकण विभाग में समुद्रतटवर्ती प्रदेश में बसी हुई है। इस उपन्यास में बरसोवा नामक गाँव में रहने वाले इसी जनजाति से सम्बद्ध सागर पुत्रों की कहानी है। बरसोवा गाँव बम्बई महानगर के पेट में समाया हुआ ऐसा गाँव है, जिसके निवासी नगर में रहते हुए भी नागर जीवन की सुविधाओं से वंचित हैं, किन्तु चिमनी सभ्यता के प्रदूषण के शिकार हैं। बरसोवा में केवल एक ही पक्की सड़क है, जिसके किनारे उन लोगों के बँगले हैं, जो बरसोवा के कोलीजीवन में पद्मपत्र की तरह अनासक्त हैं। तीन चौथाई उपन्यास की समाप्ति के बाद हमें यह ज्ञात होता है कि यह सड़क के दोनों ओर बसा हुआ गाँव बम्बई का उपनगर है।

यशवत कहता है कि यह गाँव "बम्बई का एक टुकडा है, जहाँ सडकें चाँदी सी चमकती हैं।"[1] वह यह भी कहता है कि—'सारा वरसोवा सडक के किनारे के बँगलो को छोडकर कितना गन्दा है।"[1] इस गाँव मे गैर मछलीमार दूकानदार ही नही, अपितु ईसाई और मुसलमान कोली मछलीमार भी रहते हैं; किन्तु उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास मे हिन्दू कोलियो के जीवन को ही अपने कथानक का विषय बनाया है। यद्यपि उपन्यास मे वरसोवा के कोली जीवन का ही प्रमुखत चित्रण हुआ है, किन्तु प्रसगत माहीम, वरली आदि स्थानो की कोली बस्तियो के जीवन का भी उल्लेख किया गया है।

जनजातियो का जीवन नैसर्गिक पर्यावरण (Fnvironment) से प्रभूत मात्रा मे प्रभावित होता है। उनका जीवन नैसर्गिक पर्यावरण का सुसवादी होता है। प्रस्तुत उपन्यास मे जिस कोली जनजाति का चित्रण हुआ है, उसका समुद्र से अत्यधिक धनिष्ट सम्बन्ध होता है। कोलियो को महीने मे कम-से-कम बीस दिन समुद्र मे दूर-दूर तक जाना पडता है। कभी-कभी उन्हे आठ-आठ दिन समुद्र मे रहना पडता है। मछलीमारो के इस जीवन का क्रियारत दृश्य प्रस्तुत उपन्यास मे कही भी नही है। समुद्र के तटीय जल मे गाडे गए लट्ठो के सहारे जालो को फैलाकर भी ये लोग मछलियाँ पकडते है, इस बात की जानकारी भी रत्ना द्वारा सारिका को मौखिक रूप से दी गई है। चन्द्र के उदयास्त और ह्रासवृद्धि के साथ सबद्ध ज्वारभाटो का महत्त्व मछलीमार व्यवसाय मे अत्यधिक है, जिसकी पूर्णत उपेक्षा कर दी गई है। मछलीमारो का समुद्री जीवन नियमित रूप से प्रवाहित होने वाली हवाओ से बडी दूर तक प्रभावित होता है, जिसका इस उपन्यास मे कही उल्लेख तक नही हुआ है।

मछलीमारो को समुद्र मे अकस्मात् आने वाले तूफानो से वर्ष मे अनेक बार जूझना पडता है। वशी ने अपने बचपन की तूफान-सम्बन्धी दुर्घटना का उल्लेख किया है। माणिक की आपबीती मे भी तूफान का वर्णन है, जिसमे तूफान से पहले समुद्र की सतह से मूसी मछलियो के अदृश्य होने की सूचना है। अपने तूफान वर्णन मे माणिक ने मछली की पीठ पर बैठ कर समुद्र की अतल गहराइयो मे जाकर लौट आने की गप्प हाँकी है और वह भी जन्मजात मछलीमारो के सामने। यद्यपि इस उपन्यास का आरम्भ ही तूफान के सजीव वर्णन के साथ किया गया है, किन्तु यह वर्णन भी तट पर खडे व्यक्ति की दृष्टि से किया गया है, तूफान मे फँसकर उससे जूझने वाले व्यक्ति की दृष्टि से नही। इस तूफान के बाद 'समुद्र के किनारे लाशो से पटे पडे थे',[2] किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि इनमे से एक भी लाश उपन्यास के पात्रो से सम्बन्धित नही है। औपन्यासिक सार्थकता की दृष्टि से यह सशक्त वर्णन भी निरर्थक हो गया है। इससे कही अधिक सार्थक वर्णन रत्ना के स्वप्नगत तूफान का है। उपन्यास के प्रारम्भ मे वर्णित तूफान की सार्थकता इतनी ही है कि इसके

बाद आयोजित महाभारत की कथा ने रत्ना में मत्स्यगंधा बनने की इच्छा जगा दी है।

सागरपुत्रों के लिए सागर का महत्त्व उसके आजीविकासाधन होने के अतिरिक्त सैरगाह और क्रीडांगण के रूप में भी है। रत्ना और यशवंत का प्रेम सागर के तटीय उथले जल में खेलते हुए ही गहराई तक पहुँचा है। लेखक ने स्मृतिरूप में कथित पूर्वकथा के अंश में इस बात का उल्लेख किया है। किन्तु युवा होने पर जब ये दोनों मढ टापू की सैर के लिए जाते हैं, तब इनका ध्यान समुद्र की ओर तनिक भी नहीं है। एक स्थान पर समुद्र में निरुद्देश्य भटकते हुए यशवंत की नाव से अपनी नाव सटाकर जागला को गपशप करते हुए चित्रित किया गया है। इन दोनों की गप्पों में लेखक इतना डूब गया है कि उसे यह बात भी याद नहीं रही कि जागला नाव पर बैठा हुआ है, इसीलिए वह जागला को गपशप के बाद फिर से नाव पर जा बिठाता है।[1]

सागरपुत्रों के लिए समुद्र ही खेत होते हैं। इन खेतों के लिए वर्षा प्रतिकूल होती है। कृषक चपलोचनों से पीयमान मेघों को देखकर मछलीमारों के मन बिन बरसात आशंकाओं में डूबने लगते हैं। बरसात के दिन उनके लिए दुर्दिन होते हैं। वर्षा बहुल कोंकण के वरसोवा में प्रारम्भिक तूफानी वर्षा को छोड़कर केवल रत्ना के स्वप्न में ही वर्षा के दर्शन हो पाते हैं। स्वप्नगत इस वर्षा को देखकर पाठक को दिलासा मिलता है कि इस आंचलिक उपन्यास में वर्षा ऋतु के तीन बार आने के बावजूद वर्षाविषयक यथार्थ को कम से-कम स्वप्न में तो स्थान मिला। सम्पूर्ण उपन्यास ऋतुपरिवर्तन के प्रति पूर्णतः उदासीन है। सम्भवतः वातानुकूलित कमरे में बैठकर कल्पना के आधार पर आंचलिक उपन्यास लिखने का यह स्वाभाविक परि-णाम है।

वर्षाबहुल कोंकण अपनी वनस्पतिसमृद्धि के लिए प्रसिद्ध है। नारियल को तो कोंकण का कल्पवृक्ष समझा जाता है। इस कल्पवृक्ष का उपन्यास में आद्यन्त उल्लेख नहीं है। लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ में वर्णित तूफान के प्रसंग में "अहंकारी पेड़ों का कहीं पता न था"[1] कहकर सभी प्रकार के पेड़ों को वरसोवा से लापता कर दिया है। आंचलिक उपन्यास में नैसर्गिक परिवेश का स्थान सजीव पात्र के समान महत्व-पूर्ण होता है। नैसर्गिक परिवेश के यथार्थ चित्रण का यहाँ सर्वथा अभाव सा है।

*लेखक ने वरसोवा के निवासियों के रहन-सहन आचार विचार आदि का* स्थान स्थान पर उल्लेख किया है। वरसोवा में एकाध मकान को छोड़कर प्रायः सब के सब मकान कच्चे हैं। दुट्ठा जैसे दरिद्र लोगों के दीन हीन अंधेरे घरों का अन्तरंग वर्णन प्रभावशाली रूप में हुआ है। इसके अतिरिक्त समुद्रतटवर्ती मचानों से सम्बद्ध जीवन का वर्णन भी मूर्त रूप में हुआ है, जहाँ सुखाने के लिए सब फैलाई गई

मछलियों में से एकाध मछली कभी कमार फड़फड़ा उठती है।

कोंकण में स्थित होने के कारण बरसोवा-निवासियों के खाद्यपदार्थों में भात और मछली की प्रमुखता है। भात और मछली के विविध खाद्य प्रकारों का लेखक ने विभिन्न प्रसंगों पर उल्लेख किया है। मछलीमारों को कभी कभी कई-कई दिनों तक समुद्र में रहना पड़ता है। ऐसे अवसरों पर वे कच्ची तामड़ी मछलियाँ खाकर काम चला लेते हैं। *उपन्यास में एक स्थान पर यशवत को तामडी मछलियाँ ककडी की* तरह चबाकर हड्डियों के टुकड़े फुर करके थूकते हुए चित्रित किया गया है। दरिद्र लोगों को पेट भरने के लिए कभी कभी मछली भी नसीब नहीं होती। इसीलिए इट्ठा को अपने पेट की आग बुझाने के लिए मछलियों की चोरी करने को विवश होना पड़ा है। जागला की दृष्टि में तो रोज रोज चिउड़ा और भजिया खाना भी अमीरी की निशानी है। इन खाद्य पदार्थों के अतिरिक्त कोलियों में माडी (शराब का प्रकार) प्रचलन भी पर्याप्त है। पुरुषों के समान कोली स्त्रियाँ भी बीडी पीती हैं। कोंकण के पेय पदार्थों के प्रसंग में पेज (उबाले हुए भात का पानी) को नहीं भुलाया जा सकता, जो बीमारी के बाद स्वास्थ्यसुधारकाल में तथा बीमारी की अवस्था में महत्त्वपूर्ण पेय है। लेखक ने इट्ठा, दुर्गा आदि की बीमारियों में उसे भुला दिया है।

लेखक ने बरसोवा के निवासियों की वेशभूषा का भी स्थान स्थान पर विवरण दिया है। पुरुष कमर में तिकोना रंगीन रुमाल बाँधते हैं और बनियान पहिनते हैं। उनके पैरों म चप्पल नहीं होती। स्त्रियाँ घुटनों तक की लाँगदार साडी एवं छोटी कसी हुई चोली पहनती हैं। उन्हें आभूषणों का शौक होता है। लेखक ने आभूषणों का विवरण देते समय गले में पहने जाने वाले 'मंगलसूत्र' (सौभाग्यालंकार विशेष) का अर्थ 'सोने की जंजीर' मात्र लिखा है, जो ठीक नहीं है। इसी प्रकार कलाइयों में चूड़ियाँ पहनने का रिवाज है। सम्पन्न स्त्रियों की कलाइयों में सोने की भी चूड़ियाँ होती हैं। मराठी म चूडी को 'बागडी' कहते हैं, जिसका बहुवचन रूप 'बागडा' बनता है। लेखक ने 'बागडा' शब्द को अपने अधूरे ज्ञान के कारण एकवचनी रूप समझकर उसके कोष्ठ में 'कड़ा' अर्थ दिया है। आभूषणों के अतिरिक्त कोली स्त्रियों को फूलों का शौक होता है। उनके कसे हुए जूड़ों पर फूलों का गजरा प्राय होता ही है। वेशभूषा के इस प्रसंग में यह ध्यान देने योग्य है कि अशिक्षित बशी और शिक्षित रत्ना की वेशभूषा के भेद का चित्रण लेखक ने नहीं दिखाया है।

आर्थिक दृष्टि से कोली समाज दरिद्र होता है। सापेक्षतया विट्ठल जैसे सम्पन्न, कोली जागला जैसे गरीबों का शोषण करते हैं। इन सापेक्षतया सम्पन्न कोलियों का शोषण मछलीबाजार के आढ़ती करते हैं। मछलीमार सहकार समिति के गठन के बाद शोषण के कम होने से कोली समाज में खुशहाली' के आने का *उल्लेख मात्र लेखक ने किया है, खुशहाली के स्वरूप का चित्रण नहीं। वास्तव में*

मछुवेमारों की खुशहाली मछलियों को सड़ने से बचाने के लिए शीतगृहादि की व्यवस्था पर निर्भर है। यह खुशहाली नाव की उपलब्धता पर भी आश्रित है, क्योंकि मछलीमार व्यवसाय नाव द्वारा ही होता है। इसी कारण मछुवेमारों में नाव बेचना अशुभ माना जाता है। माणिक के नाव बेच डालने पर दुर्गा, मांगा आदि ने इसीलिए बहुत बुरा माना है।

दिन में पुरुषों के मछलियाँ लाने के लिए समुद्र में दूर-दूर तक चले जाने पर घर और गाँव में स्त्रियों का राज्य होता है। बाजार में जाकर मछलियाँ बेचने का काम स्त्रियों के हाथों में ही होता है। आर्थिक व्यवहार के सूत्र हाथों में होने के कारण कोली स्त्रियों की स्थिति सापेक्षतया अच्छी होती है। कमाऊ होने के कारण विवाह में लड़की पर रुपया मिलता है। माणिक ने रत्ना के लिए वसी को रुपये दिए हैं। कमाऊ होने के कारण विवाह के बाद भी कोली स्त्री घर की दासी नहीं, अपितु मालकिन बनकर रहती है। उसका घर में राज्य चलता है। समय पड़ते पर यह पति की मरम्मत करने से भी नहीं हिचकिचाती। दुर्गा और रत्ना, दोनों ने माणिक को बेरहमी से पीटा है। विट्ठल तो वसी से शिकायत पेश करते हुए कहता है कि—"दर रात मारेंगा तो कइसा मच्छी आएँगा।"[1] वसी तो रत्ना से यहाँ तक पूछती है कि—"क्यों रत्ना, कभी माणिक कू मारा नहीं।"[2] आवश्यकता पड़ने पर कोली स्त्री परपुरुष की भी कुटम्मत करने में मजोन नहीं करती। रत्ना ने विभिन्न अवसरों पर माणिक के पार्टनर लक्ष्मण, सेठ के साले छगामल आदि को पीटकर कोली स्त्री के साहस का परिचय दिया है। पार्वती ने तो होली के भरे उत्सव में बाउला को थप्पड़ जड़ दिया है।

जनजातियों में जातिपंचायतों का महत्त्व बहुत अधिक होता है। प्रस्तुत उपन्यास के पदानत और वर्गीकर के झगड़े और रत्ना पर किए गए विषप्रयोग के प्रसंगों में जातिपंचायत को सक्रिय रूप में दिखाया जा सकता था, परन्तु लेखक ने इन प्रसंगों का इस दृष्टि से उपयोग नहीं किया है। केवल उपन्यास के अन्त में डॉक्टर पाडुरंग द्वारा रत्ना के अपनाए जाने के प्रसंग में वसी ने कहा है कि—"जमात का परवा नई करेंगा।"[3]

धार्मिक दृष्टि से कोलियों के थलकर और शिवकर नामक दो भेद हैं। बाउला जैसा सामान्य व्यक्ति भी इस भेद को महत्त्वपूर्ण नहीं मानता। कार्ले की एकवीरा देवी और जेजुरी का खंडोबा कोलियों के आराध्य देव हैं। खंडोबा को ही 'मल्हारी मार्तंड' भी कहते हैं। इस उपन्यास में कई स्थानों पर 'खंडाला' देवता की दुहाई दी गई है, सम्भवतः यह कोई स्थानीय देव है। इसके अतिरिक्त वरसोवा में महादेव का भी मन्दिर है। एक स्थान पर वसी ने 'हनुमान बाबा' की कृपा की आकांक्षा भी व्यक्त की है। मछलीमार जीवन में समुद्र का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण

होता है। स्पेनिश मछलीमार समुद्र को इसी कारण 'ल मार' (सजनी) कहकर उस पर अपना प्रेम प्रकट करते हैं। महाराष्ट्र के कोली समुद्र को देवता मानकर नारियल पौर्णिमा ( श्रावण पौर्णिमा ) के अवसर पर उसकी पूजा करके नारियल की भेंट चढाते हैं। इस उपन्यास मे नारियल पौर्णिमा का प्रसग तीन स्थानो पर चित्रित हुआ है। नारियल पौर्णिमा के अतिरिक्त कोल्यियो का महत्त्वपूर्ण पर्व 'शिमगा (वसन्तोत्सव) है, जिसे वे बडी धूमधाम से मनाते हैं। इस अवसर पर सामूहिक नृत्यो का आयोजन होता है, जिनमे जाल फेंककर मछली फँसाने आदि कोली जीवन से सम्बन्धित बातो का अभिनय होता है। धर्म-परिवर्तन की दृष्टि से जनजाति के लोगो के मन बडे नाजुक (touchy) होते हैं। ईसाई द्वारा रूपा नामक लडकी के भगाये जाने की खबर से वरसोवा मे 'सनसेशन' फैल गई है।

जनजातियाँ स्थितिप्रिय होती हैं, इसलिए वे शिक्षा की उपेक्षा किया करती हैं। वरसोवा की एकमात्र पढी-लिखी लडकी रत्ना है। मछलीमार सहकार समिति के प्रसग मे रामचन्द्र एव एक-दो पढे-लिखे ईसाई कोलियो का उल्लेख भी हुआ है। पढाई लिखाई के कारण जिस प्रकार के बदलाव की प्रक्रिया का वरसोवा-जीवन प्रारम्भ मात्र हुआ है। नगर के सम्पर्क के कारण भी गाँव की पारम्परिक एकागिता म दरारें पडनी शुरू हुई हैं। पर कुल मिलाकर शिक्षा का स्वस्थ प्रभाव बहुत कम पडा है। शिक्षा ने रत्ना के मन मे वैभव की भूख जगा दी है और श्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी है। उसे अपना घर 'उबकाई ला देनवाला' लगने लगा है और वरसोवा का 'एकदम पुराना गाँवडा' 'नरक' मालूम होने लगा है। अल्पशिक्षित माणिक भी मछलीमार व्यवसाय को घृणा की दृष्टि से देखने लगा है। इसके विपरीत श्रम से जुडे रहकर यशवन्त ने स्वय प्रेरणा से जो शिक्षा प्राप्त की है, उसके कारण *उसके दृष्टिकोण मे समाजोपयोगी गुणात्मक अन्तर परिलक्षित होता है।* इसी अन्तर के कारण वह वरसोवा के नवयुग का अग्रदूत बनाता है। लेखक ने यशवन्त को उन्ही समाज कार्यों को करते हुए दिखाया है, जो उसकी शक्ति की सीमा मे सम्भव हैं। परिस्थिति की विपरीतता के कारण यशवन्त द्वारा जगाई गई चेतना असमय ही समाप्त भी हो गई है।[6] इस प्रसग मे लेखक ने सयम को अपना कर यथार्थ चित्रण की रक्षा की है, यशवन्त द्वारा बडे-बडे सुधार कार्यों को सम्पन्न कराने के मोह से वह बच गया है।

लेखक ने 'सागर, लहरें और मनुष्य' उपन्यास मे कोल्यियो के सामाजिक जीवन को विभिन्न घटनाओ के माध्यम से प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। डॉ० प्रेमशकर आदि आलोचको ने इस उपन्यास के कथानक मे सर्वप्रमुख दोष दो अचलो अर्थात् वरसोवा और बम्बई से सम्बन्ध होने का बतलाया है।[11] इन आलोचको ने भूगोलमूलक अचल को दृष्टि मे रखकर ही यह दोष माना है। वस्तुत उपन्यास के

अचल की इकाई भूगोलमूलक उतनी नहीं, जितनी कि जनजातिमूलक है। इसलिए बम्बई महानगर के पेट में बसे वरसोवा के कोलियों का सम्बन्ध बम्बई के मछली बाजारों से होना स्वाभाविक ही है। इसीलिए मछली बाजार की समस्याओं से सम्बन्धित कथानक अचलेतर में घटित नहीं माना जा सकता। माणिक होटल व्यवसाय प्रारम्भ करने पर ही कथानक आंचलिकता से बाहर चला जाता है। बाल-जीवन से सम्बन्धित सम्पूर्ण कथानक अनांचलिक है।

माणिक से सम्बन्ध टूट जाने पर रत्ना का वैभवविलास सम्बन्धी भ्रम टूट जाना चाहिए। घीरुवाला के प्रसग की आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि घीरुवाला माणिक का ही बड़ा संस्करण है। ये दोनों पात्र पूँजीवादी व्यक्तिचेतना के प्रतीक हैं। घाटकोपर की घटना के बाद रत्ना के वरसोवा लौटने में कोई अड़चन नहीं थी। घीरुवाला के प्रसग के बाद अनेक अड़चनों में राह सुझाने वाली सारिका स्वय अड़चन का कारण बन गई है। उसने मध्यवर्गीय चेतना के अनुसार रत्ना से कहा है—"गिरना चाहे एक बार हो या हजार बार, दोनों में कोई फर्क नहीं है।"[11] इन शब्दों ने रत्ना के लौटने में न जाने क्यों रुकावट पैदा की है। कोली रत्ना के लिए मध्यम वर्ग की उपर्युक्त नैतिकता के लिए कोई महत्त्व नहीं है। व्यक्तिगत रूप से भी रत्ना प्रबल काममावना से परिचालित मत्स्यगधा बनने की इच्छुक नारी है। कामतृप्ति की दृष्टि से निर्बल माणिक के सम्पर्क में रहते हुए उसका मन रह-रहकर यशवन्त की ओर जाता रहा है। विवाह के बाद शिमगा पर्व के अवसर मायके आने पर वह यशवन्त को उदासी को देखकर 'मोह से मर गई'[12] थी। ऐसी स्थिति में यशवन्त से अन्त में पुनर्विवाह करना रत्ना के लिए अधिक स्वाभाविक था। पाडुरग (महाराष्ट्र के प्रमुख देवता का नाम भी पाडुरग है) के समान डॉक्टर पाडुरग द्वारा रत्ना को अपना कर उसके धूलिसात् जीवन को पुन रत्न की तरह बहुमूल्य बनाया जाना तो आदर्शवाद मात्र है। रत्ना को यशवन्त से विवाहित दिखाकर यथार्थ की रक्षा के अतिरिक्त इस शिक्षित दम्पति द्वारा वरसोवा को पुन सुधारचेतना से सम्पन्न दिखाया जा सकता था। लेखक ने उपन्यास के कथानक को व्यर्थ ही कोली जीवन से निरपेक्ष *बम्बई की घटनाओं की भीड़ में भटका दिया है। प्रेमशून्य बम्बई की हवा* से विवाहित रत्ना को लेखक ने जनजातिविषयक प्रेम से शून्य होने के कारण आदर्शवाद से विवाहित कर दिया है। वरसोवा और बम्बई की सामन्तवादी व्यवस्थाओं से पीड़ित कोली जनजाति की आंचलिक समस्याओं की उपेक्षा कर दी है।

उपन्यास के कथानक का 'माणिक' प्रकरण कार्यविपर्ययपद्धति से उपस्थित किया गया है। यह कोली जनजाति के जीवन से सम्बद्ध होते हुए भी कोली जीवन के किसी नये पहलू पर प्रकाश नहीं डालता। इस प्रकरण में औरत के घर से भागने की अश्लील कारणमीमासा, सास और दामाद का यौन सम्बन्ध आदि निरर्थक

विस्तार की बातें हैं। माणिक की सारी आपबीती को रणनाथ के द्वारा संक्षेप में सूचित किया जा सकता था। अतः इस प्रकरण का कथाविस्तार मनोरंजक होते हुए भी निरर्थक है। इसी प्रकार 'यशवन्त प्रकरण' में यशवन्त की कथा की अपेक्षा बम्बई का भटकाव ही अधिक है। इस भटकाव में कथानक लड़खड़ा गया है। लेखक ने कथानक में संयोगतत्त्व को भी स्थान दिया है। पांडुरंग के दवाखाने में रत्ना और धनी की भेंट इसी प्रकार की है। कथानक की दृष्टि से यह उपन्यास घटनाबहुल बन गया है।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि इस उपन्यास में आंचलिक उपन्यास के समान पात्रबाहुल्य है। आंचलिक उपन्यास में समाज के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधि पात्र होते हैं। इसके विपरीत इस उपन्यास में प्रमुख पात्र प्रतिनिधि पात्र न रहकर कुछ विशिष्ट बन गये हैं। उपन्यास के कथानक का पात्रानुसार किया गया विभाजन इसी तथ्य का सूचक है। व्यक्तिप्राधान्य के कारण उपन्यास की आंचलिकता को हानि पहुँची है। उपन्यास के घटित और वर्णित कथानक में आये सनाम और अनाम पात्र लगभग सौ हैं। इनमें से इट्ठा, जागल्या, माँगा, आदि पात्रों के कारण उपन्यास का आंचलिक रूप बहुत कुछ उभर सका है।

प्रस्तुत उपन्यास का सर्वप्रधान पात्र रत्ना है। वह जनजाति के पारम्परिक संस्कारों में पली है और शिक्षण के प्रभाव से नागर वैभवविलास की ओर आकृष्ट है। उसमें कोली जाति की स्त्रियों में पाया जाने वाला साहस है। वह अपनी माँ के समान जीवट की स्त्री है। वैभव की लालसा को उसने अपनी माँ से ही उत्तराधिकार के रूप में पाया है। वैभवलालसा के समान दृष्टिकोण के कारण यशवन्त के लड़कपन से विकसित प्रेम को भूलाकर 'प्रेमभ्रम'[11] में बिना माणिक से विवाह कर लेती है, परिणामतः अन्त में उसे पछताना पड़ता है। थोड़ी पढ़ी लिखी रत्ना के मन में शिक्षण के कारण वैभव के महल बनने लगते हैं। गाँव के घिसे पिटे जीवन से उसे अरुचि हो जाती है। वह श्रम से घृणा करने लगती है और चटक-मटक के प्रेमी माणिक के फंदे में जा फँसती है। माणिक के फंदे से छूट जाने पर अन्त में समदु खी पांडुरंग की पत्नी बनकर अपने को कृतकृत्य समझने लगती है। डॉ० शांति भारद्वाज ने रत्ना को 'क्रान्तिरत भारतीय नारी की प्रतिनिधि'[11] मानकर उसके विद्रोह में गहराई देखी है, जो आश्चर्यजनक है। यदि रत्ना यशवन्त के प्रेम को दृष्टि में रख कर पुनः वरसोवा लौटकर यशवन्त के सामाजिक कार्य में सहभागी होती तो यह सच सिद्ध हो सकता था।

वैभवलालसा के समान ही रत्ना के चरित्र की दूसरी प्रधान विशेषता कामलालसा की प्रबलता के कारण वह अमर यौवन का वरदान पाना चाहती है। कामप्रधान उपन्यासों ने उसकी वासनाधारा में ज्वार ला दिया है। माणिक से तृप्ति न

गाकर वह कभी अपने बन्द कमरे के एकान्त में मग्न होकर शीशे में अपनी छाती के उभार और नितम्बों की उठान देखती है और कभी-कभी उसके अतृप्त मन में यशवन्त और शंकर के चेहरे घूम जाते हैं। इतना ही नहीं, वह होटल के काउन्टर पर जवान ग्राहक को देखकर ललचा उठती है। उसकी जवानी से खेलना चाहने वाले धीम्याला के चक्कर में आने पर उसने धीरूवाला को केवल एक बार ही अपने शरीर से खेलने दिया होगा, इस बात पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। इस दृष्टि से देखने पर रत्ना का यशवन्त की ओर लौट आना ही अधिक स्वाभाविक हो सकता था। यशवन्त की भरी-पूरी जवानी को देखकर अतृप्त सोमा गमगमा उठी थी और पार्वती रीझ उठी थी। यशवन्त की जवानी ने वंशी के मन पर भी मोहिनी डाली थी। यशवन्त के लिए रत्ना 'मन की आराधना'[१९] भी थी। 'वरसोवा के राजकुमार' यशवन्त ने रत्ना को न पाकर लोकसेवा से शादी कर ली थी और चाय तक का परित्याग कर दिया था। रत्ना के लिए यशवन्त काम और लरिकाई के प्रेम, दोनों ही दृष्टियों से उपयुक्त था। इसके बावजूद यशवन्त और रत्ना विवाहबद्ध न हो सके। सम्भवतः लेखक का शहरी संस्कार वाला मन ही इस मिलन में बाधक बन गया है, जिसने रत्ना को यशवन्त के पास लौटने नहीं दिया है।

उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र माणिक है, जिसके चरित्र का केन्द्र धनासक्ति है। वह धनासक्ति के कारण "औरत बेचने"[१९] में भी संकोच नहीं करता। बचपन में समाज द्वारा प्रताड़ित माणिक में सामाजिक दायित्व की भावना का विकास नहीं हो सका है। 'हम दुर्गा के साथ जीयेंगा और उसी के साथ मरेंगा' कहने वाला माणिक दुर्गा के मरने के बाद रत्ना को बरबाद करने के लिए बचा रहता है। वह 'धन्धा में मदद होयेंगा' यह सोचकर ही रत्ना से विवाह करता है। उसमें मानवीय सहृदयता की इतनी कमी है कि दुर्गा के मरणासन्न होने पर दुःखग्रस्त होने के बहाने सास की जाँघों में मुँह छिपाकर पड़ा रहता है और अन्त में सास के साथ भी यौन सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। हृदयहीनता और धनासक्ति माणिक के चरित्र की विशेषताएँ कही जा सकती हैं।

उपन्यास का तीसरा महत्त्वपूर्ण पात्र यशवन्त है। रत्नाविषयक उसका प्रेम रत्ना के माणिक से विवाहित होने के बाद प्रतिहिंसा में बदल जाता है, किन्तु शीघ्र ही इस विकृति से मुक्ति पाकर वह लोकसेवा की ओर उन्मुख हो जाता है। रत्ना के प्रेम के कारण वह आजन्म अविवाहित रहता है और रत्ना के लापता होने पर उसे खोजने के लिए व्याकुल हो उठता है। रत्ना के पांडुरंग द्वारा अपनाई जाने पर वह अपने को रत्ना का 'भाई' बना लेता है। यशवन्त के चरित्र की इस अन्तिम परिणति को छोड़ दिया जाये तो उसका सारा चरित्र अधिक स्वाभाविक पद्धति से विकसित हुआ है। उपन्यास के तीन प्रमुख पात्रों में वह ही अधिक मात्रा में आँचलिकता का

प्रतिनिधित्व करता है। उसे आंचलिक जीवन से घृणा नही है, तथापि लोक्सेवा से शादी करने की बात ने उसके चरित्र को व्यक्तिविशिष्ट बना दिया है।

प्रस्तुत उपन्यास मे जागला और वशी कोलियो के जीवन का प्रतिनिधित्व करने वाले सर्वाधिक सशक्त पात्र हैं। जागला शोषित निम्न वर्ग का प्रतिनिधि है, जो वशी के लिए बड़े 'काम' ( दोनो अर्थो मे ) का आदमी है। इट्ठा के प्रति आकृष्ट होने पर उसमे अल्पकाल के लिए चेतना सी जगी थी। इट्ठा से विवाह करने मे सहायक बनने पर वशी उसके लिए देवी बन गई और इस देवी के आगे उसकी जागृत श्रमिक चेतना फिर से दब गई। विवाह के बाद वशी को जागला के सिवाय इट्ठा के रूप मे एक और नौकर मिल गया।

'सागर, लहरें और मनुष्य' का सर्वाधिक सशक्त पात्र वशी है। वह सम्पन्न कोलीवर्ग की प्रतिनिधि है। शासन की प्रवृत्ति उसके स्वभाव का अग है। वह आदमियो की कमाई खाने वाली औरतो मे से नही है। वह बडी जीवट की औरत है। उसके चरित्र का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पहलू उसका वात्सल्य है। रत्ना के हठ के आगे वह झुक जाती है और मन मारकर उसका विवाह माणिक से कर देती है। परतु रत्ना और पाडुरग के प्रसग मे यह दबग औरत पचायत के शासन की अवहेलना करने के लिए उद्यत होकर कहती है कि—"जमात का परवा नई करेगा।" कामजीवन, व्यवहार जीवन आदि मे वह कोली स्त्री की सच्ची प्रतिनिधि है, जिसका घर और बाहर दोनो जगह शासन चलता है। वह अपने बड़प्पन के प्रति अत्यन्त सजग है। उसके इट्ठा की सेवा करने म सहज मानवीय सहानुभूति की अपेक्षा यश पाने की कामना ही अधिक प्रबल है। इट्ठा की सेवा करने मे सामा को नीचा दिखाना भी उसका उद्देश्य है। यही बड़प्पन की भावना से प्रेरित तेजतर्रार जीवटवाली औरत रत्ना के वियोग मे निरीह बनकर दुःख के आघात से अन्धी बन जाती है। बड़प्पन की भावना और वात्सल्यभावना उसके चरित्र के प्रमुख नियामक तत्त्व हैं।

इस उपन्यास मे कातिलाल, शकर आदि अनेक अनाचालिक पात्र निरर्थक हैं। पांडुरग का आदर्श चरित्र उपन्यास के आचलिक गठन और आन्तरिक लय के प्रतिकूल है।

लेखक ने उपन्यास को आचलिक रूप देने के लिए मराठी और गुजराती से मिश्रित विकृत हिन्दी का प्रयोग करके उसमे कोकणी भाषा की अनुनासिक्ता की प्रवृत्ति का समावेश कर दिया है। आचलिक पात्र परस्पर इस विकृत हिन्दी मे बातचीत करते हैं तथा अनाचलिक पात्रो के साथ शुद्ध हिन्दी मे बोलते हैं। इस नियम का भी सर्वत्र पालन नही हुआ है। माणिक ने कोलियो के सामने अपनी आपबीती शुद्ध हिन्दी मे सुनाई है और यशवन्त का समाज सुधार सम्बन्धी भाषण शुद्ध हिन्दी

मे किया गया है। रत्ना आवेश मे आकर कृत्रिम भाषा भूलकर सहज भाषा मे माणिक से कहती है—"एक बेचारी अबला की सेवा करना व्यभिचार है, बदमाशी है, तो मैं बदमाशी करूँगी।"[११] वही भी कही-कही शुद्ध हिन्दी मे बाते करने लगती है, यद्यपि वह शिक्षित नही है। एक स्थान पर वह कहती है—"अब शराफत से ही मैं रत्ना की शादी करूँगी।" इसके अतिरिक्त कोलियो की लेखक-निर्मित कृत्रिम भाषा के बीच मे कोकणी लोकगीतो की पंक्तियाँ भी दी गई हैं। "वाहेर गावाला मचवा बांधला—"[१०] यह गीत माणिक की आपबीती मे आया है। इस समूहगीत का पूरा अर्थ मुझ जैसे मराठी भाषी व्यक्ति की भी समझ मे नही आता।

लेखक ने कही-कही कोलियो की कृत्रिम भाषा मे प्रयुक्त स्थानीय शब्दो के अर्थ कथनी मे दिये हैं, जैसे—होडी (नाव), डोल (जाल), सुकाणू (पतवार), शीड (मस्तूल) इत्यादि। कही-कही कथनी मे दिए गए शब्दो के अर्थ अशुद्ध भी हैं, जैसे—मगलसूत्र (सोने की जजीर), वागडड्या (कडा) आदि। इन शब्दो के सम्बन्ध मे कोलियो की वेशभूषा-प्रसंग मे स्पष्टीकरण दिया गया है। इस प्रकार के शब्दो के अतिरिक्त ऐसे अनेक कोकणी शब्द उपन्यास में भरे पडे हैं जिनका अर्थ हिन्दी भाषी व्यक्ति समझ ही नही सकता। लेखक ने खोन, पू, माशिली, लेकर, मासी आदि अनेक शब्दो का जहाँ-तहाँ अर्थ दिये बिना ही प्रयोग किया है। इस प्रकार प्रयोग के कारण भाषा की बोधगम्यता को क्षति पहुँची है। बोधगम्यता के मूल्य पर हिन्दी भाषा की रचना मे अहिन्दी शब्दो का प्रयोग किसी प्रकार भी समर्थनीय नही है। हिन्दीतर भाषा के उन्ही स्थानीय शब्दो का हिन्दी मे प्रयोग क्षम्य है, जिनके लिए हिन्दी के अपने प्रतिशब्द न हो। उपन्यास की कृत्रिम भाषा मे 'नीद नही वापरा'[११] जैसे भद्दे प्रयोग भी हैं, जिनका प्रयोग असभव है। 'मरजीवा मालक' प्रयोग मे तो मराठी की 'चा' सम्बन्धविभक्ति का प्रयोग अवाछनीय है। कृत्रिम भाषा की बैसाखी के आधार पर आंचलिकता को खडा करने का लेखक का प्रयत्न असफल रहा है। डॉक्टर प्रेमशंकर ने इस कृत्रिम भाषा को न जाने किस आधार पर 'सहज'[१२] कहा है? आश्चर्य यह है कि इन्द्रनाथ मदान ने लिखा है कि—"बरसोवा की बोली इस रचना को विशिष्ट बनाती है।"[१३] इसी प्रकार डॉक्टर सुषमा धवन ने इन उपन्यास मे 'भाषा का सफल प्रयोग'[१४] देखा है। कला की बोधगम्यता पर आघात करने वाली कृत्रिम भाषा कैसे 'विशिष्ट' और 'सफल' कही जा सकती है?

प्रस्तुत उपन्यास में भाषा मे मराठी शब्दो के सम्मिश्रण के अतिरिक्त गुजराती भाषा के शब्दो का मिश्रण भी किया गया है। कातिलाल की हिन्दी मे 'सूँ करिए' 'पक्षी' आदि गुजराती के प्रयोग खटकते हैं। रत्ना सर्वत्र अपनी माता को 'आय' कहती है, पर एकाध स्थल पर उसने गुजराती के "बा" शब्द का प्रयोग किया है। बहुत से गुजराती 'ड' अक्षर के स्थान पर 'र' अक्षर का उच्चारण करते हैं। इसी

त्रुटि के कारण घीरूवाला कहता है—"घोरा का काम गारी तो नही करेगा।"[२५] इस प्रकार के उच्चारण दोष से युक्त प्रयोग स्वाभाविक कहे जा सकते हैं। इसी प्रकार सेठानी की भाषा का बोलीगत लहजा भाषा को अधिक सहज बना देता है। वह रत्ना से कहती है— इसकी भी कोई इज्जत है, खसम छोडके इज्जत लिए फिरै है।"[२६] गुडे टाकर की भाषा की शोखी भी स्पष्ट है। वह रत्ना से कहता है—'यह भरपूर जवानी यो ही खाने लिए नही है मेरी जान।"[२७] लेखक ने उपन्यास मे अग्रेजी के बहुप्रचलित मैनेजर कारपोरेशन आदि शब्दो का भी जहाँ तहाँ प्रयोग किया है। कही कही 'ग्रेट शॉक' जैसे सविशेषण सज्ञा शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। एक दो स्थानो पर अग्रेजी के पूरे-के-पूरे वाक्य तक प्रयुक्त हुए है। इट्टा की सेवा मे सलग्न रत्ना को देख कर दरवाजे की नर्स उससे कहती है कि—'यू केन वी ए वेरी गुड नर्स।'[२८] इसी प्रकार घीरूवाला की ईमानदारी पर सन्देह होने पर रत्ना उससे गुस्से मे कहती है कि- 'आई डाउट योर सिंसियरिटी।"[२९] क्रोध के आवेश मे व्यक्ति सहज भाषा का प्रयोग करता है, किन्तु इसके विपरीत यहाँ रत्ना ने अग्रेजी का प्रयोग किया है रत्ना के लिए अग्रजी भावावेश की भाषा नही हो सकती। विवेचन के निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि उपन्यास मे अहिन्दी शब्दो के प्रयोग मे विवेक और सयम से काम नही लिया है।

उपन्यास म लेखक ने वर्णन विवरण मे समर्थ भाषा का प्रयोग किया है। उपन्यास के प्रारम्भिक तूफान का वर्णन सशक्त शब्दों म हुआ है। इस तूफान के समय चारा ओर 'इस्पात की तरह ठोस अधेरा" छाया हुआ था। 'निगाहो की सुई' के लिए वह अभेद्य था। इस स्थिति के कारण "हृदय का प्रकाश बुझ रहा था।" "अधेरे ने वस्तु की इकाई को पी लिया था। केवल कुछ दूर पर बिजली की बत्तियाँ अस्तित्व के लिए लड रही थी।" इस तूफान से अनजान घर मे सोती हुई स्त्रियो की "अगिया म छिपे भूधरा पर काम नाग" डोल रहा था। इसी प्रकार दुर्गा के शरीर का वर्णन करते हुए लेखक ने उसे 'गदराये कटहल की तरह सु दर' कहा है। उपन्यास में कोकण की निसर्गसमृद्धि की उपेक्षा हुई है। कोकण मे कटहल का विशेष रूप से प्राधान्य हाता है। प्रस्तुत रूप मे कटहल का कही भी वर्णन नही है, किन्तु अप्रस्तुत मे ही उसे देखकर अल्प सा सन्तोष अवश्य होता है। उपन्यास के अन्त म लेखक ने रत्ना को पाडुरग के वालो से बुने जाते हुए स्वप्नो म उलझाकर उसे यथार्थ आचलिक जीवन से भले ही दूर कर दिया हो, परन्तु पाठको को रत्ना के भावजगत् के निकट तक पहुँचा दिया है।

प्रस्तुत उपन्यास की भाषाशैली पर कोली जाति के जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। उदाहरणार्थ रत्ना के वियोग मे वशी मछली की तरह तडपती है तो यशवन्त के लिये रत्ना ह्वेल है, जिसे जाल मे फँसाना आसान नही है। यशवन्त

के प्राण का उदाहरण दिया गया है । रत्ना के मन में मत्स्यगधा बनने की कामना है । अन्त में समुद्र से लड़ने वाली कोली जाति की स्त्री निराश होकर अपनी नाव को स्वछन्द बहने देना चाहती है और बहते हुए जीवन के उतार चढ़ाव देखना चाहती है । वह यह देखना चाहती है कि आखिर अन्त में उसकी नाव किस किनारे जा लगेगी । इस प्रकार उपन्यास की अलकार योजना पर कोली जीवन का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ता है, जिसके कारण उपन्यास की अलकार-योजना अधिक औचित्यपूर्ण बन गई है ।

उपन्यास की भाषा में मुहावरे और कहावतों का भी यथायोग्य रूप में प्रयोग हुआ है । अनेक सुन्दर सूक्तियाँ भी उपन्यास में प्रयुक्त हुई हैं, जैसे–'जीवन का दूसरा नाम है सृष्टि,'' 'ज्ञान और अज्ञान दोनों की कड़ियों में सदेह झूलने लगता है,'' "जो पाप स्वीकार कर लेता है वह पापी नहीं होता" इत्यादि ।

उपर्युक्त विवेचन में उल्लिखित गुणदोषों के अतिरिक्त कुछ गौण बातों की ओर भी ध्यान चला जाता है । तूफान में बहकर आने वाला माणिक बेहोशी के समाप्त होते ही पहला वाक्य यह कहता है कि—"मेरा नाम माणिक है ।" बेहोशी से होश में आते ही अपना परिचय देने की बात अटपटी सी लगती है । इसी प्रकार यशवन ने मछलीमार समिति के मत्री से पढ़ना-लिखना सीखा, किन्तु इस उल्लेख के बीस-बाईस पृष्ठों के बाद मछलीमार सहकार समिति की स्थापना का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार की तान्त्रिक भूलों से बचना आवश्यक है ।

अन्त में निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि इस उपन्यास में कोलियों के सर्वांगस्पर्शी जीवन के चित्रण में लेखक को सीमित रूप में ही सफलता मिली है । डॉ० प्रेमशकर ने इस दृष्टि से ठीक ही लिखा है कि—"सास्कृतिक प्रमाणीकरण की दृष्टि से उपन्यास उतना समृद्ध नहीं हो पाया ।"[३] इन्हीं कारणों से श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, श्री शिवदानसिंह चौहान आदि ने इस उपन्यास को सीमित अर्थों में आचलिक उपन्यास माना है । डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० सुषमा धवन आदि ने इस उपन्यास की जीवनदृष्टि के समष्टिमूलक न होने के कारण इसे आचलिक उपन्यास मानने से इनकार किया है । वस्तुत सत्य स्थिति यह है कि लेखक ने आचलिक उपन्यास के रूप में इसे लिखने का प्रयत्न किया है, किन्तु कोली पनवासि के साथ गहरे लगाव के अभाव के कारण वह असफल रहा है ।

## टिप्पणियाँ

१ उप (निकट) + न्यास (रखना) = उपन्यास अर्थात् पाठक को जीवन के निकट पहुँचने का साधन ।

२ 'सागर, लहरें और मनुष्य' (तृ० सस्करण), पृ० २३५

३ 'सागर, लहरें और मनुष्य'—पृ० २३९
४ वही, पृ० ६
५ वही, पृ० २०९
६ वही, पृ० ३
७ वही, पृ० १०
८ वही, पृ० १०
९ वही, पृ० १२३
१० वही, पृ० २०३
११ वही, पृ० ३०९
१२ विवेचनासकलन (भाग ३)—पृ० २५
१३ सागर, लहरें और मनुष्य—पृ० २८५
१४ वही, पृ० २२४
१५ वही, पृ० ११२
१६ हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन (प्र० सस्करण), पृ० २२१
१७ सागर, लहरें और मनुष्य, पृ० ७६
१८ वही, पृ० १९७
१९ वही पृ० १९३
२० वही, पृ० ३७
२१ वही, पृ० ८०
२२ विवेचनासक्लन (भाग ३), पृ० ३३
२३ आज का उपन्यास (प्र० सस्करण), पृ० ७१
२४ हिन्दी उपन्यास (प्र० सस्करण), पृ० १४९
२५ सागर, लहरें और मनुष्य, पृ० २६४
२६ वही, पृ० २५६
२७ वही, पृ० १९५
२८. वही, पृ० ५५
२९ वही, पृ० २८१
३० वही, पृ० १८०
३१ विवेचनासकलन (भाग ३), पृ० ३०

# सूरज का सातवाँ घोड़ा : मध्यवर्गीय जीवन के सात रंग

**ओम्प्रकाश होलीकर**

---

जब पूरी व्यवस्था मे बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी मे है कि यह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृति को अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओ को भी, क्योकि दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह कर नही पाते। अत नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति से समझौता करते जाते हैं।

—धर्मवीर भारती

इन सवा सौ पृष्ठो मे भारती ने सवा हजार पन्नो की बात कही है—यह उसकी कला का सबसे बडा कमाल है। इतनी छोटी भूमि पर इतना बड़ा चित्र दे सकने का एकमात्र रहस्य है—उसकी यथार्थ की पकड, जिस सामाजिक जीवन को उसने लिया है उससे उसका निकटतम सम्बन्ध, परिचय और पैठ, यही कारण है कि वे चित्र इतने स्वाभाविक हैं, इतने सच्चे हैं कि मुहल्ले, गली, पडोस सभी जगह मिल जायेंगे—अत इसी अनुपात मे प्रभावशाली भी है।

—राजेन्द्र यादव

७

# सूरज का सातवाँ घोड़ा

कृति की सख्या की अल्पता के बावजूद साहित्य मे विशिष्ट स्थान बनाये रखने वालो मे धर्मवीर भारती अपना एक पृथक् व्यक्तित्व रखते है। कविता, उपन्यास, कहानी निबन्ध पत्रकारिता, रिपोर्ताज इत्यादि सभी विधाओ का स्पर्श कर उनके स्वरूप को निखारना भारती की अपनी विशेषता है। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र मे 'सूरज का सातवाँ घोडा' ऐसे विन्दु पर स्थित है, जिसे किसी भी कोण से देखने पर वह अपने स्वरूप को विशिष्ट बनाये हुए है। विषय तथा शिल्प की सामयिकता और नवीनता ने उसका स्वरूप रोचक तथा मोहक बनाया है। इसका रचनाकाल सन् १९५२ ई० है। यह उपन्यास अपने पूर्ववर्ती उपन्यास 'गुनाहो का देवता' से दोनो दृष्टियो से—विषय और शिल्प—भिन्न है अत आलोचको ने इसे शिल्पप्रधान उपन्यासो की कोटि मे समाकलित किया है।

यह उपन्यास कथात्मक उपन्यास है—अनेक कहानियो मे एक कहानी के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। कहानियो की सख्या छह है। सभी कहानियाँ प्रेमकथा-सी लगती हैं। किन्तु यह कथा माला प्रेम की अलग अलग मणि न होकर सामाजिक वर्ग-वैषम्यरूपी विषय-ऐक्य के सूत्र से गूँथी गई है। निम्न मध्य-वर्ग की सामाजिक, नैतिक, वैचारिक विषमता का चित्रण उपन्यास का कथ्य है। इस विषमता के चित्रण के लिए ही भारती ने छह कहानियो के माध्यम से मध्यवर्गीय पात्रो के विभिन्न दृष्टिकोणो, परिस्थितियो और पहलुओ को सामने रखा है।

उपन्यास के 'पहली दोपहर' शीर्षक मे वर्णित कहानी तन्ना और जमुना की प्रेम कहानी है। दोनो ही मध्यवर्गीय पात्र हैं। कहानी विकसित होती रहती है और पात्रो के जीवन की इति होती रहती है, यही इन कहानियो के पात्रो की विडम्बना है—जिसे उजागर करना भारती का मुख्य उद्देश्य रहा है। दहेज न दे पाने के कारण तथा जाति उपजाति के विष से सींची हुई सामाजिक परम्परा के कारण जमुना का विवाह उसके प्रेमी तन्ना से न होकर वृद्ध जमीदार के साथ—वह भी तिहाजू—होता है। निम्न मध्य-वर्ग म स्त्री की सामाजिक स्थिति और थोथी मर्यादा एव रूढियो से

ग्रस्त शिकार जमुना विवशत तथा विवश होकर ही समाज के लिए भीषण समस्या बन जाती है। इस प्रकार इस कहानी मे निम्न-मध्य-वर्ग की थोथी रूढ़िप्रियता का मोह दर्शाया है, जिसके शिकार होकर पात्र विवश हो जाते है। यह विवशता ही उनमे विसगति को उत्पन्न करती है और यह विसगति निम्न-मध्यवर्ग के जीवन को विडम्बनापूर्ण बना रही है।

दूसरी कहानी पहली कहानी को आगे बढ़ाती है। यह भी जमुना के वैवाहिक जीवन से सम्बद्ध है। पहली कहानी जमुना की जीवन-यात्रा का पूर्वार्द्ध है तो दूसरी उसका उत्तरार्द्ध। उसके पूर्वार्द्ध मे आर्थिक विषमता दिखाई है तो उत्तरार्द्ध मे काम-भावना की अपूर्ति से उत्पन्न समस्या दिखाई है। धनी और सम्पन्न पति के मिलने पर भी उसकी कामभावना अतृप्त रह जाती है और यह अतृप्ति ही उसके नैतिक पतन का कारण बनती है। इस कहानी मे जमुना के चारित्रिक पतन का कारण बताया है। आज के निम्न-मध्यवर्ग के युवा-जगत् की अर्थ और काम-भावना की अतृप्ति की समस्या अत्यधिक भीषण है। उसके जीवन मे अर्थ और काम दोनो का अभाव है और वस्तुत ये दोनो एक-दूसरे के पूरक हैं। अत मध्यम-वर्गी को इन्हे प्राप्त करने के लिए किस प्रकार पतित होना पड़ता है, इसका ज्वलत उदाहरण जमुना की चारित्रिक अवनति है।

तीसरी कहानी तन्ना और जमुना के सम्बन्धो से उत्पन्न मानसिक स्थिति से सम्बद्ध है। दोनो ही पात्र परम्पराओ, रूढ़ियो और विचारधाराओ से इस प्रकार ग्रस्त हैं कि इनसे विरुद्ध लड़ना चाहकर भी वे विद्रोह नही कर पाते। समस्या की गम्भीरता, भीषणता उन्हे बार-बार विद्रोह करने के लिए उकसाती है, पर वे झूठी मर्यादाओ के विरुद्ध साकार रूप से विद्रोह नही कर पाते। तन्ना ईमानदार व सच्च-रित्र पात्र है। इसलिये वह असत्य के साथ समझौता नही कर पाता। जमुना भी इसी प्रकार नैतिक विकृति और झूठी सामाजिक मर्यादा का शिकार है। वह न तो ईमानदार ही रह सकती है और न ही रूढ़ियो के खिलाफ विद्रोह कर सकती है। इसलिए माणिक मुल्ला कहता है—"जब पूरी व्यवस्था मे बेईमानी है तो एक व्यक्ति की ईमानदारी इसी मे है कि वह एक व्यवस्था द्वारा लादी गई सारी नैतिक विकृति को अस्वीकार करे और उसके द्वारा आरोपित सारी झूठी मर्यादाओ को भी; क्योंकि *दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू होते हैं। लेकिन हम यह विद्रोह नहीं कर पाते।* अत नतीजा यह होता है कि जमुना की तरह हर परिस्थिति से समझौता करते जाते हैं।"[१] इसके साथ ही वे तन्ना को इस प्रकार धिक्कारते हैं—"लेकिन जो इस नैतिक विकृति से अपने को अलग रखकर भी इस तमाम व्यवस्था के विरुद्ध नहीं लड़ते, उनकी मर्यादाशीलता सिर्फ परिष्कृत कायरता होती है। संस्कारो का अन्धानुसरण।"[२] इस प्रकार इस कहानी मे कोल्हू के बैल के समान ही आँख मूँदकर चक्कर काटने

वाले की तरह नरक की जिन्दगी को  बिताते हुए उससे उबरने की कोशिश न करने पात्रो की समस्या का विश्लेषण किया है ।

चौथी कहानी रोमाटिक है । यह माणिक मुल्ला और उनकी पूर्वप्रेयसी तथा तन्ना की पत्नी लिली की प्रेम-कहानी है । कहानी मे दोनो के प्रेम का रूमानी वर्णन है । लिली भावुक पात्र है—वह पढी लिखी है ।  अत थोथी रूढियो और झूठी मर्यादाओ के विरुद्ध वह विद्रोह के लिए तैयार भी होती है । किन्तु माणिक की भीरुता और कायरता तथा झूठी मान मर्यादा के भय ने उसकी विद्रोही वृत्ति को दबा दिया । इस प्रकार लेखक इसमे युवा जगत् मे पनपने वाली प्रेम की स्थिति का चित्रण करता है  किन्तु नैतिक साहस से अभाव के कारण वे उसे यथार्थ जीवन मे उतार नहीं पाते  और  वह प्रेम इन मध्यवर्ग के युवक युवतियो के लिए केवल कल्पना की वस्तु बनकर रह जाती है ।

पाँचवी कहानी भी प्रेम कहानी है ।  किन्तु यह प्रेम एक समस्या का माध्यम बनकर ही यहाँ चित्रित हुआ है ।  इसका नायक माणिक मुल्ला ही है  और नायिका है अशिक्षित किन्तु सुन्दर—सत्ती ।  दोनो भी युवा हैं । कुछ ही दिनो के  सम्पर्क मे दोनो के हृदय मे प्रेम की भावना जागृत होती है । बुजुर्गों को यह प्रेम बिल्कुल पसन्द नही और चमन ठाकुर  तथा महेसर दलाल इस वग के प्रतिनिधि  बनकर खलनायक का रूप धारण करते हैं । सत्ती, लिली और जमुना दोनो से सर्वथा भिन्न है ।  जमुना के समान वह अशिक्षित  है  किन्तु अनैतिक नही ।  लिली के समान सुन्दर है  किन्तु कोरी भावुक नही ।  उसका स्वभाव दोनो नायिकाओ से भिन्न है । उसम विद्रोह की भावना के उग्र लक्षण दीखते हैं । माणिक को वह अपना जीवन साथी बनाने के लिए, प्रत्येक के साथ विद्रोह के लिए तैयार है किन्तु माणिक भीरु और कायर मध्यवर्ग का प्रतीक है,  जो झूठी मर्यादाओ और  कुलीनता के केंचुल को  हानिप्रद समझकर भी उतार नही पाता  और  उसकी भीरुता का शिकार  बनती  है—सत्ती ।  उसे विवश होकर महेसर दलाल  के साथ शेष जीवन  व्यतीत  करना पडता है ।  जिसका अन्त दारुण ( जो कि सत्य नही है ) दिखाकर समस्या को भयावह रूप प्रदान करता है । मध्यवर्गीय युवक की भीरुता, कायरता,  झूठी मर्यादाओ और रूढियो से चिपके रहने की प्रवृत्ति  और  इस सब के  फलस्वरूप अपनी प्रेमिका  की दुर्दशा का उसे कारण बताकर  उनकी विसगति,  विषमता और विडम्बना का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है ।

'क्रमागत' शीर्षक के द्वारा यह स्पष्ट  है  कि पाँचवी कहानी का उत्तरार्द्ध या विकास ही छठी कहानी म विवेचित है । यह कहानी मध्यवर्ग के पात्रो की चारित्रिक या  मानसिक स्थिति का  उद्घाटन करती है ।  प्रेम की विफलता या  असफलता के कारण जहाँ नारी-वर्ग की शोचनीय तथा दयनीय  स्थिति बनती है, वही य युवक भी

स्वयं व्यक्तिवादी, असामाजिक और आत्मघाती बनते हैं। माणिक इसी प्रवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले युवक पात्र का प्रतीक है। इस प्रकार इस कहानी में उसकी बाह्य स्थिति की अपेक्षा आन्तरिक स्थिति का चित्रण किया है, जिसमें समाज-भीरु और झूठी मर्यादाओं से चिपके रहने वाला पात्र स्वयं को प्रताड़ित करता है और इस प्रकार वह सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्वों से अपने को बचाता फिरता है। किन्तु भारती का मत है कि ऐसे पात्रों की "न कोई दिशा है, न पथ, न लक्ष्य, न प्रयास और न प्रगति क्योंकि पतन को, नीचे गिरने को प्रगति तो नहीं कह सकते।"[1]

सातवीं दोपहर में कोई कहानी नहीं, सभी कथाओं का केन्द्रीकरण तथा भविष्य के प्रति आस्थामय स्वर मुखरित हुए हैं। बाकी छः घोड़े यदि दुर्बल, रक्तहीन और विकलांग हो भी गये हैं तो भी हमें निराश नहीं होना चाहिए, क्योंकि अभी "*सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान् है और हमें अपना ध्यान और अपनी आस्था* उस पर रखनी चाहिए।"[2] क्योंकि यही सातवाँ घोड़ा "हमारी पलकों में भविष्य के सपने और वर्तमान के नवीन आकलन भेजता है।"[3]

कथानक का आकार उपर्युक्त छः प्रेम-कथाओं से मिलकर बना है। ये सभी प्रेम-कथाएँ प्रासंगिक अध्ययन की सुविधा के लिए कही जा सकती हैं और सब परस्पर मिलकर एक नवीन समग्र कथा का निर्माण करती हैं, जिसे आधिकारिक कथा की संज्ञा दी जा सकती है। किन्तु विशेष ध्यातव्य यह है कि इन दोनों कथाओं का विषय एक होते हुए और पात्र भी एक ही होते हुए वे आधिकारिक कथा की गति में बाधा उपस्थित नहीं करते, क्योंकि ये छः प्रेम कहानियाँ मुख्य कथा में न आये हुए सूक्ष्म प्रसंगों का उद्घाटन करती हैं। इन प्रासंगिक कथाओं में प्रेम की विभिन्न स्थितियाँ और पात्रों के विभिन्न स्तरों को चित्रित किया गया है।

रमाने मे ओर उसमे कौतूहल बनाये रखने मे सफल रही है। आधुनिक जीवन की समस्या को प्राचीन कथा-शैली मे समन्वित न कर लेखक ने उसे अत्यधिक मोहक रूप दिया है और साथ ही रोचकता को गम्भीरता से समन्वित किया है। प्रभावोत्पादकता तथा कौतूहल के लिए घटना मे चमत्कार-सृष्टि भी की है, जिसे तीसरी और पाँचवी कहानी मे देखा जा सकता है। इसी प्रकार औपन्यासिक एकसूत्रता के लिए अप्रत्याशित चमत्कार के दर्शन चौथी कहानी मे होते है। ये सब चमत्कार ही कथानक मे रोचकता और कौतूहल का निर्माण करते हैं।

कथानक का विशिष्ट गुण है—हास्य और रुदन का मिश्रण। ऊपर से भारती का हास्य पाठको को हँसाता है किन्तु उसका निष्कर्ष उन्हे रुलाता है। प्रथम दो कहानियाँ हास्य और रुदन के सयोग से यथार्थ जीवन की कटुता को 'मधुवेष्टित कटु औषध' के समान रखते हैं जो पाठको के मन पर एक विशिष्ट प्रभाव छोडती हैं। वह प्रभाव अत्यन्त तीक्ष्ण, मर्माहत तथा मन को कचोटने वाला है। शायद भारती को हास्य के माध्यम से समाज की वक्रता, विद्रूपता या विडम्बनात्मक स्थिति का पर्दाफाश करना ही उद्देश्य रहा हो। यथार्थपरकता और प्रभविष्णुता इसके कथानक की अपनी ही विशेषताएँ हैं। इसके लिए उन्होने विषयानुरूप वातावरण का विधान किया है। मध्यवर्गीय जीवन की उमस के चित्रण के लिए उसी प्रकार के शब्दो का अवलम्ब ग्रहण किया है — जो उसे यथार्थ, कटु तथा प्रभावोत्पादक रूप मे प्रस्तुत करते हैं।

एक सौ छ पन्नो के इस छोटे से उपन्यास म मध्यवर्गीय समाज के विविध पक्षो को भारती ने बखूबी उतारा है। "इन सवा सौ पृष्ठो मे भारती ने सवा हजार पन्नो की बात कही है—यह उसकी कला का सबसे बडा कमाल है। इतनी छोटी भूमि पर इतना बडा चित्र दे सकने का एक मात्र रहस्य है—उसकी यथार्थ की पकड, जिस सामाजिक जीवन को उसने लिया है उससे उसका निकटतम सम्बन्ध, परिचय और पैठ, यही कारण है कि वे चित्र इतने स्वाभाविक हैं, इतने सच्चे हैं कि मुहल्ले, गली, पडोस सभी जगह मिल जायेंगे — अत इसी अनुपात मे प्रभावशाली भी हैं।"*

पात्र इस उपन्यास मे कुल मिलाकर १२ पात्रो की योजना की गई है। *९ पुरुष पात्र और ३ स्त्री पात्र हैं। पुरुष पात्रो मे भी माणिक, महसर और तन्ना* ही प्रमुख हैं। वस्तुत उपन्यास के पात्र उद्देश्य के साधन रूप म प्रयुक्त हुए हैं। सभी पात्र निम्न मध्य वर्ग के और विविध प्रकार के है, जो प्रातिनिधिक रूप म चित्रित किए गय हैं।

**माणिक** . माणिक कश्मीरी हैं, मुल्ला उनकी जाति, उपनाम नही। लेखक ने उन्हे यहाँ कथाकार के रूप म प्रस्तुत किया है। उनके जीवन के अनुभवो का

लेखक ने विषयानुरूप शैली में ढाला है। कहानी पर उनका पूर्ण अधिकार है। इसके साथ ही राजनीति और प्रेम उसके जीवन के अभिन्न अंग हैं। मित्र-मण्डली में इन दो विषयों पर पटों बहस या चर्चा का होना उनकी इन क्षेत्रों की अन्तर्पैठ का संकेत कराती है। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है। उपन्यास के आदि से अन्त तक सभी कहानियों में वे मौजूद रहते हैं—कभी नायक के रूप में, कभी कथाकार के रूप में और कभी सूत्रधार के रूप में। इसी आधार पर उन्हें उपन्यास का नायक भी कहा जा सकता है। सभी कहानियाँ और पात्र माणिक द्वारा सञ्चालित हैं। उसका चरित्र विकासशील और गत्यात्मक है। माणिक परिस्थितियों के अनुसार कभी अपने को ढालते हैं तो कभी उससे स्वयं को अछूता भी रखते हैं।

माणिक मध्यमवर्गीय व्यक्ति हैं और वे निरा वैयक्तिक न होकर सामाजिक तथा वर्गगत प्रातिनिधिक पात्र हैं। अतः उनके जीवन में उठी हुई समस्याएँ उनकी वैयक्तिक ही न होकर सामाजिक भी हैं। उनके जीवन का केन्द्र-बिन्दु है—प्रेम। क्योंकि प्रेम ही मानव-जीवन की सचालिका वृत्ति है। माणिक के जीवन में तीन नारियाँ आती हैं किन्तु वह तीनों से असपृक्त बन जाते हैं। जमुना से प्रेम कर उसे अन्त तक नहीं निभा पाते, लिली से उनका प्रेम रूमानी है और सत्ती से लोकलाज के कारण अपनी आतरिक प्रेम-भावना का प्रदर्शन नहीं कर पाते हैं।

उनका यह रूप आज के युवकों का है जो समाज-भीरु, डरपोक, कायर, नैतिक साहस से रहित और अपरिपक्व आदि विशेषताओं से ग्रस्त हैं जो अपने प्रेम की विफलता के कारण आत्मघाती, असामाजिक और उच्छृंखल हो जाते हैं—जो स्वयं को तो नष्ट करते ही हैं, साथ में अपनी प्रेमिकाओं की दुर्दशा का भी कारण बनते हैं।

माणिक जीवन तथा समाज के प्रति आस्थावान् भी हैं। उन्होंने जीवन को बहुत ही समीपता के साथ भोगा है और समाज को भी बहुत ही नजदीकी से देखा है। अपने अनुभवों के आधार पर ही वे किसी निष्कर्ष को रखते हैं। उन्हें पुरानी परम्पराओं, रूढ़ियों तथा वश मर्यादा के प्रति घृणा है और इसका मूल कारण वे आर्थिक विषमता को मानते हैं। अब उनमें मार्क्स के प्रति आस्था दिखाई देती है जो कि वस्तुतः भारती की आस्था है। उसे आने वाली पीढ़ी—जो लिली, जमुना और सत्ती के बच्चों की होगी—के प्रति दृढ़ विश्वास है। उसे मानव-जीवन व समाज के प्रति दृढ़ आस्था है। इसलिए जिन्दगी में दुःखों की अधिकता के बावजूद भी वह उन्हें हँसते हुए झेलता है, क्योंकि उसका मत है "जो लोग भावुक होते हैं और सिर्फ रोते हैं वे रो-धोकर रह जाते हैं। और जो हँसना सीख लेते हैं, कभी-कभी वे अपनी जिन्दगी को बदल डालते हैं।"

इस प्रकार माणिक मुल्ला मध्यमवर्ग का प्रतिनिधि पात्र है जो समाज की झूठी मर्यादा, रीति-रिवाज, जातिप्रथा तथा आर्थिक विषमता के प्रति क्रुद्ध है और

साथ ही भावी सुखी जीवन के प्रति आशान्वित है। इसके साथ ही वह समाज-भीरु, नैतिक साहसहीन प्रेमी, कथाकार, सूक्ष्म दृष्टा प्रतिभावान् तथा विश्लेषण की क्षमता आदि गुणो से समन्वित है।

तन्ना उपन्यास का दूसरा प्रमुख पात्र है—तन्ना। तन्ना भी मध्यम-वर्गीय जीवन की कटुता का शिकार है। यद्यपि वह उपन्यास मे केवल दो कहानियो मे ही स्पष्ट रूप से चित्रित है फिर भी उसका व्यक्तित्व निश्चित रूप से नायक की अपेक्षा सशक्त दीख पडता है। आलोचको ने उसे सहनायक या प्रकरी नायक के रूप मे स्वीकारा है। वह कल्पना की अपेक्षा यथार्थ के धरातल पर जीता है। यह पात्र भी वर्ग-प्रतिनिधि के रूप मे चित्रित किया गया है।

तन्ना सामान्य परिवार का युवक है। जहाँ परिवार मे अर्थ का अभाव है, दुख है, समस्याएँ हैं, रुदन है। किन्तु उसके व्यक्तित्व मे ईमानदारी है, सच्चरित्रता है, कर्त्तव्य-दक्षता है और नैतिकता है। जिसके कारण वह अपने सिद्धान्तो या आदर्शो पर स्थिर रहता है। सिद्धान्तो या आदर्शो की यह दृढता और अडिगता ही उसके वाह्य व्यक्तित्व को तोडती है। तन्ना को टूटना स्वीकार है झुकना नही। तन्ना सीधा-सादा विनम्र और सच्चरित्र है। अपने परिवार का वह स्वय पोषण करता है। घर के सभी व्यक्तियो का उत्तरदायित्व उसके नाजुक कधो पर पडा हुआ है, फिर भी सिद्धान्तो और आदर्शों की प्रतिकूलता उसे असह्य है फिर वह चाहे अपने पिता की ही क्यो न हो। अपने पिता का रखैल रखना, सत्ती के प्रति आकर्षित होना इत्यादि घटनाएँ उसे उचित नही लगती। किन्तु साहस के अभाव मे वह इन कुरीतियो का विरोध नही करता, जिसकी परिणति 'कोल्हू के बैल के समान' हो जाती है।

तन्ना सच्चरित्र पात्र है। उसकी यह सच्चरित्रता प्रेम, राजनीति, जीवन, जीवनमूल्य आदि सभी क्षेत्रो मे समान रूप से परिलक्षित होती है। लिली से विवाह-बद्ध होने पर जमुना द्वारा शारीरिक सम्बन्ध की प्रार्थना करने पर उसकी प्रार्थना को ठुकराना तन्ना की सच्चरित्रता का ही सूचक है। इसी प्रकार वह अपने जीवन मे आदर्शो के प्रति भी दृढ है। तात्कालिक तथा भौतिक सुखो के लिए वह अपने को उन सुखो के अनुकूल नही ढालता है। इसके साथ ही उसके चरित्र मे पिता के प्रति मर्यादाशीलता, दूसरी स्त्री के साथ शारीरिक सम्बन्ध प्रस्थापित न करने मे नैतिक शुचिता, यूनियन से पृथक् रहने मे प्रामाणिकता और पुत्र, भाई, गृहस्थ तथा नौकर के रूप मे कर्तव्यपरायणता के विशिष्ट मानवोचित गुण दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु सामाजिक विकृतियो, कुरीतियो, झूठे विश्वासो के प्रति साहस के अभाव के कारण विद्रोह न करने से उसके जीवन की शोकान्तिका होती है। वस्तुत उसके जीवन की शोकान्तिका का प्रमुख कारण है—उसका देवत्व। उसके चरित्र पर प्रेमचन्द की ये पक्तियाँ खरी उतरती हैं—"इनका देवत्व ही इनकी दुर्दशा का कारण है। काश!

ये आदमी ज्यादा और देवता कम होते।"

**महेसर दलाल** महेसर दलाल जैसा कि नाम से ही ध्वनित होता है दलाल है—सोने चाँदी का। तन्ना का वह पिता है। यह भी निम्न-मध्य-वर्ग से ही गृहीत है। इसकी सरचना खलनायक के रूप मे कही जा सकती है।

महेसर दलाल कर्त्तव्यशून्य और उत्तरदायित्वशून्य व्यक्ति है। वह गृहस्थ है किन्तु घर गृहस्थी की उसे तनिक भी चिन्ता नही। अपने सम्पूर्ण घर का बोझ अपने आज्ञाकारी पुत्र पर छोडकर निश्चिन्त होता है। वह एक क्रूर, कठोर, निर्दयी तथा निष्करुण पिता के रूप मे चित्रित है। वह पुरानी पीढी का भी प्रतीक है जिसे पुरानी परम्पराओ, झूठी मर्यादाओ तथा जाति प्रथा पर विश्वास है। जमुना को वह अपने से नीचे गोत्र का समझता है, इसलिए तन्ना की शादी उससे नही हो पाती। उसके चरित्र का सब से बडा दुर्गुण या कमजोरी उसकी कामातुरता है। शरीर के जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर भी उसकी काम पिपासा अभी तक शमित नही हुई। पुत्रो के पालन-पोषण के लिए युवा स्त्री को रखना उसकी कामातुरता का ज्वलत उदाहरण है। उससे कामपूर्ति के बाद सत्ती के प्रति आकर्षित होना उसकी धूर्तता तथा स्वैरता को इगित करते हैं। तन्ना की शादी मे झूठ-मूठ ही एफ० ए० पास कहकर धनी विधवा की लडकी से शादी करने के पीछे उसकी जायदाद हडपने की उसकी धूर्त भावना छिपी हुई है। इस प्रकार महेसर दलाल झगडालू, कर्त्तव्यविमुख, कामातुर, धूर्त, निर्दयी, कठोर, छली आदि कमजोरियो से युक्त पात्रो का प्रतिनिधित्व करता है।

इनके अतिरिक्त अन्य पुरुष-पात्र कथा को गति देने के लिए तथा उद्देश्य के साधन-रूप मे निर्मित तथा चित्रित हैं।

प्रस्तुत उपन्यास मे तीन नारियो को स्थान मिला है। वे तीनो ही निम्न-मध्य-वर्ग की हैं। किन्तु तीनो ही विभिन्न पहलुओ, स्तरो तथा पक्षों के आधार पर प्रस्तुत की गयी हैं। जमुना, लिली और सत्ती ये तीन नारी-पात्र कथा-माला मे गूथे गए हैं। ये तीनो नारियाँ यद्यपि समाज के विविध पक्षो का उद्घाटन करती हैं तथापि जमुना उनमे प्रमुख है, क्योंकि "आज नब्बे प्रतिशत लडकियाँ जमुना की परिस्थिति मे हैं।"[१]

**जमुना** जमुना मध्यमवर्गीया युवती है। पिता बैंक मे साधारण क्लर्क हैं। घर की आर्थिक परिस्थिति सुदृढ नही है। वह अभावो का घर है। इसीलिए जमुना की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध भी उचित रूप मे न हो सका। शिक्षा और मन-बहलाव के नाम पर उसे मिली 'मीठी कहानियाँ', 'सच्ची कहानियाँ', 'रसभरी कहानियाँ' तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी।[२] इसलिए अपने पडोसी युवक तन्ना से अनजाने प्रेम कर बैठी तो इसमे उस बेचारी का क्या दोष ? किन्तु दहेज के अभाव

के कारण वह तन्ना के साथ विवाहबद्ध न हो सकी । कुछ दिनो बाद धनिक किन्तु वृद्ध पुरुष के साथ उसका विवाह होता है, लेकिन वह वहाँ भी सतुष्ट न रह पायी। अधनृप्ति होने पर भी काम-तृप्ति न होने से अनैतिकता की ओर बढी। उसकी चारित्रिक विशेषता और विकास को जानने के लिए उसके जीवन को तीन भागो मे बाँटा जा सकता है—१ विवाह से पूर्व का जीवन, २ वैवाहिक जीवन, ३ वैधव्य जीवन।

**विवाह से पूर्व का जीवन** विवाह से पूर्व के उसके जीवन चरित्र मे प्रेम की घटना प्रमुख है। प्रेम साहचर्य का परिणाम है। जमुना और तन्ना दोनो पड़ोसी थे। तन्ना घर से अत्यत दु खी रहता था। अपनी माँ की मृत्यु के बाद उस स्नेह, दया, सहानुभूति को तन्ना ने जमुना मे देखा। जमुना की यही सहानुभूति और साहचर्य कालान्तर मे अनजाने रूप मे प्रेम मे परिणत हो गया। दोनो युवा हृदयो ने एक दूसरे के आतरिक सगीत को सुना, किन्तु सामाजिक रूढियो और अधविश्वासो के कारण दोनो विवाहबद्ध न हो सके। इस प्रेम की असफलता के कारण निराशा और अनास्था के साथ ही उसके मन मे वासनापूर्ति के अनैतिक साधनो के बीज अकुरित होने लगे। जिसका आगे चलकर क्षणिक माध्यम बना किशोर युवक माणिक। जमुना अपनी वासना की पूर्ति किशोर युवक माणिक से करना चाहती थी, जिसमे उसे सफलता न मिली। माणिक उसकी प्रेम पिपासा को तो शान्त कर सका किन्तु काम पिपासा को नही। इस प्रकार उसके विवाहपूर्व जीवन मे प्रेम की असफलता तथा वासना-प्रस्फुटन दिखाया है, जो आगे चलकर उसकी अनैतिकता का सकेत करता है। तन्ना की शादी के बाद जमुना का उससे प्रणय-याचना करना उसके नैतिक पतन का उदाहरण है। उसका यह प्रथम पक्ष समाज के झूठे विश्वासो, रूढियो, परम्पराओ तथा आर्थिक विषमता से उत्पन्न मध्यमवर्गीय मानव जीवन की विडम्बना को दर्शाता है। अर्थ मानव जीवन की वह धुरी है जिस पर समाज का रथ अग्रसर होता है; उसके अभाव मे सभी पहिए निरर्थक व बेकार बन जाते हैं।

**वैवाहिक जीवन** . उसके जीवन का दूसरा पक्ष है, गृहस्थी का। तन्ना से शादी न होने पर उसका विवाह अत्यन्त वृद्ध तथा धनी जमीदार के साथ होता है। जिसकी यह तीसरी शादी है। प्रारम्भिक जीवन के धनाभाव से उत्पन्न जमुना की निराशा यहाँ समाप्त होती सी दीखती है, किन्तु कुछ ही दिनो बाद काम-तृप्ति की निराशा उसके मन म घर करती है। उसका पति सतानोत्पत्ति मे असमर्थ है। जमुना मे मातृत्व की भावना जागृत होती है। मातृत्व ही नारी की पूर्णता है। जिसकी उपलब्धि अपने पति से न होने पर वह राम धन नौकर से करना चाहती है। यही से वह अनैतिकता की ओर बढती है। इस काम पिपासा की पूर्ति के लिए वह धर्म का सहारा लेती है। धर्म के नाम पर वह अपनी काम पिपासा को अपने नौकर से

उन्मुक्त भाव से शमन करवाती है। इस प्रकार यह घटना भी एक सामाजिक समस्या को स्थापित करती है कि अनमेल विवाह जैसी घटनाओं के शिकार होकर जमुना जैसी मध्यमवर्गीय नारियाँ चारित्रिक हीनता की ओर अग्रसर होती हैं।

इस काल के जीवन मे इसकेअतिरिक्त धन का लोभ, प्रदर्शन-वृत्ति, कजूसी, स्वार्थता, गर्व, धर्मान्धता आदि दोष दिखाई देते हैं जो कि अत्यन्त स्वाभाविक है। धनहीना नारी को सहसा धनोपलब्धि इन्ही सोपानो की निर्मात्री है। जिसके फलस्वरूप पाठक मे उसके विकृत, गन्दे और घिनौने जीवन के प्रति अरुचि, विरक्ति तथा रोष जागृत न होकर सहानुभूति का भाव उमडता है।

*वैधव्य जीवन* —*वैधव्य उसके जीवन का अन्तिम पक्ष है। नारी जन्मत* भावनाशील अधिक होती है। धर्म, भावना का ही आलम्बन है और अशिक्षा उस धर्म के प्रति अन्धविश्वास की जड है। जमुना भी यहाँ धर्म-परायणा स्त्री के रूप मे दिखाई देती है। भारतीय नारी-समान उसके मन मे धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा तथा विश्वास है। धर्म की इस भावना से ही उसने पहले अपनी काम-वृत्ति को दबाना चाहा, किन्तु उसमे असफल होकर वही धर्म जो उसके लिए साध्य था, अब साधन बन गया—नैतिक पतन का। कर्मकाण्ड और धर्म मे आस्था रखकर उसने सन्तान की कामना की, किन्तु इनसे अपने मनोरथ को पूरा होते न देख मानसिक संस्कारवश अनैतिकता का सहारा लेने लगी। उसके जीवन का यह पक्ष धर्मान्धता तथा रूढि*प्रियता के कारण नारी की दुर्दशा की ओर सकेत करता है।*

इस काल मे जीवन मे वह पूर्णत *धर्मपरायणा* स्त्री है। भारतीय नारी के समान कर्मकाण्ड, यज्ञयागादि, तीर्थाटन, धार्मिक अनुष्ठान, ज्योतिष आदि पर विश्वास रखने वाली युवती है। किन्तु अपनी काम-पिपासा की अतृप्ति यहाँ आकर उसके स्वैराचार का कारण बनती है। अत यहाँ बाहर से जितनी वह धार्मिक है उतनी ही आन्तरिक दृष्टि से पतित। इस प्रकार उसके जीवन के ये तीन विभाग मध्यम-वर्गीय समाज के नारी की इन तीन अवस्थाओ मे होने वाली दुर्दशा, उसके कारणो तथा परिणामो पर प्रकाश डालते हैं। जमुना का चरित्र यथार्थ और सजीव है। इसलिए उसके चरित्र के विषय मे लेखक का यह कथन पूर्णत सत्य है—"जमुना निम्न-मध्य-वर्ग की एक भयानक समस्या है।"[11]

*लिली —लिली उपन्यास का दूसरा स्त्री-पात्र* है जो प्रकरी-नायक तन्ना की पत्नी है, जिसे सहनायिका कहा जा सकता है। उसके चरित्र का विकास पूर्णत्व को प्राप्त नही कर पाया है। वह जीवन की समस्तता और समग्रता की अपेक्षा उसके एकांगिता का दर्शन कराता है।

लिली जिसका वास्तविक नाम लीला है, धनी और विधवा की इकलौती बेटी है। विवाह से पूर्व वह माणिक से प्रेम करती है। वह चचल, भावुक, चपल,

अल्हड, शिक्षित किशोर युवती है। विवाह से पूर्व का जीवन उसका प्रेमी-जीवन है, जो मध्यमवर्गीय व्यक्तियो के रूमानी प्रेम को सम्मुख रखता है। वह माणिक से प्रेम करती है। *उसमे नैतिक साहस भी है और समाज से विद्रोह की तैयारी भी।* किन्तु लेखक ने उसके पूर्वार्द्ध के जीवन मे किशोर युवक युवतियो के रूमानी प्रेम का चित्रण किया है और जिसकी परिणति शोकांत दिखाई है जो निम्न-मध्यवर्गीय प्रेमी-युगलो की शोकातिका है। उसके जीवन का उत्तरार्द्ध है तन्ना के साथ विवाहित जीवन। दोनो शिक्षित हैं, किन्तु दोनो का मानसिक स्तर भिन्न भिन्न है। यह विभिन्नता दोनो के जीवन के बीच दीवार बनकर खडी होती है। तन्ना की अपेक्षा लिली सुन्दर, धनी, शिक्षित है अत उसमे गर्व का होना अनपेक्षित नही है। *जीवन-मूल्यो या आदर्शों पर स्थिर रहने वाला तन्ना लिली की वृत्ति से मेल नही बिठा पाता।* जिससे उनके जीवन मे एक दरार पड जाती है और यह दरार अन्तत उन्हे पूर्णत विभक्त ही कर डालती है।

इस प्रकार लिली का पूर्वार्द्ध-जीवन रूमानी प्रेम की निरर्थकता का और उत्तरार्द्ध का जीवन पति पत्नी के मानसिक स्तरो की विभिन्नता से उत्पन्न शोकातिका का यथार्थ व प्रभावोत्पादक चित्र प्रस्तुत करते है। लीला समाज की भावना-*प्रधान तथा रोमेण्टिक युवतियो की प्रतिनिधि है, जिसका अन्त जमुना की तरह* शोकात है।

सत्ती —सत्ती जमुना और लिली—दोनो से पूर्णत पृथक् है। जमुना अशिक्षित है, असुन्दर है, अनैतिक है। सत्ती अशिक्षित है किन्तु जमुना के समान असुन्दर तथा अनैतिक नही। लिली शिक्षित है, सुन्दर है, भावुक है, किन्तु सती सुन्दर है पर लिली के समान शिक्षित तथा भावुक नही। इस प्रकार तीनो नारियाँ तीन *विभिन्न परिस्थितियो, पहलुओ तथा प्रवृत्तियो की उपज हैं।*

सत्ती एक *अनाथ, निराश्रित, सुन्दर, अशिक्षित* बलूची लडकी है। परिस्थितियो से मजबूर होकर उसे घृणित जीवन बिताना पडता है, फिर भी वह अपने शील या स्त्रीत्व को किसी भी शर्त पर बेचने के लिए तैयार नही। स्वय परिश्रम कर अपनी जीविका की उपार्जन करती है। मित्रता उसका एक विशिष्ट गुण है। माणिक के साथ यह मित्रता ही आगे चलकर प्रेम मे परिवर्तित होती है। किन्तु समाज भीरु माणिक उसकी प्रेम-याचना को नकारता है। *माणिक की यह अस्वीकृति उसके जीवन की शोकातिका का मूल कारण है। इसके साथ ही उसके व्यक्तित्व मे* प्रतिहिंसा की भावना दिखाई देती है। मानवीय गुणो के साथ पाशविक दुर्बलताओ का समन्वय सत्ती के व्यक्तित्व की निजी विशेषता है। स्नेह, दया, मित्रता, उपकार आदि मानवोचित गुणो के साथ प्रतिहिंसा, क्रूरता प्रतिशोध आदि पाशविक वृत्तियाँ उसके व्यक्तित्व में परिलक्षित होती हैं। वस्तुत उसके जीवन का पूर्वार्द्ध अत्यन्त

स्वाभाविक तथा प्रभावोत्पादक है, किन्तु अन्त मे उसके द्वारा भीख मँगवाना इत्यादि घटनाएँ उसके व्यक्तित्व के यथार्थ रूप को उजागर नही कर पाती।

इस प्रकार उपन्यास के सभी पात्र निम्न मध्य-वर्ग के हैं, जो विभिन्न परिस्थितियो तथा स्तरो से गृहीत हैं। प्रत्येक पात्र जीवन के अलग-अलग पहलू, घटना तथा परिस्थिति से आवेष्टित है। यह आवेष्टन ही उन्हे यथार्थ रूप प्रदान करता है। वस्तुत पात्र या चरित्र चित्रण भारती की कला के माध्यम बनकर ही यहाँ आए हैं। वे उद्देश्य के सहायक बनकर ही अवतरित हुए हैं। फिर भी चरित्र चित्रण म भारती को पर्याप्त सफलता मिली है। उपेन्द्रनाथ अश्क का मत है कि "जमुना, माणिक मुल्ला और तन्ना के चरित्र जहाँ अपने मे पूर्ण हैं, वहाँ सत्ती और लिली के चरित्र अपूर्ण भी हैं। निम्न मध्यवर्ग के जीवन के स्त्री पुरुष जब अपनी धुरी से हटते हैं तो एकदम गहरे गन्दे महागर्त मे नही जा गिरते, एक-दो और छोटे-बड़े गढो से होकर वहाँ पहुँचते हैं।"

कथोपकथन —इस लघु उपन्यास मे वर्णन की अपेक्षा कथोपकथन का तत्त्व न्यून मात्रा मे मौजूद है। कहानीमूलक उपन्यास और वह भी लोककथात्मक शैली मे लिखा जाने के कारण इसमे सवादो का बहुत कम प्रयोग किया गया है। किन्तु जितने भी सम्वाद मौजूद हैं वे निस्सन्दिग्ध गुणान्वित हैं। उपन्यास के सम्वाद जहाँ एक तरफ चरित्रो की विशेषताओं को उद्घाटित करते हैं, साथ ही वे उनका मानसिक विश्लेषण भी करते हैं। उपन्यास के सवाद पात्रानुकूल और उनकी मानसिक स्थिति के अनकूल हैं। ये सक्षिप्त, स्वाभाविक, सरल, उपयुक्त, रोचक तथा औत्सुक्य का निर्माण करते हैं। कहीं-कही लेखक ने इन सम्वादो के माध्यम से समस्या का विवेचन और विश्लेषण भी किया है, तो कही जीवन दर्शन तथा मूल्यों की प्रस्थापना भी की है। सवाद यद्यपि दीर्घ तथा लम्बे हैं किन्तु उन्हे छोटे छोटे वाक्यो मे कहलाया गया है। इसके अलावा एक विशेषता और है कि ये सवाद हास्य और व्यग्य से युक्त है जिसके कारण सवादो की दुर्बलताओ का परिहार कर पाठको को कथा मे रस-ग्रहण करने मे वे सहायक बन पड़े हैं।

देश, काल और वातावरण —उपन्यास वर्ग-सघर्ष तथा आर्थिक विषमता के उद्देश्य को लेकर चलता हुआ भी लोककथात्मक शैली मे कथित होने के कारण वातावरण का चित्रण हुआ है किन्तु कम ही मात्रा मे। भारती का पूरा ध्यान विषय और शैली पर ही केन्द्रित है। फिर भी भारती ने सात दोपहरो की चर्चाएँ अलग-अलग वातावरण मे चित्रित की हैं। तीसरी कहानी का वर्णन करते हुए वे वातावरण की उमस का भी निर्माण करते हैं, जो कि सोद्देश्य है। इसी प्रकार चौथी कहानी के समय भी कहानी के अनुकूल ही रूमानी वातावरण की निर्मिति की गई है। उपन्यास के वातावरण के अन्य उदाहरण भी पाठको के मन मे मूल कथ्य के अनुकूल

एक भावभूमि तैयार करने मे सहायक बनते हैं जिसके परिणामस्वरूप पाठक कथा के साथ समरस हो जाता है। वातावरण का चित्रण यद्यपि बहुलता के साथ नही हुआ है किन्तु जितना हुआ है वह निरर्थक, अयथार्थ और अकारण नही, अपितु कथ्य को यथार्थता प्रदान करता है। वातावरण की यह निर्मिति पाठक को जहाँ मूल कथ्य के साथ समरस कराती है, साथ ही उसकी परिणति का सकेत भी कराती है।

**भाषा-शैली** —विचारो की अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा होती है। भाषा पर लेखक का पूण अधिकार ही किसी कृति की लोक प्रियता या सफलता का प्रमुख उपकरण होता है। भारती का भाषा पर असाधारण अधिकार है। इस उपन्यास की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा है। उपन्यास की सभी कहानियाँ और पात्र ही जब सामान्य जीवन के हो, तो उसकी यथार्थता भाषा के सामान्य रूप मे ही मौजूद हो सकती है। उपोद्घात मे उन्होने स्वय इसे स्वीकारा है—

— 'इनकी (माणिक) शैली मे बोलचाल के लहजे की प्रधानता है और मेरी आदत के मुताबिक उनकी भाषा रूमानी, चित्रात्मक, इन्द्रधनुष और फूलो से सजी हुई नही है।''[११] इस बोलचाल की भाषा मे प्रवाह है, ओज, सरसता, यथार्थता, सूक्ष्मता, स्पष्टता, साकेतिकता, ध्वन्यात्मकता आदि गुण हैं। इसलिए उन्होने अपनी भाषा म सस्कृत, उर्दू, अग्रेजी, तत्सम, तद्भव और ग्रामीण भाषा के शब्दो का उन्मुक्त प्रयोग किया है। कही-कही विषय के अनुकूल वे आलकारिक और प्रतीकात्मक बनाते चले है। उनकी भाषा पात्रानुकूल, विषयानुकूल, भावानुकूल परिवेश के अनुकूल आदि विशिष्टताओ से मण्डित है। वस्तुत भाषा उनका ध्येय नही है, क्योकि उनका मत है— 'टेकनीक ! हाँ, टेकनीक पर ज्यादा जोर वही देता है जो कही-न-कही अपरिपक्व होता है।''[११] इसलिए अपने विचारो की स्पष्टता के लिए उन्होने अपनी भाषा मे विभिन्न भाषाओ से शब्द लिए हैं साथ ही उन्हे मुहावरा तथा लोकोक्तियो से जडा है। निस्सदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि उपन्यास की भाषा सरल, सरस, यथार्थ, सुबोध, सूक्ष्म, प्रतीकात्मक, आलकारिक, प्रवाहयुक्त, साकेतिक, हास्य-व्यग्य मिश्रित तथा प्रभावोत्पादक आदि गुणो से समन्वित है। शब्द-चयन और वाक्यो का गठन भारती का अपना कौशल है।

'सूरज का सातवाँ घोडा' विभिन्न शैलियो मे लिखा गया लघु उपन्यास है। सभी शैलियाँ परस्पर कहानियो के समान अनुस्यूत हैं जिन्हे पृथक्-पृथक् कर नही देखा जा सकता। इसम वर्णनात्मक, मनोविश्लेषण, प्रतीकात्मक, नाटकीय, रूमानी, चित्रात्मक, आत्मकथात्मक आदि शैलियाँ प्रयुक्त की गई हैं। किन्तु यह उपन्यास मूलत लोककथात्मक शैली मे लिखा गया है, जिसे स्वय लेखक ने तथा अनेक आलाचको ने स्वीकारा है। "वस्तुत लोककथात्मक शैली उस शैली रूप को कहते हैं

जिसमे मौलिक रूप से प्रचलित अनेक कथाओ को अन्तःसम्बद्ध करके प्रस्तुत किया जाता है।"[११]

भारतीय कथा-साहित्य पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट हो जाता है कि संस्कृत मे लिखे गये पंचतन्त्र, कथासरित्सागर, हितोपदेश जातककथाएँ आदि लोककथात्मक शैली मे लिखे गये ग्रन्थ है। इनमे श्रोता और वक्ता के माध्यम से अनेक कहानियो मे छोटे छोटे निष्कर्ष निकालकर उन्हे एक बिन्दु पर केन्द्रित किया जाता है, जहाँ वे एक नवीन अर्थ प्रदान करते हैं। भारती ने इस उपन्यास मे इसी लोककथात्मक कहानी को अपनाया है।

लोककथात्मक शैली मे अनेक कहानियाँ मिलकर एक कहानी को रूप देती हैं, किन्तु उन सब की मूल प्राणधारा एक ही रहती है। यहाँ भारती ने छह प्रेम-कहानियों को लिया है और प्रत्येक कहानी जहाँ पूर्णत स्वतन्त्र है—क्योकि प्रत्येक कहानी का अपना पृथक शीर्षक है वहाँ साथ मे ये छह कहानियाँ मिलकर एक युग का चित्र प्रस्तुत करती है। वस्तुत ये सभी कहानियाँ पृथक् पृथक् नही अपितु इन कहानियो के माध्यम से लेखक ने जीवन के विविध पक्षो के सत्य को उद्-घाटित किया है। लोककथात्मक शैली का दूसरा तत्त्व है आपस की बातचीत के द्वारा तथा वक्ता और श्रोता के माध्यम से कथा का पूर्णता की ओर अग्रसर होना। यहाँ माणिक वक्ता है और शेष जो लेखक के मित्र हैं, सभी श्रोता हैं। श्रोता कभी तो अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते है और कभी जिज्ञासा प्रदर्शित करते हैं—यथा—जमुना के विवाह के विषय मे। माणिक कथा चक्र को सुनाता है। लेखक, ओंकार, शरद आदि पात्र सुनते हैं तथा अनध्याय मे अपनी अपनी प्रतिक्रियाओ द्वारा कहानी के छिपे अर्थ को स्पष्ट करते हुए उसे गति भी प्रदान करते हैं। लोककथात्मक शैली का तीसरा तत्त्व है—हास्य और रुदन का मिश्रण। प्रस्तुत उपन्यास मे इन तत्त्वो का समन्वय है। समस्या की गहनता, गंभीरता और दुःख को इस शैली मे प्रस्तुत किया जाता है कि श्रोता रुदन की अपेक्षा हास्य को अधिक मात्रा मे अपनाता है। प्रस्तुत उपन्यास मे समस्या का सूक्ष्म रूप जहाँ पाठक को रुलाता है वहाँ उसका स्थूल रूप उसे हँसाता है। उदाहरण के लिए पहली कहानी के निष्कर्ष को लिया जा सकता है। इस शैली का चौथा तत्त्व है विचित्रता तथा चमत्कारिता का। अनपेक्षित और अप्रत्याशित घटनाओ को लेखक ने इस क्रम से संजोया है कि जिन से पाठक एकदम आश्चर्यचकित हो जाता है। वस्तुत चमत्कार का तत्त्व लोककथा मे जिज्ञासा और उत्सुकता के लिए प्रयुक्त होता है। सती की मृत्यु के बाद पुन उसका जीवित होना, सामने रखी किसी भी वस्तु पर—काले बेंट का चाकू इ०—कहानी बनाना आदि घट-नाएँ चमत्कार की सृष्टि के लिए निर्मित हैं। लोककथात्मक शैली मे सूत्रबद्धता का अभाव-सा रहता है। सूत्रबद्धता से यहाँ तात्पर्य स्थूल रूप से घटनाएँ विच्छिन्न और

असम्बद्ध प्रतीत होती हैं परन्तु वे सूक्ष्म रूप से परस्पर सम्बन्धित होती है। यहाँ भी इसी प्रकार का काल विपर्यय और घटना विपर्यय दिखाई देता है। पहली कहानी मे वर्णित तन्ना और जमुना के प्रेम की कहानी की परिणति तीसरी मे है। इसी प्रकार दूसरी कहानी चौथी कहानी के बाद की है, यहाँ तक कि तीसरी और पाँचवी की अनेक घटनाएँ उससे पहले घटित हुई हैं। किन्तु यह पूर्वापररहित क्रम—समग्र कथा को पढने के बाद—किसी प्रकार का सन्देह या भ्रम उत्पन्न नही करता।

इसके अतिरिक्त डॉ० सत्यपाल चुघ ने लोककथात्मक पद्धति की कुछ विशेषताओ का इसमे उल्लेख किया जो कि ध्यातव्य है। (१) माणिक के घर मे, गर्मी के मौसम म चार-पाँच मित्रो की महफिल का जमना। (२) कहानियाँ बिल्कुल खुलेपन—अनौपचारिक वातावरण—मे सुनाई जाती हैं। (३) कथाकार और श्रोता मे प्रश्नोत्तर की विद्यमानता। (४) निष्कपवादिता का होना। (५) कहानी के अन्त का अभिधात्मक होना। (६) कहानियो के शीर्षको की व्याख्या से लोककथा के सन्देह का होना। (७) कहानी का लोक भाषा मे होना। (८) एक कहानी से दूसरी कहानी का निकलना। इन सब विशेषताओ ने 'सूरज का सातवा घोडा' के शिल्प को ऐसा सजाया और सँवारा है कि इसकी शैल्पिक नवीनता पाठक को आकृष्ट करने तथा रमाने मे पूर्ण सफल रही है।

वस्तुत भारती को पौराणिक प्रतीको से बहुत स्नेह है—जो कि उनकी कविताओ मे ज्यादा उभरकर सामने आये हैं। इसलिए पुरानी धर्म कथा शैली को नये यथार्थ से जोडकर उसे नवीन रूप दिया है। लोक-जीवन के यथाथ तथा अपने विचारो को व्यक्त करने के लिए सूरज के घोडो के पौराणिक प्रतीको तथा धर्म-कथावाचन की शैली को अपनाया है, क्योकि यह लोक जीवन की सुपरिचित और प्रवाहमयी शैली है। इसके शिल्प के विषय मे 'अज्ञेय ने भूमिका मे कहा है—' सबसे पहली बात है उसका गठन। बहुत सीधी बहुत सादी पुराने ढग की—बहुत पुराने जैसा आप बचपन से जानते हैं—अलफ लैला वाला ढग, पचतन्त्र वाला ढग, जिसमे रोज किस्सागोई की मजलिस जुटती है फिर कहानी मे से कहानी निकलती है। और वह केवल प्रयोग-कौतुक के लिए नही, बल्कि इसलिए कि वह जो कहना चाहते हैं उसके लिए यह उपयुक्त ढग है।"

भारती का प्रमुख उद्देश्य रहा है-अर्थ और काम की धुरी के इर्द गिर्द घूमने वाले निम्न मध्यवर्गीय जीवन का विडम्बनात्मक चित्रण। अत सभी पात्र, कहानियाँ और शिल्पगत विशेषताएँ उद्देश्य के सहायक रूप मे ही चित्रित हुई है। छह कहानियो के माध्यम से भारती ने निम्न-मध्य-वर्ग के सामाजिक जीवन के विविध पक्षो का उद्घाटित किया है। वरन् 'वह चित्र सुन्दर प्रीतिकर या सुखद नही है क्योकि उस समाज का जीवन वैसा नही है और भारती ने चित्र को यथाशक्य सच्चा उता-

रना चाहा है।"[१६] ऊपरी तौर पर ये सभी प्रेम कथा सी लगती हैं किन्तु वह उसका मूल स्वर नहीं है। माणिक के शब्दों मे—"ये कहानियाँ वास्तव मे प्रेम नहीं वरन् उस जिन्दगी का चित्रण करती है जिसे आज का निम्न-मध्य वर्ग जी रहा है। उसमे प्रेम से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक सघर्ष नैतिक विशृंखलता, इसीलिए इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अंधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है।"[१७] किन्तु भारती केवल मौत अंधेरे, कीचड और गन्दगी का यथातथ्य चित्रण कर मौन नहीं हो जाते हैं। क्योंकि भारती का मूल स्वर ही आस्थात्मक रहा है—जिसे उनकी अन्य काव्यात्मक कृतियों मे भी देखा जा सकता है। वे आस्था के उन्नायक है, उन्हे सुखी और समृद्ध भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था है। उनकी यह आस्था ही माणिक मे ध्वनित होती है—"पर कोई-न कोई ऐसी चीज है जिसने हमे हमेशा चीरकर आगे बढ़ने, समाज व्यवस्था को बदलने और मानवता के सहज मूल्यों को पुन स्थापित करने की ताकत और प्रेरणा दी है। चाहे उसे आत्मा कह लो, चाहे कुछ और। और विश्वास, साहस, सत्य के प्रति निष्ठा उस प्रकाशवाही आत्मा को उसी तरह आगे ले चलते हैं जैसे सात घोड़े सूर्य को आगे बढ़ा ले चलते हैं।"[१८] यद्यपि इन सात घोड़ो मे से छह विकलांग हो गये हैं किन्तु "सातवाँ घोड़ा तेजस्वी और शौर्यवान् है और हमे अपना ध्यान और अपनी आस्था उसी पर रखनी चाहिए।"[१९]

इस उपन्यास के शीर्षक की कल्पना, सम्भव है शुरुआत मे छपी हुई एंजेलो सिकेलियाओ की कविता से सूझी हो। क्योंकि कविता का मुख्य स्वर भी कीचड से उबरने का ही है, और इस उपन्यास का भी। इसका शीर्षक प्रतीकात्मक, आकर्षक, कौतूहलमय, लोककथात्मक, पौराणिक और जीवन-दर्शन को स्पष्ट करने वाला है और सात दोपहरो की कथा होने के कारण भी यह शीर्षक दिया गया हो जिसे लेखक ने स्वय स्वीकारा है—"माणिक कथा-चक्र मे दिनो की संख्या सात रखने का कारण भी शायद बहुत कुछ सूरज के सात घोड़ो पर आधारित था।"[२०] इस उपन्यास की निजी दूसरी विशेषता है 'अनध्याय'। अनध्याय की सृष्टि लेखक ने सोद्देश्य की है। कहानियों के माध्यम से भारती जहाँ पाठकों का मनोरंजन करते है या कथा का अभिधात्मक स्तर प्रस्तुत करते हैं, वहीं अनध्याय के माध्यम से ( भारती के ) अभीष्ट और साकेतिक तथा मूल स्वर को अभिव्यक्त करते हैं। "कहानियों से लेखक पाठकों का मनोरंजन करता है और अनध्याय से शिक्षण।"[२१] इसके अतिरिक्त ये अनध्याय दो कहानियों के बीच के समय की दूरी को पाटते हैं या कम करते हैं। अत पाठक ऊबता नहीं है। साथ ही साथ ये अनध्याय विवेचित कथा की पर्तों को उखाडते चलते हैं, उसकी आलोचना प्रत्यालोचना करते हैं, वही विवेच्य कहानी के लिए मानसिक पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं।

'उपोद्‌घात' की रचना सार्थक तथा साभिप्राय की गई है। पहली बात तो यह है कि लोककथात्मक शैली के कारण और प्राचीन संस्कृत के ग्रन्थों की परम्परा के अनुकूल पुस्तक के प्रारम्भ से पूर्व 'लेखकीय निवेदन' आवश्यक होता था। इस प्रकार लोककथात्मक शैली मे यथार्थता लाने के लिए उपोद्‌घात की रचना की गई है। दूसरी बात यह है कि इस 'उपोदघात' मे उन्होने अपनी सफाई तथा मतव्य पेश किये हैं। कहानी कला, मध्यमवर्ग के विषय, टेकनीक, भाषा तथा स्वर के प्रस्तुत-कर्ता इत्यादि की सूचना इसी उपोद्‌घात मे की गई है। तीसरी बात है कि बिखरी हुई-सी लगने वाली कहानियो को सुसम्बद्ध करने के लिए उपोद्‌घात की अवधारणा की गई है। यह उपन्यास का ही एक अश है जिसमे उपन्यास से पूर्व कथा के सकेत दिए गए हैं जो पाठको के मन मे कौतूहल का निर्माण करते हैं।

इस कथा की परिधि केवल निम्न मध्यवर्ग की अर्थ और काम सम्बन्धी व्याख्या को ही अपने तक सीमित नही रखती। अपितु उसके अतिरिक्त इसकी प्रतीकात्मकता भी उल्लेखनीय है। आकाश कल्पना का, होठ प्रेमी का, धरती—कठोरता का, काला चाकू—अत्याचार का चील—कामातुर वृद्ध का, बीरबहूटी—युवा-यवती का, कटा हुआ हाथ—दोषपूर्ण अर्थव्यवस्था का, शीघ्र भागने वाली गाडी—निम्न मध्यवर्गीय जीवन का प्रतीक है।

डॉ॰ सत्यपाल चुघ ने 'आलोचना तत्त्व' को इसकी अपनी ही विशेषता कहा है। "यह स्वय अपनी व्याख्यात्मक आलोचना भी है—उपन्यास के विकास के साथ-साथ शीर्षक से लेकर शैली शिल्प तथा उद्देश्य तक का स्पष्टीकरण इसमे हुआ है। इस व्याख्या मे लेखक के दो प्रयोजन दिखाई देते हैं—अपने नूतन प्रयोग शिल्प को स्पष्ट करना तथा निष्कर्षों को सही रूप मे उभारकर पाठकों के सामने रखना।" [१] दूसरी बात यह है कि यदि आलोचना भारती स्वय करते तो अनधिकार चेष्टा और अनुचित हस्तक्षेप के कारण उपन्यास मे अस्वाभाविकता आ जाती।" जिसे बडी खूबी के साथ भारती ने बचाया है।

शैल्पिक नूतनता तथा कथ्य की सरसता एव यथार्थता भी इस उपन्यास के 'अत' के आक्षेप को दबा नही पायी। उपन्यास का अन्त आरोपित या ऊपर से लादा हुआ लगता है। छह कहानियों—छह घोडो तक कथा का विकास स्वाभाविक, स्वतन्त्र, यथार्थपरक लगता है, किन्तु सातवाँ घोडा जो कि आस्थावान्, तेजस्वी और शौर्यवान् है। परन्तु यह स्वर उसकी कथा या पात्रो के माध्यम से ध्वनित नहीं हो पाता। यही आकर उपन्यास असफल-सा प्रतीत होता है। राजेन्द्र यादव के अनुसार—"लेकिन उपन्यास की सबसे बडी कमजोरी यह है कि सातवें घोडे की कल्पना पूरी कहानी से उभरकर नही आती। यह अचानक ऊपर से जोडी गई सी लगती है। जिस समाज की, जिन लोगो की कहानी लेखक ने कही है उसमे कोई ऐसा सकेत—

इशारा नहीं है जो इस सातवें घोड़े—अर्थात् जमुना, सत्ती और तन्ना के बच्चों के उज्ज्वल भविष्य का आभास होता हो।''[२१] वस्तुतः यह आस्था और आशावादी दृष्टिकोण कहानियों की परिणति नहीं है अपितु भारती की आस्था है—माणिक मुल्ला के माध्यम से। अतः उपन्यास का अन्त स्वाभाविक और यथार्थपरक नहीं लगता।

विधा की समस्या : शैलिक विचित्रता तथा नवीनता के कारण पाठक के मन में सन्देह उठता है कि इसे उपन्यास कहा जाये या कहानियों अथवा कथाओं का संकलन ? प्रस्तुत कृति बाहरी रूप से देखने पर कथाओं का संकलन मात्र प्रतीत होती है किन्तु उपन्यास और कहानी के तात्विक और मूलभूत अन्तर से यह स्पष्ट है कि प्रस्तुत कृति में उपन्यास के समान ही एक प्राण-धारा बह रही है। सम्पूर्ण कृति में यदि विभिन्न कथाएँ रखी भी गई हैं तो भी उन सभी कथाओं का मूल कथ्य एक ही है। दूसरी बात, ये सभी कथाएँ प्रासंगिक हैं, जो मूल कथा को बल प्रदान करती हैं। इन कहानियों में जीवन के एक पक्ष या एक क्षण का चित्रण नहीं, अपितु एक पीढ़ी और युग को चित्रित किया गया है। प्रेम के माध्यम से निम्न-मध्य-वर्ग की सामाजिक, मानसिक, आर्थिक, वर्ग-संघर्ष की समस्याओं को चित्रित करना लेखक का उद्देश्य रहा है। इसका कथा-पट विस्तृत है और यह कथा-पट की विस्तीर्णता और समस्याओं की बहुलता इसे उपन्यास का आकार देती है। कथानक का गुम्फन छह कहानियों में किया गया है। ये छह कहानियाँ सूक्ष्म तंतुओं से इस प्रकार संयुक्त की गई हैं जो प्रत्येक कहानी को अलग अस्तित्व देती हैं और साथ ही उसे उपन्यास का आकार भी। इस प्रकार कथानक की दृष्टि से और साथ ही उन सभी कहानियों में उठाए गए विषय की एकता के कारण यह कृति उपन्यास ही कही जा सकती है।

भारती ने प्रारम्भ से ही इस कृति को उपन्यास कहा है—पहले पृष्ठ से ही। हाँ, इसके लिए उन्होंने विशेषण दिया है 'लघु'। साथ ही अज्ञेय की भूमिका के बाद निष्कर्षवादी कथाओं के रूप में कहा गया लघु उपन्यास यह कथन और इसी बात को उन्होंने 'उपोद्घात' में दुहराया है। अर्थात् उनका स्वयं का मत है कि शिल्प की नवीनता—जिसे लोककथात्मक शैली कहा जा सकता है—के कारण यह कृति कथा होने का सन्देह उत्पन्न करती है, वस्तुतः यह विधा उपन्यास है। अपने इस मन्तव्य को सातवीं दोपहर में लेखक द्वारा और कहानी सुनाने के लिए कहने के बाद माणिक का यह कथन—"एक अविच्छिन्न क्रम में इतनी प्रेम-कहानियाँ बहुत काफी हैं। सच तो यह कि उन्होंने इतने लोगों के जीवन को लेकर एक पूरा उपन्यास ही सुना डाला है, सिर्फ उसका रूप कहानियों का रखा ताकि हर दोपहर को हम लोगों की दिलचस्पी बदस्तूर बनी रहे और हम लोग ऊबें न ! वरना सच पूछो तो यह उपन्यास ही था।'[२२] इस विधा के सम्बन्ध में उठने वाली सभी शंकाओं का समाधान करने में पूर्ण समर्थ है। इस प्रकार भारती की दृष्टि से भी यह विधा कहानी क्रम में बनने

के बाद भी उपन्यास ही है, न कि कथा वीथी ।

विभिन्न आलोचको ने भी इसे उपन्यास की ही सज्ञा दी है जिनमे अज्ञेय, अश्क, आचार्य विनयमोहन शर्मा, डा० सत्यपाल चुघ आदि प्रमुख हैं । अज्ञेय ने भूमिका मे स्पष्ट कहा है— सूरज का सातवाँ घोडा एक कहानी मे अनेक कहानियाँ नही, अनेक कहानियो मे एक कहानी है । वह एक पूरे समाज का चित्र और आलोचन है जैसे उस समाज की अनन्त शक्तियाँ परस्पर सम्बद्ध, परस्पर आश्रित और परस्पर सम्भूत है, वैसे ही उसकी कहानियाँ भी ।"[११] अर्थात बाहरी रूप से अलग-अलग दिखाई देने वाली ये छह प्रेम कहानियाँ विषय की एकता से सम्पृक्त हैं । डा० चुघ इसे कहानीमूलक उपन्यास स्वीकार करते हैं—'सूरज का सातवाँ घोडा एक ऐसी कहानीमूलक औपन्यासिक रचना है जिसका मूल कथानक एक है और अनेक कहानियाँ उसकी प्रासगिक कथाएँ जो कालविपर्यय तथा अपने आप मे पूर्णता का आभास देने के कारण अलग अलग कहानियाँ प्रतीत होती हैं अन्यथा सभी एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं ।"[१०]

कृति का अलग अलग परिच्छेदो मे विभक्त होना भी पाठक के मन मे शका का कारण है । किन्तु सातवाँ परिच्छेद स्वय ही इस शका का समाधान कर देता है । इसमे पूर्व छह दोपहरो मे कही गई छह कथाएँ यहाँ आकर एक बिन्दु पर स्थिर हो जाती है जहाँ वे नवीन अर्थ, नवीन व्याख्या, नवीन चित्र, नवीन समाज को प्रस्तुत करती है । यह कृति यदि कथाओ का सकलन होती, तो सभी कहानियो का एक बिन्दु पर स्थिर होना असमव बात है । दूसरी बात यह कि अन्तिम परिच्छेद ही निष्कर्षवादी प्रेम-कहानियो की प्रतीकात्मक व्याख्या करता है जो स्वय भारती का मूल उद्देश्य है । तीसरी बात यह है कि एक ही कथाकार के एक सकलन मे विषय तथा शैली की स्तर-भिन्नता लक्षित होती है । किन्तु इस कृति मे विषय की एकता—निम्न-मध्यवर्ग की समस्या—और शैली की एकता—(लोककथात्मकता) ने इस कृति को उपन्यास के कटघरे मे खडा किया है ।

## टिप्पणियाँ

सूरज का सातवाँ घोडा  धर्मवीर भारती  छठा सस्करण (१९७०)

१  सूरज का सातवाँ घोडा  पृ० ५१-५२
२  वही, पृ० ५९,६०
३, ४, ५ वही, पृ० १०४
६  वही निवेदन
७  वही, पृ० ३७
९ १०  वही, पृ० ३४
११  वही, पृ० ४६

१२ वही, पृ० २२
१३, १४ वही, पृ० ८०
१५, १६, २६ वही, भूमिका
१७, १८, १९ वही, पृ० १०९
२० वही, पृ० १०४
२५ वही, पृ० १०३
७ हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग राजेन्द्र यादव का लेख
२१, २७ प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों की शिल्पविधि डा० सत्यपाल चुघ, पृ० ७५०
२२, २३ वही, पृ० ८४७
२४ हिन्दी के दस सर्वश्रेष्ठ कथात्मक प्रयोग पृ० २३०

# लौटे हुए मुसाफिर : नफरत की आग में झुलसता आम आदमी

सूर्यनारायण रणसुभे

"······सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।"

—कमलेश्वर

"पता नहीं, यह आग कहाँ छिपी थी? नफरत की इस आग की चिन-गारियाँ बाहर से आई थीं—दूसरे शहरों, कस्बों और सूबों से।"

—कमलेश्वर

"गरीबी, अपमान, भूख और बेबसी में भी वे हारे नहीं थे, पर नफरत की आग और शंकापूर्ण भय का धुआँ वे बर्दाश्त नहीं कर पाये।"

—कमलेश्वर

"नफरत, शक और डर! इन्हीं तीन डोंगियों पर हम नदी पार कर रहे हैं। यही तीन शब्द बोये और काटे जा रहे हैं।"

—डा० राही मासूम 'रज़ा'

"कमलेश्वर विभाजन को राजनीतिक, आर्थिक अथवा सामाजिक समस्या न मानते हुए उसे मानव-मन की समस्या मानते हैं।"

८

# लौटे हुए मुसाफिर

भारत पाक विभाजन की समस्या को लेकर भारत की सभी भाषाओ मे साहित्य-सृजन हुआ है। विभाजन की घटना ही ऐसी थी कि किसी भी सम्वेदनशील व्यक्ति का मन दहल जाता। धर्म के नाम पर इस समय जो भी अत्याचार हुए उससे यह साबित हुआ कि मनष्य जब अपनी मनुष्यता छोड देता है तो वह पशु से भी क्रूर हो जाता है। सन् १९४६ से १९५० तक यही एक प्रमुख समस्या इस देश के सम्मुख रही। इस समस्या को लेकर हिन्दी, पजाबी, बगाली तथा उर्दू मे श्रेष्ठ स्तर की रचनाएँ लिखी गई हैं। वास्तव मे विभाजन की सही एव प्रामाणिक अनुभूति इन्ही चार भाषाओ के साहित्यकारो के पास थी और अब भी है। इन भाषाओ के साहित्यकारो ने विभाजन के इस दर्द को भोगा है, अपनी आँखो से मनुष्य का पशुवत् व्यवहार देखा है। यशपाल, रामानन्द सागर, राजेन्द्रसिंह बेदी, सआदत हसन मंटो, कृष्णचन्दर, ख्वाजा अहमद अब्बास, अमृता प्रीतम, भीष्म सहानी, कमलेश्वर, राही मासूम रजा, गुरुदत्त—इस विषय पर लिखने वाले हिन्दी-उर्दू और पजाबी के प्रतिनधि लेखक हैं। अब प्रश्न यह है कि इस विषय को स्वीकार करने के बाद उपर्युक्त लेखक किस दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं। क्योकि 'विभाजन' तो एक शुद्ध राजनीतिक घटना है। इस राजनीतिक घटना के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परिणाम इस देश के दोनो धर्मों के लोगो पर हुए हैं। ये लेखक उन परिणामो को शब्दबद्ध करते हैं अथवा विभाजन के कारणो की खोज करते हैं? विभाजन की इस घटना से अनेक प्रकार के सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक प्रश्न निर्माण होते हैं। इन विविध प्रश्नो मे से किसी एक को 'प्रमुख मानकर ये लेखक चलते है अथवा शुद्ध मानववादी भूमिका से? विभाजन के समय मनुष्य का जो क्रूरतम तथा पशुवत् रूप बन जाता है, उसके लिए जिम्मेदार कौन है—धर्म? राजनीति? अथवा मनुष्य-स्वभाव? विभाजन की इस 'आग' के मूल मे कौन सी चिनगारियाँ छिपी बैठी हैं? विभाजन के बाद मनुष्य की स्थिति कैसी हो जाती है? क्या वह पश्चात्तप अनुभव करता है? क्या विभाजन' उस देश मे कार्यरत

साम्प्रदायिक तथा आधुनिक विचारधारा के भीतरी संघर्षों का परिणाम है ? विभाजन के पूर्व नफरत की जो आग सभी के दिलो मे भडकती है वह बाद मे बुझ जाती है अथवा नही ? इस प्रकार के अनेक प्रश्न विभाजन को लेकर उठाए जा सकते है । इन विविध प्रश्नो की चर्चा विविध सन्दर्भो मे की जा सकती है । इस 'घटना' को मुख्यत चार दृष्टिकोणो से देखा गया है —

१ इस वर्ग के उपन्यासकार 'विभाजन' को मुख्यत राजनीति और धर्म की समस्या मानते हैं । राजनीतिक अदूरदर्शिता तथा सत्ता के प्रति व्यक्तिगत आकर्षण के कारण विभाजन हुआ है—ऐसा यह वर्ग मानता है । उपन्यासो तथा कहानियो मे तत्कालीन राजनीति का ही वह अधिक विश्लेषण करता है । 'कांग्रेस पक्ष तथा कांग्रेस के उस समय के नेता इन लेखको की आलोचना के मुख्य लक्ष्य है । इस वर्ग की सहानुभूति हिन्दुओ की ओर अधिक है । यह वर्ग साम्प्रदायिक दृष्टिकोण भी स्वीकारता है । श्री गुरुदत्त ऐसे साहित्यकारो का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

२ दूसरा वर्ग उन कथाकारो का है जो विभाजन की घटना को रोमाटिक बनाकर पेश करते हैं । पाठको का दिल बहलाना वे अपना मुख्य उद्देश्य मानते हैं । इसी कारण 'सस्ती भावुकता' से इनका साहित्य भरा पडा है । क्रूरता, अत्याचार आदि के वर्णन पढकर उस सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति नफरत पैदा होने के बजाय एक विचित्र सा आकर्षण पाठको के मन मे पैदा हो जाता है । इनके चरित्र इस धरती के नही होते । ऐसे साहित्यकारो के लिए विभाजन मनुष्यमात्र की समस्या नही, मनोरजन का सस्ता और साधारण माध्यम मात्र है ।

३ तीसरा वर्ग ऐसे साहित्यकारो का है जो विभाजन को भोग चुका है । उस प्रदेश की—विभाजन के पूर्व की, विभाजन के समय की तथा विभाजन के बाद की—स्थितियो से परिचित ही नही, उससे बचा हुआ भी है । इसी कारण तटस्थता के साथ सम्पूर्ण स्थिति का चित्रण करने का प्रयत्न इन्होंने किया है । परन्तु इस तटस्थता मे इनके मार्क्सवादी विचार बाधा बन जाते है, क्योकि इस वर्ग के उपन्यासकार एक विशेष विचारधारा से प्रतिबद्ध हैं । और इसी कारण वे 'विषय के साथ' न्याय नही कर पाते । अलबत्ता विभाजन के समय जो अत्याचार हुए, जो पशुवत् व्यवहार दोनो ओर से हुआ, उसका बडा ही तटस्थ चित्रण ये करते हैं । हिन्दुओ की आर्थिक सम्पन्नता तथा मुस्लिमो की दरिद्रता ही विभाजन के लिए कारणीभूत रही है, ऐसा वे मानते हैं । ऐसे वर्ग का प्रतिनिधित्व यशपाल करते हैं ।

४. अन्त मे चौथे वर्ग के वे उपन्यासकार हैं जो विभाजन को मानवमन की समस्या मानते है । इनका ध्यान 'जन सामान्यों' पर अधिक है । विभाजन के समय की क्रूर घटनाओं की अपेक्षा वे इस बात की खोज करना चाहते हैं कि नफरत की आग की चिनगारी आखिर शुरू कहाँ मे हुई है । विश्व के प्रत्येक इतिहास मे इस प्रकार के

विभाजन कभी धर्म को, कभी जाति को, कभी आर्थिक असमानता को और कभी राजनीति को लेकर हुए हैं और होते रहेंगे। यह प्रक्रिया तब तक चलेगी जब तक मनुष्य के मन में प्रतिगामिता और आधुनिकता को लेकर संघर्ष चलता रहेगा। विभाजन मनुष्य के उस क्रूर मन की समस्या है जो अनुकूल वातावरण पाकर उभर उठता है। क्रूरता, यह किसी समुदाय अथवा धर्म विशेष की प्रवृति नहीं है, वह तो मानवमात्र की समस्या है। इस प्रकार विभाजन को 'मानवी मन' की समस्या मानकर नफरत की यह आग उसके मन में कब और कैसे उभर उठती है, इसका विवेचन इन उपन्यासकारों ने किया है। आकार की दृष्टि से ये उपन्यास बहुत ही छोटे हैं। परन्तु इनमें गहराई है, प्रामाणिकता है तथा मनुष्य मन की अनवरत खोज। इस प्रकार के लेखकों में राही मासूम रजा, कमलेश्वर, मोहन राकेश, अज्ञेय तथा सआदत हसन मंटो आदि आते हैं।

कमलेश्वर के इस उपन्यास का विवेचन करते समय उपर्युक्त वर्गीकरण को ध्यान में रखना जरूरी है। क्योंकि 'विषय की समानता' के बावजूद कमलेश्वर, गुरुदत्त, कृश्नचन्दर अथवा यशपाल से एकदम भिन्न हैं। यहीं पर उनकी उस सूक्ष्म तथा यथार्थवादी दृष्टि का प्रमाण मिल जाता है, जहाँ पर वे सतह के मूल में कार्यरत मनुष्य मन की क्रिया-प्रतिक्रियाओं को देखना चाहते हैं। विभाजन की इस *समस्या को एक छोटे से कस्बे तक सीमित रखकर विभाजन की यह चिनगारी धीरे-धीरे कैसे फैलने लगी तथा अन्त में इसने 'आग' का रूप कैसे धारण कर लिया,* विभाजन के समय साम्प्रदायिक तथा आधुनिक शक्तियाँ कैसे उभरकर आईं, उनमें *संघर्ष कैसे उत्पन्न हुआ और अन्त में ये साम्प्रदायिक शक्तियाँ कैसे विजयी हुईं,* इसका विवेचन कमलेश्वर इस उपन्यास में करते हैं।

कथावस्तु : एक छोटी सी बस्ती के लोगों में विभाजन के पूर्व, विभाजन के *समय तथा विभाजन* के बाद जो सूक्ष्म परिवर्तन होते गए हैं, उसका सूक्ष्म चित्रण इस लघु उपन्यास में किया गया है। उपन्यास का पहला ही वाक्य है—" सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।" स्पष्ट है कि कमलेश्वर स्वतन्त्रता के कई वर्षों बाद की बस्ती के चित्रण से उपन्यास का आरम्भ करते हैं। आज नसीबन इस उजड़ी हुई बस्ती को देखती है तो मन-ही-मन रोती है। "आज भी लगभग वैसा ही है, जैसा आजादी से पहले था। सिर्फ इस बस्ती को उदासी ने जकड़ लिया है। ठहरी शाम होती है और रुका हुआ वक्त है।"[1] स्वतन्त्रता के बाद की इस खामोश बस्ती का वर्णन करते-करते लेखक हमें भूतकाल में ले जाता है। "तब बहुत खूबसूरत थी यह बस्ती।"[2] "जब हिन्दुओं की बस्ती से ताजिए गुजरते थे, तो उन पर लोग गुलाब जल छिड़कते थे और हिन्दू औरतें अपने बच्चों को गोदी में उठाए ताजिया के नीचे से गुजरती थीं और दौड़-दौड़कर पके हुए मखाने बीनकर श्रद्धा से

आँचल के खूँट मे बाँध लेती थी । जब रामलीला का विमान उठता था, तो मुसलमान औरतें दरवाजो के चिकें या बोरो के पर्दे उलटकर मूर्तियो के श्रृंगार की तारीफ करती थी और उनके बच्चे विमान के साथ दूर तक शोर मचाते हुए जाया करते थे—"बोलो राजा रामचन्द्र की जै ।" स्पष्ट है कि बस्ती मे साम्प्रदायिकता ढूँढने पर भी नही मिलती थी । लोग एक दूसरे के त्यौहारो मे आनन्द से भाग लेते थे । अपने अपने विश्वासो को लेकर लोग जी रहे थे । उनके विश्वास एक-दूसरे से या तो टकराते नही थे अथवा टकराने की सम्भावना निर्माण हो जाती तो वे आपसी समझौता कर लेते थे । राजनीति से वे बेखबर थे । एक-दूसरे के सुख दु ख मे वे सम्मिलित थे । वे घर के अन्दर हिन्दू या मुसलमान थे । बाहर तो वे सब उस बस्ती के नागरिक मात्र थे । 'लेकिन सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था ।"[१] दिन बीतते गए । अग्रेज आए । छोटे मोटे कार्यालय खुलने लगे । नौकरियो के लिए पढे लिखे लोगो का तबका यहाँ आया । परन्तु "यह तबका अपने अपने घरो पर हिन्दू या मुसलमान था, लेकिन साहब के सामने सिर्फ नौकर था ।"[१] लेकिन भीतर-ही-भीतर अग्रेजो के विरोध मे आग सुलग रही थी । कुछ दबग नौजवान कभी-कभी शहर मे दिखाई पड़ते थे । "हिन्दू और मुसलमान दोनो ही थे इस जत्थे मे ।" सन् बयालीस के आन्दोलन मे भी हिन्दू मुसलमान साथ मे थे । और इसके कुछ ही महीनो बाद इस बस्ती के मुसलमानो मे 'जिना साहिब' की चर्चा शुरू हुई । और फिर सन् १९४५ का जमाना आया । "एक बूद खून नही गिरा । किसी मुहल्ले पर धावा नही हुआ । किसी ने किसी को नही मारा । किसी ने किसी को गाली तक नही दी । मस्जिदो मे लडाई की तैयारियाँ नही हुई । लेकिन भीतर-भीतर एक भूचाल आया था । दिली इमारतें ढह गई थीं । अपनेपन का जज्बा मर गया था । नफरत की आग ने इस बस्ती को निगल लिया था । और भरी पूरी चिकवो की वह बस्ती सबसे पहले उजड गई थी । पता नही, यह आग कहाँ छिपी थी ? नफरत की इस आग की चिनगारियाँ बाहर से आई थी—दूसरे शहरो, कस्बो और सूबो से ।"

इस बस्ती के एक छोर पर मुसलमान चिकवो की बस्ती है । और कहानी का मुख्य केन्द्र भी यही चिकवो की बस्ती है । इस बस्ती मे विधवा नसीबन है जो अपने बच्चो का पालन-पोषण कर रही है । छोटे-मोटे काम-धन्धे करते हुए । एक साईं है जो दिनभर इधर उधर घूमता रहता है । और शाम के समय धूनी रमाता है । सत्तार—जो पहले किसी सर्कस कम्पनी मे काम करता था, अब इस बस्ती मे आकर जम गया है । 'उसे नसीबन खाला की सहानुभूति है, साईं का आश्रय है और सलमा का प्यार ।' सलमा जो इस बस्ती के जनाने अस्पताल मे काम करती है । अपने पति से भागकर वह अपने पिता के साथ रह रही है । बच्चन भी है, जिसकी पत्नी गुजर चुकी है । जिसके दो छोटे छोटे बच्चे हैं और नसीबन इन बच्चो पर माँ से अधिक

प्यार करती है । सायकिल दुकान वाला रतन भी है; ठाकुर, गुप्ता, चौबे, जाफर-मियाँ भी है । सभी लोग हिल मिलकर बडी शान से जी रहे थे । राजनीतिक उथल-पुथल से बेखबर अपनी ही जिन्दगी के सुख-दु खो के बोझ से हैरान । ऐसी इस खूबसूरत बस्ती मे एक दिन सलमा का पति मकसूद और अलीगढ का सियासी कारकून यासिन आ जाते है और यही से नफरत की चिनगारी फैलने लगती है । "और जब उस सियासी कारकून ने देखा कि इन चिकवो की बस्ती मे कोई सनसनी नही है, तो उसके दिल को चोट-सी लगी थी । वह कारकून सोच ही नही पा रहा था कि ये चिकवे दुनिया की खबरो से इतने अलग-अलग कैसे रह रहे हैं । इन्हे यह भी नहीं मालूम कि मुल्क मे क्या हो रहा है कि मुसलमानो को एक नया मुल्क मिलने वाला है, जिसके लिए जद्दो-जहद चल रही है ।"[1] "जब वह देखता कि मसजिद मे मकतब लगता है और मन्दिर की चहार दीवारी मे पाठशाला जमती है और सब कुछ बदस्तूर चला जा रहा है, तो वह सह नही पाता था · · ।"[1] मकसूद, यासीन, और साईं तीनो एकत्र हो गए । साईं के मन मे कुछ व्यक्तियो के प्रति दिली नफरत थी ही । अब राजनीति और धर्म की आड मे वह इस नफरत की आग को उडेल सकता था । इसी कारण मसजिदो मे बैठकें होने लगी । लोगो के मन मे हिन्दुओ के प्रति, गाधीजी के प्रति, कॉंग्रेस के प्रति नफरत की आग फैलायी जाने लगी । "कान-गरेस तो हिन्दुओ की जमात है ।"[1] "हिन्दू हिन्दू है और मुसलमान मुसमान ।"[1] मुसलमानो मे इस प्रकार की चिनगारी फैलने की प्रतिक्रिया हिन्दुओ मे तुरन्त हो गई । बस्ती मे सघ का प्रवेश हुआ । "औरगजेब ने जो अत्याचार किए हैं, हिन्दू धर्म को जिस तरह भ्रष्ट किया है, उसी का बदला तो लेना है । हमारी परम्परा है राणा प्रताप की, शिवाजी की जिन्होने म्लेच्छो से कभी समझौता ही नही किया ।"[1] दोनो ओर नफरत की यह चिनगारी फैलती गई है । "पता नही क्या हुआ था, बस्ती को ? ऊँचे-ऊँचे इमली-नीम के पेडो पर लम्बी-लम्बी बल्लियाँ लगाकर लीग और हिन्दू महासभा के झडे फहराए गए थे । घरो पर भी छोटे-छोटे ऊँचे और हरे झडे नजर आने लगे थे ।"[1] · "उसे चारो तरफ एक ऐसा सैलाब सा नजर आ रहा था, जिसमे नफरत के कीडे बिलबिला रहे थे—जाने-पहचाने लोगो के मुर्दा चेहरे उतराते हुए बहते जा रहे थे—वे चेहरे, जिन्हे देखकर अभी तक इन्सान जीता आया था—जिनमे प्यार और अपनापन था । यह सब क्या हुआ है ? लोगो ने एकाएक वे चेहरे उतारकर क्यो फेंक दिए है । "और सचमुच तब बस्ती मे नफरत का एक भयकर सैलाब आया था ।"[1] धीरे-धीरे बस्ती के दोनो वर्गों मे यह नफरत की आग फैलने लगी । यासीन और मकसूद आग फैलाने का यह काम काफी लगन से कर रहे थे, तो दूसरी ओर सघी भी अपना जोर लगा रहे थे । अफवाहें फैलने लगी । हिन्दुओ को कल तक के दोस्त मुसलमान शत्रु लगने लगे । मुसलमान सभी ओर अविश्वास

की निगाहों से देखने लगे। साईं इस आग को और भड़काने की कोशिश कर रहा था। खामोश थी तो अकेली नसीबन। और उधर बच्चन। सत्तार को भी इस नफरत से नफरत थी। धीरे-धीरे स्थिति इतनी भयावह होने लगी कि "दोनों जातियों में अपने हिन्दू और मुसलमान होने का एहसास बढ़ता जा रहा था। हिन्दू शायद अपने को एकाएक ज्यादा हिन्दू समझने लगे और मुसलमान अपने को ज्यादा मुसलमान।"[१५] फिर बस्ती में एक दिन मौलाना साहब आए। उन्होंने कहा— "हिन्दोस्तान में दो कौमें रहती हैं, और अब वे साथ साथ नहीं रह सकतीं। १६ अगस्त का दिन एक रंज भरे दिन की तरह मनायें मुसलमान हिन्दू सरकार के मातहत नहीं रहेगा"[१६] मौलाना के पूर्व इस बस्ती में संघ के अधिकारी आए थे। हिन्दुओं की विशाल सभा उन्होंने ली और कहा— "हिन्दू राष्ट्र ने आज अपना तीसरा नेत्र खोला है वह सब इसमें भस्म होगा जो विदेशी है। वीरता में शक्ति है तथा शक्ति में है प्रभुता का स्रोत। वीरभोग्या वसुन्धरा और वीर वही है जो हिन्दू है।"[१८] परिणामतः दोनों ओर उत्तेजना फैलती गई। बस्ती के दैनंदिन जीवन में परिवर्तन होने लगा। १६ अगस्त, १९४६ के दिन तो वातावरण और अधिक क्षुब्ध हो गया। "हर आदमी दूसरे को शक की निगाह से देख रहा था। "दीवारों, जमीनों, गलियों और सड़कों तक का मन-ही मन बँटवारा हो गया। "शहर में हदें बन गयी थी—हिन्दुस्तान और पाकिस्तान।"[१९] और तभी पाकिस्तान बनने का ऐलान हुआ। "शहर के मुसलमान अन्दर-ही-अन्दर खुश हुए, पर ऊपर से कटे हुए थे साथ ही उनमें कहीं भय और भी गहरा उतर गया था।"[२१] परन्तु नसीबन जानती थी कि इसका कोई मतलब नहीं है इस बस्ती के लिए। उसके अनुसार "अरे पूछो कोई, क्या बदलेगा। अपना नसीब जो है, वही रहेगा।"[२१] विभाजन के बाद तो यहाँ के और आस पास के अमीर मुसलमान धीरे-धीरे पाकिस्तान की ओर जाने लगे। "दूसरे शहरों, कस्बों और सूबों से तरह-तरह की खौफनाक खबरें आ रही थी—हर सुबह एक नयी खबर आती—हर शाम एक और नया डर होता।"[२२] पाकिस्तान बनने के बाद भारत के कोने-कोने से जितने भी पैसेवाले थे, वे जल्दी-से-जल्दी अपना इंतजाम करके चले गए। गरीबों का कोई रहनुमा नहीं था।"[२३] वे लोग यह बस्ती छोड़कर जा तो रहे थे "मोह तोड़कर वे लोग निकल तो गए थे, पर घरों को ऐसे छोड़ गए थे, जैसे वे कभी वापस आएँगे।"[२४] चिकवों की इस पूरी बस्ती म केवल तीन ही घर ऐसे थे जो कहीं गए नहीं—साईं, इफ्तिकार तांगेवाला और नसीबन। बेबस और मजबूर होकर सलमा भी चली गई—मकसूद और यासीन के साथ। सलमा के विरह को सत्तार सह नहीं सका और एक दिन वह भी आत्महत्या कर गया। सत्तार की इस खौफनाक आत्म-हत्या के बाद इफ्तिकार भी चला गया। बच गई है केवल नसीबन और साईं।

साई—जिसने नफरत की आग को फैलाने मे और बस्ती उजाडने मे सहायता की थी। "गरीबी, अपमान, भूख और बेबसी मे भी वे हारे नही थे, पर नफरत की आग और शकापूर्ण भय का धुआँ वे बर्दाश्त नही कर पाए।"[१५]

" सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।" और तब से इतने बरस गुजर गये—यहाँ कोई नही आया—सिवा इफ्तिकार के। और फिर इसी इफ्तिकार से पता चला कि यहाँ से जो लोग पाकिस्तान के लिए चले गए थे, वे पाकिस्तान जा ही नही पाये। उनमे से जो अमीर थे, वे पहुँच गए। परन्तु जो गरीब थे, जो बडी आशा और अरमानो के साथ पाकिस्तान जाकर अपनी गरीबी को खत्म करना चाह रहे थे, वे वहाँ पहुँच ही नही सके—अर्थ के अभाव मे।

और आज सन् १९६१-६२ मे इस बस्ती की ओर फिर कुछ नौजवान लौट रहे हैं। ये वे ही नौजवान हैं, जिनके माँ पिता इस बस्ती के निवासी थे और जो पाकिस्तान और सम्पन्नता के सपने लेकर इस बस्ती को छोड बाहर चले गए थे, परन्तु पाकिस्तान तक पहुँच न सके थे। उनके ही लडके आज इस बस्ती की ओर लौट रहे हैं—चौदह पन्द्रह वर्षों बाद। इन लडको के बचपन के दिन इसी बस्ती मे गुजरे थे। और नसीबन बहुत-बहुत खुश है कि मुसाफिर लौट रहे हैं। वह उन्हे उनके टूटे फूटे घरो तक पहुँचाती है।

**समीक्षा** —-उपर्युक्त कथावस्तु से स्पष्ट है कि कमलेश्वर विभाजन के बहाने एक बस्ती के सूक्ष्म परिवर्तन की गाथा हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर रहे हैं। इस 'परिवर्तन के कारणो की खोज एव उसकी भयावहता को भी स्पष्ट करते है। इस लघु उपन्यास मे यह बस्ती ही केन्द्र मे है। इस बस्ती का करीब सौ वर्ष का इतिहास इसमे स्पष्ट किया गया है। आरम्भ के पृष्ठो मे सन् १८५७ की बस्ती का सकेत दिया गया है। 'यह वही बस्ती है जिसने १८५७ ई० मे अग्रेजो से लोहा लिया था। हर कौम और मजहब के लोगो ने कन्धे-से-कन्धे मिलाकर गोलियो की बौछार सीनो पर झेली थी।"[१६] १८५७ के बाद इस बस्ती मे परिवर्तन शुरू हुए। अग्रेज पूरी तरह देश मे छा गए। बस्तियो मे विविध कार्यालय खुलने लगे। सन् १९४२ के आन्दोलन मे भी यहाँ के हिन्दू मुस्लिम लडको ने बडा उधम मचाया था। "उन्हे नही मालूम था कि देश कैसे आजाद होगा, पर इतना उन्हे मालूम था कि कुछ करना चाहिए; और वे जो कुछ कर सकते थे, वह उन्होने किया था।"[१७] परन्तु सन् १९४५ से ही इस बस्ती के नागरिको के दिलो मे एक बडा भयानक भूचाल आया। यही से इसकी कथावस्तु का आरम्भ होता है। सन् १९४५-४६ और ४७ इन तीन वर्षो के भीतर यहाँ के सर्व-सामान्य हिन्दू मुस्लिमो की क्रिया प्रतिक्रियाओ को इसमे शब्दबद्ध किया गया है। यही इसकी सही अर्थो मे कथावस्तु है।

इस कथावस्तु म घटनाएँ महत्त्वपूण नही हैं—घटनाओ की प्रतिक्रिया ही

महत्त्वपूर्ण है । बस्ती और बस्ती में जाने वाले कुछ प्रातिनिधिक पात्रों को—नसीबन, सतार, सलमा, इफ्तिकार, साईं, रतन, बच्चन आदि को—मन स्थितियों को ही महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है । शांत तथा एकत्व की भावना से जीनेवाली यह बस्ती नफरत की आग से कैसे जल गई—इसको विस्तार के साथ लेखक स्पष्ट करता है तो दूसरी ओर सलमा-सत्तार, नसीबन-बच्चन, साईं-यासीन की व्यक्तिगत जिन्दगी को भी स्पष्ट करते जाता है । इन सब की व्यक्तिगत जिन्दगी का तथा नफरत की आग फैलने की उस घटना का निकटता से सम्बन्ध है । विभाजन पर लिखे गए अन्य उपन्यासों के केन्द्र में शिक्षित तथा मध्यवर्गीय व्यक्ति ही हैं । उदाहरण—यशपाल (झूठा सच), यज्ञदत्त शर्मा (इन्सान), गुरुदत्त (देश की हत्या), रामानन्द सागर (और इन्सान मर गया) आदि । परन्तु कमलेश्वर के इस उपन्यास में समाज के सब से निचले तबके को केन्द्र में रखा गया है । यह निचला तबका ही सर्वाधिक मात्रा में लूटा गया है । इस निचले तबके का उपयोग ही राजनीतिज्ञों और धर्मान्धों ने किया है । इसी निचले तबके के कारण नफरत की आग तेजी से फैलती गई है । इस कारण हमारी 'कथावस्तु' की यह सबसे बड़ी विशेषता मानी जा सकती है कि कमलेश्वर का ध्यान 'सर्वसाधारण' पर अधिक है । वास्तव में नफरत की आग मध्यमवर्ग एवं तथाकथित नेताओं ने ही फैलायी थी ।

इसकी कथावस्तु का सम्बन्ध बस्ती तथा व्यक्ति-मन के साथ होने के कारण परम्परावद्ध पद्धति से इसका अनुशीलन न सम्भव है और न न्यायसंगत ।

कथावस्तु समस्यामूलक है । समस्या को लेखक एकदम नये ढंग से देख रहा है । राजनीति, धर्म तथा सम्प्रदाय से एकदम अलग हटकर तटस्थता के साथ इस समस्या की ओर देखना न केवल जरूरी है, अपितु उसकी आवश्यकता भी है । इसीलिए वे उन सभी साम्प्रदायिक तत्त्वों की खुली निन्दा करते हैं, जिन्होंने नफरत की आग फैलायी थी ।

कथावस्तु अत्यधिक यथार्थ है । यह बस्ती भारत के किसी भी प्रान्त के किसी भी हिस्से में हो सकती है । सन् १९३० से १९४७ तक इस प्रकार की प्रतिक्रिया प्रत्येक स्थान पर हुई है । इसीलिए शायद कमलेश्वर बस्ती का नाम भी नहीं देते । यह बस्ती इसी अर्थ में प्रातिनिधिक है । इस विषय पर लिखे गए अन्य उपन्यासों की बस्तियाँ सीमा-प्रदेश की ही हैं । सीमा-प्रदेश में तो काफी कुछ हुआ है । परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि 'सीमा' को छोड़कर सुदूर प्रदेशों की बस्तियों में विभाजन का कोई परिणाम ही नहीं हुआ । वास्तव में विभाजन की घटना ने इस देश के सभी तबकों को हिला दिया था । सभी ओर संदेह तथा नफरत का वातावरण पैदा हो गया था । इसी कारण 'विभाजन' से उत्पन्न मानसिक, आर्थिक तथा सामाजिक प्रतिक्रियाओं को कमलेश्वर देखना चाह रहे हैं । यहाँ प्रदेश महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण

है नफरत की आग जो मनुष्य-स्वभाव की मूल समस्या है । १६ अगस्त, १९४६ तक सारे देश मे यह नफरत की आग फैल चुकी थी । अत्याचार, मार-काट, आगजनी और बलात्कार की घटनाएँ रोज हो रही थी । सन् १९४६ से लेकर १९४८ तक सारे देश मे यही होता रहा । सन् १९३० से १९४६ तक की बस्ती का ही सूक्ष्म चित्रण इसमे किया गया है । सन् १९४७ और १९४८ मे अचानक 'नफरत' की जिस ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ था उसका चित्रण करने के बजाय वे इस ज्वालामुखी का निर्माण कैसे हुआ, इसकी खोज करना चाहते हैं। ११६ पृष्ठ के इस उपन्यास मे ९४ पृष्ठ तक तो सन् १९४५ तक का चित्रण है और बाद के पृष्ठो मे १९५० के बाद का चित्रण है । सन् १९४६ से ४८ तक की घटनाओ का वे सकेत मात्र देते हैं। अन्य साहित्यकारो ने १९४६-४८ तक की घटनाओ को ही अपने उपन्यास का मुख्य विषय बना दिया है और कमलेश्वर इन्ही दो वर्षों को छोड देते हैं । इतिहास इस बात का साक्षी है कि इन्ही दो वर्षों म भयानक घटनाएँ हुई हैं—और लेखक कमलेश्वर इन्ही दो वर्षो का मात्र सकेत देकर चले जाते हैं। क्योकि उनकी दृष्टि धधकती हुई आग की अपेक्षा उस चिनगारी पर है जिससे यह आग धधक उठी है । जिसस "सब चले गये, आदमी और आदम जात ।"[१८] इस चिनगारी की खोज करने के लिए ही वे सन् १९३०-४५ तक के समय को महत्त्व देते हैं । वे राजनीति का विवेचन विश्लेषण करते नही बैठते । उनकी दृष्टि मे तो मनुष्य का मन आलम्बन है, राजनीति उद्दीपन और बस्ती का राख हो जाना कार्य ।

विभाजन की इस समस्या को कमलेश्वर अशिक्षित और सामान्य मुसल्मानों की दृष्टि से देखना पसन्द करते हैं । आज देश म एसे ही लोगो का नाजायज फायदा उठाकर उनम नफरत की आग फैलाने का प्रयत्न कुछ शिक्षित तथा अपने को आधुनिक कहलाने वाले मुसल्मान और हिन्दू करते हैं । इसलिए दोष देना ही है तो यासीन जैसे लीगी युवक अथवा सघिया को ही । रतन, साई, मक्सूद का तो माध्यम के रूप मे उपयोग किया जा रहा है ।

अन्य उपन्यासा तथा इस उपन्यास मे एक बहुत बडा अन्तर यह है कि कमलेश्वर के मुसाफिर वापिस लौटकर उसी स्थान पर चले आते हैं, जहाँ से वे निकले थे । नफरत की आग से झुलसकर कुछ हमेशा के लिए वापिस गए, कुछ बीच रास्ते मे ही रह गए और कुछ लौट आये । कब ? जब नफरत की आग समाप्त हो गई । अर्थात् अनुकूल वातावरण का निर्माण हो गया और वे लौट आए । उनकी यह नफरत 'शाश्वत' नही थी । तो फिर कमलेश्वर क्या यह बतलाना चाहते हैं कि नफरत मनुष्य का अस्थिर धर्म है तथा सहज स्नेह, प्यार उसका स्थिर धर्म ! मनोविज्ञान की दृष्टि स जब हम इस उपन्यास पर विचार करते हैं, तब भी उत्तर मिलता है कि 'नफरत' मनुष्य का स्थिर धर्म नही है। वास्तव मे 'नफरत' मे प्रचड

शक्ति है। डा० रजा के शब्दो मे "नफरत ! यह शब्द कैसा अजीब है। 'नफरत' यह शब्द राष्ट्रीय आन्दोलन का फल है।" 'नफरत' यह शब्द तिरस्कार और घृणा के निकटवर्ती है। इसके सम्बन्ध मे शास्त्र कहता है—"किसी अरुचिकर अथवा प्रतिकूल वस्तु के साक्षात्कार अथवा उसकी कल्पनामात्र से जनित चित्तवृत्ति का सकोच ही जुगुप्सा है। अरुचिकर अथवा प्रतिकूल वस्तु के साक्षात्कार से, दर्शन से अथवा कभी उनके स्मरण से मन मे उदवेग उत्पन्न होता है, जो मनुष्य को इन वस्तुओ से दूर खिच जाने के लिए प्रेरित करता है, क्योंकि तभी वह उस असतोष, गर्हणा, एवं विरूपता की भावना से मुक्ति पाता है जो उसके भीतर उनके दर्शन या स्मरण से उद्‌भुत हुई थी। यह विकर्षण की प्रवृति भय एव क्रोध मे भी लक्षित होती है। लेकिन भय मे वह पलायन अथवा अन्य प्रकार से दैन्य-प्रदर्शन के रूप मे प्रकट होती है तथा क्रोध मे वह मनुष्य को उस प्रतिकूल विषय के विनाश या मर्दन मे प्रवृत्त करती है।"[13]

कमलेश्वर के इस उपन्यास मे यह प्रवृत्ति भय एव क्रोध दोनो रूपो मे प्रकट हुई है। इसी भय के कारण मुसलमान भारत छोडकर पाकिस्तान जा रहे थे तथा हिन्दू पाकिस्तान छोडकर भारत आ रहे थे। क्रोध के रूप मे यह प्रवृत्ति मार-काट, बलात्कार तथा आगजनी के रूप में प्रकट हो रही थी। १६ अगस्त, १९४६ के दिन कलकत्ता मे हुई घटनाएँ तथा बाद मे बिहार मे हुई इसकी प्रतिक्रियाएँ इसके प्रमाण हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि प्रतिकूल वातावरण पाकर ही नफरत की चिनगारी निर्मित होती है और वातावरण के तनाव से वह और अधिक प्रज्वलित होने लगती है। 'परिस्थितियाँ बदल जाने के बाद जो बातें पहले भयानक लगती थी, वे अब भयानक नहीं लगती। ऐसी बदली हुई परिस्थिति मे अवचेतन के भय का चेतन की निर्ममता से सामजस्य कर दिया जाए तो भय की ग्रंथि का निरावरण असभव नही कहा जा सकता।" एक दूसरा मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि मनुष्य जिस मिट्टी मे जन्म लेता है, जिस वातावरण मे बडा होता है, उसे वह कभी भी भूल नही पाता। जिस नयी बस्ती मे वह जाता है वहाँ कभी भी सुख से रह नही पाता। एक अज्ञात सा आकर्षण अपने 'मूल स्थान' के प्रति बना ही रहता है। यही कारण है कि कमलेश्वर के मुसाफिर अन्त मे लौटने लगते हैं। यही कारण है कि पाकिस्तान के सफर मे बलराज साहनी को कुछ ऐसे लोग मिल जाते हैं जो लखनौ, दिल्ली, इलाहाबाद की यादें निकालकर रोने लगते है। यही कारण है कि मण्टो का टोवा टेकसिंह भारत वापिस आना नही चाहता। किसी भी समाज अथवा जाति को जड से उखाडकर दूसरी ओर बसाना न मनोवैज्ञानिक है और न सहज है। देश-विभाजन की इस घटना के मूल मे राजनीति तो है ही। परन्तु प्रश्न यह है कि राजनीति के गन्दे तथा अमानवीय प्रस्तावो को जनता स्वीकार ही क्यो करती है? अफवाहो पर विश्वास रखकर

वह कल तक के सहज मानवीय सम्बन्धों को नकार कर खून की प्यासी क्यों हो जाती है ? इसका उत्तर है : नफरत की वह आग जो प्रच्छन्न रूप से प्रत्येक में बैठी है। परिस्थिति पाकर वह सुलगने लगती है और तभी बस्तियाँ जलने लगती हैं, इन्सानियत मरने लगती है। श्रद्धाएँ टूट जाती हैं। श्रेष्ठ मूल्यों की होली हो जाती है। नफरत की इस आग को न लगाने वाला रोक सकता है और न कोई धर्म पंडित। इस भयावह और क्रूर वातावरण मे भी ऐसे लोग होते हैं जिनके भीतर नफरत की यह आग लगती ही नहीं। नसीबन और बच्चन इसी प्रकार के लोग हैं। कमलेश्वर की श्रद्धा इन्हीं लोगों पर है। ये ही लोग लौटे हुये मुसाफिरों को उनके 'मूल से परिचित कराने में समर्थ हो जाते हैं। तात्पर्य, कमलेश्वर का यह उपन्यास समसामयिक विषय को लेकर लिखा जाने के बावजूद भी मनुष्य के कुछ सनातन मूल्यों से, समस्याओं से तथा मन की सूक्ष्म प्रवृत्तियों से सम्बन्ध रखता है। और यही कारण है कि यह उपन्यास आज भी नया है जितना पहले था, और तब तक नया रहेगा जब तक कि विस्थापितों की समस्या विश्व मे रहेगी, जब तक स्थापितों को उखाड़कर साम्प्रदायिक और प्रतिगामी शक्तियाँ उन्हें मुसाफिर बना देंगी, और जब तक ये मुसाफिर अपनी बस्ती को लौटते रहेंगे। फिर ये मुसाफिर कभी इजरायल को लौटते रहेंगे, कभी वियतनाम को, कभी बांगला देश को अथवा कभी भिवंडी को।

पिछली बार इसी नफरत की चिनगारियों ने जब भयानक रूप धारण कर लिया था और भिवंडी, जलगाँव (महाराष्ट्र) में मार-काट तथा आगजनी की घटनायें हुई थीं, तब कमलेश्वर ने डा० राही मासूम रजा के पत्र का उत्तर देते हुए लिखा था—"इन्होंने मुझे बार-बार याद दिलाया कि भिवंडी और जलगाँव वास्तव में हमारे भीतर जल रहे हैं, फिर हम कैसे बच सकते हैं ?" ऐसे नफरत-भरे वातावरण में जिन दिलों में नफ़रत की आग नहीं लगती अथवा जो ऐसी आग फैलाने में सहयोग नहीं देते ; उल्टे जो ऐसी आग फैलाने वाले को रोकने का प्रयत्न करते हैं—उन पर कमलेश्वर का विश्वास है। ऐसे ही लोगों के मौन कार्य को, उनकी मानवीयता को शब्दबद्ध करने का प्रयत्न कमलेश्वर ने इस उपन्यास में किया है।

कथावस्तु के रचना-विधान मे नवीनता है। परम्परावद्ध दृष्टि से कथावस्तु का शिल्प विकसित नहीं हुआ है। 'बस्ती' केन्द्र में रहने के कारण बस्ती से सम्बन्धित महत्वपूर्ण परिवर्तनों का संकेत लेखक देता गया है। इसी कारण कथावस्तु बिखरी-बिखरी-सी लगती है। स्थूल रूप में कहें तो १८५७ से १९६१-६२ तक के काल को इसमें स्वीकार किया गया है। ११६ पृष्ठों के इस लघु उपन्यास मे सौ वर्षों के परिवर्तन की कहानी रचना वास्तव मे एक साहस ही है। कमलेश्वर इस साहस को बखूबी निभा गये हैं। धर्म तथा साम्प्रदायिकता के कारण बस्ती में किस

प्रकार के परिवर्तन होते गये यही बतलाना इनका लक्ष्य रहा है । इसके लिए उन्होंने पूर्वदीप्ति ( Flash Back ) शैली का प्रयोग किया है । १८५७, १९३०, १९४२, १९४५ और फिर एकदम १९६०-६१ फिर १९४५-४६, १९४७, १९५० फिर १९६१-६२ इस कालक्रमानुसार बस्ती के 'परिवर्तन' को शब्दबद्ध किया है । सन् १९३० से १९६०-६१ तक इस बस्ती के 'परिवर्तन' को साई और नसीबन अपनी आँखों से देख रहे हैं । आज १९६०-६१ मे नसीबन बस्ती के इस उजडे हुए रूप को देखकर उसके भूतकाल को याद करने लगती है । और कथावस्तु आगे बढने लगती है । ऐतिहासिक और पूर्वदीप्ति इन दोनो शैलियो का प्रयोग लेखक ने इसमे किया है । इसकी कथावस्तु का पाठको के मन पर एक अमिट प्रभाव पड जाता है—यही इस शैली की सब से बडी सफलता है ।

समस्याएँ :—आरम्भ मे ही कहा गया है कि इस उपन्यास मे विभाजन की समस्या है । इस समस्या को देखने का लेखक का दृष्टिकोण किस प्रकार विशिष्ट एव अलग-सा है, इसकी चर्चा भी हम कर चुके है । वास्तव मे विभाजन का मूल आधार है *"एक दूसरे के प्रति नफरत की भावना"* पैदा हो जाना । नफरत की यह भावना मनुष्य-मन मे पैदा क्यो हो जाती है ? इस भावना को उद्दीपित करने का कार्य कौन करते है ? उनके कौन से स्वार्थ इसमे छिपे होते हैं ? 'नफरत' यह मनुष्य स्वभाव का स्थिर धर्म है अथवा अस्थिर धर्म ? आदि प्रश्नो की अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा इस उपन्यास मे की गई है चाहें तो हम कहेंगे कि इस उपन्यास की समस्या मे नवीनता नही है अपितु लेखक ने जिस दृष्टिकोण से समस्या को देखा है वह अत्यधिक नवीन, मौलिक तथा महत्त्वपूर्ण है । मनुष्य और मनुष्य के बीच जो मानवीय सम्बन्ध हैं ; उन्हें केन्द्र मे रखकर इस समस्या को देखा गया है । इस समस्या को देखते समय लेखक किसी बाहरी विचारो से प्रतिबद्ध नही है । इसी कारण वह इतनी गहराई तथा तटस्थता से सम्पूर्ण परिवर्तन को रेखांकित कर सका है । कमलेश्वर ने विभाजन की कृत्रिमता को ही साबित करने की कोशिश की है । विशेषत उस पीढी के लिए तो यह विभाजन कृत्रिम ही है जो पहले किसी और मिट्टी से जुडी हुई थी , और अब कही और बसने की मजबूरी मे है । इस विभाजन के नाम पर सामान्य लोगो का कैसे शोषण हुआ है, इसका सकेत भी उन्होने दिया है ।

'विभाजन' की समस्या के बाद इसमे आर्थिक समस्या प्रखर रूप से प्रकट हुई है । प्रगतिवादी लेखको ने इसी आर्थिक स्थिति को केन्द्र मे रखकर साहित्य लिखा है । परन्तु उनका ध्यान पूँजीपतियो और उनके अन्याय-अत्याचार पर ही अधिक हुआ करता है । यहाँ पर इसी प्रश्न को अलग कोण से देखा गया है । विभाजन का फायदा किस तबके के लोगो को हुआ ? विभाजन के बाद पाकिस्तान की ओर कौन सा वर्ग जा सका ? दीन-दलित-दरिद्री लोगो की इस विभाजन के बाद

*क्या स्थिति हुई ? आदि प्रश्न कमलेश्वर यहाँ उठाते हैं। विभाजन किस आर्थिक* व्यवस्था के कारण हुआ, इसकी अपेक्षा विभाजन के समय और तुरन्त बाद 'आम आदमी' की स्थिति कैसी हो गई, इसे वे अधिक महत्त्व देते हैं। 'इफ्तिकार' तांगे वाले के माध्यम से लेखक ने इस प्रश्न की भयानकता की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। सियासी कारकून यासीन इस कस्बे के लोगो को इकट्ठा कर साम्प्रदायिक जहर पिलाने की कोशिश करता है तब इफ्तिकार धीरे से कहता है—"असली लड़ाई तो गरीबी और अमीरी की है। मुल्क के तक्सीम होने से हमें क्या *मिल जाएगा।"*[११] *'पाकिस्तान—इस नये राष्ट्र के प्रति सामान्य मुसलमानों में इतनी* अधिक आशाएँ उत्पन्न करा दी गई थी कि सत्तार भी कभी कभी सोचता है—"शायद पाकिस्तान बनने से एक नयी जिन्दगी की हदें खुल जायें। पर रह-रहकर उसे *यह भी भ्रम होता था कि यह सब कुछ होगा नहीं ? कैसे होगा ? करोड़ो मुसलमानों* के बीच उसकी बिसात ही क्या है।"[११] इफ्तिकार इस घटना की ओर अधिक व्यावहारिक दृष्टि से देखता है। उसे यकीन है कि नया राष्ट्र बनने के बाद भी सामान्य मनुष्य की स्थिति में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन होने वाला नहीं है। इसीलिए वह कहता है—" और लगता मुझे यह है कि अगर पाकिस्तान बना भी तो अपने किसी काम नहीं आयेगा। पाकिस्तान में भी हमें तो इक्का ही हाँकना पड़ेगा।"[११] एक ओर यासीन पाकिस्तान को सुजलाम् सुफलाम् धरती साबित करते हुए बतला रहा था कि वहाँ प्रत्येक मुसलमान को सब चीजें खूब मात्रा में मिलेंगी। गरीबी नाम की चीज ही नहीं होगी। "पाकिस्तान बना ही इसलिए है कि हर मुसलमान वहाँ आराम और चैन से रहे। पाकिस्तान की सरहद पर ही जमीनें और *जायदादें बँट रही है—काम धंधे शुरू करने के लिए जिन्नासाहब की सरकार नक्द* रुपये दे रही है। अंगूर आठ आने सेर बिक रहा है "[११] एक ओर ये अफवाहें हैं, पाकिस्तान की तारीफ है और दूसरी ओर इफ्तिकार का यह वाक्य कि—*वहाँ भी हमें तो इक्का ही हाँकना पड़ेगा—है। अमीर मुसलमान अपनी-अपनी* व्यवस्था कर ले रहे थे। परन्तु गरीब ? "सभी गरीब मुसलमानों की निगाहें अमीर लोगों पर लगी थी—जो वे करेंगे, वही ठीक होगा।"[११] परन्तु क्या वे ऐसा कर सके ? "जितने भी पैसे वाले थे, वे जल्दी-से-जल्दी अपना इन्तजाम करके चले गए। गरीबों का कोई रहनुमा नहीं था।"[११] यासीन ने चिक्वों की बस्ती के गरीब मुसलमानों से यह वादा किया था कि वह उन्हें हवाई जहाज से पाकिस्तान पहुँचाएगा। चिक्वों की बस्ती के ये मुसलमान अपनी सारी पूँजी बेचकर बड़े ही नय अरमान लेकर और 'सारे मोह तोड़कर वे लोग निकल तो गए थे, पर घरों को ऐसे छोड़ गए थे जैसे वे कभी वापस आयेंगे।"[११] क्या उनके अरमान पूरे हो सके ? क्या वे पाकिस्तान पहुँच सके ? " उनके साथ का कोई भी दिल्ली तक नहीं पहुँच

पाया सब इधर-उधर बिखर गए। मुबरानी मोची आगरा में राजामंडी के चौराहे पर बैठता है और नमन वहीं की चुंगी में चपरासी लग गया है रमजानी का हाल बहुत बुरा बता रहे थे, वह बेचारा भूखों मर रहा है ''[१४] ''गई जो कुछ धेला-कौड़ी पास थी, वह तो जाने में खर्च कर दी थी वह भी पूरी नहीं पड़ी नहीं तो पाकिस्तान नहीं पहुँच जाते अब रोटियों के लाले पड़ गए हैं।''[१६] स्पष्ट है विभाजन के समय गरीब अधिक मारे गए, सताए गए और अपनी मूल बस्ती से उखाड़ भी दिए गए। अमीर मुसलमानों ने गरीब मुसलमानों की कोई खबर नहीं ली। हर बार तो यही हुआ है। विभाजन का निचले तबके पर ही वास्तव में भयानक परिणाम हुआ है। विभाजन के 'कारण' के रूप में वे इस आर्थिक व्यवस्था को नहीं देखते, अपितु विभाजन के समय जो दुर्गति इस तबके की हुई थी, उसकी ओर संकेत करते हैं।

'दो धर्मों के तनाव की समस्या' इस उपन्यास की नींव में है। क्योंकि इसी कारण तो 'विभाजन' हुआ। 'धर्म' के माध्यम से ही नफरत की 'चिनगारी' हर एक के दिलो दिमाग में डाल दी गई। स्पष्ट है कि किसी भी देश में स्थित साम्प्रदायिक शक्तियाँ धर्म का उपयोग अपने स्वार्थ के लिए किया करती हैं। जिना ने इसी धर्म का आश्रय लेकर लोगों के दिलों में नफरत की आग फैला दी। और जिना के अनुयायियों ने यह काम और उत्साह से किया। ठीक इसी प्रकार का कार्य हिन्दुओं में 'हिन्दू महासभा' और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' करते रहे हैं। ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। संभवतः प्रत्येक युग में एक ओर धर्म के आधार पर मनुष्य को मनुष्य के निकट ले आने का प्रयत्न चलता रहता है, तो दूसरी ओर 'धर्म' के आधार पर नफरत की आग फैलाने का प्रयत्न होता रहता है। 'धर्म' यह घर के भीतर की चीज है अथवा यह आध्यात्मिक उन्नति का एक साधन मात्र है—इसे दुर्भाग्य से हम अब तक समझ नहीं पाये। लीग के सियासी कारकून की अपेक्षा 'नसीबन' सही अर्थों में 'सच्ची मुसलमान' है। कुरान न पढ़ते हुए भी वह कुरान का सच्चा अर्थ व्यवहार में उतारती है। मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्ध तो धर्म से परे हैं, और धर्म से भी बड़े। धर्म तो एक माध्यम है—इन सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए। मनुष्य के भीतर की मानवीय शक्तियों—प्यार, ममता, करुणा, स्नेह, ईमान—को विकसित करने की धर्म की कोशिश है। परन्तु दुर्भाग्य से इस धर्म का उपयोग 'नफरत की आग' फैलाने के लिए हो रहा है। जो अन्न है उसे विष बनाया जा रहा है। स्पष्ट है कि कमलेश्वर साम्प्रदायिक शक्तियों को अत्यधिक दोषी ठहराते हैं। इन्हीं शक्तियों के कारण तो 'नफरत' की भावना उद्दीपित हो गई और "सिर्फ नफरत की आग ने इस बस्ती को जलाया था।"

**चरित्र** इस बस्ती में जीने वाले प्रत्येक पात्र का अपना महत्त्व है। नसीबन,

सतार, साईं हमारे मन पर अधिक छा जाते हैं । अपनी ममतामयी दृष्टि के कारण, विशाल मातृ हृदय के कारण नसीबन; भावुक तथा प्रेमी के रूप मे सत्तार तथा साम्प्रदायिक बहकावे मे आकर बस्ती को खाक करने वाले साईं—पाठको का ध्यान बरबस अपनी ओर खीच लेते हैं । इन तीनो पात्रो को छोडकर अन्य पात्र अनावश्यक हैं—ऐसा इसका कदापि अर्थ नही है ।

नसीबन नसीबन सम्पूर्ण उपन्यास पर छा गई है । आज सन् १९६०-६१ म बूढी नसीबन उदास निगाहो से बस्ती की ओर देख रही है । स्वतन्त्रता के इन १४-१५ वर्षो बाद इस बस्ती मे काफी नये परिवर्तन हुए हैं । नयी जिन्दगी यहाँ आ रही है । परन्तु नसीबन को इस नयी जिन्दगी के प्रति कोई उत्साह नही । क्योकि यहाँ अपना कोई नही है । सब चले गए । नफरत की आग ने सब को झुलसा दिया । १९२५-३० के समय यह बस्ती बडी खूबसूरत थी । "लेकिन जब तक अपने कहे जाने वाले अपने पास न हो, नई जिन्दगी भी बहुत पुरानी और बोझिल लगती है । वही बोझ सा था नसीबन के दिल पर ।"[१] इस नसीबन की स्मृतियो के माध्यम से बस्ती के पूरे भूतकाल को जीवन्त कर दिया गया है । 'नसीबन' इस बस्ती की सब से स्पष्टवादी तथा निर्भय स्त्री है । उसने जिन्दगी के उतार-चढाव देखे हैं । उसकी आँखें आदमी को झट से पहचानती हैं । इसी कारण सत्तार जब पहली बार इस बस्ती मे आया और साईं ने परिचय करवाया तो—"नसीबन ने गहरी नजरो से सत्तार की ओर देखा था, जैसे वह सब जानती हो कि यहाँ आकर वह कौन-सा काम शुरू कर सकता है ।"[२]

किसी दूसरे की व्यक्तिगत जिन्दगी मे दखल देना नसीबन को जरा भी पसन्द नही । साईं के ठीक उलटा उसका यह स्वभाव है । वह तो सब को अपनी सहानुभूति और स्नेह देती रहती है । सलमा और सत्तार के सम्बन्ध को लेकर साईं जब उन्हे खूब डाँटता है, तब नसीबन को यह सब ठीक नही लगता । उसके अनुसार "इस सब से क्या फायदा हुआ साईं ? सारी दुनिया की जिम्मेदारी क्यो ओढ ली है तुमने, साईं ? जिसके जो मन मे आता है, करने दो, तुम टाँग क्यो अडाते हो ?"[३] वह यह समझती है कि जिन्दगी अपने ढर्रे से चल रही है, चलती रहेगी । इस जिन्दगी की करवट को बदलने का अथवा उसमे नफरत की आग फैलाने का नापाक काम हमे नही करना चाहिए । सलमा और सत्तार दोनो बडे हैं, अगर वे आपसी सम्बन्ध रखना चाहते हैं, तो उन्हे क्यो रोका जाए ? और फिर सलमा बडी ही बदनसीब औरत है । सत्तार कोई बुरा आदमी नही है । परन्तु यह साईं "इसीलिए वह सोचती है "बूढा साईं भी बहुत नासमझ है । यह क्यो नही समझता कि जिन्दगी आखिर जिन्दगी है, वह किसी की बनाई लकीरो पर चलने वाली मुर्दा चीज नही ।"[४] नसीबन हर एक दुःख पर मरहम लगाना चाहती है । मरहम किस चीज का ?

"लेकिन दुनिया मे बहुत-से ऐसे जख्म होते हैं जिनका मरहम बात कर लेना ही होता है।"[11] धीरे धीरे इस बस्ती मे देश के राजनीतिक आन्दोलनो की खबरें आने लगी। मक्सूद और यासीन भी साम्प्रदायिक जहर लेकर इस बस्ती म आ गए। और सभी भी अपने ढग से इस जहर को फैलाने की कोशिश मे हैं। बस्ती के बूढ़े, नौजवान और बच्चे अग्रेजो के प्रति चिढ़ गए हैं। सत्तार इतना ही समझ गया है कि "वह तो मैं नही जानता, लेकिन इतना मुझे पता है कि अग्रेज हमारे दुश्मन हैं हिन्दोस्तान के दुश्मन हैं और इन्हें मार भगाना हमारा फर्ज है।"[12] नसीबन इस बात से घबरा जाती है—सत्तार के प्रति सहज स्नेह के कारण। उस अशिक्षित स्त्री को लगता है कि अग्रेज तो सर्वाधिक शक्तिशाली हैं, अकेला सत्तार उन्हे कैसे मार सकेगा? इसीलिए वह कहती है—"सुन, मेरे पास एक असली लोहे की गुप्ती है तू इधर आ तो, मैं तुझे दे दूँ- किसी से कहियो मत, समझा।"[13] स्पष्ट है कि नसीबन अग्रेजो को मारने के लिए गुप्ती दे रही है। परन्तु इस गुप्ती देने के मूल म अग्रेजो के प्रति चिढ नही, सत्तार के प्रति सहज वात्सल्य से निर्मित चिन्ता ही है।

नसीबन और बच्चन को लेकर इस बस्ती मे तरह-तरह की अफवाहें हैं। इन अफवाहो को फैलाने का कार्य साई, मक्सूद और यासीन ने ही किया है। बस्ती के एक हिन्दू परिवार 'बच्चन' के यहाँ नसीबन अक्सर जाती है। बच्चन की पत्नी मर चुकी है और उसके दो छोटे-छोटे बच्चे हैं। ये दोनो बच्चे नसीबन के बच्चो के दोस्त हैं, साथी हैं। विशाल हृदया नसीबन इन बच्चो की अनाथावस्था देख नही पाती। इसीलिए वह इन्हे माँ का प्यार देती है। लोग इसी सहायता का मतलब निकालते हैं कि नसीबन और बच्चन दोनो मे गल्त सम्बन्ध हैं। बच्चन के लड़के रमुआ के पाँव की हड्डी टूट जाने के बाद तो नसीबन "रातभर वहीं रमुआ के बिस्तर के पास बैठी रही। बच्चन ने कहा कि वह कुछ देर सो ले, पर वह नहीं हटी, "मरद नहीं समझ सकते बाल-बच्चो का सुख-दुख।"[14] साईं, मक्सूद और यासीन निरपराध बच्चन को एक चोरी के काड मे फँसा देते हैं और बच्चन जब घर से मारा-मारा फिरने लगता है, तब नसीबन ही उसके बच्चो की देखभाल करती है। "पता नहीं कैसा बाप है, जो अपने बच्चो तक का ख्याल नही रखता। इतनी रात उतर आई, घर मे बच्चे अकेले पड़े होंगे—भूखे-प्यासे और यह पट्ठा घूम रहा है। अजीब आदमी है बड़बड़ाती हुई नसीबन बाहर निकल गई। सत्तार ने देखा, उसकी बगल में रोटियो की पोटली थी और गिलास मे सालन।"[15] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नसीबन का मातृहृदय सम्प्रदाय और धर्म को भी लाँघ गया है। निस्वार्थ भाव से वह बच्चन के बच्चो की देखभाल करती है। इतना ही नहीं, उसे हर बार आने वाले खतरे से आगाह कर देती है। जब बच्चन के आने की सभावना नही

दिखती, तो उन बच्चो को सीधे अपने घर ले आती है, यह कहते हुए—"जो होगा सो देखा जाएगा।"[२८] इसप्रकार हिन्दू के बच्चो को एक मुसलमान स्त्री द्वारा अपने घर रख लेना किसी को पसन्द नही। और जब इस हिन्दू को एक अपराध के सिलसिले मे पकडने की कोशिश की जा रही है, तब तो बात और भी भयानक है। इसी कारण साईं उसे समझाने का प्रयत्न करता है। कस्बे के अधिकतर लोग यही समझते हैं कि *यह तो बच्चन और नसीबन के बीच की 'आशनाई' है।* इन गलत, गन्दे और विकृत आरोपो से नसीबन को चिढ है। इसीलिए वह कहती है—" अब पचास के आस-पास आकर क्या यही सब बाकी रह गया है मेरे लिए 'इस उमर मे हूँ और लोगो को शरम नही आती ऐसी बातें करते हुए "[२९] वह यह साफ जानती है कि "बच्चन का चोरी मे कोई हाथ नहीं है।"

नसीबन तो कह रही है कि उसके मन मे बच्चन के प्रति ऐसी कोई भावना नहीं है तो फिर क्या बच्चन उसे कुछ अन्य निगाहो से देखता है ? "पर जब बस्ती म उसे लेकर फुसफुसाहट शुरू हुई थी, तो बच्चन ने पूरी आँखें खोलकर नसीबन को देखा था शायद कही पर शायद कुछ पर दूसरे ही पल उसे अपने पर गुस्सा आया था और मन उचाट हो गया था नसीबन के बाएँ हाथ की बीच वाली अँगुली से टूटा हुआ नाखून उसे बार-बार कुछ याद दिलाता था जब माँ मरी थी और उस पर कपडा डाल दिया गया था तो बायाँ हाथ मूल से बाहर रह गया था और उसकी बीचवाली अँगुली का नाखून कुछ इसी तरह टूटा हुआ था।"[३०] स्पष्ट है कि न नसीबन के मन म बच्चन के प्रति और न बच्चन के मन मे नसीबन के प्रति इस प्रकार के भाव थे। *और फिर बच्चन केवल अपने मन की* तुष्टि के लिए, किसी के प्रति अतृप्त चाह की पूर्ति के लिए मन-ही मन किसी स्त्री की काल्पनिक कहानी कहता है, तो सत्तार को इस काल्पनिक कहानी में नसीबन ही झाँकती हुई मिल जाती है। सत्तार को बच्चन पर चिढ आ जाती है। जो स्त्री शुद्ध मातृ-हृदय स उसकी ओर आकृष्ट हुई है, उसके सम्बन्ध मे बच्चन यूँ कुछ कहे, उसे बिल्कुल मान्य नहीं था। इसी कारण जब वह नसीबन स सब कुछ साफ-साफ कह देता है तब—"उसने नसीबन की आँखों मे झांका था—वहाँ बादल-से घुमड रहे थे और एक उठता हुआ सैलाब नजर आ रहा था।"[३१] और वह इतना ही कह *पायी—"खैर, वह अपनी जाने।"*[३२] *यही स्वभाव है नसीबन का।* "*खैर, वह अपनी* जाने" मैं तो वही करूँगी, जो मुझे और मेरे ईमान को ठीक लगता है। अशिक्षित नसीबन केवल वही करती रही जो उसे ठीक लगा। बच्चन, सत्तार, सलमा आदि *के प्रति अपना कर्तव्य करते हुए उसने एक क्षणभर के लिए भी यह नही सोचा कि* वे क्या सोचते होंगे अथवा लोग क्या कहेंगे। "खैर, वह अपनी जाने" इस सक्षिप्त से उत्तर मे कर्तव्य के प्रति उसकी तटस्थता की अभिव्यक्ति हुई है। परिस्थिति जब

और अधिक भयानक हो गई और पाकिस्तान बनने का जब ऐलान हो गया तब बच्चन ने आदमी भेजा था, अपने बच्चे ले आने के लिए। नसीबन ने सत्तार के साथ उसके दोनों बच्चे भेज दिए थे। तब उसकी मन स्थिति—" दिनभर नसीबन बहुत उदास रही। रात को जब सत्तार दोनों बच्चों को लेकर चलने लगा, तो नसीबन ने एक पोटली उसके हाथ में थमाई थी।—'यह भी बच्चन को दे देना। उसके जेवर हैं।'"[११] केवल जेवर ही नसीबन ने नहीं दिए हैं, जेवर के साथ-साथ कुछ चांदी के रुपये भी हैं। ये रुपये उसके अपने हैं—क्योंकि 'हैं तो अपने, पर बिपदा में घिरा है बिचारा इधर चोरी-छिपे रहते हुए काम धाम भी नहीं कर पाता होगा, ऊपर से बच्चे जा रहे हैं, कुछ जरूरत भी तो पड़ेगी उसे कह देना, अपने समझकर ही खर्च कर ले। कोई बात मन में न लाए।'"[१२]

क्या कहें इस नसीबन को? जो बच्चन उसकी बदनामी कर रहा है, उसे यह रुपये दे रही है, जो उसने पेट काट-काटकर जमा किए थे। 'नसीबन' इसी कारण तो बहुत ही ऊँची उठ जाती है। इस सामान्य चरित्र के भीतर की यही तो असामान्यता है। उसकी इसी असामान्यता के कारण "सत्तार कुछ कह नहीं पाया था, कुछ भी कहते हुए जैसे वह अपनी नजरों में अब बहुत छोटा हुआ जा रहा था।"[१३]

अन्य पात्रों की तुलना में नसीबन निर्भीक है तथा स्पष्टवादी। इन्हीं दो गुणों के कारण वह साई को कई बार झिड़कती है। उसकी इस निर्भीकता का सब से बड़ा प्रमाण सभी लोगों के साथ उसके व्यवहार में मिलता है। बच्चन के हिन्दू बच्चे एक मुस्लिम स्त्री के घर में हैं यह सुनकर सभी लोगों का एक दल नसीबन के घर पर आता है। सधियों के प्रति मुस्लिमों के मन में 'डर' की भावना है ही। परन्तु नसीबन इसको निरुत्तर कर देती है। सभी लोग जब उस पर यह आरोप लगा देते हैं कि "हमें पता चला है कि आप दो अनाथ हिन्दू बच्चों का धर्म-परिवर्तन करने वाली हैं यह हो नहीं सकता।"[१४] तब नसीबन इतना ही कह पाती है "क्या धरम" उसे और अधिक परेशान करने के बाद वह कह देती है—"बच्चे किसी अनाथालय में नहीं जाएँगे। हम यह झंझट जानते नहीं, रही उनके मुसलमान होने की बात, सो सोलह आने गलत है।"[१५] और इसके बावजूद भी सभी लोग बच्चों को माँगते ही हैं तो नसीबन कहती है—"अरे बच्चे हैं ये, कोई काठ-किवाड़ तो नहीं जो पड़े रहेंगे यहाँ। खूब आये आप लोग बच्चे हवाले कर दो। वाह भई वाह! जो करना हो करो जाकर पुलिस नहीं, कप्तान को बुला लाओ। अरे हम काहे को बनाएँगे किसी को मुसलमान हमारे क्या बाल-बच्चे नहीं हैं हाँ नहीं तो" बड़बड़ाती हुई वह भीतर चली गई और गुस्से में ही उसने किवाड़ लगा लिए।"[१६] सघी-स्वयंसेवक अपना-सा मुँह लेकर खड़े थे। स्पष्ट है कि नसीबन इन

बच्चो को किसी भी स्थिति मे पराये के हाथो मे देना नही चाहती।

विभाजन के बाद धीरे धीरे लोग पाकिस्तान की ओर निकल पडे। परन्तु नसीबन इस बस्ती को छोडकर जाना नही चाह रही थी। उसे इस बस्ती से अत्यधिक प्यार था, *तथा यूँ अपनी मिट्टी को छोडकर जाने की बात उसे बडी अजीब-सी लगती* है। इफ्तिकार जब उससे पूछता है—"तुम जा रही हो" "कहाँ जाऊँगी ?" "जहाँ और सब जा रहे हैं।" नसीबन हँस दी। उसकी हँसी मे कोई अर्थ नही था।'[११] वह यह समझती ही नही "आखिर घर-बार छोडकर लोग गए हैं। कई-कई पुश्तो के नाल यही गडे है ऐ खुदा।"[१५] और इसी कारण बस्ती उजड जाने के बाद भी वह वही रहती है। आज इस घटना को हुए १४-१५ वर्ष बीत गए। परन्तु आज भी नसीबन को लगता है कि सब लोग कल तक तो यही पर थे। यह सब क्या हुआ है ? यह बस्ती यूँ उजड क्यो गई है ? आज जब कभी 'नसीबन का मन डूबता, वह उधर ही ताकने लगती और उसे वे दिन याद आते जब वह बस्ती के बच्चो को खोजती हुई वहाँ जाया करती थी '[११] नसीबन शायद किसी अनागत की प्रतीक्षा मे है। इसीलिए वह उन रास्तो की ओर ही देखते रहती है, जो बस्ती की ओर आते हैं। एक दिन उसकी यह प्रतीक्षा समाप्त हो जाती है। क्योकि वह अनुभव करती है कि सात आठ नौजवान इसी बस्ती की ओर आ रहे हैं। "और मिनट भर मे सारी पहचानें उभर आयी थी उन्ही गए हुए और बिखर गए घरानो के बच्चे अब मजदूरी करने के लिए फिर लौटे थे और अपने पुराने घरो की जगह खोज रहे थे चलते वक्त उनके अब्बा या घर-वालो ने बताया था—"उधर अपने घर है।'[११] इनके आ जाने से "नसीबन खुशी से रो पडी थी। और उन्हे अपने साथ ले गई थी उन निशानो के पास जो *अब भी बाकी थे* "[११]

नसीबन के इस चरित्र के विकासात्मक अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं—

नसीबन का मन 'अपरिवर्तनशील' है। अर्थात् अन्य पात्रो मे जिस प्रकार नफरत की चिनगारी फैलती जाती है और उनमे जो भयानक परिवर्तन दिखाई देता है, उसका यहाँ पूर्णत अभाव है। सहज मातृ हृदय को लेकर वह जीती रही। इस मातृ हृदय पर बाहरी बातो का, अफवाहे निन्दा अथवा बदनामी का कोई असर नही हुआ। 'बच्चे' यह नसीबन की बहुत बडी कमजोरी है और उसकी विशेषता थी। "*उसकी आँखो मे असीम ममता थी* उन बच्चो के लिए और शायद अपने लिए गहरा सन्नाटा।"[१६] सलमा, सत्तार, बच्चन तथा इफ्तिकार के लिए भी उसके मन मे इसी प्रकार की ममता है। प्रत्येक के दुख से *वह सहज रूप से घुल मिल* जाती है। उनके दुखो के निराकरण के लिए वह प्रयत्नशील हो जाती है। दुखो

के इसी अद्वैतीकरण के कारण वह सबको स्वीकार करके चलती है।

प्रवाह के साथ वह बहती नही, अपितु 'स्थिर' रहकर दूसरो को सहारा पहुँचाती है। वास्तव मे इस जलती हुई बस्ती मे वह 'ओएसिस' की तरह है। अपनी मिट्टी से उसे बेहद प्यार है। इसी कारण वह यह नही समझ पाती कि लोग अपनी बस्ती को छोड़कर हमेशा के लिए दूर कैसे जा सकते हैं। 'नफरत' की इस चिनगारी से उसे चिढ है। इस चिनगारी को फैलाने वालो को वह कभी स्वीकार नही कर पाती। साईं को वह अन्त तक समझाते रहती है कि वह जो कुछ कर रहा है वह गलत है और इसके बुरे परिणाम होने वाले हैं। इसी कारण "अब साईं भी दुखी था और किसी हद तक अपनी गलती मन-ही मन स्वीकार कर चुका था।"[11] साईं के इस पश्चात्ताप-दग्ध वाक्य के नसीबन के चरित्र की ही विजय है। अशिक्षित होते हुए भी वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन मे अन्तर मानती है।

नसीबन अत्यधिक स्वाभिमानी है। किसी के अपमान अथवा गलत व्यवहार को वह सहन नही कर पाती। स्वाभिमान के कारण वह साईं को डाँटती है, सघी रतन को मुँहतोड़ जवाब देती है। बन्वन के गहने, रुपयो के साथ लौटा देती है। वह स्वाभिमानी ही नही, जिद्दी भी है। इसी कारण वह सब का विरोध सहते हुए भी बन्वन के बच्चो को सहारा देती है, सत्तार को रहने के लिए अपनी जगह देती है तथा सलमा के साथ सहानुभूति जताती है।

बन्वन के स्वभाव को समझ जाने के बाद तो उसे उसका तिरस्कार करना चाहिए था, पर वह नही कर सकी। तिरस्कार और नफरत ये उसके स्वभाव मे है ही नही। उसका तो लक्ष्य है—कर्तव्य करते जाना। लोग क्या कहते है या कहेंगे, पर विचार करने वह कभी नही बैठती। यह नसीबन की त्रासदी है कि उसकी मन स्थिति को समझने वाला कोई नही था—सिवा सत्तार के। उसके पास अपने लिए केवल गहरा सन्नाटा है। उसके बारे मे इतना ही कहना होगा "She is just a silent flame of love" प्यार और स्नेह की शात ज्योति की तरह उसका व्यक्तित्व है। स्नेह की वह ममतामयी मूर्ति है।

नसीबन जिस मार्ग पर से जा रही थी वही मार्ग श्रेष्ठ, व्यावहारिक और विधायक था—यह अन्त मे सिद्ध हो जाता है। साईं भी इसे स्वीकार करता है। वास्तव मे नसीबन का चरित्र लेखक के विश्वासो का प्रतीक है। वह मानवतावादी भावना का श्रेष्ठ मानवी मूल्यो का, करुणा, उदारता, सहजता, स्नेहशीलता, स्पष्टता, निर्भयता, धर्मनिरपेक्षता का प्रतीक है।

धर्म और सम्प्रदाय से भी ऊपर उठकर केवल मनुष्य मात्र को लेकर सोचने वाली यह अशिक्षित गँवार स्त्री हजारो पढे लिखे परन्तु सकुचित और साम्प्रदायिक

लोगो को पराजित कर देती है, अपने इन्ही मानवीय गुणो के कारण।

साई :— एक ओर नसीबन प्रवाह-पतित न होते हुए अपने व्यक्तित्व तथा मानवीय भावो की गरिमा अन्त तक बनाए रखती है तो दूसरी ओर साई प्रवाह के साथ वह जाता है। 'नफरत' की चिनगारी उसके भीतर प्रज्वलित हो उठती है और इसीलिए वह इस चिनगारी को और अधिक लोगो मे फैलाने लगता है। साई फकीर है। ऐसे फकीर भारत के किसी भी बस्ती मे पाए जाते हैं। नफरत की यह चिनगारी साई के भीतर प्रचलित होने के पूर्व साई आम भारतीयो की तरह सबके साथ मिल-जुलकर रहा करता था। "*जुम्मन साई की कोठरी के सामने धूनी रमी रहती थी।* इक्के और तागे वाले, स्टेशन के कुली और छोटे दूकानदार वहाँ शाम को इकट्ठे होते और गप्पें लडाते।'[66] जुम्मन साई की चिकवो की इस बस्ती मे काफी इज्जत थी। 'साई ही इस बस्ती के सभी झगडो का निपटारा किया करता था।'[67] साई जैसे बाहर से दिखता है, वैसे भीतर से नही। "यूँ साई दुनिया की बातो से बहुत दूर होने का नाटक करता था, पर भीतर ही-भीतर वह उसी मे रमा हुआ था। उसकी सुरमा लगी आँखे बाज की तरह तेज थी। वह हरफ निगाह रखता था।'[68] इसी कारण वह सलमा और सत्तार के व्यक्तिगत जीवन मे झाँकता है। साई खुद को इस बस्ती के मुसलमानो का प्रमुख मानता है। इसी कारण वह प्रत्येक के व्यक्तिगत जीवन की पूछताछ करते रहता है। यह साई के व्यक्तित्व की *कमजोरी ही है। इसी कारण नसीबन द्वारा बार बार डाँटने पर* भी वह दूसरो की जिन्दगी मे टाग अडाते रहता है। वह लोगो को यह बतलाता है कि सारी दुनिया की जिम्मेदारी उसने ओढ ली।

अलीगढ का सियासी कारकून यासीन और सलमा का पति मकबूद के कारण साई 'साम्प्रदायिकता' के जहर को फैलाने लगता है। इन लोगो के आने से पहले

"रोजाना यह सब देखते हुए साई निकल जाता था। सब जैसे के तैसे रहते आ रहे थे और अपने कटोरे मे पैसे खटका हुआ और तूँबी लिए हुए जब वह लौटता, तो जैसे शहर-भर का दर्द बटोर लाता।"[69] तब जुम्मन साई की बैठक म मुसलमान तागे वाले और हिन्दू कुली समान रूप से आकर बैठते थे। "इक्के वाले ज्यादातर मुसलमान थे और कुली हिन्दू, पर उनमे कही भी फर्क नही था। सब पर जमाने की मार थी और सब के नासूर एक-से रिस रहे थे और सब के मसले समान थे। उन्हे धर्म-चर्चाओ से मतलब नही था, पर इससे मतलब जरूर था कि धर्म उन जैसे बदनसीबो के लिए क्या कहता है?"[70] परन्तु यासीन और मकबूद के आने के बाद हिन्दू और मुसलमानो के मसले बदल दिए जाते हैं। यासीन उन्हे बत-*लाता है कि हिन्दू, हिन्दू हैं और मुसलमान, मुसलमान। परिणामत साई भी इसी* दृष्टि से सोचने लगता है और अब उसकी बैठकें मस्जिदो मे, और वह भी केवल

मुस्लिमों की ही होने लगती हैं और साई कहने लगता है; "कानगरेस तो हिन्दुओं की जमात है।" अथवा—'हिन्दू नेता यह चाहते हैं कि वे मुसलमानों को साथ लेकर अभी तो अंग्रेजों से हुकूमत छीन लें, बस । बाद में वे मुसलमानों को अँगूठा दिखा देंगे, यही उनकी चाल है।" साई के इन वक्तव्यों से स्पष्ट है कि वह प्रवाह-पतित हो रहा है। 'धर्म' के असली स्वरूप को जानते हुए भी वह अनजान बन रहा है। यासीन और मक्सूद के कारण वह साम्प्रदायिक आग भड़काने के लिए प्रयत्नशील है। बच्चन के बच्चे उसे 'हिन्दू' लगते हैं केवल बच्चे नहीं। अथवा बच्चन-नसीबन में वह गलत सम्बन्ध देखने लगता है। हर हिन्दू उसे अब मुस्लिम कौम के शत्रु लगने लगते हैं। इसी कारण वह लोगों को समझाने बैठता है—"हम सिर्फ अपनी कौम पर भरोसा कर सकते हैं। हिन्दू और अंग्रेज दोनों दगा देंगे हमें।" सत्तार जब साई, मक्सूद और यासीन की नीतियों का विरोध करता है, तो साई उस पर न केवल चिढ़ जाता है अपितु "साई ने उसी रात सत्तार को मस्जिद की कोठरी से निकलवा दिया था।" *आखिर सत्तार भी तो एक मुसलमान* ही है। परन्तु साई को ऐसे व्यक्तियों से चिढ़-सी हो गई है जो इस प्रकार साम्प्रदायिकता को उभरने नहीं दे रहे हैं, जो विभाजन के विरोध में हैं। पूरी बस्ती में साई के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जानने वाला एक ही व्यक्ति मौजूद है—इफ्तिकार तांगे वाला। इसी कारण इफ्तिकार साई की प्रत्येक नीति का विरोध करता है। सत्तार की विचारधारा को भी वही सही दिशा देता है। इफ्तिकार एक स्थान पर साई के सम्बन्ध में कहता है—"यह साई बड़ा घुटा हुआ आदमी है, सत्तार! शहर भर में घूम घूमकर यह करता क्या है? जितने बुरे फेलवाले लोग हैं, सबसे दोस्ती है इसकी। इसके अल्लाह का क्या वास्ता?" स्पष्ट है कि उसकी 'कथनी' और 'करनी' में अन्तर है। इसको किसी षड्यन्त्र में फँसाना भी मुश्किल है। क्योंकि "पुलिसवालों से बड़ी घुटती है उसकी।" पुलिसवालों के साथ इसी घनिष्ठता के कारण साई निरपराध बच्चन को चोरी के मामले में फँसा देता है। उसके बच्चों को निराधार बनाता है और बच्चन की सारी जानकारी सत्तार को है, इस सन्देह से सत्तार को भी पुलिस की ओर से पिटवाता है। साई नसीबन के विशाल मातृ-हृदय को समझ नहीं सका है।

पाकिस्तान के प्रति इतना आग्रह रखनेवाला, लोगों के दिलो दिमाग पर 'पाकिस्तान' इस नये राष्ट्र का नशा चढ़ानेवाला साई खुद पाकिस्तान नहीं जाता। इस बस्ती के प्रति उसके मन में जो मोह है उस कारण वह नहीं गया अथवा कुछ अन्य कारण थे; नहीं मालूम। लगता ऐसा है कि बस्ती के मोह के कारण ही वह जा नहीं सका है। इस उजड़ी हुई बस्ती को देखकर साई अक्सर निराश हो जाता है और "अब साई को दुःखी था और किसी हद तक अपनी गलती मन-ही-मन स्वी-

कार कर चुका था।'[५७] लेखक के इस अन्तिम वाक्य के कारण साई के चरित्र पर दूसरे ढंग से विचार करना पड़ता है। पश्चात्ताप के इस वाक्य से ही स्पष्ट है कि साई मूलतः बुरे स्वभाव का नही है। मनुष्य-मन की कमजोरियाँ उसमे है औरो के विचार प्रवाह म वह जल्दी बह जाता है। उसके पास किसी निश्चित सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक दृष्टि का पूर्णतः अभाव है। दृष्टि के इसी अधूरेपन के कारण वह यासीन और मक्सूद के विचारो से बहक जाता है। दूर दृष्टि का अभाव रहने के कारण ही वह इस नफरत की आग को फैलाते जाता है। धर्म और सम्प्रदाय से परे हटकर सहजता से जीने वाले लोगो के जीवन मे ऐसे लोग व्यर्थ का तूफान निर्माण कर देते है।

'किसी के व्यक्तिगत जीवन मे प्रवेश करना'—यह साई की चरित्रगत कमजोरी है। स्वाभिमान भी इसमे नही है। इसी कारण सत्तार, सलमा और नसीबन द्वारा अपमानित होने के बाद भी वह उनके साथ बाते करता है। इस व्यवहार के मूल म उदारता' नही धूर्तता है। अपने अपमान का बदला वह बहुत ही बुरे और विकृत पद्धति से लेना चाहता है। मानसिक दृढता का भी उसमे अभाव है। पश्चात्ताप उसे तब होता है जब बस्ती पूर्णतः खाक हो जाती है। असल मे धोखा ऐसे ही लोगो से अधिक है, जो धर्म का चोला पहनकर धर्म के विरोध मे कार्य करने लगते हैं।

**सत्तार** — सत्तार किसी दूसरे कस्बे से इस कस्बे मे आया था। इसके पहले वह किसी सर्कस कम्पनी मे घोडो की जीन कसा करता था।'[५८] शहर म साईं से उसकी मुलाकात हुई थी। वही से साईं उसे इस बस्ती मे ले आया था। शहर से इस बस्ती की ओर आते समय ही सत्तार के कानो मे 'पाकिस्तान' की भनक पड चुकी थी। इसीलिए वह साईं से कह रहा था—'लगता है अब अपना पाकिस्तान बन जायेगा शायद एक बेहतर जिन्दगी मिले मुसलमानो को यहाँ तो बनी गरीबी है, न करने को काम, न रहने को जगह।'[५९] पाकिस्तान के प्रति सत्तार के मन मे आरम्भ मे इस प्रकार का आकर्षण था। परन्तु इस बस्ती म आने के बाद धीरे धीरे उसका यह आकर्षण समाप्त हो जाता है। रफिकार तागेवाला और नसीबन के कारण भविष्य मे बनने वाले इस 'पाकिस्तान' के प्रति उसकी हमदर्दी खत्म हो जाती है और यासीन मक्सूद के कारण तो वह इस नये राष्ट्र का विरोध करने लगता है।

'इस बस्ती की मस्जिद की बाहर वाली एक कोठरी मे सत्तार को रहने की जगह मिल गई थी।'[६०] नसीबन से उसका परिचय यही पर हुआ और सलमा से भी परिचय हो गया। सलमा का परिचय धीरे धीरे प्यार मे बदल गया। प्यार—जिसमे

शारीरिक प्यास ही अधिक है। शहर से आए हुए इस युवक का बस्ती की किसी विवाहित स्त्री से इश्क शुरू हो गया है—यह सुनकर साईं भड़क उठता है। इसी कारण उसकी "कोठरी पर पेशी भी हुई।"[४८] इस पेशी के बाद सत्तार यह अनुभव करता है कि सलमा और उसे लोग उनकी इच्छा के अनुसार जीने नहीं देना चाहते और फिर इसके कुछ ही हफ्तों बाद—"पर इधर पिछले कुछ हफ्तों से नसीबन देख रही थी कि सत्तार बहुत उदास रहने लगा था।"[४९] इस उदासी का कारण सलमा के पति मकसूद का लौट आना है।

*मकसूद के वापिस आ जाने के बाद से ही सत्तार की जिन्दगी में जो उदासी* छा जाती है, वह उसकी मृत्यु तक बनी रहती है। सत्तार अब अपने को बेहद अकेला अनुभव करने लगता है। उसे यह मालूम है कि सलमा को मकसूद पसन्द नहीं है। मकसूद के यहाँ से तो वह भाग आई है। फिर वह तलाक देकर उससे शादी क्यों नहीं करती? सलमा की अपनी कुछ मजबूरियाँ हैं। "और एक दिन सलमा भागी-भागी आई थी और सिर्फ इतना ही कहकर चली गई थी कि "कल रात मुझे पीपल वाले घर में मिलना "[५०] शायद वह कुछ ठोस निर्णय लेना चाहती है। शायद वह अपने पति से तलाक लेना चाहती है। इसी सिलसिले में वह सत्तार से बात करना चाहती है और सत्तार उस रात "सोता ही रह गया था यह क्या हुआ? वह समझ ही नहीं पाया। यह कैसे हुआ और क्यों हुआ।"[५१] "और उस रात के बाद सलमा बदल गई थी। साथ ही दूसरे दिन सत्तार को अस्पताल की नौकरी से भी जवाब मिल गया था।"[५२] सत्तार अब अपने को अत्यधिक अकेला और निराश अनुभव करने लगता है। नेताओं के भाषण सुनकर वह अंग्रेजों को मारने की तैयारियाँ शुरू कर देता है। यह सुनकर सलमा उसे मिलने का प्रयत्न करती है। परन्तु सत्तार बस इतना ही जवाब देता है "*अब मिलकर क्या करूँगा* उससे कहना जब मर जाऊँ तो मेरी कब्र पर मिलने चली आये, वहीं मुलाकात होगी।"[५३]

साम्प्रदायिकता की आग इस बस्ती में फैलने लगी। यासीन और मकसूद इस आग को फैलाने की पूरी कोशिश कर रहे हैं। सत्तार को ये साम्प्रदायिक बातें ठीक लगती थीं। इसी कारण तो वह सोचता है कि "नसीबन को उसको गुप्ती ही वापस कर आये, क्योंकि अब वह हिन्दुओं के साथ मिलकर अंग्रेजों को मारने में मदद क्यों दे।"[५४] और फिर यह भी सोचता है कि इस प्रकार हिन्दुओं से नफरत करके वह सलमा के पति और उसके दोस्त की बातों की इज्जत कर रहा है, उन्हीं के इशारे पर चल रहा है। इसीलिए फिर वह तय करता है कि—"वह ऐसा कोई भी काम हरगिज नहीं करेगा जिसमें मकसूद का हाथ हो।"[५५] सत्तार की द्वन्द्वात्मक स्थिति अन्त तक रहती है। साम्प्रदायिकता की ओर वह नहीं बढ़ सका, इसके पीछे यही

मनोवैज्ञानिक कारण है। यासीन और मक्सूद के स्थान पर कोई और होता तो सत्तार भी इस आग को और फैलाता। विभाजन और नफरत की ओर देखने की उसकी अपनी कोई दृष्टि नही है। 'जो मकसूद और यासीन करेंगे वह मैं नही करूँगा।'— इतना ही वह तय कर लेता है। उसकी भावनात्मक जिन्दगी मे मक्सूद के आने से दरारे पड चुकी थी, इसीलिए उसे मक्सूद से नफरत है और इसी कारण मक्सूद के हर कार्य से। और एक दिन नसीबन द्वारा उसे मक्सूद की कमजोरियो का भी पता चलता है। मकसूद की स्त्रैणता से उसे और भी चिढ आ जाती है। वह सोचता है कि सलमा को लेकर वह कही भाग जाएगा। 'कहाँ ?' 'पाकिस्तान'। परन्तु इस पाकिस्तान के प्रति उसकी यह विरक्ति और भी बढ जाती है। जब उसे नसीबन याद दिलाती है कि मक्सूद भी इसी पाकिस्तान के लिए तैयारी करवा रहा है और सलमा खुद अपनी भयावह स्थिति का रोते हुए जब वर्णन करती है तब 'उन आँसुओ से नहाई सलमा उसे बहुत पाक लगी थी—बहुत सहनशील लगी थी।"[१] परन्तु दूसरे ही क्षण सन्देहो की छायाएँ उसकी चेतना पर मँडराने लगी थी। मक्सूद का बच्चा कैसे हो सकता है—"और उसे लगा था कि सलमा अपने किसी बहुत बडे रहस्य को छिपाए हुए है। तब वह उसे बहुत ही हीन, गिरी हुई और नापाक लगी थी और उसने अपने सब सहारे टूटते हुए महसूस किए थे।"[२] और "उसके सामने धुन्ध छाई हुई थी। कोई भी चीज साफ नजर नही आ रही थी। हर तरफ एक शोर था— ऐसा शोर, जिसमे कोई भी आवाज पहचानी नही जा रही थी।"[३]

साम्प्रदायिकता की इस आग के फैलने से जो सूक्ष्म परिवर्तन इस बस्ती मे हो रहे थे, वह सत्तार के लिए असह्य था। वह किसी भी प्रकार का निर्णय नही ले पा रहा था। वह सलमा की मजबूरी को समझ पा रहा था, परन्तु उसे मुक्त कराने मे असमर्थ था। साईं की ओर देखने की उसकी दृष्टि बदल गई थी। उसे विश्वास था तो केवल नसीबन पर। नसीबन के मानवीय गुणो के आगे वह अपने को बहुत ही छोटा अनुभव करता था। यासीन और मक्सूद के प्रति उसके मन मे जो गुस्सा है; उसे वह एक दिन क्रिया-रूप मे उतारता है। "पर मार-पीट की उसी झोंक म उसने मकसूद की नाक तोड दी थी।"[४] और साईं ने उसी रात सत्तार का मस्जिद की कोठरी से निकलवा दिया था। और उसी वक्त नसीबन उसे अपने घर ले आयी थी।

नसीबन के यहाँ आने के बाद सत्तार की जिन्दगी का तीसरा और आखिरी हिस्सा शुरू हो जाता है। बच्चन और उसके बच्चो के प्रति नसीबन का सहज स्नेह देखकर वह इस स्त्री के सम्मुख मन-ही मन नतमस्तक हो जाता है। सलमा पर होने वाले मक्सूद के अत्याचारो को सुनकर और देखकर वह उसके खून का प्यासा हो जाता है। साईं सत्तार को पुलिस के चक्कर मे फँसाने की पूरी कोशिश करता है।

नसीबन के प्रति वञ्चन के साथी माणिक और करीमन के भद्दे सकेतो को सुनकर सत्तार और भी निराश हो जाता है। "और लौटते हुए सत्तार को फिर अपना आना बेकार-सा लगने लगा था। नसीबन को लेकर जो जो और जिस जिस तरह की बातें उसने सुनी थी, उनसे उसकी परेशानी और बढ़ गई थी।"[11] और इस सारी निन्दा के बाद भी *नसीबन का अपने कर्तव्य के प्रति तटस्थता का भाव* देखकर सत्तार मौन और गम्भीर हो गया था। 'सत्तार कुछ कह नहीं पाया था, कुछ भी कहते हुए जैसे वह अपनी नजरो मे अब बहुत छोटा हुआ जा रहा था।'[12]

और एक दिन पाकिस्तान बन गया। इस बस्ती के लोग धीरे-धीरे पाकिस्तान की ओर जाने लगे। एक दिन सलमा भी मवसूद के साथ निकल गई। जाने के पहले वह 'सत्तार' से मिलकर गई। वह उसे भी पाकिस्तान ले जाना चाह रही थी। परन्तु "मैंने तो यहाँ तक कहा था हमारे साथ ही चलो पर वह माना ही नहीं। कहने लगा—वहाँ जाकर क्या मिल जायेगा, और नाराज होकर चला गया।"[13] और वही मस्जिद के अहाते की एक कोठरी मे उसने आत्म-हत्या कर ली।

इस प्रकार सत्तार इस बस्ती मे ही खत्म हो गया। पाकिस्तान गया नहीं। हालाँकि पाकिस्तान के सपने लेकर ही वह इस बस्ती मे आया था। नसीबन की तरह सत्तार को भी लेखक की पूर्ण सहानुभूति मिल गई है। सत्तार उन आम भारतीयो का प्रतिनिधित्व करता है–जिनके पास घटनाओ के अर्थ लगाने की शक्ति नहीं होती, जो बड़े ही भावुक और सरल मन के होते है। सत्तार इसलिए बचा रहा क्योंकि उसे 'आग लगाने वालो से नफरत थी', आग से नहीं। इसी कारण नसीबन मे और सत्तार मे बहुत बड़ा अन्तर है। दोनो 'पाकिस्तान' और 'विभाजन' का विरोध करते हैं। साम्प्रदायिक आग से दोनो दूर रहते हैं। परन्तु *कारण अलग अलग* हैं। सलमा और उसके बीच मवजूद और यासीन दीवार बनकर खड़े हो गए, इस कारण वह उनसे नफरत करने लगता है और इसी कारण नसीबन की तरह सोचने लगता है।

सलमा को पा जाने की सत्तार की इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी है। वह सलमा की मजबूरी को पहले समझ नहीं सका। उलटे उसके चरित्र पर गैलत आरोप लगाता है। पूरी जिन्दगी मे सत्तार को सहज, स्वाभाविक प्यार नहीं मिल सका है। इसी प्यार के लिए वह तड़पता रह गया। वह भावुक था, इसी कारण तो उसने आत्म-*हत्या कर ली। उसके मन मे समाज, राजनीति, धर्म आदि को लेकर अनगिनत* प्रश्न निर्माण हो जाते हैं। इन सारे प्रश्नो का योग्य उत्तर उसे नहीं मिल सका है। वास्तव मे सत्तार जैसे लोग ही इस देश मे बहुत बड़ी सख्या में हैं। योग्य मार्गदर्शन, सरकार और शिक्षा के अभाव मे तथाकथित पढ़े लिखे लोग इन्हे बहकाकर अपने स्वार्थ के लिए सीढियो की तरह उपयोग

कर लेते हैं। धर्म का गलत अर्थ इनके दिलो दिमाग मे भर कर आर्थिक प्रश्नो से उनका ध्यान खीच लेते है और साम्प्रदायिकता का जहर फैलाकर अपना फायदा कर लेने हैं।

## टिप्पणियाँ

१ ३ ,४ २६ लौटे हुए मुसाफिर पृ० १
२ वही, पृ० ५
५, ६, ७ वही पृ० २
८ ६६ वही, पृ० ४
९ १० वही, पृ० १६
११ १२ ७१ वही, पृ० २७
१३ वही, पृ० ३६
१४ वही पृ० १९
१५ वही पृ० ३८
१६ वही, पृ० ६८
१७ वही पृ० ७२
१८ वही, पृ० ५६
१९, २० वही, पृ० ९७
२१ वही, पृ० ९८
२२ वही पृ० १०२
२३ वही पृ० १०४
२४, ३५, ३६ वही, पृ० १०५
२५ वही, पृ० १०७
२७ वही, पृ० ३
२७, ६५, ७७ वही, पृ० १११
३० वही, पृ० २९
३१ वही, पृ० ३०
३२ वही, पृ० ३२
३३ वही, पृ० १०३
३४ वही, पृ० १०४
३७ वही, पृ० १०९
३८ वही, पृ० ११०
३९ वही, पृ० ७

४० लौटे हुए मुसाफिर, पृ० १०
४१ वही, पृ० १४
४२, ४३, ८५ वही, पृ० १५
४४, ८६ वही, पृ० २५
४५ वही, पृ० २६
४६ वही, पृ० ५२
४७ वही, पृ० ६०, ६१
४८ वही, पृ० ६५
४९ वही, पृ० ७४
५० वही, पृ० ८०
५१, ५२ वही, पृ० ८८
५३, ५४, ५५ वही, पृ० ९९
५६, ५७ वही, पृ० ९२
५८ वही, पृ० ९३
५९ वही, पृ० १०६
६० वही, पृ० १०७
६१ वही, पृ० ११३
६२, ६३ वही, पृ० ११६
६४ वही, पृ० १०१
६७, ६८, ७९ वही, पृ० ९
६९ वही, पृ० १७
७० वही, पृ० १८
७२ वही, पृ० २८
७३ वही, पृ० ४७
७४ वही, पृ० ४८
७५, ७६ वही, पृ० ५८
७८ वही, पृ० ८
८० वही, पृ० २०
८१, ८२ वही, पृ० २१
८३ वही, पृ० १०
८४ वही, पृ० १२
८७, ८८ वही, पृ० २१
८९ वही, पृ० ४५

९०, ९१ लौटे हुए मुसाफिर, पृ० ४६
९२ वही, पृ० ४८
९३ वही, पृ० ८५
९४ वही, पृ० ९९
९५ वही, पृ० १०७
२९ साहित्यकोश, भाग १, पृ० ३०७
( स० धीरेन्द्र वर्मा )

---

# शह और मात : तरल प्रेम की सहज अभिव्यक्ति

सूर्यनारायण रणसुभे

राजेन्द्र यादव की उपन्यास-कला का उद्देश्य प्रगतिवादी चिन्तनधारा के आधार पर मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक जीवन का विश्लेषण तथा चित्रण करना है।

—डा० सुषमा धवन

इसकी (शह और मात) भी कथावस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भाँति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अन्तर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है।

—डा० महेन्द्र चतुर्वेदी

"शह और मात" व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है।

—डा० महावीर लोढा

'शह और मात' की कथा एक सस्ती और रोमानी कथा है।

—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

इसमें (शह और मात) युग के सन्दर्भ में संक्रान्तिकालीन अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हुआ है।

—डा० शान्ति भारद्वाज

*औरत की हालत सभी जगह एक-सी है।* चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी—वह हमेशा पुरुष का तेवर देखकर चलती है। उसकी इज्जत उसके चाहने न चाहने पर है। उसकी प्रतिष्ठा उसकी शरीर-शुद्धता की परम्परागत मान्यता पर है।"

—लेनिन

६

# शह और मात

'शह और मात' के पूर्व यादव के दो और उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं— 'उखड़े हुए लोग' तथा 'प्रेत बोलते हैं' (सारा आकाश)। इन दोनों उपन्यासों की कथावस्तु के सम्बन्ध में विविध मत व्यक्त किए गए हैं। डा० शान्ति भारद्वाज के अनुसार "इन दोनों उपन्यासों में यादव प्रगतिवादी चिन्तनधारा को अपनाते हुए मध्य वर्ग के जीवन का चित्रण करते हैं।"[1] अथवा "राजेन्द्र यादव की उपन्यास-कला का उद्देश्य प्रगतिवादी चिन्तनधारा के आधार पर मध्यवर्गीय समाज के पारिवारिक जीवन का विश्लेषण तथा चित्रण करना है।"[1] आलोचकों का यह वर्ग मानता है कि राजेन्द्र यादव के उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना है, समाज की विसंगतियों का चित्रण है। उनके तीनों उपन्यासों को पढ़ने के बाद यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके उपन्यासों में प्रगतिवादी चेतना उस रूप में नहीं है जिस रूप में वह यशपाल, नागार्जुन तथा इस काल के अन्य साहित्यकारों में अभिव्यक्त हुई है। प्रगतिवादी विचारधारा को यादव वैयक्तिक स्तर पर झेलते हैं तथा उनके पात्र भी अपनी व्यक्तिगत जिन्दगी में ही सनातनी तथा प्रगति-विरोधी तत्वों के विरुद्ध संघर्ष करते हैं। इसलिए यादव की मूल पकड़ व्यक्ति और उसके परिवेश के परस्पर-विरोधी संघर्ष पर ही है। *यादव मूलत व्यक्तिमन का सूक्ष्म चित्रण करने वाले सजग कथाकार हैं।* उनके उपन्यासों की कथावस्तु के सन्दर्भ में डा० महेन्द्र चतुर्वेदी का यह कथन अत्यंत ही सार्थक लगता है कि— "इसकी (शह और मात) भी कथावस्तु यादव के अन्य उपन्यासों की भाँति व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है तथा सामाजिक सम्बन्धों का अन्तर्भाव केवल परिवेश के रूप में किया गया है।"[1] अर्थात् प्रस्तुत उपन्यास पूर्णत व्यक्तिनिष्ठ और आत्मपरक है। सामाजिक सम्बन्ध तथा सम्पूर्ण परिवेश यहाँ पृष्ठभूमि के रूप में ही आया है। सभवत इसीकारण डा० महावीरमल लोढ़ा इसका विवेचन "व्यक्तिपरक मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास"[२] के अन्तर्गत करते हैं। इसकी कथावस्तु को लेकर आलोचकों में विभिन्न प्रकार के मत हैं। डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय इसे "एक सस्ती रोमानी कथा" कहते हैं। और डा० भारद्वाज यह मानते हैं कि

"इस युग के सन्दर्भ में संक्रान्तिकालीन अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण हुआ है ।"[3]

मतमतान्तरों के इस जंगल में इसकी कथावस्तु पर एक निश्चित निष्कर्ष देने से पूर्व संक्षेप में इसकी 'कथावस्तु' को समझ लेने की कोशिश करें और फिर तभी इन सारे मतों पर विस्तार से विवेचन सम्भव होगा ।

'शह और मात' सुजाता नामक एक युवा लेखिका की मनःस्थिति को लेकर लिखा गया उपन्यास है । सम्पूर्ण उपन्यास में सुजाता की डायरी के पृष्ठ ही अधिक मात्रा में दिए गए हैं । डायरी के इन पृष्ठों से स्पष्ट हो जाता है कि 'शह और मात' उदय और सुजाता की प्रेम कहानी है । एक प्रसिद्ध लेखक के सम्पर्क में सुजाता नामक एक प्रबुद्ध और अपने अहं के प्रति अत्यधिक सजग ऐसी युवती आती है । जाने-अनजाने में इस सुजाता के मन में उदय के प्रति प्रेम की सूक्ष्म तरंगें निर्माण हो जाती हैं । उसके व्यक्तित्व में सूक्ष्म परिवर्तन होने लगता है । फिर भी वह किसी से स्पष्ट करना नहीं चाहती कि उसका किसी उदय से प्यार है ।

कॉलेज की ओर से होने वाले नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में सुजाता ध्रुवस्वामिनी की भूमिका अभिनीत कर रही है । उसकी बड़ी इच्छा है कि इस नाट्य-प्रयोग के समय उदय उपस्थित रहे । परन्तु उदय वहाँ नहीं आता । उलटे नाटक की समाप्ति के बाद उसके अभिनय पर बेहद खुश होकर उसे प्रशंसा देने चली आती है—अपर्णा नामक कोई एक प्रिन्सेस । और इस प्रकार सुजाता का परिचय प्रिन्सेस अपर्णा से हो जाता है । यह परिचय निकट सम्पर्क में तथा सुख-दुःख के परस्पर आदान प्रदान तक व्यापक हो जाता है । प्रिन्सेस अपर्णा की सम्पूर्ण जिन्दगी का, उसके सुख-दुःखों का सुजाता बड़े विस्तार से वर्णन करती है—उदय के यहाँ । अब तो उसकी दैनन्दिन जिन्दगी का एक क्रम ही बन जाता है कि जो कुछ प्रिन्सेस के सम्बन्ध में वह नया जान सकी है, उसे तुरन्त उदय को बतला देना । "और मुझे लगा कि मेरे दिल को इतनी देर की बेचैनी, व्याकुलता, उद्वेलन और उद्वेग उदय को सारा किस्सा बताकर एकदम शान्त हो गया · जैसे यह बोझ था जो उन्हें सौंपना था ।"[1] धीरे-धीरे सुजाता उदय और प्रिन्सेस को अपनी उपलब्धि मानने लगती है । परन्तु अचानक एक दिन उसे पता चलता है कि उदय तो उसके साथ गम्भीरता का नाटक ही कर रहा था । वास्तव में उदय सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग कर रहा था—अपर्णा के अध्ययन के लिए । प्रिन्सेस अपर्णा से वह न केवल परिचित ही अपितु उसी ने प्रिन्सेस तथा सुजाता के परस्पर परिचय का षड्यन्त्र बनाया था । सुजाता का निरीक्षण उदय कर रहा था—सभी कोणों से और सुजाता के माध्यम से वह प्रिन्सेस अपर्णा का भी अध्ययन कर रहा था । और सुजाता समझ रही थी कि वह उदय का निरीक्षण कर रही है—सभी कोणों से । लेखक उदय को प्रिन्सेस अपर्णा का अध्ययन सभी कोणों से करना सम्भव नहीं था । उसे किसी माध्यम की आवश्य-

कता थी। और उसने सुजाता को माध्यम बनाया है। लेखिका सुजाता समझ रही थी कि वह उदय का अध्ययन एक लेखकीय दृष्टि से कर रही है, परन्तु बाद मे उसे पता चलता है कि उदय के जिस व्यक्तित्व के अश का और व्यवहार का वह निरीक्षण कर रही थी, वह वास्तव मे उसका अभिनय था। इस प्रकार 'शह और मात' दो लेखको के परस्पर विरोधी अध्ययन के प्रयत्न की कहानी है। निरीक्षण और अध्ययन की इस स्पर्द्धा में उदय मात कर चुका है—सुजाता को। और सुजाता ? वह उदय को शह देना चाह रही थी, परन्तु खुद मात खा चुकी है।

*एक लेखक-लेखिका के जीवन की घटनाओ को लेकर उपन्यास लिखने का* यादव जी का प्रत्यन स्तुत्य ही है। क्योकि कलाकरो की जिन्दगी से सर्वसाधारण पाठक अपरिचित ही होता है। इस उपन्यास के दोनो पात्र—उदय और सुजाता—कलाकार की जिन्दगी जीने की कोशिश करते हैं और हर बार इसमे हार जाते हैं। क्योकि उनके भीतर बैठा हुआ 'सनातन मनुष्य" उनके कलाकार व्यक्तित्व को मात कर देता है। माध्यम के रूप मे सुजाता का उपयोग करने का बहुत बडा खेद उदय को है—इसलिए उदय मात खा चुका है तथा उदय का अध्ययन करने निकली सुजाता उसी पर प्यार करने लगती है—यह सुजाता की हार है। चूँकि इस उपन्यास की कथावस्तु का सम्बन्ध लेखन कर्म से जुडा हुआ है, इस कारण इस मे लेखन के सम्बन्ध मे अनेक विचार आए हुए हैं, उनकी भी परीक्षा करनी पडेगी। इस प्रकार इसकी कथावस्तु मे—(१) लेखक लेखिका की एक-दूसरे को समझ लेने की कोशिश, (२) स्त्री पुरुष का एक दूसरे के प्रति प्यार और उस समय की उनकी मन स्थिति, (३) लेखन के सम्बन्ध मे विभिन्न विचार, (४) अत्यन्त सम्पन्नता मे परन्तु बन्धनो के बीच जीनेवाली स्त्री की मन स्थिति—इन चार विभिन्न स्थितियो का उद्घाटन किया गया है।

**समीक्षा** :—प्रेम कहानी अथवा अधिक-से अधिक रोमासभरी प्रेम-कहानी के रूप मे आलोचको ने इसकी कथावस्तु को स्वीकार किया है। वैसे तो हिन्दी मे नब्बे प्रतिशत उपन्यास प्रेम के सम्बन्ध को ही लेकर लिखे जाते हैं। फिर क्या 'शह और मात' भी इसी कोटि का उपन्यास है ? क्या इसे भी हम सस्ती और रोमानी प्रेम-कहानी के रूप मे स्वीकार कर सकेंगे ? तटस्थता तथा गम्भीरता के साथ इस उपन्यास का अगर हम अध्ययन करेंगे, तो ये निष्कर्ष झूठे साबित हो जाएँगे। क्योकि इसमे प्रेम की मानसिक अवस्था का बडा ही *जीवन्त चित्रण किया गया है। युवा*-वस्था तो स्वप्नो और प्रेम के मूड्स की अवस्था है। यह प्रेम मात्र मानसिक ही होता है। भारत के सन्दर्भ मे तो इस प्रेम के क्षेत्र मे कोई चमत्कारिक घटना लाखो मे से किसी एक के जीवन मे घटती है। युवक-युवतियाँ प्रेम के स्वप्ना मे डूबी रहती हैं और बाद मे परम्पराबद्ध पद्धति से किसी और के साथ विवाहबद्ध हो जाती हैं।

खुलकर प्रेम-प्रकटीकरण यहाँ सम्भव नही है । इस प्रेम की न अभिव्यक्ति होती है और न वह क्रियारूप मे उतरता है । इस उपन्यास मे सुजाता इस नियति को स्वीकार करती है और कहती है—अंग्रेजी लडकियो की तरह हमारा प्रेम न तो किलकारियो और कहकहे वाले उन्मुक्त आलिंगनो मे निकलता है, न हमारा क्रोध हिस्टीरिया के दौरो जैसी चीखो मे । चाहो तो कह सकते हैं, हममे जीवन की कमी है, इसीलिए न तो खुले और सम्पूर्ण मन से प्यार कर सकती हैं, न क्रोध ।'' इस स्थिति मे हिन्दुस्तानी लडकी चुपचाप भीतर-ही-भीतर घुटती रहती है । अथवा "हम हिन्दुस्तानी लडकियो को चुपचाप रोने का रोग है जैसे अगरबत्ती चुपचाप जलती है ।" सम्पूर्ण उपन्यास मे सुजाता इस प्यार को लेकर क्षुब्ध है, परेशान है । मानसिक स्तर पर वह उदय के साथ पूर्णत जुड चुकी है । परन्तु उसका विवाह किसी और के साथ होने वाला है । परम्पराबद्ध प्रेम कहानियो मे और इस उपन्यास की कथावस्तु मे यही पर अन्तर है क्योकि इस उपन्यास मे प्रेम के विशुद्ध मानसिक स्वरूप की ही चर्चा की गई है । यह प्रेम 'व्यक्तित्व को किस प्रकार परिवर्तित करता है—इसे लेखक देखना चाह रहा है । परम्पराबद्ध प्रेम कथाओ मे एक-दूसरे के प्रति आकर्षण शुरू हो जाता है, यह आकर्षण 'प्यार' मे परिवर्तित हो जाता है, फिर नायक-नायिका के मिलन मे बाधाएँ आती हैं, उन सारी बाधाओ को पार करके अन्त मे उनका विवाह हो जाता है । अगर परस्पर विवाह नही हो सका तो फिर किसी दूसरे के साथ विवाह हो जाता है । परन्तु वहाँ पर भी वे एक-दूसरे के लिए तडपते रहते हैं और अन्त मे एक-दूसरे का नाम लेते हुए या तो मर जाते हैं या फिर मिल जाते हैं । 'प्रेम' का यह रूमानी स्वरूप है । वास्तव मे भारतीय समाज मे ऐसा नही होता । यहाँ 'प्रेम' *एक विशेष आयु की मानसिक अवस्था मात्र है । एक-दूसरे के प्रति मानसिक खिचाव* है, जबरदस्त भूख है । परन्तु सस्कार, परिवेश, परिस्थिति तथा अन्य कारणो से यह प्रेम भीतर-ही-भीतर रह जाता है । इसकी अभिव्यक्ति न होने से घुटन पैदा हो जाती है । यह घुटन, ये स्वप्न, ये मन स्थितियाँ जाने-अनजाने मे उस व्यक्ति के व्यक्तित्व मे सूक्ष्म परिवर्तन कर देते हैं । उस व्यक्ति के सारे संस्कार, सारी आशाएँ, सारा भविष्य *इस मन स्थिति से झाँकने लगता है । इस मानसिक स्थिति* को कल्पनाजीवी कहकर हम चाहें जितना दुतकारें तो भी इस स्थिति की प्रामाणिकता को तथा उसके सूक्ष्म कार्य को हम नकार नही सकते । दुर्भाग्य से हिन्दी के अब तक के उपन्यासकारो मे प्रेम को अत्यन्त ही नकली, भावुक और अश्रुजीवी रूप मे ही बतलाया है । श्री राजेन्द्र यादव प्रेम की इसी स्थिति को अधिक गहराई और गम्भीरता से देखना चाह रहे हैं । वे इस प्रेम को सफल-असफल बनाने के चक्कर मे *नही जाते । उल्टे* इस मानसिक स्थिति के भीतर उतर कर व्यक्ति के अह को, उसके भीतरी सूक्ष्म परिवर्तनो को देखना, परखना चाह रहे हैं । सम्भवतः इसी कारण नामवर सिंह जैसे

आलोचक ने कहा है कि "बारह साल से लेकर सत्तर साल तक का हर लेखक हमारे यहाँ प्रेम की थीम जरूर घसीटता है, लेकिन एक भी तो ऐसा उपन्यास नहीं है जो आप को आकंठ डुबा दे। लगे कि आप सचमुच प्रेम की गहराइयों में उतर आए हैं प्रेम का अर्थ या तो उनमे घोर शारीरिक उत्तेजना मे किए गए आलिंगन-चुम्बन मे मिलता है या फुसफुसे लोगो की गिलगिलाती छिछली आदर्शवादी भावुकता मे प्रेम सूक्ष्म और अनजाने रूप मे सारी मानसिक बनावट के स्तर बदलता है वह एकान्त और मधुर आत्मीय क्षण देता है।"[1] एकान्त मधुर और आत्मीय क्षणो को पकडने का प्रयत्न लेखक ने इस उपन्यास मे किया है। मध्यवर्गीय युवती का किसी युवक के सम्पर्क मे आने पर उसकी मानसिक उथल-पुथल का बडा ही सजीव चित्रण इसने किया गया है। इस युवती के मन की कुण्ठाएँ, हीन ग्रंथियाँ, दमित वासनाएँ, भय, अहं आदि का अत्यन्त ही सहज, सूक्ष्म तथा गम्भीर चित्रण इस उपन्यास मे हुआ है—और यही उसकी कथावस्तु है।

कथावस्तु की यथार्थता पर प्रश्न-चिह्न नही लगाए जा सकते; क्योकि इस प्रकार मात हो जाने की स्थिति किसी लेखक लेखिका के जीवन मे ही नहीं, आम आदमी मे भी सभव है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की किसी विशेषता के सम्मुख हम नतमस्तक हो जाते हैं, उसकी उस विशेषता के कारण हम उसकी भूरि-भूरि प्रशसा भी करने लगते हैं। और अचानक हमे किसी दिन पता चलता है कि वह उसकी विशेषता नहीं, चतुराई थी या अभिनय था तो हमे एक जबरदस्त मानसिक आघात हो जाता है। ठीक यही स्थिति सुजाता की है। उदय की डायरी का आखिरी पन्ना पढकर उसका स्वप्न-भग हो जाता है। उदय वास्तव मे सुजाता का माध्यम के रूप मे उपयोग कर रहा था और पगली सुजाता उदय और अपर्णा को अपनी उपलब्धि मान रही थी। वास्तव मे माध्यम की अपनी कोई उपलब्धि नही होती। सुजाता के क्षुब्ध होने का एक मात्र कारण यह है कि उसके अनजाने ही उसका उपयोग सेतु के रूप मे किया गया है। उसका सारा अहं टूट जाता है। आधुनिक युग मे व्यक्ति की इस प्रकार की भीतरी टूटन आम स्थिति हो गई। राजनीति, धर्म, व्यापार आदि प्रत्येक क्षेत्र मे 'सेतु' के रूप मे प्रतिभाशाली व्यक्तियो का उपयोग कर लिया जा रहा है। भावुक, ईमानदार और मेहनती युवक-युवतियों का इस प्रकार 'सेतु' की तरह उपयोग—२०वी शती की अपनी विशेषता है। 'साहित्य' में भी यही चल रहा है—यह इस उपन्यास ने सिद्ध कर दिया है। इसलिए सुजाता का इस प्रकार ठगा जाना अपने आप मे आधुनिक युग की यथार्थता को ही स्पष्ट करता है। यह यथार्थ भयावह, क्रूर और निष्ठुर है। परन्तु इसको नकारा भी नही जा सकता।

इस उपन्यास को यथार्थवादी टच देने की इच्छा से ही यादव ने इसकी भूमिका लिखी है और वह भी उपन्यास की डायरी शैली मे ही। १० जुलाई,

१९५८ ई० की डायरी के पृष्ठ पर वे लिखते हैं कि "कथाकार सुजाता की मृत्यु का समाचार मुझे एक विचित्र-से संतुष्ट उल्लास से भर गया है। अब मैं निर्द्वन्द्व होकर उसकी डायरी के इन कुछ पन्नों को पाठकों के सामने रख सकूँगा।"[१४] सुजाता आज गुजर गई हैं। मृत्यु के समय उनकी क्या आयु थी, नहीं मालूम। परन्तु लेखक को डायरी सौंपते समय सुजाता ने यह जो कहा है—"देख भैया, उसमें जाने क्या-क्या बचपने की उलटी-सीधी बातें लिखी हैं।"[१५] उससे ऐसा लगता है कि मृत्यु-समय सुजाता प्रौढ़ आयु की स्त्री रही होगी। *क्योंकि वह उदय के साथ के सम्पर्क के उन दिनों को "बचपने की उलटी-सीधी बातें" कह रही है।* सुजाता की मृत्यु सन् १९५८ में हुई है। उदय के सम्पर्क के समय सुजाता की आयु २१-२२ अगर समझें (क्योंकि वह एम. ए. की छात्रा है) तो उसकी मृत्यु ४०-४५ वर्ष में हुई है। इसका अर्थ हुआ कि १९३२-३३ ई० में वह उदय के सम्पर्क में आयी थी। परन्तु उपन्यास में बम्बई का जो वर्णन हुआ है वह सन् १९३२-३३ का नहीं १९५५-५८ ई० का है। "और जब यह सुना कि सरदार पटेल ने तेजी से रियासतों का विलीनीकरण शुरू कर दिया है तो यहीं जम गए।"[१६] अपर्णा के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि रियासतों के विलीनीकरण के बाद वह बम्बई में रह रही है और आज इस बात को १० से अधिक वर्ष हो गये। स्पष्ट है कि सुजाता की यह प्रेम-कहानी, सन् १९५८ के बीच ही घटित हो रही है। फिर इन विगत वक्तव्यों का कौन-सा स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। *स्पष्ट है कि लेखक आवश्यकता न होते हुये भी सुजाता को 'यथार्थ चरित्र' घोषित करने गया है और उसमें उसे बेहद असफलता मिली है।* कथाकार सुजाता की मौत का जिक्र न करते हुए भी इस उपन्यास को लिखा जा सकता था। तब तो यह उपन्यास अधिक जीवन्त बन जाता। परन्तु यादव वक्तव्य देने के अपने मोह को रोक नहीं सके हैं। वास्तव में सुजाता अपनी डायरी के पन्नों में जीवन्त रूप से उभरकर आयी है।

इस उपन्यास में 'अपर्णा' नामक किसी प्रिन्सेस का जो विस्तार से विवेचन हुआ है, उसकी यथार्थता को लेकर भी अनेक प्रश्न उठाये जा सकते हैं। क्योंकि अपर्णा का सम्पूर्ण जीवन अत्यन्त ही करुण, हृदयद्रावक और यातनामय है तो दूसरी ओर उसमें सम्बन्धित उसके पति तथा भाई का जीवन भड़कीला और रोमान्स से परिपूर्ण है। उदय इस जीवन को ही करीब से जानना चाहता है। "संस्कार और धर्म की दीवारों की दरार टटोलने की बेचैनी" से उदय गुजर रहा है। रियासतों के प्रमुखों का जीवन आज भले ही अयथार्थ लगता हो तो भी उसे एक ऐतिहासिक यथार्थ के रूप में स्वीकार करना पड़ेगा। सुजाता और उदय का यह शह और मात का खेल इसी जीवन को केन्द्र में रखकर चल रहा है। इसीलिए उपन्यास की कथावस्तु में उसकी अनिवार्यता को हम नकार नहीं सकते।

सम्पूर्ण उपन्यास मे कुल तीन व्यक्तियो की डायरी के पन्ने हैं। लेखक राजेन्द्र यादव की डायरी के कुछ बिखरे हुए पन्ने भूमिका के रूप मे (पृ० १ से ७ तक), सुजाता की डायरी के पन्ने (पृ० १७ से २१९ तक), उदय की डायरी के पन्ने (पृ० २२० से २२७ तक) तथा सुजाता की डायरी एक नोट (२२९ पृ०)—इस प्रकार कुल २२९ पृष्ठो का यह उपन्यास है। काल की दृष्टि से सोमवार ३ जून से मगलवार २३ जुलाई तक की कालावधि को (कालावधि की मन स्थिति को) इसमे रखा गया है। इन कुल इक्कावन दिनो म डायरी केवल पैंतीस दिन ही लिखी गई है। अब इन ५१ दिनो के भीतर घटित घटनाओ की सूची बनाएँगे तो निराशा ही हाथ लगेगी। एक पुरुष के सम्पर्क मे आने के बाद एक युवा स्त्री की इक्कावन दिनो की मन स्थिति इतनी ही इसकी कथावस्तु है। उदय से मिलने जाने के पूर्व की मन-स्थिति, मिलकर आने के बाद की मन स्थिति, अपर्णा से परिचय हो जाने के बाद की मन-स्थिति—यही डायरी के पन्नो मे बिखरा पड़ा है। घटनाओ के अभाव के कारण गतिशीलता का यहाँ पूर्णत अभाव है। स्वय लेखक भी कथावस्तु की इस मर्यादा से परिचित है। इसीलिए उसने लिखा है—' जैसे सिगार जलता है मद-मथर सुलगता रहता है शायद कुछ इसी तरह भी इस कहानी की गति हो गई है।"[११]

कथावस्तु की इसी गतिहीनता के कारण उसने यहाँ तक लिखा है—"अविश्वास और उत्तेजना से पागल मनोभावो और घटनाओ की आकस्मिकता से भरी हुई कहानियाँ पढ़ने वाला साधारण कथारसग्राही पाठक पता नहीं इसे पढ भी पायेगा या नही।"[१२] घटनाओ के सम्बन्ध मे उसने लिखा है—"प्रथम पुरुष डायरी मे लिखी गई कहानी मे घटना सीधे रूप मे न आकर स्मृतियो और मूड्स म प्रतिफलित होकर आई है।"[१३] इन्ही विशेषताओं के कारण परम्परावद्ध दृष्टि से इसकी कथावस्तु का मूल्याकन सभव नही है। कथावस्तु के विकास का परम्परावद्ध अर्थ हम घटनाओ की क्रमबद्धता से लेते रहे हैं। प्रेमचन्द तक के उपन्यासो मे कथावस्तु के विकास का क्रम इस प्रकार होना था—

घटनाएँ—उनसे उभरने वाली मानसिक अवस्था—फिर घटनाएँ—फिर मन-स्थिति।

वहाँ घटनाओ से मन.स्थिति बनती बिगडती थी। परन्तु जहाँ जीवन अधिक अन्तर्मुख बन गया हो, वहाँ मन स्थिति पहले होती है बाद मे घटनायें। लेखक अब उपन्यास के माध्यम से केवल घटनाओं को क्रमबद्ध नही रखना। वह इन घटनाओ के बहाने मानसिक अवस्था का तथा उस व्यक्तित्व का विस्तार मे चित्रण करता है। इसीलिए इस "मानसिक अवस्था" का अब अत्यधिक महत्त्व है। घटनायें वही हैं दैन-दिन जीवन की—मामूली, क्षुद्र। अब इस जटिल जीवन मे अद्भुत और सयाग से

परिपूर्ण ऐसी घटनाएँ सम्भव नहीं है। अब है तो मात्र मन स्थिति। अलग-अलग मन स्थितियों में जिन्दगी भर जीने की यह मजबूरी अब आम होती जा रही है। वास्तव में यह २०वीं शती विविध मन स्थितियों में जीने वाले लोगों की शती है। कम-से-कम भारतीय मध्यवर्ग की तो यही नियति है। इसी अर्थ में 'शह और मात' की कथावस्तु अधिक यथार्थ है, अधिक स्वाभाविक है।

यादव ने इस उपन्यास के सम्बन्ध में लिखा है—"हो सकता है इस दृष्टि से मैंने अपने को पात्रों के रूप में बाँटकर मुखर चिन्तन या लाउड थिंकिंग ही किया हो और लिखने के दौरान पात्रों के साथ-साथ या उनकी मार्फत अपनी उलझनें और समस्यायें सुलझाने की कोशिश भी की हो।"[११] एक ओर यादव भूमिका में डायरी के पृष्ठ लिखकर पाठकों को यह बतलाना चाह रहे हैं कि सुजाता की डायरी पूर्णत: यथार्थ है, तो दूसरी ओर यह भी स्पष्ट कर रहे हैं कि इनके माध्यम से उन्होंने 'लाउड थिंकिंग' किया है। फिर एक बड़ी परेशानी हो जाती है क्योंकि यादव इन पात्रों के साथ इतने उलझ गए हैं कि कहीं ये इन्हें अपना प्रतिरूप बतलाने की कोशिश करते हैं, और कहीं अपने से एकदम अलग। प्रश्न मुखर चिन्तन के होने अथवा न होने का नहीं, (क्योंकि प्रत्येक कृति कम-अधिक मात्रा में लेखक के मुखर चिन्तन के कारण ही जन्म लेती है।) वरन् चिन्तन कलात्मकता की मर्यादा तक पहुँच पाया है अथवा नहीं इसका है। इस दृष्टि से यादव को सफलता मिली है। इन पात्रों के माध्यम से अपने को विभिन्न हिस्सों में बाँटकर किए गये मुखर चिन्तन से वे संतुष्ट हैं अथवा नहीं, यह उनका व्यक्तिगत प्रश्न है। परन्तु इतना जरूर कहा जा सकता है कि वे इसकी यथार्थता को प्रेम की और प्रेम के तटस्थ सही और मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण को अलबत्ता काफी सफलता के साथ निभा सके हैं।

इस कथावस्तु का उद्देश्य "शीशे की दीवार के इधर-उधर चलती रहती जिन्दगियों के बीच एक गवाक्ष है एक झरोखा है—जहाँ से पूरा युग गुजर रहा है—संस्कार और वर्ग की दीवारों को टटोलने की बेचैनी गुजर रही है—"[१२] यह जो उधर की दुनिया है, जिसके एतराफ शीशों की दीवारें-ही-दीवारें हैं—देखना इतना सरल नहीं है। इसी कारण सुजाता का माध्यम के रूप में उपयोग किया गया है। वास्तव में साहित्य की किसी भी विधा में लिखते समय लेखक के पास इसी प्रकार की बेचैनी होती है। क्योंकि प्रत्येक नई कृति का अर्थ ही है एक नई दुनिया को टटोलने की बेचैनी। शीशे की दीवार के इधर-उधर की जिन्दगी से तात्पर्य मिसेस अपर्णा की जिन्दगी का अध्ययन करना नहीं रहा है। उदय की डायरी के पन्नों से भी यही उद्देश्य उभरकर सामने आया है। "मेरी यह दुर्दम्य महत्त्वाकांक्षा रही है कि मैं उसे उसके सम्पूर्ण परिवेश में जानूँ, उसे अन्तर्तम तक जानूँ।"[१३] परन्तु सम्पूर्ण उपन्यास पढ़ने के बाद यह बात साफ हो जाती है कि अपर्णा से भी अधिक सुजाता

के अन्तर्मन तक ही लेखक जा पाया है। 'प्रिन्सेस अपर्णा' यह उसकी उत्सुकता और अध्ययन का लक्ष्य था और सुजाता माध्यम। परन्तु यहाँ माध्यम ही साध्य बन गया है। क्योंकि सुजाता के ही अन्तर्तम तक लेखक पहुँच पाया है। सुजाता के ही सस्कार और वर्ग की दीवारो को वह टटोल सका है। उदय के व्यक्तित्व की सीमा है। अपर्णा के दु खों का तथा उसकी असहाय अवस्था का चित्रण इसमे हुआ जरूर है, परन्तु उसके अतमन तक पहुँच नही पाया है, यह पूर्णत सही है। सम्भवत यह इस कारण हुआ है कि सुजाता अपनी डायरी लिख रही है, अपर्णा नही।

इस उपन्यास मे "देश काल और वातावरण" का चित्रण पृष्ठभूमि के रूप मे हुआ है। इसम भी सगति नही है, इसे पिछले पृष्ठो मे स्पष्ट किया गया है। सुजाता की डायरी मे अपर्णा की जिन्दगी के जो चित्र आये हैं, उनसे स्पष्ट है कि इसमे १९५५-५८ की बम्बई का ही वर्णन है। डायरी–लेखन मे प्रकृति और वातावरण के चित्रण का महत्त्व नही होता। फिर भी चूँकि सुजाता एक लेखिका है, इसमे प्रकृति के विविध रूपो का तथा परिवेश का बडा ही सशक्त चित्रण हुआ है। मगलवार १८ जून, बुद्धवार २६ जून, रविवार १४ जुलाई, सोमवार १५ जुलाई, शुक्रवार १९ जुलाई—डायरी के इन पृष्ठो मे प्रकृति तथा बम्बई का बडा ही जीवन्त चित्रण किया गया है।

कथावस्तु मे उत्सुकता और कौतुहल का समावेश नही है। यह सम्भव भी नहीं था। जहाँ कथावस्तु का सीधा सम्बन्ध एक विशेष मन स्थिति के साथ ही होता है वहाँ घटनायें नहीं होती। घटनाओ के अभाव मे गतिशीलता नही होती। और जहाँ गतिशीलता नही, वहाँ कथानक अधिक सपाट और सरल होता है। इस कारण उत्सुकता और कौतुहल परम्परावद्ध अर्थ म सम्भव नही है। अलवत्ता सुजाता की मन स्थिति को लेकर पाठको के मन मे यह उत्सुकता जाग जानी चाहिए। प्रिन्सेस अपर्णा और उदय की बहन अपर्णा का बीच बीच मे सकेत देकर लेखक ने पाठको की उत्सुकता रहस्य-कथाओ की तरह बनाये रखने की पूरी कोशिश की है, परन्तु इसमे उसे पूरी तरह से सफलता मिली है ऐसा कह नही सकते। क्योकि सजग पाठक दो-तीन सकेतो के बाद ही यह समझ जाता है कि ये दोनो अलग अलग नहीं, एक ही हैं। हाँ, 'प्रिन्सेस अपर्णा' के अद्भुत और रहस्यमय जीवन के प्रति उत्सुकता बनी रहती है। प्रिन्सेस और बहन अपर्णा को अलग अलग साबित करत जाना और अन्त मे उन्हें एक घोषित करने का प्रयत्न 'फिल्मी' अधिक है, वास्तविक नही। क्योंकि इतनी बुद्धिमान सुजाता विविध सकेतो को कैसे समझ नही पायी—यह आश्चर्य ही है।

**चरित्र : (सुजाता)** उपन्यास के केन्द्र मे एक ही पात्र है, 'सुजाता'। सुजाता की मृत्यु के बाद लेखक उसकी डायरी के पृष्ठो को—"अनावश्यक प्रसग या अप्रास-

गिक बातो को निर्ममता से सम्पादन कर"[१९] छाप रहा है। "इस डायरी मे बचपन की उल्टी-सीधी बातें लिखी गई हैं।"[२०]—ऐसा कहने वाली सुजाता या तो मृत्यु-समय बूढी थी अथवा प्रौढ़। कम-से-कम इतना तो मान लिया जा सकता है कि इस डायरी को लिखकर निश्चित रूप से ८-१० वर्ष हुए होंगे। क्योंकि व्यक्ति अपनी युवावस्था को "बचपन की उलटी सीधी बातें' प्रौढावस्था मे ही कहता है। आज भूतकाल की जिस मानसिक अवस्था को वह बचपन की उलटी-सीधी बातें कह रही हैं, कभी इसी अवस्था को वह सम्पूर्ण आत्मीयता के साथ जी चुकी थी।

तब सुजाता एम० ए० मे पढ रही थी। लेखिका होने का शौक हुआ था। इधर-उधर रचनाएँ छप रही थी। वह अपने पर बहुत अधिक खुश थी। कुछ-कुछ 'अहवादी' भी बन रही थी। इस युवती सुजाता के जीवन मे भी कुछ दु खद प्रसग घटित हो चुके थे। "तेज का बिछोह" एक ऐसी ही घटना थी। कभी वह 'तेज' पर सर्वाधिक प्यार करती थी। कैशोर्यावस्था का वह प्रेम था। मैट्रिक की कक्षा से लेकर शायद बी० ए० होने तक 'तेज' और 'सुजाता' एक-दूसरे से सम्बन्धित थे। तब तेज उसके सपनो का राजा था। भविष्य का निर्माता था। परन्तु आज तेज की केवल यादें ही शेष हैं। क्योंकि तेज पढाई के लिए लन्दन गया और वही पर किसी ब्रिटिश मेम से उसने विवाह कर लिया है। कैसा हो गया होगा जाने ? कैसी होगी उसकी ब्रिटिश मेम ?" तेज के इस अचानक परिवर्तन से सुजाता क्षुब्ध हो गई थी, दु खी हो गई थी और घण्टो बैठकर रो भी चुकी थी। परन्तु धीरे-धीरे वह उसे भूलने की कोशिश भी कर रही थी। और कुछ हद तक उसे इसमे सफलता भी मिली थी। 'पिछले दिनो म तो मैं उसे करीब-करीब भूल ही चुकी थी। हफ्तो उसके नाम तक का ध्यान नही आता। आज तो यह कुछ नयी ही बात है "[२१] क्योंकि आज 'तेज की बहुत याद आ रही है।"[२२] प्रसिद्ध कथाकार उदय के व्यक्तित्व म और तेज मे शायद समानता है अथवा उनके प्रति शायद उसी प्रकार का आकर्षण। सुजाता इसी कारण उदय की ओर आकृष्ट है। और सयोग से उसका परिचय उदय से हो जाता है—पुस्तकालय मे। प्रथम भेंट से ही सुजाता के मन म उदय के प्रति जिज्ञासा है। क्योंकि उसने सुना है कि "लडकियो के सामने इनकी बोलती बन्द हो जाती है और सारा मुंह लाल पड जाता है।"[२३] उदय किसी लडकी के साथ फोन पर बात-चीत कर रहा था और तभी सुजाता का उससे परिचय किया गया था। उस प्रसग से ही सुजाता के मन मे उत्सुकता है कि "कौन थी दूसरी ओर ?"[२४]

सुजाता के पिता डाक्टर हैं। मध्यमवर्गीय सस्कारो मे पढने वाली यह युवती खुले मन की है। किसी भी प्रकार के रहस्य को वह मन मे छिपाकर रख नहीं सकती। बातूनी है। पहली ही भेंट मे उसने उदय को घर आने का निमन्त्रण दे रखा है। उसकी ऐसी अपेक्षा थी कि उदय उसकी कहानियो की प्रशसा करेगा अथवा कम-

से-कम यह तो कहेगा कि आप की कहानियाँ मैंने पढ़ी हैं। मगर "कोई कहता था" कहकर मेरी कहानियों के बारे में कहना मुझे भी चुभा।' सुजाता नई पीढी की चर्चित कहानीकार है। एक प्रसिद्ध लेखक द्वारा की गई उपेक्षा से उसका अहं और स्वाभिमान जाग उठा है—प्रथम भेंट में ही। और कहीं से वह उदय के व्यक्तित्व का अध्ययन करने का, उसकी कमजोरी को पकड़ने का निश्चय करती है। और फिर उदय बनता भी बहुत था। "किसी का बनना मुझे बहुत बुरा लगता है।" उसे अपनी 'निगाह' पर अभिमान है। इसी कारण वह उदय को अपने घर आने का निमंत्रण देती है। और उसका विश्वास है कि उदय उसे मिलने जरूर आएँगे ही। क्योंकि "नारी का निमंत्रण हो, और पुरुष वह भी कलाकार अस्वीकार कर दे?" सुजाता की डायरी के प्रथम पृष्ठ से ही कलाकार सुजाता और नारी सुजाता का आपसी द्वन्द्व दिखाई देने लगता है। कलाकार सुजाता स्वतन्त्र विचारों की, प्रतिमा-सम्पन्न और अपने अहं के प्रति अत्यधिक जागरूक है तो नारी सुजाता पापभीरु, मध्यवर्गीय संस्कारों से पीडित, सकोचशील और अपने नारी-व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग है। इसी कारण कलाकार 'सुजाता' उदय को घर आने का निमंत्रण दे देती है तो नारी सुजाता सोचती है—"मैंने एकदम बुलाकर बुरा तो नहीं किया? कहीं या न सोचने लगे कि मुझे एकदम सस्ता समझ लिया है। मुझे फोन नम्बर नहीं देना चाहिए था। कहीं उन फूलजी की तरह पीछे लग गए तो ..."[११]

यह नारी सुजाता ही है जो उदय के घर आने की कल्पना से सिहर उठी है। मन-ही मन तरह-तरह की योजाएँ बना रही है। कब आएँगे, कहाँ बिठाऊँगी, कमरा साफ सुथरा चाहिए, फूल किस प्रकार रखने चाहिए, कमरा किस प्रकार सजाना चाहिए आदि-आदि। आम मध्यवर्गीय स्त्री के सोचने की पद्धति यहाँ अत्यन्त सहजता के साथ व्यक्त हुई है। मंगल ४ जून तथा बुध ५ जून की डायरी में यही मन.स्थिति व्यक्त हुई है। परन्तु समय देकर भी उदय जब उसके यहाँ नहीं आता, तब वह काफी चिढ जाती है। इस चिढ में एक नारी की सहज मन स्थिति व्यक्त हुई है। उसके अहं को यह दूसरा धक्का बैठा है। और उसके न आने का कारण भी उनकी वही बहन है। स्त्री-सुलभ सन्देह भी उसके मन में है। "पर फिर मन तलखी और झुंझलाहट से भर गया है। मुझे साफ लगता है यह बहन-वहन की बात बिलकुल झूठ है। वे या तो अपने आप को बहुत तीसमारखाँ लगते हैं कि नौसिखुओं से क्या मिले, या फिर सचमुच बहुत ही झेंपू हैं—लड़कियों के सामने प्राण निकलते हैं। बड़ा दम्भ है।"[११] उदय की इस बहन के प्रति जिज्ञासा के कारण तथा उसके इस प्रकार के 'दम्भी' व्यक्तित्व के कारण ही बृहस्पति ६ जून की डायरी में सुजाता लिखती है

*इस व्यवहार के पीछे चाहे लड़कियों से झेंपना हो या अपने को बहुत तीसमारखाँ* लगाना, इस आदमी की असलियत से एक बार टक्कर जरूर लेनी है।"[१३] इस प्रकार

उदय की "असलियत को जानने का निर्णय लेने के बाद ही इसकी कथावस्तु का तथा सुजाता के 'शह और मात' का खेल आरम्भ हो जाता है। शतरंज के इस खेल में एक ओर उदय बैठा है, दूसरी ओर सुजाता। दोनों एक-दूसरे की 'असलियत' को जानने की कोशिश में लगे हैं। उदय की ओर से यह कहना अधिक योग्य है कि शतरंज की इस चाल में वह सुजाता के माध्यम से "प्रिन्सेस अपर्णा की असलियत" जानने के लिए बैठा है। सुजाता अपनी "लेखकीय निगाहों" से उदय के अध्ययन के लिए प्रयत्नशील है और उदय सुजाता के माध्यम से सुजाता तथा प्रिन्सेस अपर्णा को जानने के लिए। लेखिका सुजाता ने मन-ही-मन निर्णय लिया है कि यह आदमी अपने को बहुत बड़ा समझता है। मुझ जैसी 'नौसिखुए' को मिलना नहीं चाहता, तो मैं भी उसे अधिक महत्त्व नहीं दूँगी। परन्तु नारी सुजाता इस निर्णय को स्वीकार नहीं करती। इसीलिए रविवार ९ जून को वह उसे अपने घर ले आती है। उदय को प्रभावित करने के अनेक प्रकारों पर वह निरन्तर सोचती रहती है। आखिरी एक नारी ही है जो पुरुषों को प्रभावित करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहती है। इसलिए "इससे इनको यह भी पता लग जाएगा कि मैं सचमुच इंटेलिजेंट और समझदार हूँ, यों ही बेचारी लड़की नहीं हूँ।"[२८] सुजाता को यह मालूम है कि "कॉलेज के कुछ लोगों के बीच उदय का नाम अच्छे सन्दर्भ में नहीं लिया जाता है।"[२९] और बहन अपर्णा का नाम लेने से "उनका चेहरा झनझनाकर लाल हो उठा। अरे, यह तो दम्भी-वम्भी कुछ नहीं, झेंपू है।"[३०] फिर भी वह उनके निकट जाना चाहती है केवल 'असलियत' जानने के लिए। यह सही है कि लेखिका सुजाता के आग्रह से ही वह उदय के निकट जा रही थी। परन्तु भीतर बैठी 'नारी सुजाता' उदय की ओर अन्य दृष्टिकोण से देख रही थी। लेखिका सुजाता को यह मान्य नहीं है, फिर भी वह नारी सुजाता के सम्मुख मजबूर है। नारी सुजाता यह भी सोच रही है कि उदय उसकी ओर कहानीकार सुजाता की निगाहों से देख रहे हैं अथवा नारी सुजाता की। "विशेष रूप से उन निगाहों से वे कहानीकार सुजाता को नहीं, युवती सुजाता को देख रहे हैं।"[३१] उदय घर पर आने के बाद सुजाता की जो भाग-दौड़ की स्थिति हुई वह उसके नारी-मन को ही स्पष्ट करती है। यहीं पर वह सोचती है—"और मेरे मन में उस क्षण बड़ी विकट कसमसाहट हुई कि चाहे एक बार शालीनता और नैतिकता की सारी हदें तोड़ देनी पड़ें लेकिन इस व्यक्ति को उँगलियों पर नचा डालूँ ?"[३२] स्पष्ट है कि यहाँ 'नारी सुजाता' की मन स्थिति तथा स्त्री के सनातन अहं (पुरुष को उँगलियों पर नचाना और उस विजय को महान् समझना) की अभिव्यक्ति हुई है। इसी कारण उसके मन में प्रश्न उठता है कि "वे विवाहित हैं या अविवाहित।"[३३] उदय के जीवन के सम्बन्ध में चार-पाँच ही प्रश्न सुजाता के सम्मुख हैं—अपर्णा नाम की स्त्री कौन है ? क्या वह सचमुच ही इनकी

बहन है ? ये विवाहित है अथवा अविवाहित ? इनके लेखकीय व्यक्तित्व की कम-जोरियाँ कौन सी है ? इनके उपन्यास के स्त्री-पात्र यथार्थ हैं अथवा काल्पनिक ? अगर यथार्थ हैं तो इनके सम्बन्ध स्त्रियों के साथ किस प्रकार के है ? इन्ही प्रश्नो की खोज मे लेखिका सुजाता भटक रही है। तो दूसरी ओर नारी सुजाता के प्रश्न हैं—ये 'तेज' की तरह ही दिखते हैं। इन्हे देखकर मुझे तेज की ही याद क्यो हो जाती है ? क्या ये मेरे जीवन साथी बन सकते हैं ? क्या ये प्रेम करने योग्य है ? वास्तव मे सुजाता के भीतर की नारी तथा उसके भीतर का लेखक इन्ही प्रश्नो की खोज करते रहा है। डायरी के सभी पन्नो मे इन्ही प्रश्नो की अनवरत खोज की गई है। अन्त मे जब उसे पता चलता है कि यह सम्पूर्ण खोज ही निरर्थक थी, तब वह भीतर से टूट जाती है।

एक-दूसरे की असलियत को जानने का यह खेल शुरू हो जाता है—रविवार ९ जून से। सुजाता अपने को 'मर्दानी लड़की' समझती है। और फिर सोचती है—'तभी दिमाग मे टकराया, क्या अजब लोगो की टक्कर है एक मर्दानी लड़की है तो दूसरा जनाना पुरुष। एक को कम उम्र मे ही मद ने बिगाड दिया है तो दूसरे को प्यार ने। *क्या सचमुच यह टक्कर है ? हर एक से यो टकराते फिरने की* बात मन की नैतिकता के सस्कार नही स्वीकारते। लेकिन, आखिर अपने को कुछ लगने वाले से टकराकर उसकी असलियत देख लने मे हर्ज ही क्या है ?'[११] इस उद्धरण मे भी नारी और लेखिका का सघर्ष स्पष्ट है। *सस्कारो मे फँसी हुई नारी को इस प्रकार की टक्कर मान्य नही है। परन्तु लेखिका सुजाता की यह मजबूरी है—किसी से टकराने की। यूँ किसी से अगर वह नही टकराएगी तो व्यक्तित्व-अध्ययन कैसे होगा ? और बगैर व्यक्तित्व-अध्ययन के साहित्यकार बनना भी तो दुष्कर है।*

लेखिका सुजाता उदय की भौहो से बहुत परेशान है। क्योकि ये भौहे उसे तेज की याद दिलाते हैं। और तेज की याद आ जाने से उसके भीतर की नारी छटपटाने लगती है, किसी के प्यार के लिए। " एक बार जब उनके चेहरे को फिर से देखा तो निगाहे फिर भौहो पर अटक गई। इन भौहो को मैंने बहुत पास से देखा है याद आया, ये तो तेज की भौहो से कितनी मिलती है।"[११] सभवत इसी कारण वह उदय की ओर आकृष्ट है। तेज तो अब उसके जीवन से चला गया है। उसने विश्वासघात किया है। परन्तु इस उदय की जिन्दगी के सम्बन्ध मे वह अधिक नही जानती। जब तक इनकी जिन्दगी साफ न दीखे, तब तक कुछ सोचना भी तो मुश्किल है। इनकी जिन्दगी का सब से बडा रहस्य 'अपर्णा है। ' यह इनकी कौनसी बहन है, जो अक्सर इनके दिमाग पर छाई रहती है और उसे वे ऐसे तन्मय भाव से फोन किया करते है।'[११] नारी की सहज-सुलभ ईर्ष्या और सन्देह की वृत्ति यहाँ व्यक्त हुई है और इसी कारण वह पूछती है—"आप की बहन क्या यहीं रहती

है ?"[१७] और "इस बार ये टूटकर चौंके।"[१८] उदय के इस निराश उद्गार से कि "यहाँ हमारे साथ कौन रहेगा, अकेले पड़े रहते हैं" सुजाता समझ जाती है कि "इन्हें किसी की सहानुभूति चाहिए। यह इनके गढ़ का सब से कमजोर कोना है।"[१९] पागल सुजाता समझने लगी है कि उदय को उसकी सहानुभूति की आवश्यकता है। और सहानुभूति देकर वह उसे "समग्र रूप से समझ लेने का" प्रयत्न करती है। परन्तु इस प्रकार किसी को सहानुभूति देने वाला व्यक्ति खुद 'कोरा' नहीं रह सकता। सुजाता के सन्दर्भ में भी यही हुआ है। एक ओर लेखिका सुजाता का उदय को सहानुभूति देने का निर्णय है, तो दूसरी ओर "मगर साँझ होते-होते यह विश्वास हो गया कि जो मैं कर रही हूँ, वह वर्जनीय है, अनुचित है और शायद किसी के प्रति विश्वासघात है"[२०] नारी सुजाता की यह मन स्थिति है। सोमवार दस जून की डायरी में यह संघर्ष अधिक सहज और स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ है। नारी सुजाता अपने मध्यवर्गीय संस्कार तथा तेज के प्रति अपने पुराने प्यार को लेकर चिंतित है। वह उस प्यार के प्रति प्रामाणिक रहना चाहती है। परन्तु लेखिका सुजाता सोचती है कि तेज ने अगर उसके साथ विश्वासघात किया है तो वह क्यों प्रामाणिक बनी रहे। और फिर "व्यक्ति उदय पर तो मैंने कृपा ही की है—यह मैं भीतर-ही भीतर महसूस कर रही थी।"[२१] यहाँ सुजाता उदय के व्यक्तित्व को विभाजित करके देख रही है—व्यक्ति उदय और लेखक उदय। लेखक उदय से वह टक्कर लेने बैठी है। उसके इस व्यक्तित्व के प्रति उसके मन में बहुत अच्छे भाव नहीं हैं। परन्तु व्यक्ति उदय के प्रति उसके मन में 'दया' है। अपने नारी-मन को समझाने की ये अलग-अलग कोशिशें हैं। इधर वह उदय को अपना पुराना परिचित ही मान रही है। उसके अनुसार—"अपरिचित परिस्थितियों में दो परिचितों का मिलना"[२२] है। नारी सुजाता अपने प्रत्येक व्यवहार के प्रति सजग है, चिंतित है। वह किसी भी प्रकार का ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहती जिससे "कहीं मेरी बातचीत, उन्मुक्त फिकरेबाजी से उन्हें ऐसा तो नहीं लगा कि मैं कुछ यों-ही-सी लड़की हूँ।"[२३] लेखिका सुजाता उन्मुक्त व्यवहार करना चाहती है और नारी सुजाता उसे उसके बन्धनों का एहसास करा देती है। लेखिका सुजाता के मन में एक ही इच्छा है "यह जानने की इच्छा भी बड़ी प्रबल है कि ये 'सफल' और श्रेष्ठ कहे जाने वाले लेखक व्यक्तिगत जीवन में कैसे होते हैं? शायद जल्दी-से-जल्दी उनसे घनिष्ठता बढ़ा लेने की आतुरता के पीछे भी यही भाव हो।"[२४] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि लेखिका और नारी सुजाता का अद्भुत समन्वय यहाँ हुआ है। इन दोनों में अन्तर करना कठिन हो जाता है। लेखिका सुजाता उदय से अधिक सम्पर्क बढ़ाना चाह रही है। उसके व्यक्तिगत जीवन को जानने के लिए, ठीक उसी समय नारी सुजाता इसका उपयोग करना चाह रही है—अपने प्रणय के लिए।

दो एक बार की भेंट के बाद सुजाता के मन में उदय के प्रति आकर्षण बढने लगता है। उसे लेकर अनेक प्रकार के स्वप्नो मे वह खो जाती है। इन स्वप्नो मे भावुकता है, भविष्य के प्रति आशा है और अपने अह पर विश्वास। उदय की मुलाकात कुछ दिनो के लिए जब नही होती, तब नारी सुजाता भयभीत हो जाती है। *"आखिर हो क्या गया ? कही किसी बस, कार की चपेट मे तो नही आ गए ?"*[४५] सुजाता उदय के प्रति कितनी भावुक हो उठी है, इसका यह प्रमाण है। "प्रेमिका की मन स्थिति" यहाँ से उभरने लगती है। यह प्रेमिका अपने से प्रश्न पूछती है—"मैं चाहती हूँ कि वे आयें। क्यो चाहती हूँ।"[४६] सोमवार तीन जून को उसकी भेंट उदय से हुई थी। और शुक्र १४ जून को वह उसकी 'प्रेमिका' बन गई है। यह सब अनजाने मे हुआ है। लेखिका सुजाता इस सम्बन्ध को नकार रही है। परन्तु प्रमिका 'सुजाता' उदय के सम्मुख समर्पित होने को तैयार बैठी है। इसी कारण उदय के न मिलने से वह छटपटा रही है। वह कहाँ रहता है ? उसके सुख दुख क्या है ?—यह जानने को वह उत्सुक है। इस प्रकार यहाँ से सुजाता पर तीन कोणो से *विचार करना होगा। लेखिका सुजाता, नारी सुजाता और प्रेयसी सुजाता।* प्रेयसी सुजाता इसी कारण सोचती है *'विवाह के बाद मुझे क्या कहकर पुकारा* जाएगा ? हिए् ।"[४७] उदय उसे लगातार मिल नही रहा है। भीतरी अह को चोट पहुँच गई है। कही उपेक्षा की एक कसकती हुई कचोट थी, जो आँखो मे आंसू ले आई। "भावुक प्रेयसी की यह मन स्थिति है जो मिलने न आने से आँसू बहा रही है। तो तीसरी ओर लेखिका सुजाता को यह सन्देह है कि शायद एक लडकी होने की वजह से ही उसकी ऐसी स्थिति हो गई है। "अवसर यह कसक भी मैंने अपने भीतर अनुभव की है कि मुझे जो प्रशसा और चर्चा मिल रही है उसके पीछे मेरी प्रतिभा या कृतित्व नही, नारी होना ज्यादा है।"[४८] उसे दुख है कि कोई भी उसकी *प्रतिभा का तटस्थ होकर मूल्याकन क्यो नही करता ? उसका नारी होना क्या एक शाप है। उसे भय है कि कोई भी मेरी प्रतिभा और योग्यता को जाँच* नही पाएगा ? हर क्षण खाता रहता है ?"[४९] हर बार वह अनुभव करती है कि 'देख यह तारीफ तेरी नही, तेरे लडकी होने की है।"[५०] लेखिका, नारी और प्रेयसी का यह त्रिकोणात्मक सघर्ष ही सुजाता के चरित्र को विकसित करता गया है। लेखिका के रूप मे वह बडी बनना चाहती है, स्थापितो के निकट आना चाहती है, उदय जैसे प्रसिद्ध लेखक की असलियत को जानना चाहती है। पिता, माँ अथवा सहेली रेखा के बन्धनो को नारी सुजाता स्वीकार करके जीना चाहती है। दी हुई स्वतत्रता का वह दुरुपयोग करना नही चाहती। और प्रेयसी के रूप मे वह उदय के *और निकट आना चाहती है। उसे स्वीकार करना चाहती है। रविवार १६ जून को जब वह उदय के साथ पहली बार किसी होटल मे चली जाती है तो वहाँ उसकी*

त्रिकोणात्मक मन स्थिति व्यक्त हुई है। किसी पराये पुरुष के साथ इस तरह होटल के 'प्रायव्हेट रूम' में बैठने के कारण उसका नारी मन चिंतित है, भयभीत है। उदय के यह कहने के बाद कि उसकी कहानी का प्लॉट उसका नहीं मोपासां का है—उसका लेखकीय व्यक्तित्व बिखर जाता है अपमानित हो जाता है और इस झूठ को नकारने का प्रयत्न करता है। तो तीसरी ओर उसका 'प्रेयसीमन' उदय के व्यक्तिगत जीवन को लेकर अनेक प्रश्न पूछने लगता है। (पृ० ३७-६१) यहीं वह अनुभव करती है कि उदय उसके नारी-व्यक्तित्व को चुनौती दे रहा है। उदय के विभिन्न मुखौटों को 'पीसकर चूर चूर कर डालने की इच्छा" भी निर्माण हो जाती है। अपर्णा की बात छेड़ने के बाद यह बहुत लाल-पीला हो जाता है इसका एहसास भी उसे यहीं पर हो जाता है। और उसकी नारी सोचती है—"मुझे लगा हो-न हो, जरूर कुछ दाल में काला है।"[४१] १६ जून की इस मुलाकात के बाद सुजाता उदय से इतनी प्रभावित, आकर्षित और समर्पित हो गई है कि "ओफ, उस दिन की सारी छुट्टी कैसे उदय को ही लेकर बीत गई थी।"[४२] रेखा के सम्मुख वह घंटों उसके सम्बन्ध में ही बातें करती है। मंगलवार १८ जून की डायरी के पृष्ठों में यही सब कुछ है। लेखन, यथार्थ, कल्पना, रोमांस आदि अनेक विषयों पर यह चर्चा है। इन चर्चाओं के कारण नारी सुजाता भयभीत है कि इस प्रकार खुलकर किसी पुरुष के साथ यूं चर्चा करना क्या ठीक है ? लेखिका सुजाता प्रसन्न है क्योंकि सभी कोणों से वह उदय का अध्ययन कर रही है और प्रेयसी सुजाता रोमांचित है क्योंकि वह उनके और निकट जा पा रही है। लेखिका सुजाता को इस बात का गुमान है कि वह यह समझ गई है कि 'यह तो बिलकुल साधारण आदमी है। निर्बल आदमी है।"[४३] प्रेयसी सुजाता अनुभव करती है—"और जाने किस लहर में उस क्षण मेरे मन में आया कि इस निर्बल व्यक्ति को बाँहों में भरकर प्यार से इसका माथा चूम लूं और कहूँ तुम बहुत भटके हो, बहुत थके हो। आओ, तुम्हारी भटकन और थकान को एक समर्थ दिशा दूँ। उस समय मैं सब भूल गई कि मैं कहानी-लेखिका हूँ, और उदय मेरी विषय-सामग्री।"[४४] और इसी समय उसके भीतर की नारी कह उठती है—"लेकिन लेकिन इन महाशय को यह भ्रम कैसे हो गया कि मैं चाहती हूँ ? नहीं, यह भ्रम किसी भी तरह पनपने नहीं देना ।"[४५] भीतरी नारी उसे बार-बार आनेवाले खतरों की ओर सूचित करती है। इसी प्रेम के चक्कर के कारण मदा नामक उसकी सहेली की जिन्दगी बर्बाद हो गई है। "मदा के प्रसंग ने मुझे भीतर तक सिहरा दिया है। मान लो, यह हालत किसी दिन मेरी हो जाय तो ? नहीं, नहीं ! आत्म-हत्या करके मर जाऊंगी। लेकिन नहीं, उदय को इतनी लिफ्ट नहीं देनी है।"[४६] एक ओर उसका नारी-मन उसे रोक रहा है तो दूसरी ओर उसके मन में उदय के प्रति दया-भाव भी जग रहा है। 'पहले यह आदमी मुझे भी बड़ा उद्दण्ड और किसी

*हद तक बदतमीज लगा था, लेकिन अब कुछ कुछ दया आने लगी है।"*[११] उदय की ओर उसका यह आकर्षण रेखा को मान्य नही। अपर्णा और रश्मि ये दोनो उदय से सम्बन्धित हैं ही। इसलिए रेखा को लगता है कि कही धोखा है। इसलिए वह कहती है "पहले उसके पास दो थी, अब तीसरी तू और हो जाएगी।"[११] सम्भवतः इसीलिए सुजाता अपने नारी और प्रेयसी मन को दबाना चाहती है। उदय की ओर इस प्रकार भावुक दृष्टि से देखना उसके लेखकीय व्यक्तित्व को मान्य नही है। 'और पहले उदय को पुरुष और अपने को नारी मानकर जो सकोच मन मे भरा था, *वह जैसे एकदम गायब हो गया। मैं अध्येता हूँ, वह मेरे अध्ययन का विषय।* नही बिलकुल तटस्थ और भावनाहीन होकर मुझे अपने विषयो का अध्ययन करना है।"[११] क्या सचमुच सुजाता तटस्थ रह सकी है ? इसी बीच एक और आकस्मिक घटना उसके जीवन मे हो जाती है। सोमवार २४ जून को उसका परिचय 'प्रिन्सेस अपर्णा' से हो जाता है। परिणाम यह होता है कि अब तक उसके दिमाग पर उदय का भूत छाया हुआ था, परन्तु अब प्रिन्सेस अपर्णा छा जाती है। मजे की बात यह है कि लेखिका सुजाता अब अपनी पैनी दृष्टि से अपर्णा का अध्ययन करने लगती है *और प्रेयसी सुजाता उदय की ओर झुक जाती है। और इन दोनो को समझाने का* प्रयत्न नारी सुजाता करने लगती है। प्रिन्सेस अपर्णा की जिन्दगी का विस्तार से विवेचन करने के लिए वह उदय के यहाँ जाती है। इस समय उसके मन मे दो भाव है—१ प्रिन्सेस अपर्णा की जिन्दगी का यह विवेचन करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से उदय को यह सिद्ध करके बतलाना कि लेखकीय दृष्टि उसके पास भी है। २ प्रिन्सेस अपर्णा की कहानी के बहाने उदय से अपने परिचय को और दृढ करने की 'प्रेयसी सुजाता' की छटपटाहट।

*सोमवार २४ जून को सुजाता उदय के कमरे पर पहली बार जाती है।* इस दिन की डायरी के पृष्ठो मे फिर त्रिकोणात्मक सघर्ष उभर आया है। यही पर शतरज के खेल को बतलाया गया है। 'शह और मात' की यह स्थिति प्रतीकात्मक ढग से यहाँ बतलायी गई है। उदय के कमरे मे प्रवेश करने के थोड़ी ही देर बाद नारी सुजाता अनुभव करती है "अरे कमरे मे हम दोनो ही अकेले हैं।"[११] "बाहरवालो ने देखा तो क्या सोचेंगे ?"[११] परन्तु लेखिका सुजाता प्रसन्न है—"लेकिन भीतर एक अजब-सी प्रसन्नता भी थी। क्या हुआ अकेले बैठने मे ? कोई खा तो जाएँगे *ही नही।* [११] *और प्रेयसी सुजाता—"अवचेतन मन मे उनकी भौंहे चुभती रही* और तेज का ध्यान आता रहा।"[११] और 'सच है, जब जब उदय के साथ बातें करने बैठी हूँ, समय का ध्यान ही नही रहता।"[११] नारी सुजाता को भय है—*'जाने क्यो मुझे हर क्षण लगता था जैसे वे अभी झपटकर मुझे अपनी बाँहो मे भींच* लेंगे और चुम्बनो से मेरा मुँह ढँक देंगे। तब क्या करूँगी ? किधर भागूँगी।'[११]

और जब ऐसा नहीं होता तो प्रेयसी सुजाता के मतानुसार—'छि, यह व्यक्ति तो बड़ा कमजोर और डरपोक है। इसमें तो इतना भी साहस नहीं आया कि आगे बढ़कर मेरे कन्धे पर हाथ रख देता।"[15] उदय के सम्पर्क में आने के बाद इधर कुछ दिनों से सुजाता के मन की अतृप्त कामेच्छा अलग-अलग पद्धतियों से व्यक्त हो रही है। 'मानसिक रति' की यह अभिव्यक्ति २६ जून की डायरी के पृष्ठों में हुई है। उस दिन की डायरी में वह लिखती है—"इच्छा हो रही थी कि कुछ 'वर्जनीय', कुछ 'निषिद्ध' देखूं । कैसा लगता होगा बलात्कार के समय ? क्या एक बार इस अनुभव से नहीं गुजरा जा सकता ?"[16] सुजाता के मन में उठने वाले इन विभिन्न तरंगों के कारण ही उसका चरित्र अत्यधिक स्वाभाविक तथा जीवन्त बन पड़ा है। उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि वह 'मनुष्य' मात्र के शुद्ध धरातल पर आकर खड़ी है। अपनी अतृप्त कामेच्छा के प्रति चिन्तित, 'काम' के प्रति एक रहस्यमय, अव्याख्येय तथा अजीब सा आकर्षण और इस काम की पूर्ति के लिए 'मानसिक रति' में प्रवेश! यह सब कुछ स्वाभाविक ही तो है। परन्तु मनुष्य इस स्तर पर अधिक देर तक टिक नहीं सकता। क्योंकि उसके संस्कार, समाज की नीति-अनीति की संकल्पनाएँ उसे ऐसे विश्व में रममाण करने की इजाजत नहीं देते। यह अतृप्त कामेच्छा सम्भवतः इसी कारण 'स्वप्न' द्वारा ही व्यक्त होती है। इधर सुजाता के मन में भी इस प्रकार के अनेक विचार आ रहे हैं, परन्तु उसके भीतर बैठी हुई संस्कारशील नारी उसे कहती है—'छि, मेरे मन में भी कैसी भद्दी-भद्दी बातें आने लगी हैं इन दिनों। पहले तो ये सब नहीं आती थीं।" उदय के सम्पर्क के पूर्व ऐसी स्थिति नहीं थी। कारण स्पष्ट है कि उसके मन में उदय के प्रति शारीरिक आकर्षण निर्माण हो गया है। उसका चेतन मन इस 'आकर्षण' को स्वीकार करने तैयार नहीं है। परन्तु 'अचेतन मन' में यह सब कुछ चल रहा है। इसी अचेतन मन की इच्छा के कारण ही वह सोचती है—"बाँहों की जकड़ में पिसता-कसमसाता शरीर ... निरावृत्त करते और उसकी गतिविधि को बरजते दो हाथों की लिपटी लिपटी आलस्य भरी छीना-झपटी ... निःशब्द, लम्बी-लम्बी हाँफती-सी साँसें और चार चिपके होंठ।"[17]

बृहस्पति २७ जून की डायरी के पृष्ठों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुजाता उदय को अपने भावी पति के रूप में देख रही है। अर्थात् यह फिर 'अचेतन' स्तर पर ही चल रहा है। अर्थात् यह फिर 'अचेतन' स्तर पर ही चल रहा है। *निषेधात्मक संघर्ष यहाँ पर भी उभर आया है। "प्रेयसी सुजाता" उदय को लेकर* भविष्य के सपनों में खो रही है। "अभी जागते-जागते बड़ा अजब-सा सपना देखा था ... मैरीन ड्राइव पर एक बहुत बड़ा-सा फ्लैट है ... एक चौसता सा सूनापन है ... एक दरवाजा खोलकर कनपटियों पर हजामत का साबुन लगाए, हाथ में रेजर लिए कोई निकलता है ... ।"[18] यह कोई और नहीं उदय ही है। एक ओर यह स्थिति है

तो दूसरी ओर चेतन मन पर अपर्णा और उदय ही छा गए है। "अपर्णा और उदय, पता नही ये दो नाम मेरे दिमाग मे इन दिनो हमेशा साथ क्यो टकरा रहे हैं।"[१] अपर्णा को लेकर उसके 'प्रेयसी मन' मे ईर्ष्या है। उसके लेखकीय मन को लगता है यह अपर्णा उनकी बहन वहन कोई नही है। कोई दूसरा ही चक्कर है। "मुझे कुछ गडबड लगता है।"[१] और उदय को लेकर अब उसके पास केवल प्रशंसा के ही शब्द हैं—"उदय मे सचमुच कलाकार के टच हैं।"[१] सभवत इसी कारण उदय के शरीर को लेकर वह अधिक सोच रही।—"जब वे सिगरेट पी रहे थे—इन पतली-पतली सलवटो सी धारियो वाले होठों से होठ छुलाकर देखू ? कैसा स्वाद होगा ?"[१] इन विभिन्न मन स्थितियो के बावजूद सुजाता यह अच्छी तरह से जानती है कि इन इच्छाओ को क्रिया-रूप मे लाना कम से-कम इस देश मे तो असभव है। एक मध्यवर्गीय युवती के लिए तो असभव !! इच्छाओ की सुविधाओ के बावजूद उन्हे दबाना पडता है। तेज' को वह चाह रही थी, उस पर समर्पित भी थी। परन्तु हुआ क्या ? तेज ने विश्वासघात किया। आज वह उदय से बधी हुई है। उदय के शरीर के प्रति उसके मन मे आकर्षण है। फिर भी वह कुछ नही कर सकती, सिवा रोने के। अजीब स्थिति है यह ! 'पुरुष' के सम्पर्क मे आने के बाद उस पर सर्वाधिक 'प्यार' करने के बाद भी स्त्री उन्मुक्त होकर उससे मिल नही सकती। इसलिए *भारतीय युवती प्रेम के इस क्षेत्र मे सिवा आंसू बहाने के और कुछ कर ही नही* सकती। इस स्थिति को सुजाता जैसी लेखिका समझ पायी है; इसी कारण वह लिखती है—"हम हिन्दुस्तानी लडकियो को चुपचाप रोने का रोग है । जैसे अगरबत्ती चुप चुप जलती है । अग्रेजी लडकियो की तरह हमारा प्रेम न तो किलकारियो और कहकहो वाले उन्मुक्त आलिंगनो मे निकलता है, न हमारा क्रोध हिस्टीरिया के दौरो जैसी चीखो मे। चाहो तो कह लो कि हम लोगो मे जीवन की कमी है। इसीलिए न तो खुले और सम्पूर्ण मन से प्यार कर सकती हैं, न क्रोध।"[१] भारतीय युवती की मन -स्थिति का इससे स्पष्ट चित्र और कौन सा हो सकता है ? सिवा रोने के और कुछ न कर सकने की विवशता से सुजाता परिचित है। इस २७ जून की डायरी मे उसके मन की यही द्विधात्मक स्थिति व्यक्त हुई है। मन उसके नियत्रण मे नही है। इसी कारण वह लिखती है—"पता नही, क्या-क्या करने को मन करता है हर पुरुष से, हर छोटे बडे लडके से खिलवाड करने की इच्छा होती है।"[१] इसी कारण उसका चेतन मन झट से उसे प्रश्न पूछता है कि "कही उदय के साथ खिलवाड करने मे यही मनोवृत्ति तो नही है ? तो मैं उदय के साथ भी 'खिलवाड' कर रही हूँ ?"[१] सस्कारशील मध्यवर्गीय मन इस प्रकार के खिलवाड की स्वीकृति तो देता नही है। और मन मे अनेक अन्तर्द्वन्द्व दिनरात रह रहे हैं। इसीलिये सुजाता अपने अचेतन मन को समझाती है—"नही तो फिर मुझे आज

अपने और उदय के सम्बन्धों को साफ कर लेना होगा, ताकि किसी प्रकार के भ्रम की कोई गुंजायश रह ही न जाय। हां, उदय से मेरा सम्बन्ध मात्र मित्रता का है। हमारे और उनके बीच मे कॉमन आधार है—लिखना।"[७९] और उसका लेखकीय व्यक्तित्व उसके अचेतन मन को समझाता है—"मित्र के रूप मे वे मेरे अध्ययन के ऑब्जेक्ट हैं, कहानी के विषय हैं। विषय की तटस्थता और निर्लिप्तता से ही मुझे खतरनाक से खतरनाक क्षणो मे उनका अध्ययन करना है।"[८०] प्रश्न है कि क्या वास्तव मे सुजाता तटस्थ रह सकी है? आगे की घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि यह सब सुजाता को सम्भव नही हो सका। परन्तु आखिर तक वह इस कोशिश मे थी जरूर। अब तो उसके लेखकीय व्यक्तित्व की जिम्मेदारी और बढ गई है। क्योंकि एक ओर उदय का तटस्थता से अध्ययन करके लिखना है, तो दूसरी ओर अपर्णा है। "दूसरी ओर अपर्णा का अध्ययन करना है, लिखना है, निरीक्षण करना है, *जीना कुछ नही है। कहीं भी अपने लिए कुछ नही करना। अपने को नही* उलझाना कहीं नही मरमाना।"[८१] उपर्युक्त उद्धरणों मे सुजाता की छटपटाहट और स्पष्ट हुई है। एक युवा लेखिका की स्थिति सचमुच बडी "बेबस और असहाय" होती है। एक संवेदनशील स्त्री किसी पुरुष का तटस्थ होकर निरीक्षण और अध्ययन क्या कर सकती है? यह प्रश्न है। सुजाता मात्र निरीक्षण करना चाहती है, जीना नही चाहती, उलझना नही चाहती। 'विषय' के प्रति, और भी 'जीवन्त' तथा सूक्ष्म संवेदनाओ से परिपूर्ण विषय के प्रति तटस्थता क्या सभव है? और आयु के एक *विशेष मोड पर खडी हुई स्त्री मे यह तटस्थता क्या सभव है? पुरुष मे अलबत्ता* यह सभव है। और उदय मे अपने विषय के प्रति यह तटस्थता कुछ सीमा तक थी, परन्तु सुजाता मे नही। इसी कारण वह 'मात' खा चुकी है, निरीक्षण के इस खेल मे।

'लेखकीय तटस्थता' के इसी विषय पर सुजाता १८ जून को उदय के साथ खुलकर चर्चा करती है। उदय उसे समझाने की कोशिश करता है कि एक लेखक को "निहायत क्रूर हो जाना चाहिए"।[८२] इस तटस्थता की विवेचना के बाद सुजाता *अपना आत्म निरीक्षण करती है तो उसे लगता है कि वह* अपने ही प्रति तटस्थ नही हो पा रही है तो औरो से तटस्थ रहकर सोचना दूर की ही बात। "अब इसी डायरी को ही लो, मैं क्या वाकई वही सब लिख पा रही हूँ जो मन की आँखो के सामने देख रही हूँ। पता नही कितनी बातें छोड़ती जा रही हूँ। सब लिख दूँगी तो 'पढ़कर हाय, कोई क्या कहेगा।"[८३]

स्त्री और पुरुष के सम्बन्धो को लेकर सुजाता सोचती है कि इन दोनो मे 'शुद्ध मित्रता' की सभावना है, 'एक आत्मीय घनिष्ठता बिना शारीरिक सम्बन्ध आये सभव है।"[८४] प्रिन्सेस अपर्णा इस बात को नही मानती। उसके अनुसार बिना

शारीरिक सम्बन्ध आए, यह घनिष्ठता समव ही नही है । उदय के विचार भ
प्रिन्सेस अपर्णा की तरह हैं । और उदय के इन विचारो के कारण ही 'जाने क्यो
नये सिरे से शरीर रोमांचित हो आया और मैंने झटके से अपना हाथ खी
लिया ।"[८५] और इधर कुछ दिनो से वह उदय के और निकट जा रही है
जाने-अनजाने मे यह सब कुछ हो रहा है । अब उदय उसकी उँगलियो से खेलता है
पीठ से हाथ लाकर दाहिनी बाँह पकड लेता है, और वह कभी "हल्के से एक प्या
भरा घूँसा उनकी पीठ पर मारे बिना नही रह जाती ।"[८६] इस छोटे-मोटे स्पर्श
कारण सुजाता रोमांचित हो रही है । और इसी कारण उसे ये सारे बधन गल
और निरर्थक लगते है । "हाय, कैसी होती होगी वे लडकियाँ जो निर्द्वन्द्व भाव
प्यार कर सकती और प्यार पा सकती है ।"[८७] 'आई लव यू' मैं कहूँ शाय
गर्दन कट जाय तब भी ये शब्द मेरे मुँह से न निकलें ।"[८८] 'प्रेयसी सुजाता' अपने
सस्कार और मर्यादा को (कोशिश करने के बाद भी) भूल नही सकती । शायद
भारतीय स्त्री की यही विडम्बना है अथवा शक्ति ।

१ जुलाई की डायरी के पृष्ठो से स्पष्ट है कि इधर 'तेज' की याद उसे बहुत
आ रही है । तेज के साथ के उस सम्बन्ध मे 'शरीर' उतना रोमांचित नही होता था
जितना कि उदय के साथ के सम्बन्ध मे । इसीलिए शायद वह सोच रही है—"क्या शरीर
जीतना सचमुच इतना आसान है ?"[८९] शायद इसी कारण बुधवार ३ जुलाई की
डायरी मे वह लिखती है—"क्यो न मौन के माध्यम से हम लोग एक दूसरे क
पियें पायें निरावरण और ।"[९०] उदय के साथ के ये सम्बन्ध जाने-अनजाने
कुछ दूसरे रास्तो पर निकले जा रहे है । यहाँ न उदय विषय है, न सुजाता लेखिका
सहानुभूति और दया देते-देते वह उसे भीतर से चाहने लगी है । सचमुच
"यारी हो गई ।"[९१] एक ओर यह स्थिति है तो दूसरी ओर भीतर से लेखिका
सुजाता चिल्लाती है—"मगर नही यह सब यह सब भावुकता है और मुझे इता
नही बहना चाहिए ।'[९२] प्रेयसी सुजाता को ये सारे बन्धन मान्य नही हैं । वह सारे
सस्कारो को तोड डालना चाह रही है इसलिए क्षुब्ध होकर कहती है—"यह क्या
है ? यह अकुश क्या है जो हर दम हर भावना की गर्दन पर रखा रहता है ।"[९३]
दिनाक ५ जुलाई की डायरी का पन्ना भी यही स्पष्ट करता है कि उदय के शरीर
के प्रति सुजाता के मन मे आकर्षण बढता जा रहा है । उसके भीतर की मध्य-वर्गीय
नारी इस बात को नकारने की पूरी कोशिश कर रही है, परन्तु अचेतन मन की ये
अतृप्त इच्छाएँ चेतन स्तर पर अलग अलग प्रकार से व्यक्त हुई ही है । लेखिका
सुजाता अपनी इन भीतरी इच्छाओ को तटस्थता से देखने का पूरा प्रयत्न कर रही
है । मुझे लगता है जैसे मैं दो हो गई हूँ । एक उदय के कन्धे से कन्धा मिलाकर
चेहरे पर सागर की फुहारों की आर्द्रशीलता अनुभव करती हूँ तो दूसरी खडी-खडी

घूरती है "हूँ, तो आप जनाब यों बैठी हैं ? बेशर्म।"[११] यहीं पर उसका मध्यवर्गीय संस्कारवादी मन कह उठता है—"कोई देख ले तो ? मान लो पापा ही इस गाड़ी से घर जा रहे हों तो ?"[१५] स्पष्ट है कि सुजाता की चेतना के कई स्तर हैं और वे कई खंडों में बिखर जाते हैं।

उदय के इस प्रश्न को कि क्या वह इससे पहले किसी पुरुष के सम्पर्क में आयी थी—सुजाता पूर्णत: नकार देती है। स्पष्ट है कि वह झूठ बोल रही है। [उदय से पूर्व वह तेज के सम्पर्क में आयी थी।] संभवत: किसी पुरुष के सम्पर्क में आने के बाद उसके पूर्व के पुरुष के सम्बन्धों को उस पुरुष के सम्मुख स्वीकारना शायद किसी भी स्त्री को सम्भव नहीं है, इसीलिए वह झूठ बोलती है। परन्तु मन को वह सन्तुष्ट नहीं कर सकती। इस कारण मन को समझाने का असफल प्रयत्न वह करती है। "ठीक ही तो कहा था—उसमें झूठ कहाँ बोली मैं ? जो कुछ आज हर क्षण मेरे साथ हो रहा है, ऐसा पहले कभी कहाँ हुआ ? मैं तो एक दम नई और कोरी स्लेट की तरह उदय से मिली हूँ।"[१८] तेज के समय मन.चेतना के इतने विभिन्न खंड खुले नहीं थे। आज अलग-अलग स्तर पर जाकर वह इस सम्बन्ध अथवा सम्पर्क का विश्लेषण कर सकती है, कर रही है। तेज के साथ के उस सम्पर्क को वह किशोरावस्था की शरारत समझ रही है। खुद को अनेक पद्धतियों से समझाने के बाद भी यह बात बहुत साफ है कि सुजाता उदय की ओर आकृष्ट हो चुकी है। इस आकर्षण में 'शरीर' है, मानसिक स्थितियाँ हैं, अकेलेपन को समाप्त करने की इच्छा है और सबसे बढ़कर इस विशेष आयु की विवशता है। लेकिन सुजाता बार-बार अपने मन को समझाने का प्रयत्न करती है कि "हमारे और उनके बीच का सेतु वे नहीं, उनकी रचनाएँ हैं।"[२१] प्रयत्न के बाद भी वह इस सम्बन्ध को याद नहीं रख पाती। परिणामत: इधर वह अधिक आलसी और खोई-खोई सी रहती है। प्रिंसेस अपर्णा और उदय के बाद तो उसके जीवन को नई दिशा ही मिल गई है। "इन दोनों के परिचय के बाद मैंने कुछ भी तो नहीं लिखा।"[१००] वह इस बात का अनुभव कर रही है कि "हमारे बीच का अर्थात् परिचय का जो माध्यम था उससे हट कर मैं अब व्यक्तियों पर केन्द्रित हो गई हूँ।" पता नहीं क्यों, मैं इस बात को याद ही नहीं करना चाहती कि व्यक्ति उदय न तो मेरे परिचय का लक्ष्य था, न आधार।"[१०१] सुजाता के इस वक्तव्य में ही उसकी 'हार' स्पष्ट है। उदय *यहाँ पर उसे शह दे चुका है। उदय के सारे दोषों के बावजूद भी "उदय ने ही* मुझे अपनी ओर खींचा।"[१०२] उसे शायद ऐसा विश्वास है कि उदय भी उसे चाह रहा है। परन्तु फिर उसे ऐसा लगता है कि शायद उदय उसके साथ नाटक कर रहा हो। "नहीं, ऐसा धोखा उदय नहीं देंगे।"[१०३] नारी-मन की ये विभिन्न स्थितियाँ बड़ी सहज होकर यहाँ व्यक्त हुई हैं। एक मन कह रहा है कि उदय पर इस प्रकार

उन्मुक्त प्रेम ठीक नही है । शायद यह धोखा है । "इन लेखकों-वेखको से दोस्ती करना भी बडा खतरनाक है ।"[१०३] और दूसरा मन कहता है कि कोई धोखा नही है । इस प्रकार का संघर्ष आखिर तक है ।

उदय जहाँ रहता है वहाँ अब वह अक्सर जा रही है । उदय को अपने पति-रूप मे भी वह देख रही है । *जैसे–उदय जिस चाल मे रहता है वहाँ जाने के बाद* अचानक उसके मन मे यह "आशका कौंध जाती है, कही मुझे भी इन्ही चालो मे से एक मे नही रहना होगा ? शिवाजी पार्क मे रहना सपना है और इन कमरो मे सडना मेरी आशका ।"[१०४] उदय के प्रति उसके मन मे समर्पण के भाव बढते जा रहे हैं । "जाने क्यो हर समय लगता रहता है कि मैं जो कुछ भी नया पा रही हूँ, वह मेरा नही है । उसे उदय को सौंपना है, उदय को देना ही है ।"[१०५] स्थिति *इतनी अधिक* विचित्र बन गई है कि "*अब तो ऐसा लगता है जैसे मैंने अपना जीवन जीना छोड* ही दिया है ।"[१०६] अकेलेपन के एहसास से वह मुक्ति चाहती है । एक विशेष आयु मे स्त्री और पुरुष को यह अकेलापन बडा भयावह लगता है । इससे निजात पाने के लिए उसका सारा शरीर और मन छटपटाने लगा है । व्यक्तित्व और शरीर-समर्पण की यह इच्छा स्वाभाविक ही है । इस *स्थिति का बडा ही* सशक्त चित्रण यहाँ हुआ है । *उदय के निकट आने के बाद* तो सुजाता मे *यह छटपटाहट की स्थिति* बहुत बढ जाती है । इसी कारण वह लिखती है–' सागर, सुनो सागर, मैं बहुत थक गई हूँ बहुत टूट गई हूँ । मुझे विराम दो । इन विधि-निषेध के किनारो ने मुझे पीस डाला है, मेरी हर तरंग को, लहर-लहर को कुचला है, इन्होने । मेरी रग-रग मे दावानल के स्फुलिंग दिए हैं । अब मुझे मुक्ति दो मुझे अपना मैं नही चाहिए 'आई एम' *ओनली ह्वेन आई एम विद् 'हिम'* ।"[१०७] इस पूरे उद्धरण मे *प्रेयसी सुजाता की* अभिव्यक्ति हुई है । शरीर और मन की यह छटपटाहट इतनी तीव्र है कि विधि-निषेध के किनारे भी गलत लगने लगते हैं । मध्यवर्गीय संस्कारो के कारण वह अपने को घुटी घुटी सी अनुभव कर रही है । अब प्रश्न केवल इतना है कि क्या उदय भी यही महसूस कर रहा है ? अगर उदय मे ऐसी छटपटाहट नही है तो फिर सुजाता की इस *मन स्थिति की सार्थकता क्या है ? आज जो कुछ सुजाता अनुभव कर रही* है; वैसा उसने पहले अनुभव नही किया था । इसके मूल मे शायद 'बायालोजिकल'[११०] कारण ही अधिक हैं ।

अक्सर सुजाता यह सोच रही है कि उसकी प्रीति एक ओर की तो नही है । "एक अंग को प्रीति हमारी, वे जैसे के तैसे" की स्थिति तो नही है । "उनके दिमाग मे भी तो *अक्सर कुछ-न-कुछ आता ही होगा* ? डायरी लिखते हैं ?—नही, ऐसा नही हो सकता । एकाध घण्टा तो सोचते होंगे ।"[१११]

दिनाक २० जुलाई से सुजाता अपर्णा की समस्या से उलझ गई है । प्रिन्सेस

अपर्णा और उदय की बहन अपर्णा दोनो एक हैं क्या ? यह उसका प्रश्न है । वास्तव मे इसके पूर्व भी उसके मन मे यह प्रश्न कई बार उठा है । इसके मूल मे ईर्ष्या है; अपना 'आदमी' क्या वास्तव में 'दूसरो' से जुडा है, यह जानने की उत्सुकता है । प्रेम के नाम पर धोखा तो नहीं दिया जा रहा है ? *आखिर यह अपर्णा है कौन जो हम दोनो के बीच खडी है। यह अपर्णा कही दीवार तो नही बनेगी ?* नारी-सुलभ जिज्ञासा के ये विभिन्न प्रश्न है । और इन प्रश्नो की खोज सुजाता आरम्भ से ही कर रही है । उसको कई बार इस बात की शका भी आई है कि हो न हो वे दोनो एक हैं । उसका भावुक मन उन दोनो को एक रूप मे स्वीकार करने तैयार नही है । रविवार २१ जुलाई को यह रहस्य सयोग से ही खुल जाता है । सुजाता उस दिन यूँ ही उदय के कमरे पर गई थी । और उदय के नौकर के हाथ उसने *'प्रिंसेस अपर्णा'* के नाम लिफाफा देखा । सारे नीति नियम लाँघकर उसने वह पत्र पढ लिया । और पत्र पढने के बाद उसके सामने एक दूसरी दुनिया खडी हो गई । और अब तक के सारे स्वप्न बिखर गए । किसी स्त्री का मानसिक ससार यूँ अचानक ढह जाना यह उसके लिए सबसे दर्दनाक घटना ही सकती है । इस पत्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि उदय सुजाता का माध्यम के रूप मे प्रयोग कर रहा था । जिसे वह अपना लक्ष्य समझ रही थी, वही उसे 'माध्यम समझ रहा था । केवल समझ ही नही रहा था अपितु उसने उसका उपयोग कर लिया है । उदय का यह तटस्थता से अध्ययन करना चाह रही थी और उसे गुमान भी था कि वह उदय का अध्ययन कर सकी है। परन्तु इस पत्र ने उसकी अध्ययन-शून्यता को सप्रमाण साबित किया है । *"उदय ने आखिर मेरे साथ यह मजाक क्यो किया ?* *क्या बेवकूफ बनाया है मुझे भी ।"*[111]

सचमुच उदय ने उसके साथ विचित्र खेल खेला है । दर्दनाक और जानलेवा खेल है यह ! अजीब बात यह है कि सुजाता इस खेल के लिए तैयार नही थी । उसे यह भी मालूम नही था कि खेल खेला जा रहा है । दो प्रतिस्पर्धियो मे से एक को इस खेल का ज्ञान ही नही और दूसरा सारे प्रसगो, सवादो और घटनाओ को खेल के रूप मे ही ले रहा है । *"नहीं, मैंने तो उनके साथ कोई खेल नही खेला कोई चाल नही चली कि 'शह' खाकर अब मात खाऊँ ।"* और उदय कह रहा है कि *अपनी मात को वह स्वीकार करें ।* इसीलिए "हार की क्या बात है, यह तो सरासर धोखा है । इट्स् नॉट ए फेअर गेम ।"[111] सचमुच यह कोई 'फेअर गेम' नही है। उदय भी इस बात को स्वीकार करता है "सुजाता ने स्वप्न-भग की उस वितृष्णा मे ठीक, ही कहा था कि 'इट्स नॉट ए फेअर गेम ।' सच ही यह ईमानदारी का खेल नही है ।"[111] इस खेल के प्रति दोनो पक्षो के अपने-अपने तर्क हैं । उदय के अनुसार "लेकिन एक बार खेल शुरू हो चुका था—मैं क्या करता ।"[111] उदय ने

सुजाता को युवती रूप मे कभी देखा ही नही । वह तो उसे लेखिका रूप मे ही देखता रहा । और इस लेखिका के साथ ही उसने यह जानलेवा खेल शुरू किया था । और सुजाता लेखिका-रूप मे उदय के सम्पर्क मे आई थी, परन्तु उसका यह लेखिका रूप कब तिरोहित हो गया और वह कब 'प्रेयसी सुजाता' बन गई, इसका उसे एहसास ही नही रहा । इतना सच है कि मात खाने के बाद सुजाता सर्वाधिक दुखी हुई है । दुःख पराजित होने का नही है, अपितु सीढी के रूप मे उपयोग किए जाने का है । इसीलिए २३ जुलाई की डायरी मे सुजाता नोट लिखती है—"तुम चाहे जिसके दूत *बनो, चाहे जिसके प्रति वफादार रहो मगर मुझे यो सीढी और सेतु मत बनाओ ।* मुझसे यह नही सहा जाएगा । मैं तो तुम से डोर का एक सिरा बनकर मिली थी कमन्द का सिलसिला नही ।"[११]

मुजाता के व्यक्तित्व का विशेषत उसके मानसिक व्यक्तित्व के उतार चढाव का यह क्रमश विवेचन है । इस समग्र विवेचन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष दिए जा सकते हैं—

(१) इस सम्पूर्ण उपन्यास मे सुजाता के तीन रूप उभरकर आये हैं—**मध्यवर्गीय सस्कारों से पीडित नारी सुजाता**, तेज के द्वारा ठगी जाने के कारण आहत **प्रयसी सुजाता** [जो अब उदय की ओर आकृष्ट हो रही है, और उदय के सम्पक के बाद उसका यह 'प्रेयसी रूप' अधिक सशक्तता के साथ व्यक्त हो रहा है] और व्यक्तित्व के जिस अश पर उसे सर्वाधिक अभिमान है (कुछ सीमा तक गर्व भी) वह **लेखिका सुजाता** । नारी, प्रेयसी और लेखिका का यह सघर्ष डायरी के अनेक पन्नो मे बिखरा पडा है । प्रेयसी सभी बधनो को तोडकर शारीरिक मिलन के लिए उत्सुक है, *नारी इस पर अकुश लगवाने का काम कर रही है* और *लखिका इन दोनो का* सूक्ष्म निरीक्षण कर रही है । जब वह डायरी लिखने बैठती है तब उसका लेखकीय रूप तिरोहित हो जाता है और नारी तथा प्रेयसी का रूप ही उभरकर आता है । अलबत्ता उदय के निकट आने के बाद उसका लेखकीय रूप अधिक सजग हो उठा है । जहाँ कही प्रेयसी रूप व्यक्त होने की कोशिश करता है, वहाँ पर उसकी सस्कारशील नारी उसे रोक देती है । यह सस्कारशील नारी ही उसका स्वाभाविक रूप है । इसका यूँ अकुश रहने के कारण ही सुजाता बिगडने से पहले ही सुधर गई है । व्यक्तित्व का उसका यह अश ही उसकी शक्ति है और उसकी सीमा भी । हालांकि प्रेयसी सुजाता इस स्थिति को मान्य करना नही चाहती । उसे जबरदस्त दुख है कि यूरोपीय युवतियो की तरह भारतीय युवतियो का प्रेम उन्मुक्त होकर प्रकट क्यो नही होता ? उसकी इच्छा भी है कि वह इन सब बन्धनो को त्याग दें । परन्तु उसके भीतर की नारी उसे यह करने से रोक देती है । और यही पर यह सिद्ध हो जाता है कि अपने मध्यवर्गीय सस्कारो से सुजाता कितनी दृढता स बन्धी हुई है । इस मध्यवर्गीय युवती

का वास्तव मे बडा ही जीवन्त चित्रण इसके माध्यम से हुआ है।

(२) सुजाता के मन मे पुरुष-शरीर के प्रति आसक्ति है, खिचाव है। इस उम्र की किसी भी नारी मे इस प्रकार का खिंचाव स्वाभाविक है। इसी कारण वह किसी की बाँहों मे अपने को समर्पित करना चाहती है। एक ओर ये प्राकृतिक इच्छाएँ हैं, तो दूसरी ओर मध्यवर्गीय सस्कार। इच्छा और सस्कारो मे संघर्ष शुरु हो जाता है। समाज, शिक्षा, नीति-अनीति की कल्पनाएँ आदि के कारण यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती, इसी कारण कुण्ठा, घुटन मानसिक रति आदि का उदय हो जाता है। उसकी इन साठ दिनो की जिन्दगी मे केवल यही है। भय की ग्रन्थि से भी वह पीडित है। ये भय ग्रन्थियाँ भी मध्यवर्गीय सस्कारो के कारण ही उत्पन्न हुई हैं। उसमे साहस की कमी है। वास्तव म इसी 'कमी' ने उसे उबारा है। मानसिक रूप से वह उदय के साथ पूर्णता जुड गई है। यह मानसिक मिलन अपूर्ण है, जब तक शारीरिक मिलन नहीं है। और इस प्रकार का मिलन तो सभव ही नहीं है। वह न इस मानसिक जोड का तोड सकती है और न उन्मुक्त रूप से मिल सकती है। इस स्थिति मे कुण्ठाओ और भिन्न भिन्न ग्रन्थियो का निर्माण होना स्वाभाविक था, और यह हुआ भी है।

कुछ सीमा तक इस उपन्यास मे 'लिस्बियन' के सकेत मिलते हैं। उदय के सम्पर्क मे आने के बाद सुजाता के मन मे शारीरिक इच्छाएँ इतनी तीव्र हो जाती हैं कि वह अपनी सहेली रेखा के शरीर के साथ शरारत करती है। (१९ जून की डायरी के पृष्ठ)। यह उसकी दमित वासनाओ की अभिव्यक्ति है। वह सोचती है--"कैसा लगता होगा बलात्कार के समय? क्या एक बार इस अनुभव से नहीं गुजरा जा सकता। फिर वह सोचती है कि छि मेरे मन मे य कैसी गन्दी गन्दी बातें आने लगी हैं।' इस उद्धरण से स्पष्ट है कि उसकी शारीरिक इच्छाएँ कितनी उफन कर आ रही थी।

(३) इस पूरे विवेचन मे स्पष्ट है कि सुजाता मध्यवर्गीय भारतीय युवती के मानस का प्रतिनिधित्व करती है। क्योकि इस देश मे प्यार मानसिक स्तर पर ही व्यक्त होता रहा है। मानसिक स्तर के इस प्यार पर अनेक बन्धन होने के कारण ही यह कुण्ठा तथा अन्य यौन ग्रन्थियो म परिवर्तित हो जाता है। किसी की ओर आकृष्ट होना, मन-ही-मन उसे पूजना, उसे लेकर अनेक स्वप्न देखना तथा अन्त मे किसी कारण उससे विवाह न होने पर लगातार आँसू बहाना और किसी अन्य से विवाह कर लेना यह भारतीय युवक-युवतियो की नियति ही है। इस दृष्टि से सुजाता का चित्रण अत्यधिक आकर्षक एव जीवन्त बन गया है।

(४) उदय सुजाता के साथ एक 'खेल' खेल रहा था। पगली सुजाता इस खेल को समझ नहीं सकी। कई बार वह भी अपने मन का समझा रही थी कि एक

लेखक की दृष्टि से वह 'उदय' का निरीक्षण कर रही है। परन्तु यह 'निरीक्षण' धीरे-धीरे कब प्रेम मे परिवर्तित हो गया, इसे वह समझ ही नही सकी। जिस दिन उसे *यह पता चला कि उदय तो केवल माध्यम के रूप मे ही उसका उपयोग कर रहा है,* उस दिन वह पूर्णत क्षुब्ध हो गई। उसके युवा स्वप्नो पर यह जबरदस्त आघात था। जिसे वह अपना लक्ष्य समझ रही थी, वह तो महज उसका 'माध्यम' के रूप म उपयोग कर चुका है। यहाँ सुजाता तीनो रूपो मे हार गई है। सबसे बडी असफलता तो लेखिका सुजाता की है, क्योंकि वह प्रिन्सेस अपर्णा और बहन अपर्णा के सम्बन्ध को समझ नही पायी। उदय तथा प्रिन्सेस अपर्णा के अभिनय को भी वह समझ नही सकी। सम्भवत उसके प्रेयसी मन ने उसके लेखकीय व्यक्तित्व को दबोच लिया था, इसलिए शायद ऐसा हुआ। उदय न केवल उसका अपितु उसके माध्यम से अपर्णा *का निरीक्षण कर रहा था और इसमे वह सफल हुआ। वह उदय के सही रूप को* समझ नही सकी, यह एहसास उसकी लेखकीय चेतना को तोड देता है।

प्रेयसी रूप मे भी वह मात खा चुकी है। उदय उससे किसी भी स्तर पर जुडा हुआ नही था—यह एहसास उसके प्रेयसी मन को तोड देता है। अलबत्ता 'नारी सुजाता न मात खा चुकी है और न विजयी है। क्योकि इस 'नारी' ने कोई प्रतिज्ञा नही की थी। वह तो वचन तोडने वाली प्रेयसी पर रोक लगा रही थी। वास्तव म इस भीतरी मध्यवर्गीय 'नारी' ने ही सुजाता को बचाया है।

उदय का पत्र प्राप्त हो जाने के बाद सुजाता चिढ-सी जाती है। इसी कारण वह *लिखती है—'जी मे तो मेरे भी आ रहा है कि मैं उदय से जाकर कह दूँ कि* जो किस्से मैं राजकुमारी को लेकर रोज रोज बताया करती थी उन्हे क्या तुम सचमुच सब समझते हो? अरे यह कैसे भूल गए कि मैं कथाकार ही नही अभिनेत्री भी थी और रोज मन बहलाने को एक किस्सा गढकर सुनाया करती थी—?'[११५] मात खाने के बाद अपने मन को समझाने की यह असफल तथा स्वाभाविक कोशिश है।

डायरी के अन्तिम पृष्ठ मे सुजाता का दुःख व्यक्त हुआ है। यह दुःख लेखिका तथा प्रेयसी सुजाता का है। "तुम चाहे जिसके दूत बनो, चाहे जिसके प्रति वफादार रहो—मगर मुझे यो सीढी और सेतु मत बनाओ। मुझसे यह सब नही सहा जाएगा। मैं तो तुमसे डोर का एक सिरा बनकर मिली थी कमन्द का सिलसिला नही "[११६] यूँ सीढी या कमन्द बन जाना सुजाता की शायद 'नियति' ही थी।

अपनी पराजय की स्थिति को सुजाता जिन्दगी भर भूल नही पायी है। इसी *कारण तो उसने युवावस्था की डायरी आज तक सभालकर रखी है।* इस पुरानी डायरी को सभालकर रखने के मूल मे तीन कारण हो सकते हैं—

**(१) प्रेम की असफलता**—जिसे मूलत किसी भी पुरुष अथवा स्त्री को समव नहीं अर्थात् स्थूल अर्थों मे यह 'प्रेम' नही है। उदय के सम्पर्क मे आने के बाद पूरी

उत्कटता के साथ ये 'क्षण' वह जी चुकी थी। चरम तन्मयता अथवा चरम उत्कटता के इन क्षणों को भूलना उसे असम्भव था, इसीलिए इस डायरी को उसने सुरक्षित रखा है।

(२) आयु की विशिष्ट अवस्था—इस अवस्था में हुए अपमान या पराजय को व्यक्ति भूल नहीं सकता। इस समय की 'मानसिक अवस्था' डायरी के इन पृष्ठों में सुरक्षित है। और पिछली जिन्दगी को फिर से देखने का एक मात्र माध्यम यह डायरी है, इसलिए उसने यह डायरी सुरक्षित रखी है।

(३) उसका लेखकीय व्यक्तित्व—जो उस विशिष्ट अवस्था को शब्दबद्ध कर चुका है और उस लेखन को वह नष्ट होने नहीं देना चाहता। बहरहाल सुजाता' के मन पर इन ५१ दिनों के सम्पर्क का अमिट प्रभाव पड़ा है।

सही अर्थों में सुजाता पराजित नहीं हुई है। क्योंकि अगर वास्तव में यह खेल था तो दोनों पक्षों को इस खेल का पता होना चाहिए था। एक व्यक्ति सम्पूर्ण आत्मीयता से, सम्पूर्ण मन से प्रेम करे, समर्पित हो जाय और सामने वाला कुछ समय तक के लिए उस समर्पण के प्रति, प्रेम के प्रति योग्य प्रतिसाद दे और बाद में कह दे कि यह तो खेल था, यथार्थ कुछ भी नहीं—तो दोष पहले का नहीं दूसरे का ही हो सकता है।

'उदय' सुजाता की दृष्टि से

सचमुच बहुत ही झेंपू हैं लड़कियों के सामने प्राण निकलते हैं। २५

यह तो जनाना पुरुष है। ३४

*इन्हें सहानुभूति चाहिए यह इनके गढ़ का सबसे कमजोर कोना है।*

कुछ कहते हैं कि वे नम्बरी स्नॉब और दम्भी हैं, अपने आगे किसी को कुछ लगाते ही नहीं। कुछ के ख़याल से वे जरूरत से ज्यादा छिछले और 'चीप' हैं। कुछ के लिहाज से ये बहुत ही अध्ययनशील, गम्भीर और सौम्य हैं और कुछ उन्हें निहायत घना और घुटा हुआ कहते हैं एक दल उन्हें देशी-विदेशी पूंजीपतियों का दलाल बतलाता है और दूसरा उन्हें रूसी एजेण्ट घोषित करता है। ४२

पहले यह आदमी मुझे भी बड़ा उद्दण्ड और किसी हद तक बदतमीज लगा था, लेकिन अब कुछ-कुछ दया आने लगी है। ८३

उदय में सचमुच कलाकार के टच हैं। १२६

आदमी बड़ा झक्की है। १४५

*न तो वे देखने में ही ऐसे सुन्दर, प्रभावशाली, न सामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रतिष्ठित आर्थिक दृष्टि का तो कहना ही क्या? एक उखड़ा हुआ हवा में उड़ता बीज जो अपने लायक धरती खोजने में खुद यहाँ से वहाँ भटक रहा हो।* १६९

बड़ा आत्मतुष्ट अपने में ही डूबा और कड़े दम्भी सा व्यक्ति भी वह

सकते हैं । १७१

उदय से बातें करते समय मन म एक आश्वासन एक सन्तोष तो होता है । १७२

यह आदमी निहायत ही आत्म केन्द्रित अपने म ही डूबा हमेशा अपनी ही समस्याओ म उलझा-खोया रहने वाला है । १७९

सचमुच ऐसा ठण्डा निर्जीव और अपने म ही डूबा रहने वाला सिर्फ अपनी ही-अपनी बातें करते रहने वाला आदमी तो मैंने आज तक देखा ही नही कभी ।

एक असमथ आदमी जो हर वक्त अपन आप को स्त्रिया को लेकर ही उलझा और डूबा दिखाकर एक मानसिक सताप पाता है दूसरो के आग हमेशा एक भ्रम बनाए रखना चाहता है । १८०

हमेशा जब देखो तब जान बूझकर एक रहस्य का मकडी का जाल सा अपने चारो ओर (यह आदमी) लपेट रहेगा । १८४

क्या हक था इसे मेरी भावनाओ से यो खिलवाड करने का ? जी म आता है कि पागल और उदभ्रान्त की तरह इसके सारे कपड चीर-चीर कर डालू घूसा और मुक्को स इसे कूट कूटकर बेहाल कर दूँ नाखूनो और दाँतो से इसके चिथडे उडा दूँ और फिर इसके मुह पर खूब थूकू ले और ले और लेऊ ।

उदय सुजाता के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान उदय का है । सुजाता के मानस ससार का मूल आधार उदय का व्यक्तित्व ही है । उदय की मन स्थिति का सूक्ष्म और गहरा चित्रण इस उपन्यास मे नही हुआ है । इसका एक बहुत बडा कारण डायरी शैली है । क्योकि इसम केवल सुजाता की डायरी के ही पन्न अधिक हैं । उपन्यास के अन्त म उदय की डायरी क ७ ८ पन्न हैं परन्तु उसम उसका लखकीय व्यक्तित्व ही उभरकर आया है । जिस प्रकार सुजाता अपने विभिन्न रूपा म—लेखिका प्रयसी, नारी—प्रकट हुई है वैस उदय के विभिन्न रूप प्रकट नही हुए हैं । इसक दो कारण हो सकत हैं—(अ) सुजाता डायरी लिख रही है उदय नही । (आ) लखक उदय अपने विषय के प्रति अत्यधिक तटस्थ है । वह सुजाता को केवल माध्यम क रूप म दख रहा था । सुजाता के सम्पक से उसक भीतर का पुरुष बह नही सका है ।

उदय का अध्ययन स्वतन्त्र रूप से करना मुश्किल है । क्योकि उदय के व्यक्तित्व को सुजाता के माध्यम से ही जानना पडता है । मजेदार बात यह है कि उदय सुजाता का माध्यम क रूप म उपयोग कर रहा था और पाठक-समीक्षक उदय का सुजाता के माध्यम स ही जान पाते हैं । इसलिए नारी, प्रयसी और लेखिका सुजाता ने उदय को जिन जिन रूपो म देखा है व विविध रूप तथा स्वय उदय न अपन सम्बन्ध म आखिर जो कुछ भी लिखा है और उसम उसके जो विभिन्न

रूप उभरते हैं वे रूप—इन दोनों में आन्तरिक संगति खोजनी पड़ती है। इन दोनों के तुलनात्मक अध्ययन से ही 'उदय' के वास्तविक चरित्र को हम जान सकेंगे।

उदय से परिचय हो जाने के बाद ही सुजाता उनके सम्बन्ध में लिखती है—"लड़कियों के सामने इनकी बोलती बन्द हो जाती है और सारा मुँह लाल पड़ जाता है।"[१११] आरम्भ से ही सुजाता उदय पर हावी होना चाहती है। वह उनके सम्बन्ध में मनमाने निष्कर्ष निकालने लगती है। उदय के आरम्भिक व्यवहार से ही स्पष्ट हो जाता है कि किसी युवती से उनका घनिष्ठ परिचय है। वह बार-बार उसे फोन करते रहते हैं। उसके सम्बन्ध में बड़े उत्साह से बोलते रहते हैं। यह युवती है—प्रिन्सेस अपर्णा। उनकी फोन की बातचीत से स्पष्ट है कि वे स्त्रियों से बहुत ही खुलकर बातें करते हैं। फिर सुजाता के उपर्युक्त निष्कर्ष में कोई अर्थ नहीं है। सुजाता के अनुसार "वह एक जनाना पुरुष है जिसको प्यार ने बिगाड़ दिया है।"[११२] इस मत में भी तथ्य नहीं है। क्योंकि उदय सुजाता की तरह न भावुकता में बहता है और न किसी प्यार के चक्कर में पड़ा है। इस लेखक के सम्बन्ध में लोगों की अलग-अलग रायें हैं। "कुछ कहते हैं कि नम्बरी स्नॉब और दम्भी है, अपने आगे किसी को कुछ लगाते ही नहीं। कुछ के खयाल से वे जरूरत से ज्यादा छिछले और चीप हैं। कुछ के लिहाज से वे बहुत ही अध्ययनशील, गम्भीर और सौम्य हैं और कुछ उन्हें निहायत बना और घुटा हुआ कहते हैं ... एक दल उन्हें देशी-विदेशी पूँजीपतियों का दलाल बतलाता है और दूसरा उन्हें रूसी एजेण्ट घोषित करता है ...।"[११३] उदय जैसे एक प्रसिद्ध लेखक के सम्बन्ध में ये परस्पर विरोधी निष्कर्ष स्वाभाविक ही हैं। उदय की ओर आकृष्ट हो जाने के बाद सुजाता इन निष्कर्षों को स्वीकार नहीं करती। "लेकिन, विश्वास नहीं होता कि उदय ऐसे हैं।"[११४] उदय के अनुसार वह खुद "कुछ बदतमीज और मुँह-फट हूँ, दूसरे, हर बात को कुछ बढ़ा-चढ़ाकर कहने का मुझे बहुत अभ्यास है।"[११५]

उदय अपनी आर्थिक परिस्थिति से बहुत परेशान है। केवल लेखन पर जीने की वह कोशिश कर रहा है। परन्तु इसमें कुछ अधिकता मिलता नहीं। इसी कारण किस्मत आजमाने के लिए वह बम्बई आया है। प्रिन्सेस अपर्णा नामक कोई स्त्री उसके उपन्यासों को पढ़कर उससे पत्र-व्यवहार कर रही है। यह पत्र व्यवहार बढ़ता गया। इन पत्रों के कारण उदय के मन में उसके प्रति 'एक लेखकीय जिज्ञासा' उत्पन्न हो गई है। वह प्रिन्सेस अपर्णा को उसके सम्पूर्ण परिवेश में समग्रता से जानना चाह रहा है। परन्तु संस्कार और वर्ग की दीवारें दोनों के बीच खड़ी हैं। फोन पर वह ही बात कर सकते हैं, प्रत्यक्ष मिल नहीं सकते। इसी कारण 'लेखक उदय' के मन में "संस्कार और वर्ग की दीवारों की दरार टटोलने की बेचैनी" शुरू हुई। परन्तु प्रश्न था कि इस अपर्णा को समग्रता से कैसे जाना जाय? उचित माध्यम की तलाश

मे वह था । और इसी समय उसका परिचय सुजाता से हो गया । "इस जिज्ञासा से मैं कैसे इन्कार करूं कि मैं अपर्णा और उसकी दुनिया के बारे मे अधिक-से-अधिक नही जानना चाहता था ? मेरी यह दुर्दम्य महत्वाकाक्षा रही है कि मैं उसके सम्पूर्ण परिवेश मे जानूं, उसे अन्तर्तम तक जानूं ।"[११४] इस तथ्य की प्राप्ति का एक मात्र रास्ता था—"और रास्ता मेरे पास था और मैंने सुजाता की प्रतिभा, सूझ और कुशलता पर विश्वास करके उसे वहाँ भेज दिया ।"[११५]

"हल्का ठिगना कद, साँवला रग और छरहरा बदन । एक सचेत असावधानी से सँवारकर बिखराये गये बाल, माथे पर घाव का निशान"[११६]—यह उदय का शारीरिक वर्णन है । वह महत्वाकाक्षी है । इसी महत्वाकाक्षा के कारण वह बम्बई मे तकदीर अजमाने आया है । पडित चोखेलाल के साथ सिनेरियों और डायलॉग मे सहायक के रूप मे वह काम करता है, मासिक वेतन पर । किसी सिंह के साथ एक कमरे मे रहता है । स्पष्ट है कि उदय की आर्थिक स्थिति ठीक नही है । उसके अपने ये सघर्ष के दिन हैं । सुजाता ने भूमिका मे इसी बात को और स्पष्ट किया है—"उदय अपने उस काल से गुजर रहे थे जिसे सफल लेखक आगे जाकर 'सघर्ष के दिन' कहता है ।"[११७] परन्तु इस आर्थिक सघर्ष के समय भी उदय का लेखकीय व्यक्तित्व अधिक सजग और अपने 'विषय' के प्रति ईमानदार और तटस्थ है। 'प्रिन्सेस अपर्णा' का समग्रता से अध्ययन करना यह लक्ष्य इसी समय का है । एक ओर अपने लेखकीय व्यक्तित्व के प्रति सजगता और तटस्थता है तो दूसरी ओर वह बहुत ही जिद्दी, महत्वाकाक्षी और अपने निश्चय मे दृढ है । इसी कारण वह एक स्थान पर कहता है—मैंने भी निश्चय कर लिया है कि लौटना यहाँ से नही है । लौटूंगा तो सफल होकर ही लौटूंगा ।"[११८]

प्रेम के सम्बन्ध मे उदय के विचार भावुकता और शारीरिक आकर्षण से कोसो दूर हैं । किसी रश्मि नामक लडकी के सन्दर्भ मे उसके ये विचार प्रकट हुए हैं । "आज का प्रेम बहुत अधिक व्यापारी हो गया है । उसमे हमेशा एक द्विविधा, एक धर्म-सकट, ऊपर से दिखावटी और भीतर से निहायत ही हिसाबीपन, साथ ही अपनी ही मनोवृत्ति पर ग्लानि—सब कुछ मिलाकर शायद यह आज के प्रेम की तस्वीर है ।"[११९] इस प्रकार के विचार व्यक्त करने वाला उदय आगे चलकर एक स्थान पर ठीक इसके उलटे विचार व्यक्त करता है । प्रिन्सेस अपर्णा के अनुसार "स्त्री-पुरुष के बीच मे दोस्ती, एक आत्मीय घनिष्ठता बिना शारीरिक सम्बन्ध आये सम्भव नही है ।"[१२०] और इसके लिए अपर्णा अनेक तर्क देती है। इस बात की चर्चा सुजाता जब उदय के साथ करती है तब उसे अनुभव होता है कि 'प्रिन्सेस और उदय के तर्क एक-से हैं ।"[१२१]

सुजाता के अनुसार "उदय रश्मि और अपर्णा के चक्कर मे फँसा हुआ है ।

इन दोनो को लेकर उसके मन मे संघर्ष है ।" तो सहेली रेखा के अनुसार "पहले उसके पास दो थी, अब तीसरी तू और हो जायेगी ।"[११२] वास्तव मे सुजाता और रेखा इन दोनो के तर्कों मे कोई अर्थ नही है । क्योंकि उदय के मन मे इस प्रकार का कोई द्वन्द्व इन युवतियो को लेकर नही है । 'रश्मि' से वह बन्धा हुआ है । अपर्णा उसके अध्ययन का लक्ष्य है और सुजाता मात्र माध्यम ।

सुजाता के प्रति उदय किसी भी स्तर पर जुडा हुआ नही है । सुजाता को अपनी प्रतिभा और सौन्दर्य पर गर्व है । उसे हर बार लगता है कि उदय उसके शरीर के साथ खिलवाड करेगा ही । परन्तु उदय इस सम्बन्ध मे मौन है । इस मौन के पीछे 'लेखकीय तटस्थता' है । अपने माध्यम के साथ अतिरिक्त भावुकता तथा अन्य आकर्षण के कारण वह बहना नही चाहता । माध्यम लक्ष्य न बने इसकी पूरी कोशिश उदय करता है । इस कोशिश मे उसे सफलता भी मिली है । प्रेयसी सुजाता को यह सम्भव नही हो सका है । उसकी इस तटस्थता का प्रमाण २४ जून की डायरी म मिलता है । सुजाता के अनुसार उदय मे ऐसी कोई खास विशेषता नही है । "न तो वे देखने मे ही ऐसे सुन्दर, प्रभावशाली, न सामाजिक दृष्टि से ऐसे प्रतिष्ठित . आर्थिक दृष्टि से तो कहना ही क्या ? एक उखडा हुआ हवा मे उडता बीज जो अपने लायक धरती खोजने मे खुद यहाँ से वहाँ भटक रहा हो ।"[११३] इन सारे अभावों के बावजूद उदय की ओर सुजाता आकृष्ट हुई है । यह स्थिति न केवल सुजाता की ही है अपितु अपर्णा और रश्मि की भी है । अर्थात् उदय की ओर स्त्रियाँ अनजाने ही आकृष्ट हो जाती हैं । इस आकर्षण के बाद ये खुद तय नहीं कर पाती कि यह कैसे सम्भव हुआ । इसी कारण सुजाता लिखती है—"वह कैसे मेरी भावनाओ को उकसा सका ?"[११४] व्यक्तित्व की इसी विशिष्टता के कारण सुजाता यह कहने को मजबूर है कि "वे प्रतिभाशाली हैं, और उनके व्यक्तित्व मे एक आत्मविश्वास की दृढता है ।"[११५]

सुजाता की डायरी के पन्नो से एक बात साफ हो जाती है कि उदय सुजाता से कई चीजें छिपाता रहा । उसके अनुसार अपर्णा को जानने के लिए यह जरूरी था । प्रिन्सेस अपर्णा और बहन अपर्णा ये दो अलग-अलग न होकर एक ही हैं, प्रिन्सेस अपर्णा से उसका पुराना परिचय था और उसी ने प्रिन्सेस अपर्णा को उसकी ओर भेज दिया था; आदि सभी बातें उसने सुजाता से अन्त तक छिपाकर रखी । केवल संयोग से ही इन सारे रहस्यो को सुजाता जान सकी है । उदय पर दो दृष्टियों से विचार किया जा सकता है । (अ) एक दृष्टि सुजाता की अपनी दृष्टि है । उसके अनुसार "यह सरासर धोखा हुआ है । उसकी भावनाओ, श्रद्धाओ और स्वप्नो के साथ धोखा । उदय ने उसे मात जरूर किया है परन्तु "इटस् नॉट ए फेअर गेम ।" (आ) उदय की दृष्टि से एक लेखक के लिये इस प्रकार का दुराव-छिपाव जरूरी

था। *वह अगर सारी बातें पहले से ही कह देता तो शायद अपने लक्ष्य को प्राप्त न करता।* "अगर मैं यह कहूँ कि यह तो सिर्फ शह था और असल मे तुम मात खा गई हो तो तुम्हें कैसा लगेगा? सच सुजाता, कई बार मेरे मन मे आया कि मैं यह सब न करूँ, मेरे हाथो से कम से-कम यह सब न हो लेकिन एक बार खेल शुरू हो चुका था—*मैं क्या करता?*"[१११] *सुजाता का माध्यम के रूप मे उपयोग करने के* के मूल मे उदय के मन मे मुख्यत दो भावनायें थी—(अ) एक उगती हुई प्रतिभा को पी जाने का स्वार्थ।"[११०] (आ) अपर्णा को जानने के लिए मैंने सुजाता की प्रतिभा, सूझ और कुशलता पर विश्वास करके उसे वहाँ भेज दिया।"[११६]—इसी उद्देश्य *से उदय ने सुजाता के साथ सम्पर्क बढाया था। कुछ सीमा तक उसने प्रेम का नाटक* भी किया था। लेकिन उसके दिल की हालत बडी विचित्र हो गई। भोली और प्रतिभासम्पन्न युवती का इस प्रकार उपयोग उदय को कभी पसन्द न आया। परन्तु उसके सामने दूसरा रास्ता भी नही था। एक लेखक की हैसियत से क्रूर बनकर यह *सब देखना भी अब उसकी नियति थी। बार-बार यह डर महसूस होता था कि "कही* यह गन्ध मुझे भरमा न ले, मुझे मोहकर रोक न ले कि कही यह कमन्द टूट न जाये।"[११९] "लेकिन मन मे जाने कैसा एक क्रूर उन्माद था, एक पागल आवेश था कि लौटने नही देता था।"[१२०] सुजाता उदय के निकट एक ही उद्देश्य से आई थी—*कि उदय का सभी कोणो से अध्ययन किया जाये। परन्तु जैसे जैसे यह निकटता* बढती गई वह अपने उद्देश्य को भूल गई। उसके भीतर की प्रेयसी उसके लेखकीय व्यक्तित्व पर हावी हो गई। उदय सुजाता के निकट आने के बावजूद भी अपने लक्ष्य को क्षण भर के लिए भी नही भूलता। उसके भीतर का लेखक बडा ही क्रूर, तटस्थ *और कठोर है। हॉलांकि उदय इस समय युवावस्था मे ही है। फिर भी अपने 'विषय'* के प्रति वह अद्भुत रूप से तटस्थ रहता है। यही उसके व्यक्तित्व की सबसे बडी विशेषता है। इसी कारण उसके मन मे कही पर भी सघर्ष अथवा द्वन्द्व नही है। अलबत्ता उसकी डायरी के फाडे हुए पन्नो मे (२२२ से २२८ तक) कहीं कहीं पर *एक पुरुष और लेखक के द्वन्द्व का सकेत भर है। कमन्द के रूप मे सुजाता का उप-*योग कर लेने की यह साजिश उसके पुरुष मन को कतई मान्य नही थी। "बार बार किसी के कोमल हाथ ऊपर से धक्का देते थे कि नाजुक फूलयो कमन्द बनने को नही हैं.. ये बहुत ही कमनीय हैं। नीचे उतर आओ।"[१२१] परन्तु उसके भीतर बैठा *हुआ लेखक इस नाजुक फूल को स्वीकार करने को तैयार नही था। इसी कारण उसने* लिखा है—"लेकिन मन मे जाने कैसा क्रूर उन्माद था, एक पागल आवेश था कि लौटने नही देता था।"[१२२] सुजाता का माध्यम के रूप मे उपयोग कर लेते समय एक ओर उदय के भीतर का लेखक खुश था, समाधानी था, परन्तु भीतर का 'युवा पुरुष' हतारा, दुःखी और पश्चात्तापदग्ध हो रहा था। इस 'युवा पुरुष' की स्थिति इन

वक्यों द्वारा बहुत ही स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है—" लेकिन अपने दिल के उन मजबूत हाथों को क्या करूँ जो मेरा गला घोट देते हैं कि ये फूल यो कमन्द बनाने को नहीं हैं। नहीं सुजाता अब मुझ से नहीं चढा जाता, अब मैं नहीं चढ पाऊँगा मैं हारकर लौट आता हूँ हार मानता हूँ। तुम्हारे सामने दोनों हाथ ऊँचे करके आत्म-समर्पण करता हूँ।"¹¹¹ स्पष्ट है कि उदय भी अपने युवा पुरुष के सम्मुख मात खा चुका है। परन्तु सुजाता के और उदय के मात खाने मे काफी अन्तर है। सुजाता अपने लेखकीय व्यक्तित्व की तटस्थता बनाये रख नहीं सकी। इस अर्थ मे वह पूर्णत मात खा चुकी है। सुजाता की भावुकता, उसका निश्छल प्रेम और उसके सहज स्वभाव के सम्मुख लेखक उदय अन्तत हार जाता है। अर्थात् उपलब्धि की दृष्टि से उदय को अधिक सफलता मिल सकी है। क्योंकि वह सुजाता के माध्यम से अपने को जान सका है। और सुजाता ? माध्यम की अपनी कोई उपलब्धि नहीं होती।

लेखक उदय के माध्यम से राजेन्द्र यादव ने *कलाकार तथा लेखक और लेखन-कर्म के सम्बन्ध मे कुछ वक्तव्य दिए हैं। इन वक्तव्यों की परीक्षा करना आवश्यक* है। क्योंकि उदय का व्यक्तित्व इन्ही वक्तव्यो की नींव पर खडा है।

(१) लेखक को बडी क्रूरतापूर्वक अपने और दूसरो के प्रति तटस्थ रहने की जरूरत है। ५४

(२) लेखक को निहायत क्रूर होना चाहिए उसे क्रूरतापूर्वक अपने पात्रो और अपने अध्ययन के विषयो से तटस्थ रहना होगा। उसे हर समय सावधानी बरतनी होगी कि वह अपने विषयो या पात्रो के दुख सुख, हास-परिहास और विलास-अवसाद से बिलकुल बिलकुल तटस्थ और निर्लिप्त रहे, बहे नहीं। १२९

(३) और दूसरी बात यह कि उसे बहुत ही ईमानदार होना चाहिए। १३०

(४) बेईमानी लेखन को गिरा देती है, खोखला कर देती है। १३०

(५) जनाब, लिखना यो नहीं होता, इसके लिए बहुत विशाल हृदय और गैंडे की खाल चाहिए। १३३

(६) लेखक को बडा क्रूर होना चाहिए । यानी अपने 'विषय' मे व्यक्तिगत रूप से बहुत गहरे उतरकर और चाहे जैसी व्यक्तिगत दिलचस्पी रखते हुए भी उससे दुश्मनी जैसी तटस्थता निबाहने की निर्दय क्षमता होनी चाहिए। १७४

(७) "किले मे घुसने वाले जासूस को (लेखक) इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि उसकी कमन्द रेशम की है या सांप की। वह लटकता फाँसी का फन्दा भी हो सकता है, और किसी पद्मगन्धा की साडी भी।" २२५

(८) हम लोग (लेखक) कभी भी राजकुमार नहीं होते—*हम लोग तो* जासूस होते हैं। कभी हम राजकुमार के वेश में होते हैं, कभी भिखारी के। कभी डाकू होते हैं और कभी गुण्डे···· *कभी साधु का स्वाँग भरते हैं तो कभी चरित्र-*

हीन का ' हम एक तीव्र और दुर्निवार जिज्ञासा होते हैं, बस !" २२७

(९) कलाकार सब कुछ हो सकता है—खुद वह 'आदमी' हो ही नहीं सकता। हाँ, वह आदमी का दूत होता हो, तो हो। २२७

(१०) मैं खुद कुछ भी नहीं, (लेखक) किसी के हाथों का हथियार भर हूँ, किसी का एजेन्ट हूँ, जो कुछ भी करता हूँ वह सब अपने लिए नहीं 'किसी' के लिए करता हूँ। २२७

(११) अपने बेटे की मौत के समय मेरे भीतर का बाप रोता है और यह क्रूर दूत (लेखक) उस समय भी बैठा-बैठा नोट करता रहता है कि बेटे के मरते समय बाप को कैसा लगता है। कभी कभी तो दूत उसे मजबूर कर देता है कि यही जानने के लिए वह बेटे को मारकर देखे " २२७

वास्तव में ये विभिन्न वक्तव्य लेखक उदय की अपेक्षा श्री राजेन्द्र यादव की लेखन-दृष्टि को ही स्पष्ट करते हैं। अपने को उदय के रूप में बाँटकर राजेन्द्र यादव का यह मुखर चिन्तन (लाउड थिंकिंग) ही है। २० वीं शती के साहित्यकारों की लेखकीय दृष्टि इन वक्तव्यों द्वारा स्पष्ट हुई है। अपने सम्पूर्ण लेखन अर्थात् विषय के प्रति इस हद तक की तटस्थता—जिसे उदय क्रूर तटस्थता कहता है—सही लेखन के लिए बहुत जरूरी है। सुजाता में इस प्रकार की तटस्थता का अभाव रहा। उदय म इस प्रकार की तटस्थता रही है। इसी कारण वह सुजाता जैसी युवती का कमान्द के रूप म उपयोग कर सका है। गम्भीरता से अगर हम विचार करें तो और भी तथ्य हमारे सामने आ जाएँगे। एक ओर लेखकीय व्यक्तित्व के सम्बन्ध में ये सारे निष्कर्ष, वक्तव्य अथवा लक्ष्मण रेखाएँ हैं तो दूसरी ओर लेखक उदय का व्यवहार। "नहीं सुजाता, अब मुझ से नहीं चढा जाता, अब मैं नहीं चढ पाऊँगा । मैं हारकर लौट आता हूँ हार मानता हूँ।" उदय की इस मन स्थिति का कौनसा स्पष्टीकरण दिया जा सकता है ? इस पूरे उपन्यास में उदय और सुजाता दोनों लेखकीय स्तर पर ही जीना चाहते हैं। उदय तो कलाकार के सामान्य व्यक्तित्व तक को नकारता है (वक्तव्य क्रमांक ९)। और मजेदार बात यह है कि ये दोनों इसी सामान्य व्यक्तिरूप के कारण ही अधिक आकर्षक और सहज बन गए हैं। कलाकार के भीतर का यह द्वन्द्व दोनों चरित्रों के माध्यम से अत्यधिक स्पष्ट हुआ है। उदय एक साधारण व्यक्ति की तरह सुजाता की प्रतिमा को समाप्त करने निकलता है। उपर्युक्त वक्तव्यों में और उदय के व्यवहार में यही बहुत बडी विसंगति है। क्योंकि खुद उदय यह मानता है कि सुजाता को माध्यम बनाने के मूल में उसकी प्रतिमा को पी जाने का स्वार्थ था। इस स्वार्थ का समर्थन उपर्युक्त वक्तव्यों के आधार पर किस प्रकार किया जा सकता है ? प्रिन्सेस अपर्णा के माध्यम स वह उच्च वर्गों के जीवन को देखना चाह रहा था। इस कार्य के लिए उसने सुजाता को माध्यम बनाया है—

यह भी साधारण व्यक्ति का ही कार्य है, कलाकार का नही । क्योकि सच्चे कलाकार के लिए 'माध्यम' की जरूरत नही होती । स्पष्ट है कि इन विभिन्न वक्तव्यो द्वारा उदय अपनी सामान्यता अथवा स्वार्थी वृत्ति को छिपाने की बेहद कोशिश कर रहा है । परन्तु अपने ही वक्तव्यो के कारण वह सब से अधिक नगा हो गया है । अत्यन्त सामान्य स्तर पर जाकर उसने सुजाता के भावो के साथ क्रूर खेल खेला है । इस क्रूर खेल का समर्थन भले ही वह "कलाकार के विशिष्ट व्यक्तित्व" द्वारा करना चाह रहा हो, तो भी यह निश्चित है कि वह इसमे पूरी तरह असफल हो गया है । अपने इस कार्य को वह भले ही जीत कहे तो भी वह खुद मात खा चुका है । इसी कारण एक स्थान पर वह कहता है—'सुजाता ने स्वप्न भग की उस वितृष्णा मे ठीक ही कहा था कि इटस् नॉट ए फेअर गेम । सच ही यह ईमानदारी का खेल नही है ।"[११४]

प्रिसेन्स अपर्णा : "अट्ठाइस-उन्तीस की उम्र, गोल चेहरा, गेहुँआ रग और भरा हुआ शरीर, सुन्दर फिगर"[११५] इस प्रकार के आकर्षक व्यक्तित्व वाली प्रिन्सेस अपर्णा इस उपन्यास मे प्रत्यक्ष रूप मे प्रवेश करती है पृष्ठ १०७ पर, सोमवार २४ जून को, उपन्यास की शुरुआत होने के ठीक २१ दिनो बाद ! परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण उपन्यास पर वह छा गई है । अपर्णा के ही कारण उदय सुजाता के निकट आता है । और अपर्णा के ही बहाने सुजाता उदय से बार बार मिलने जाती है । कुछ सीमा तक अपर्णा इन दोनो के बीच सेतु का काम कर रही है । उदय की चाल यह है कि सुजाता अपर्णा और उसके बीच 'सेतु' का कार्य करे । और उसने उसे सेतु बना भी दिया था । सुजाता एक प्रबुद्ध लेखिका के नाते 'अपर्णा' का अध्ययन कर रही है, सभी कोणो से । परन्तु यह अध्ययन वह 'उदय' के लिए ही कर रही थी, अपने लिए नही ।

अपर्णा राजस्थान के एक राजघराने की राजकुमारी थी । "उनके अपने इस घर मे पर्दा वगैरा कम नही था, लेकिन चूँकि वहाँ की वे बेटी थी, इसलिए वहाँ तो उन्हे काफी छूटें थी, काफी स्वतत्र भी थी वे । दो भाइयो के बीच की अकेली बहन, फिर राजमाता का प्यार ।"[११६] इस समय उन्हे पढने का शौक लग गया । खूब पढती थी । हिन्दी, उर्दू और अग्रेजी साहित्य । सगीत की शिक्षा भी थोडी-बहुत हुई । उत्तर की एक बहुत बडी पहाडी रियासत मे इनकी शादी हो गई । पति—जैसे इस काल के राजा-महाराजा हुआ करते थे—बडे रगीन तबियत के व्यक्ति थे । स्त्रियो को परम्परावद्ध पद्धति से देखते थे । स्त्रियाँ उनके लिए खिलौना मात्र थी । "दिनभर शिकार, पार्टियाँ और ह्विस्को की बोतलें । इसके अलावा उनका एक पूरा हरम था ।"[११७] खुले और स्वतन्त्र विचारो के घर से आई हुई अपर्णा इस नये वातावरण से भयभीत हो गई । वह यहाँ पूर्णत बन्दिस्त थी । "चारो ओर बस, वही ऊँचे-ऊँचे पहाड और उनसे खिलवाड करती सुबह-शाम की किरणें, बादल और फिर

नीला आसमान ।    जिधर देखो, उधर ही एक घुटन और घिरावट का एहसास। ऐसे लगता था जैसे मैं आजन्म कैद पाया हुआ कैदी हूँ जो धीरे-धीरे अपनी मौत की राह देख रहा है   मेरी चेतना और सवेदना इस तरह मरती चली जा रही थी कि कुछ दिनो मे मुझे यह भी याद नही रहा कि पहाडो के पार भी कोई दुनिया है ।"[१४८] पढने का शौक रखने वाली अपर्णा को न यहाँ पर कोई अखबार मिलता था, न कोई पत्रिका । ऐसे घुटन भरे वातावरण मे वह मन मारकर जी रही थी कि अचानक उसे एक दिन पता चला कि युवराज नाममात्र के ही पुरुष हैं" । लगा, पैर तले की जमीन ही खिसक गई है । भावुक, सम्वेदनशील अपर्णा अब सूख-सूखकर काँटा हो गई । एक दिन उसके भाई उससे मिलने आए । भाई के पैरो पर सिर रखकर वह फूट फूटकर रो पडी । इस कैद से मुक्ति दिलाने की प्रार्थना करने लगी। युवराज के कानो मे गलत और विकृतपूर्ण समाचार इस घटना के सम्बन्ध मे दिए गए । इसी कारण उस रात युवराज गुस्से के मारे कहने लगे—"अपने यार के तो पैरों पर गिर-गिरकर रोती है   हाथी पाँवो तले रौन्दवा दूँगा । भाइयो के भरोसे मत रहना । इस महल मे किसी का घमण्ड नही चलता ।"[१४९] इस समय अपर्णा की आयु केवल १६-१७ वर्ष की है । दो-एक वर्ष वह इसी नरक में जीती रही । और एक दिन उसे पता चला कि युवराज विलायत चले गए हैं । और जब उन्होंने यह सुना कि सरदार पटेल ने तेजी से रियासतो का विलीनीकरण शुरू कर दिया है तो वहीं जम गए ।"[१५०] अपनी माँ की मृत्यु का समाचार जब अपर्णा को मिला तो वह वहाँ से निकली और मैके आ गई । तब से आज तक ससुराल जाने का नाम उसने नही लिया है । भाई और भाभी के साथ वह तब से बम्बई मे रहती है ।

प्रिन्सेस अपर्णा की यह करुण कहानी है । ससुराल से छुटकारा पाने के बाद उसके पुराने शौक उमड पडे । फिर पति का प्यार भी नहीं मिला था । परिणामत. वह साहित्य, सगीत और अभिनय की ओर आकृष्ट हुई । पढना यह उसका सबसे बडा शौक है । इस राजपरिवार मे उसका यह शौक सबसे निराला और विशिष्ट है । क्योंकि और लोग पार्टियाँ, क्लब, नृत्य, शराब, औरतें तथा झूठी प्रतिष्ठा मे ही डूबे हुए हैं । अपने-आप को बहलाते-बहकाते हुए वह जिन्दगी गुजार रही है । अब इसके सिवा उसके लिए कोई चारा नहीं है । "वह जानती है कि वह खुद एक फालतू चीज है, जिस दया पर रहना है । अपना हर कदम भाई के तेवर देखकर ही रखना पडता है ।"[१५१] अपनी इस स्थिति को अपर्णा ने लेनिन के इस प्रसिद्ध वाक्य द्वारा स्पष्ट किया है—"औरत की हालत सभी जगह एक-सी है—चाहे वह राजकुमारी हो या नौकरानी—वह हमेशा ही पुरुष के तेवर देखकर चलती है, उसकी इज्जत उसके चाहने न चाहने पर है । उसकी प्रतिष्ठा उसकी शरीर-शुद्धता की परम्परागत मान्यता पर है ।"[१५२] भारतीय स्त्री की इससे सुन्दर व्याख्या शायद हो नहीं सकती । ऐसी है

यह प्रिन्सेस अपर्णा ! सम्पत्ति और भौतिक समृद्धि से घिरी हुई, फिर भी दु खी, निराश ! साहित्य का शौक होने के कारण वह लेखक उदय के पुस्तकों के सम्पर्क में आई। उनके उपन्यासों से प्रभावित होकर उनसे पत्र-व्यवहार शुरू हुआ। यह पत्र-व्यवहार काफी बढा। दोनों के मन मे एक-दूसरे के प्रति 'जिज्ञासा' निर्माण हुई। यह 'जिज्ञासा' लेखक उदय के मन मे बहुत है। इसी कारण वह प्रिन्सेस अपर्णा को समग्रता से जान लेना चाह रहा है। *पत्र-व्यवहार करने वाली इस प्रिन्सेस अपर्णा* को सुजाता के सम्मुख उसने 'बहन अपर्णा' कहा। और इस 'बहन अपर्णा' के सम्बन्ध मे अनेक नई काल्पनिक कहानियाँ उसने गढी। सुजाता 'बहन अपर्णा' और 'प्रिन्सेस अपर्णा' को अलग-अलग ही समझ रही थी।

पत्रो के माध्यम से उदय प्रिन्सेस अपर्णा के निकट चला गया था। प्रिन्सेस भी उदय को ५५५ सिगरेट के डिब्बे भेजा करती है (पृष्ठ १८३) पृ० २११ पर अपर्णा को लिखा गया उदय का पत्र भी उन दोनो के सम्बन्धो की अनौपचारिकता को स्पष्ट करता है। इन सारी विशेषताओ के बावजूद भी अपर्णा और उदय खुलकर मिल नहीं सकते। उदय अपर्णा को उसके अपने परिवेश मे समग्र रूप से जान नही सकता। क्योकि अपर्णा इस प्रकार के सामान्य आर्थिक स्थिति वाले लोगो से—विशेषत पुरुषो से—मिल नही सकती। "जिस वातावरण मे अपर्णा रहती है उसम ऐश्वर्य और पैसा हमेशा एक हौवा बनकर भोगने वाले और भोग्य के बीच मे खडा रहता है।"[१६]

बम्बई आने के बाद अपर्णा अब दूसरी दीवारो मे कैद हो चुकी है। इन दीवारो का एहसास उसे है या नही—मालूम नही। क्योकि इन दीवारो को उदय के सामने भी एक रहस्य बनाए रखना पसन्द करती है या इसमे आनन्द लेती है। "पहले वह ईंट-पत्थरो की दीवारो में कैद थी, आज शीशे की दीवारो से घिरी है। शीशे की खिडकियाँ, शीशे की दीवारें, शीशे के मोबाइल पार्टीशन जड तह-जीब-कायदो की अदृश्य और पारदर्शी शीशे की दीवारें।"[१७] इन दीवारो की सुरक्षा की सर्वाधिक चिन्ता अपर्णा को ही है। इन दीवारो को तोडने की हिम्मत का उस म अभाव है। "अपर्णा को हमेशा ही यह खयाल रहा है कि कहीं यह शीशे की दीवार टूट न जायें यह कितनी कीमती और दुर्लभ है, यह जो उसे परम्परा और इतिहास से मिली है। बन्द मुट्ठी की तरह अपने आस-पास एक रहस्य बनाए रखना भी तो एक अजब-सी रोमांटिक गुदगुदी देता है न "[१८] उदय के साथ मिलते समय, बातचीत करते समय वह ऐसा ही 'रहस्य' बनाए रखती है। और उदय का लेखक इस 'रहस्य' के पार छिपी हुई अपर्णा को समझ लेना चाहता है। "अब अपने सामने यो एक पारदर्शी परदे के पार से इन्हें देखकर तो उत्सुकता और भी बढती है।"[१९] अपर्णा और अपर्णा की स्थिति मे जीने वाले लोगों को शेष सारी दुनिया

कैसी दिखाई देती है ? "यह महत्वपूर्ण प्रश्न था। और उदय "इन सब को उनकी निगाहो से देखना चाहता था।"

बम्बई आने के बाद अपर्णा अपनी प्रतिष्ठा, अमीरी और व्यक्तित्व के प्रति अत्यधिक सजग है। वह उदय से मित्रता चाहती है परन्तु अपना आसन न छोडते हुए। वह अपनी इन दीवारो की रक्षा मे तत्पर है।

उदय ने सुजाता को अपनी ओर क्यो भेजा है इसे अपर्णा कभी नही जान सकी। अलबत्ता वह उदय की उस सूचना का कठोरता से पालन करती है कि सुजाता कभी यह जान न पायें कि दोनो एक-दूसरे से परिचित ही नही, अच्छे मित्र भी है। इस दृष्टि से अपर्णा अच्छी अभिनेत्री भी है। क्योकि जब-जब सुजाता लेखक उदय की चर्चा छोडती है तब तब अपर्णा बडी होशियारी से दूसरे विषय छेड़ती है। (पृ० ११४) विनय और नम्रता का अभिनय वह सहज रूप से करती है। अपनी कमियो को वह इस प्रकार बतलाती है कि वह कमजोरी उसकी श्रेष्ठता साबित हो जाए।

उदय के अनुसार अपर्णा सुजाता के साथ जो दोस्ती का नाता स्थापित कर रही है उसके मूल मे गम्भीरता अथवा ईमानदारी नही है। अपर्णा जैसी स्थिति मे रहने वालो के लिए लेखक, अभिनेता अथवा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियो के साथ दोस्ती का मतलब वक्त काटने का एक मनोरजक उपाय मात्र। एक खिलौने की तरह वे ऐसी दोस्ती का उपयोग कर लेते है। 'एक निर्जीव खिलौना जब तक इनका मन हो ये खेल सके और जब वह पुराना पड जाय या उधर से रुचि हट जाए तो दूसरा बदल ले।"[१५५]

एक ओर उदय यह कह रहा है कि अपर्णा जैसी स्त्रियाँ किसी भी सम्बन्ध या मित्रता को निर्जीव खिलौने की तरह लेती हैं, अपनी शीशे की दीवारो के प्रति अत्यधिक सजग रहती हैं तो दूसरी ओर यह भी सकेत किया गया है कि इन दिनो अपर्णा के मन मे किसी को लेकर बडा भारी द्वन्द्व है। अजब खोई-खोई और अनमनी सी रहती हैं। हर वक्त लगता है जैसे किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। जैसे अचानक किसी के आ जाने की उत्कण्ठा हो। टेलिफोन इस तरह चौंककर उठाती हैं, जैसे अप्रत्याशित रूप से वही से आया है जहाँ की इसे प्रतीक्षा है। [१५६] यह द्वन्द्व, खोयी-खोयी स्थिति, अनमनी वृत्ति, प्रतीक्षा करना, उत्कण्ठा, चौंकना उदय के प्रति तो है। और ये किस 'रोग' के लक्षण हैं इसे अलग से स्पष्ट करने की आवश्यकता नही है। तो फिर क्या अपर्णा उदय के प्रति वैसा ही सोच रही है जैसा कि सुजाता ? लेखक राजेन्द्र यादव उसकी इस मन स्थिति का सकेत मात्र देकर रह जाते हैं। वास्तव मे सुजाता के जो विभिन्न रूप अत्यन्त सहजता से प्रकट हुए हैं वैसे अपर्णा के नही। ऐसा लगता है कि लेखक जान-बूझकर अपर्णा को शीशे की दीवारो मे कैद

कर रहा है। अपर्णा का "सम्वेदनशील नारी रूप" भीतर छटपटा रहा है। परन्तु यादव अथवा उदय इस नारी को शब्दवद्ध नहीं कर पाये हैं। एक ओर यह लेखक की सीमा है तो दूसरी ओर डायरी शैली की। क्योंकि इस शैली के कारण सुजाता के बहुत भीतर यादव जा सके हैं। और अपर्णा की 'नारी' को पकड नहीं पाये हैं। पति सुख और निश्चल प्रेम से वंचित अपर्णा के तन मन की छटपटाहट शीशे की दीवारों में कैद हो चुकी है अथवा कैद की गई है इस कारण सम्पूर्ण उपन्यास में अपर्णा 'प्रिन्सेस' के रूप में ही उभरकर आई है, नारी रूप में नहीं।

अपर्णा के अनुसार "स्त्री-पुरुष के बीच में दोस्ती, एक आत्मीय घनिष्ठता बिना शारीरिक सम्बन्ध आए सम्भव नहीं है।"[१६९] दोस्ती और आत्मीय घनिष्ठता के लिए वह शारीरिक सम्बन्ध को अनिवार्य मानती है। उसके इस मत का जोरदार समर्थन उदय ने किया है। शरीर की आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना न अपर्णा को मान्य है न उदय को। एक विशेष संस्कृति और वातावरण में जीने वाली स्त्री के रूप में इस विचार को स्वीकार किया जाए अथवा अपर्णा के मन में जो अतृप्त शारीरिक भूख है उसकी अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया जाय—यह एक प्रश्न ही है।

अंतिम प्रश्न अपर्णा की यथार्थता को लेकर है। आज की पीढ़ी को यह पात्र अधिक कृत्रिम, फिल्मी, अतिशयोक्तिपूर्ण और शायद काल्पनिक लगे। परन्तु रियासतों के कारोबार और उनके उच्छृंखल व्यवहार से जो परिचित हैं उनके लिए यह पात्र काल्पनिक नहीं है। जहाँ तक वातावरण तथा अपर्णा के ससुराल का चित्रण है वह अत्यन्त ही यथार्थ और जीवन्त है। अपर्णा की बम्बई की जिन्दगी का जो वर्णन है वह अलबत्ता कुछ सीमा तक फिल्मी ढंग का हुआ है। बम्बई आने के बाद उसकी सहज स्वाभाविक मन स्थिति का चित्रण नहीं किया गया है। उसके आस-पास एक रहस्यमय वातावरण की सृष्टि की गई है।

शिल्पविधि शिल्पविधि की दृष्टि से सोचा जाए तो यह उपन्यास काफी कमजोर लगता है। डॉ० सत्यपाल चुघ इसे "आत्मकथात्मक या डायरी शैली" में लिखा गया उपन्यास मानते हैं। अधिकतर आलोचकों ने इसे डायरी शैली में लिखा गया उपन्यास ही कहा है। लेखक ने इसे "प्रथम पुरुष डायरी में लिखी गई कहानी" कहा है। लेखक की भूमिका भी डायरी शैली में है। आरम्भ से अन्त तक केवल डायरी के पन्ने ही रखे गए हों। इन पन्नों के माध्यम से ही कथा विकसित हो—ऐसी यादव जी की कोशिश है। अब यहाँ पर अनेक प्रश्न उठाए जा सकते हैं। क्या लेखक 'डायरी शैली' का निर्वाह कर सका है? इसकी कथावस्तु में और इसके शिल्प में अभिन्नता स्थापित हो सकी है? कथावस्तु पर यह शिल्प थोपा हुआ तो नहीं लगता? कथ्य और शिल्प का समन्वय क्या यहाँ मिलता है?

डायरी शैली की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

१. डायरी लेखक के व्यक्तित्व प्रकाशन का सर्वाधिक प्रामाणिक माध्यम है।

२. डायरियाँ अपने निजी भावो-विचारो को नोट कर लेने के उद्देश्य से लिखी जाती हैं, पुस्तक-प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं। विशुद्ध डायरी सभवत: इस दृष्टि से कभी नही लिखी जाती कि कालान्तर मे वह पुस्तक रूप मे प्रकाशित हो सकेगी।

३ इसमे कलात्मक तटस्थता का अभाव होता है।

४ यह कोई विशेष कलापूर्ण साहित्य रूप नही है।

५ साहित्यिक दृष्टि से डायरी मे सम्बद्धता या सगति और शिल्पगत कलात्मकता की कमी हो सकती है।

६ स्पष्ट कथन, आत्मीयता और निकटता आदि—विशेषताएँ डायरी की उपर्युक्त पाँच कमियो को पूरी कर देती हैं।

७ डायरी आत्मकथा का एक बदला हुआ रूप है।

(साहित्यकोश भाग १, पृष्ठ ३४६ से)

इन विभिन्न विशेषताओ की दृष्टि से अगर इस उपन्यास के शिल्प का मूल्यांकन करना चाहे तो इसकी सीमाएँ स्पष्ट होने लगती हैं। अर्थात् हम यह भी खयाल रखें कि आधुनिक कृतियो का मूल्याकन इस प्रकार से करना कहाँ तक उचित है? इस प्रकार के मानदण्डो के कटघरे मे कृति को खडा करके निष्कर्ष रूप मे कुछ कहना एक खतरा मोल लेना ही है। 'डायरी' यह अपेक्षाकृत नवीन शैली है और इसके मानदड अभी पूर्णत निर्धारित नही हो सके हैं। इस कारण जो भी मानदड निश्चित हुए हैं उनके आधार पर मूल्याकन करना इस कृति के साथ अन्याय करना नही है, ऐसा मुझे लगता है।

इसमे कोई सन्देह नही कि सुजाता के व्यक्तित्व का प्रकाशन इस शैली के हो कारण हुआ है। डायरी लेखक अपने भावो और विचारो की अभिव्यक्ति केवल अपने ही लिए करता रहता है। डायरी लेखन मे कही-न-कही आत्मविश्लेषण की प्रवृत्ति होती है। वह सम्पूर्णत उसकी अपनी निजी सम्पत्ति होती है। उसमे किसी भी प्रकार का दुराव-छिपाव नही होता। इस दृष्टि से अगर हम इस उपन्यास को देखें तो गहरी निराशा होती है। क्योकि सुजाता यह सम्पूर्ण डायरी प्रकाशन की दृष्टि से लिख रही है। "अब इसी डायरी को ही लो मैं क्या वाकई वही सब लिख पा रही हूँ जो अपने मन की आँखो के सामने देख रही हूँ। पता नहीं कितनी बातें छोडती जा रही हूँ। सब लिख दूंगी तो पढकर हाय, कोई क्या कहेगा?"[११] सुजाता का यह वाक्य ही डायरी-शैली की असफलता को स्पष्ट करता है। माना कि लेखक राजेन्द्र यादव ने कथाकार सुजाताजी की डायरी के इन पन्नों को सम्पादित किया है ("मैंने निश्चय किया है कि अनावश्यक प्रसगो या अप्रासगिक बातों का

निर्ममता से सम्पादन कर डालूंगा।"[१११] तो भी सुजाता के उपर्युक्त वाक्य से यह ध्वनित होता है कि वह डायरी लिखते समय बहुत कुछ छिपा गई है।

डायरी के लिखित पृष्ठ हमेशा संक्षिप्त होते हैं। यहाँ विस्तार अनपेक्षित है। और कहीं-कहीं पर अगर ऐसा विस्तार हो भी गया होगा तो लेखक राजेन्द्र यादव के अनुसार उन्होंने उसका सम्पादन किया है। परन्तु दुर्भाग्य से यह कहना पड़ता है कि या तो यह सम्पादन करने वाली बात अप्रामाणिक है अथवा डायरी शैली इस कथ्य पर थोपी गई है। उदा. २४ जून की डायरी ३२ पृष्ठों से भी अधिक है। और ये भी पुस्तकाकार मुद्रित ३२ पृष्ठ। डायरी के पृष्ठ तो ७०-८० होंगे। क्या यह संभव है कि कोई युवती दिनभर के काम-काज से मुक्त हो रात्रि मे डायरी के नाम पर ८० पृष्ठ लिखे ? ३० जून की डायरी २४ पृष्ठों की है। जुलाई की डायरी १४ पृष्ठों की है। डायरी साइज के ५०-६० पृष्ठ डायरी के नाम पर लिखे जाने की संभावना यथार्थ के स्तर पर उचित नही लगती। स्पष्ट है कि लेखक इस शैली के प्रति ईमानदार नही है।

पृष्ठ २३ पर सुजाता ने लिखा है "*समय बहलाने के लिए मैं डायरी लिखने बैठ गई हूँ*।" समय बहलाने के लिए अगर वह डायरी लिख रही है तो फिर इसकी यथार्थता को लेकर दूसरे अनेक प्रश्न उभर आते हैं। और फिर डायरी-लेखन क्या मन बहलाने की क्रिया है ? फिर सुजाता डायरी के इन पन्नो मे जिस रूप मे व्यक्त हुई है उससे ऐसा नही लगता कि वह मन बहलाने के लिए लिख रही है। अभिव्यक्ति की विवशता और मजबूरी के कारण वह डायरी लिख रही है, यह वास्तविकता है।

डायरी के कुछ पृष्ठो मे प्रकृति और वातावरण का बड़ा सूक्ष्म और विस्तृत चित्रण हुआ है। (दृष्टव्य मगल १८ जून, सोमवार २४ जून, बुध २६ जून, मगल २ जुलाई, गुरुवार ४ जुलाई, सोमवार १५ जुलाई इत्यादि) मनःस्थिति को व्यक्त करने के लिए आवश्यक प्रकृति-चित्रण डायरी लेखन को और अधिक जीवन्त बना देता है। परन्तु आलम्बन रूप मे प्रकृति-चित्रण और वह भी विस्तृत, डायरी मे उचित नहीं लगता। सुजाता के इस सम्पूर्ण लेखन मे अत्यधिक सम्बद्धता और सगति है। ऐसा लगता है कि उदय के साथ इक्कावन दिनो की जिन्दगी जीने के बाद वह इसे लिखने बैठी है। अथवा इन ५१ दिनों की मन स्थिति को वह रोज संक्षेप मे लिखकर रखा करती थी और बाद मे उसने इसे विस्तृत रूप दिया है। अथवा कथाकार सुजाता की उन दिनो की मनःस्थिति को राजेन्द्र यादव ने व्यवस्थित और कलात्मक रूप देने का प्रयत्न किया है।

सुजाता की डायरी के इन पन्नो को यादव दूसरी पद्धति से लिख सकते थे। डायरी शैली के अतिरिक्त मोह के कारण ही वे दूसरी पद्धति को स्वीकार नही कर सके हैं। इसीलिए यह शैली इस पर थोपी हुई लगती है। इसमे कोई सन्देह नही

कि इस शैली के कारण वे सुजाता का बड़ा ही सुन्दर, यथार्थ, जीवन्त और सूक्ष्म चित्रण कर सके हैं। एक ओर यह उपलब्धि है तो दूसरी ओर वे उदय और अपर्णा के चरित्र को न्याय नही दे सके हैं। क्योंकि इस शैली के कारण वे इन दोनो पात्रो की कुछ सीमा तक उपेक्षा कर गए हैं। वे सीधे एक उपन्यास लिखते तो अधिक अच्छा था। यादव एक प्रतिष्ठित कहानीकार हैं। टुकडो मे बाँटकर कथ्य को प्रस्तुत करना शायद उन्हें अधिक आसान लगता हो। इस कारण भी उन्होंने डायरी शैली चुनी हो। इसीलिए इस डायरी शैली पर कहानीकार राजेन्द्र यादव का व्यक्तित्व हावी हो गया है।

इस शिल्पगत सीमा के बावजूद यह उपन्यास हिन्दी साहित्य की एक विशिष्ट उपलब्धि है। स्त्री-पुरुष सम्बन्धो पर लिखा गया यह उपन्यास अपने विशिष्ट व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है। प्रेम के मानसिक ससार के नये आयाम खोल्ने मे यह समर्थ हो सका है। मानसिक प्रेम का सूक्ष्म व्यापार और उस समय की मन स्थिति तथा उस मन स्थिति का व्यक्तित्व-परिवर्तन की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य—यही इस उपन्यास की विशिष्ट कथा है जो अपने मे मौलिक है। राजेन्द्र यादव के ही शब्दो का उपयोग करके इस उपन्यास पर अतिम बात इस तरह से कही जा सकती है—

"ऑब्जर्वेशन—अर्थात् निरीक्षण। परिस्थिति का चित्रण, वातावरण, लोगों की भगिमाओ का चित्रण और वार्तालाप सचमुच बाँधे रखने वाले हैं, लेकिन कुछ जगहे पढना तो सजा काटना है।"[१]

## टिप्पणियाँ

१. हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन · डा० शाति भारद्वाज पृ० २४७
२ हिन्दी उपन्यास डा० सुषमा धवन पृ० ३१९
३ हिन्दी उपन्यास : डा० महेन्द्र चतुर्वेदी पृ० २०७
४ हिन्दी उपन्यासो का शास्त्रीय विवेचन डा० कल्याणमल लोढा पृ० २४३
५ हिन्दी उपन्यास प्रेम और जीवन : डा० शाति भारद्वाज पृ० २९०
६ शह और मात, राजेन्द्र यादव पृ० १९४
७, ८, ७५, ७६, ७७ शह और मात पृ० १२७
९ शह और मात पृ० १२
१०, ११, १३, १४, १५, १६, १८, १९, २० . शह और मात भूमिका अश
१२ शह और मात पृ० १९१
१७, २४, १५४, १५५, शह और मात पृ० २२३
२१, २२, २३, ११९ वही, पृ० १८
२४ वही, पृ० १९

२५ शह और मात, पृ० २१
२६ वही, पृ० २५
२७ वही, पृ० २६
२८, ३० वही, पृ० २७
२९ वही, पृ० २८
३१ वही, पृ० ३१
३२ वही, पृ० ३२
३३ वही, पृ० ३३
३४, ३५, १२० वही, पृ० ३४ ३५
३६. वही, पृ० ३७
३७, ३८, ३९, ४० वही, पृ० ३९
४१, ४२, ४३ वही, पृ० ४०
४४. वही, पृ० ४१
४५, ४६ वही, पृ० ४५
४७, ४८, ४९ वही, पृ० ४७
५०, ५१ वही, पृ० ४८
५३. वही, पृ० ५९
५४ वही, पृ० ६३
५५, ५६ वही, पृ० ७४
५७. वही, पृ० ७५
५८ वही, पृ० ८१
५९, ६०, १३२ वही, पृ० ८४
६१ वही, पृ० ८७
६२ वही, पृ० १०३
६३, ६४ वही, पृ० १०४
६५, ६६ वही, पृ० १०८
६७ वही, पृ० १२०
६८ वही, पृ० १२१
६९, ७० वही, पृ० १२२-१२३
७१, वही, पृ० १२५
७२, ७३, ७४ वही, पृ० १२६
७८, ७९, ८०, ८१ वही, पृ० १२८
८२ वही, पृ० १२९

८३ शह और मात पृ० १३२-१३३
८४, ८७, ८८, १३०, १५९ वही, पृ० १५०
८५, १३१ वही, पृ० १५१
८६ वही, पृ० १५२
९१ वही, पृ० १६१
९२ वही, पृ० १६३
९३, ९४, ९५ वही, पृ० १६५
९६, ९७ वही, पृ० १६६
९८ वही, पृ० १६७
९९, १३३, १३४, १३५ वही, पृ० १६९
१०० वही, पृ० १६८
१०१, १०२ वही पृ० १७०
१०३, १०४ वही, पृ० १७५
१०६ वही, पृ० १९६
१०७, १०८ वही, पृ० १९८
१०९ वही, पृ० १९९-२००
१११ वही, पृ० २०२
११२ वही, पृ० २१२
११३ वही, पृ० २१६
११४. वही, पृ० २२८
११५, १४४ वही, पृ० २२७
११६, ११७, ११८ वही, पृ० २२९
१२१, वही, पृ० ४२
१२२ वही, पृ० ४३
१२३ वही, पृ० ५५
१२४, १५४, १५५ वही, पृ० २२३
१२५ वही, पृ० २२५
१२६ वही, पृ० ६५
१२७ वही, पृ० ९
१२८ वही, पृ० ६६
१२९ वही, पृ० ७३
१३६ वही, पृ० २१७
१३७. वही, पृ० २२१

१३८ शह और मात · पृ० २१५
१३९, १४०, १४१ वही, पृ० २२६
१४२, १४३ वही, पृ० ,,
१४५ वही, पृ० १०७
१४६, १४७, १४८ वही, पृ० १८६
१४९ वही, पृ० ,,
१५० वही, पृ० १९१
१५१ वही, पृ० १९२
१५२ वही, पृ० १९३
१५३ वही, पृ० २२२
१५६ वही, पृ० २२४
१५७ वही, पृ० १५७
१५८ वही, पृ० १९४
१६० वही, पृ० १३२
१६१ वही, पृ० ९

# कितने चौराहे : एक संस्कारशील उपन्यास

सूर्यनारायण रणसुभे

---

"जीवन में कितने ही चौराहे आएँगे, न दाएँ मुड़ो, न बाएँ।"

—कितने चौराहे

"मैं जिन्दगी भर जलता रहूँगा तुम्हारी चिताओं की आग कलेजे में लेकर। तुमने मुझे पुकारा कमाण्डर! तुम्हारी पुकार पर, तुम्हारे हुक्म पर
मैं मैं दोषी हूँ। अनुशासन भंग किया है मैंने। मुझे गलत मत समझना प्रियोदा, वृन्दा, अशर्फी, भोला।"

—कितने चौराहे

"मनमोहन अभी इधर उधर नहीं देखेगा। सीधा चलता जायेगा। किसी चौराहे पर मुड़ेगा नहीं—न दाहिने, न बाएँ।"

—कितने चौराहे

"नायक शून्यता आंचलिक उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है।"

—डॉ० धनंजय वर्मा

'कितने चौराहे' एक आंचलिक उपन्यास है जिसमें समकालीन लोकजीवन रेखांकित हुआ है।

वास्तव में 'कितने चौराहे' में कस्बाई जीवन की सहज अभिव्यक्ति हुई है।

•

# १०
# कितने चौराहे

(अ) पृष्ठभूमि—श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' का यह उपन्यास "उनके अब तक प्रकाशित उपन्यासो के क्रम मे पाचवाँ और आखिरी आचलिक उपन्यास है।"[1] इस उपन्यास पर आलोचको द्वारा सबसे कम विचार किया गया है। शायद "समसामयिक कथावस्तु" यही एक कारण हो सकता है। परन्तु इसी समसामयिक्ता के कारण यह उपन्यास हमारा घ्यान अधिक आकृष्ट कर लेता है। इस उपन्यास मे सन् १९३३-३४ से लेकर सन् १९६५ तक की भारतीय राजनीति को पृष्ठभूमि मे रखा गया है। *भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम पर भारतीय भाषाओ मे सैकडो उपन्यास लिखे गये हैं।* सन् १९२० से १९४७ तक का काल ही इतना जीवन्त तथा राष्ट्रीयता की भावना स प्रेरित था कि किसी भी भाषा के साहित्यकार के लिए वह एक जीवन्त स्रोत था। इसी कारण अलग-अलग पद्धतियो से इस काल पर काव्य, नाटक,कहानियाँ तथा उपन्यास लिखे गये। स्वतन्त्रता के लिये किये गये इस सघर्ष मे समाज के सभी स्तर के लोग सम्मिलित थे। इतिहास के पृष्ठो से यह साबित किया जा सकता है कि उस काल के विद्यार्थी भी इस सग्राम के प्रति न केवल सजग ही थे, अपितु अपनी पद्धति से क्रियाशील भी थे। परन्तु दुर्भाग्य से विद्यार्थियो—विशेषत १० से २० तक की उम्र के बालको तथा नवजवानो के सम्बन्ध मे बहुत ही कम लिखा गया है। अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य की बात तो मैं नही जानता, परन्तु मराठी और हिन्दी मे तो इस विषय पर सबसे कम लिखा गया है। सन् १९२०-३५ के भारतीय स्कूलो मे पढने वाले इन छोटे-छोटे बच्चो की इस आन्दोलन के प्रति क्या प्रतिक्रिया थी, यह वास्तव मे विचारणीय प्रश्न है। क्या ये बच्चे अपनी स्कूली शिक्षा चुपचाप ग्रहण कर रहे थे ? अथवा वे आन्दोलन मे हिस्सा ले रहे थे ? अगर वे हिस्सा ले रहे थे, तो फिर उनके पीछे कौन-सी शक्तियाँ कार्य कर रही थी ? उस समय प्रचलित एक *विचारधारा के अनुसार विद्यार्थियो को सक्रिय राजनीति से दूर रहना चाहिए।* जीवन के किसी भी चौराहे पर न रुकते हुए अपनी पढाई खत्म करके आन्दोलन मे भाग लेना चाहिए। दूसरी विचारधारा के अनुसार अग्रेजो द्वारा सचालित इन स्कूलो

को पढाई व्यर्थ है, निरर्थक है। ऐसे स्कूलो मे उन्हे शिक्षा नही लेनी चाहिए। शिक्षा दीक्षा छोडकर आन्दोलन मे भाग लेना चाहिए। इसी कारण इस उपन्यास मे एक स्थान पर श्री तिवारी जी मनमोहन से कहते हैं कि "तुम लोग पढाई छोड दो। वानर सेना बनाओ तथा अग्रेजो के विरोध मे कार्य शुरू करो।"[१] परन्तु बडे महा राज मनमोहन से बार-बार यह कहते हैं कि इस आयु मे राजनीति से दूर रहना ही योग्य है। "जीवन मे कितने ही चौराहे आयेंगे, न दायें मुडो, न बाएँ।"[१] इस प्रकार इस उपन्यास मे इन दो विचारधाराओ का आपसी सघर्ष बतलाया गया है। आज भी विद्यार्थियो को लेकर ये दो विचारधाराएँ न केवल चल रही हैं, अपितु उनके पक्ष विपक्ष मे विचार रखे जाते हैं। इसी कारण कह सकते हैं कि यह उपन्यास युवा जगत् की मूलभूत समस्याओ के साथ जुडा हुआ है। मनमोहन तथा उसके साथियो मे अक्सर यह चर्चा होती है। और मनमोहन पहले अध्ययन फिर राजनीति इस प्रकार का निर्णय ले लेता है। बडे महाराज भी इसी विचार के थे। आज के विरोधी दल के लोग शायद यह कहेंगे कि रेणु जी प्रस्थापित व्यवस्था को बचाने के लिए युवको को इस राजनीति से दूर रहने का सन्देश देना चाहते हैं। यह आरोप ठीक उसी प्रकार निरर्थक है जैसे बडे महाराज को अग्रेजो का भेदिया कहना। वास्तव में हर युग मे इस प्रकार के प्रश्न उठे हैं। समाज तथा राजनीति के भीतर जब-जब अराजकता निर्माण हो जाती है, तब-तब युवको—विशेषत विद्यार्थियो—को आह्वान किया जाता है। युवा शक्ति के जोश पर, उत्साह पर सब का अधिक विश्वास होता है। इसी कारण यह शक्ति इस अराजकता को समाप्त कर सकती है—ऐसा माना जाता है। 'युवा-शक्ति' के सामने द्वन्द्वात्मक स्थिति पैदा हो जाती है। अत्यधिक सम्वेदनशीलता के कारण वह समाज को स्वीकार करना चाहता है। परन्तु इसके कारण उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सभव नही हो पाता। शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्ति का एक सीमा तक विकास होने के बाद ही इस प्रकार की चुनौतियो को स्वीकार किया जा सकता है, ऐसा रेणु मानते हैं। इसका यह अर्थ नही कि विद्यार्थी-जगत् इस सारी अराजकता को, अन्याय और अत्याचार को अपनी खुली आँखो से देखता रहे। अपने स्थान पर रहकर वह अपनी पद्धति से इन सब का प्रतिकार कर सकता है। इसके लिए यह जरूरी नही कि वह अपने कर्त्तव्य को छोडकर बाहर निकले। यह किस प्रकार सम्भव है, इसे रेणुजी ने इस उपन्यास मे बतलाया है। प्रियोदा, मनमोहन और उसके अन्य साथी अग्रेजी सत्ता का प्रतिकार अपने तरीके से करते ही रहते हैं। अपने कर्त्तव्य को छोडकर उसमे वे सीधे प्रवेश नही करते। आज जब कि 'राजनीति' सस्ती हो रही है, आये दिन युवको को शिक्षा-दीक्षा छोडकर विरोध के लिए सडको पर आने का आग्रह किया जा रहा है, 'कितने चौराहे' उपन्यास ऐसे आग्रह के खतरो को सूचित करता है। मनमोहन यह कहता भी है कि

पढ लिखकर अग्रेजो की नौकरी करना यह उसका जीवनोद्देश्य नही है। परन्तु पढाई की पूर्णता यह उसकी पहली मजिल है। इसी कारण यह उपन्यास समसामयिक विषय के बावजूद आज का लगता है।

स्वतन्त्रता-सग्राम मे शहीदो की एक लम्बी परम्परा मिलती है। इन शहीदो मे विद्यार्थी भी थे। वे किसी क्रान्तिकारी दल से अथवा किसी राजनीतिक विचार-धारा से सम्बन्धित नही थे। उन्हे इतना मालूम था कि गाधी, सुभाष अथवा भगत-सिह राष्ट्र के लिए बहुत कुछ कर रहे हैं। और हमे भी कुछ-न कुछ करना चाहिए। न ये किसी नेतृत्व के पीछे थे, न नेतृत्व के भूखे। न इनका कोई प्रत्यक्ष मार्गदर्शक था, न इन्हे कही से सूचानएँ प्राप्त होती थी। माँ पिता अथवा गाँव के किसी पढे लिखे व्यक्ति से इन्हें पता चलता था कि गाधीजी पकडे गये हैं, भगतसिह को फाँसी की सजा हुई है अथवा इसी प्रकार से अन्य व्यक्तियो पर अग्रेजो का दमन-चक्र चल रहा है। यह सुनकर ही वे इतने क्षुब्ध हो जाते थे कि हमे कुछ करना चाहिए। और इसी इच्छा से वे कभी हडताल करते थे, कभी अन्नग्रहण न करने की कसम खाते थे, कभी खादी पहनने की प्रतिज्ञा करते थे। यह सब अपने आप होता था। प्रौढ लोग तो नेताओ के भाषण पढकर अथवा किसी के निर्देशन से यह कार्य करते थे। ये बच्चे तो 'भीतरी आवाज' के कारण यह सब करते थे। भावुकता तथा दुनियादारी की समझ न होने से उन्हें यह पता भी नही होता था कि इसके क्या परिमाण होने वाले हैं ? निर्णय तो लेते थे, निर्णय के अनुसार कार्य भी करते थे। इतना ही नही, बाद मे परिणामो को भुगतने की हिम्मत भी बतलाते थे। इन स्कूली बच्चो की हिम्मत, निर्भयता और सहज निर्णय को रेणुजी ने पहली बार शब्दबद्ध किया है। इस कारण भी यह उपन्यास अधिक महत्त्वपूर्ण, जीवन्त तथा मनोवैज्ञानिक बन गया है।

कथावस्तु—मनमोहन नाम का एक छोटा-सा बच्चा सिमवरनी से सातवी की परीक्षा उत्तीर्ण होकर अगली पढाई लिए अररिया कोर्ट मे चला आता है। इस परीक्षा मे पूरे जिले मे वह सर्वप्रथम आया है। उसे शिष्यवृत्ति भी मिली है। माँ पिता के सपने हैं कि बेटा वकील बने। सम्भवत इसी उद्देश्य से वह आगे की पढाई के लिए निकला भी है। जिन्दगी मे पहली बार किसी कस्बे म पढाई के लिए निकले हुए इस बच्चे की मन स्थिति का बडा ही हृदयस्पर्शी तथा सूक्ष्म चित्रण लेखक ने किया है। शहर, वहाँ के लडके, अग्रेजी माध्यम, वेशभूषा आदि के प्रति उसके मन मे जिज्ञासा है, शका है तथा भय भी। ऐसा यह मनमोहन पढ़ाई के लिए अररिया आता है। और थोडे ही दिनो मे उसका परिचय मॅट्रिक की कक्षा मे पढने वाले प्रियोदा के साथ हो जाता है। प्रियोदा—जो राजनीति के प्रति अत्यधिक सजग है, गान्धीजी का भक्त है, राष्ट्रीयता की शपथ ले चुका है। प्रियोदा के सम्पर्क म आने के बाद मनमोहन मे धीरे धीरे परिवर्तन होने लगते हैं। अब वह मनमोहन से मोना

बन गए है। उसके भीतरी सुप्त गुणों का विकास होने लगता है। इस कस्बे मे उसकी निवास व्यवस्था किसी मोहरिल मामा के यहाँ हुई है, जो वास्तव मे सगा मामा नही है। अररिया कोर्ट मे मनमोहन दो परस्पर भिन्न वातावरणो से जी रहा है। एक ओर अत्यधिक स्वार्थी, डरपोक तथा गन्दी आदतो वाला मोहरिल मामा, उनकी पत्नी और उनका अवारा बेटा मटरू है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय वृत्ति के प्रियोदा, अच्छे साथी तथा सहृदयी धरवतिया है। दोनो प्रकार के संस्कार मनमोहन पर गिरने लगते हैं। क्षणभर के लिए लगता है कि वह भी मटरू की तरह बन जाएगा, परन्तु वह प्रियोदा की ओर ही आकृष्ट होने लगता है। प्रियोदा के कारण ही वह बड़े महाराज के सम्पर्क म आता है। और फिर धीरे धीरे अपनी मंजिल की ओर बढ़ने लगता है। बीच मे कितने ही चौराहे आते हैं। उसके साथी चौराहो को ही मंजिल समझकर वही रुक जाते हैं। परन्तु मोना किसी भी चौराहे पर न रुकते हुए आखिर अपनी मंजिल तक पहुँच ही जाता है। पर सवाल यह है कि मोना की जिन्दगी की मंजिल कौन-सी थी ? वास्तव मे यह लेखक भी स्पष्ट नही कर पाया है। अलबत्ता मोना पश्चात्ताप की अग्नि मे जलता रहता है। सारे साथी हिम्मत के साथ एक के बाद एक शहीद होते गये। पर मोना बचा। शायद नीलू के आकर्षण के कारण ! और इसीलिए वह अपनी जिन्दगी परिवार के लिए न देते हुए राष्ट्र की भावी पीढ़ियो के निर्माण के लिए दे देता है।

विशेषताएँ—(१) इस प्रकार इस उपन्यास की कथावस्तु अत्यन्त ही संक्षिप्त सी है। इस संक्षिप्त सी कथावस्तु मे मनमोहन के बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक की कहानी रक्खी गई है। सम्पूर्ण उपन्यास के केन्द्र मे 'मनमोहन' ही है। उससे प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से सम्बन्धित सभी व्यक्ति और घटनायें यहाँ आई हैं, परन्तु पृष्ठ-भूमि के तौर पर ही। वास्तव मे 'कितने चौराहे' मनमोहन की स्मरण-गाथा ही है। एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन की प्रमुख घटनाओ को एकसूत्रता के साथ रक्खा गया है, इसलिए इसे 'उपन्यास' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

मात्र १४४ पृष्ठ के इस उपन्यास मे कुल २५ प्रकरण हैं। सन् १९३० से लेकर १९६१ ई० तक के काल को इसमे पृष्ठभूमि के अन्तर्गत स्वीकार किया गया है। इस 'काल' का तथा उपन्यास के प्रमुख चरित्र मनमोहन की जिन्दगी के भीतरी परिवर्तन का गहरा सम्बन्ध है। इसी विशिष्ट राजनीतिक परिस्थिति के कारण ही उसमे विशेष परिवर्तन हुआ है। उसमे भी सन् १९३० से १९४५ तक के काल का बहुत महत्त्व है। वास्तव मे इस उपन्यास की कथा प्रकरण २४ में ही समाप्त हो जाती है। सन् १९४५ मे राजनीतिक कैदियो की रिहाई के बाद मनमोहन भी जेल से छूट गया तथा पश्चात्ताप की अग्नि मे झुलसता रहा। "पाँच-पाँच चिताओ की आग मे झुलसता हुआ मनमोहन पाँच साल तक जेल और जेल मे यही बुदबुदाता

रहा—नीलू नही आती नीलू नही होती तो इस ग्लानि की आग मे क्यो तपता ? मुझे क्षमा करना साथियो ! मैंने गद्दारी नही की ।"[1] इसी पश्चात्ताप की स्थिति मे मनमोहन फिर एक बार निर्णय ले लेता है—'वह घर नही जायेगा लौटकर ! वह मुड़ेगा नही । उधर मुँह नही करेगा ।"[2] वास्तव मे उपन्यास की कथावस्तु यही पर समाप्त हो जाती है । परन्तु बीस वर्ष का अन्तराल देकर लेखक फिर मनमोहन को स्वामी सच्चिदानन्द के रूप मे प्रस्तुत करता है । मनमोहन इस समय तो अपनी कमजोरी के कारण शहीद नही हो सका । बाद मे भी यह सम्भव न हुआ । परन्तु मनमोहन का छोटा भाई जनमोहन भारत पाक युद्ध मे शहीद हो गया है । और आज स्वामी सच्चिदानन्द इस घटना को पढकर अनुभव कर रहे हैं—"भैया के मन की ग्लानि को छूमंतर कर दिया गुनीजी ने ! आह ! पाँच-पाँच चिताओ की आग मे एक युग से झुलसते हुए हृयय पर चन्दन-लेप रहा है कोई ।"[1] "गुनीजी कौन गुनीजी ? कौन जनमोहन—कौन मनमोहन—कौन माँ ? इतने इतने जनमोहन सच्चिदानन्द !'"[2] मनमोहन के प्यार का उदात्तीकरण बतलाने के लिए शायद यह अन्तिम प्रकरण लिखा गया है । परन्तु इतना जरूर है कि यह अंतिम प्रकरण मुख्य कथावस्तु से कटा हुआ सा लगता है । कथावस्तु का मानो उपसहार ही लेखक ने इस प्रकरण द्वारा किया है । आरम्भ—विकास—चरमोत्कर्ष और उपसहार इस प्रकार इसकी कथावस्तु की रचना हुई है । कथावस्तु अत्यन्त ही धीमी गति से आगे बढ़ती है । प्रकरण १ से १९ तक यह स्थिति है । परन्तु प्रकरण २० से बडी तेजी के साथ घटनायें घटने लगती हैं । १ से १९ तक के प्रकरण मे मनमोहन की करीब दो-तीन वर्ष की जिन्दगी का चित्रण है । और प्रकरण २० से २५ तक उसकी ४० से ४५ वर्ष की जिन्दगी के सकेत हैं । अर्थात् मनमोहन की जिन्दगी के चित्रण मे किसी प्रकार का सतुलन नही है । वास्तव मे निष्कर्ष स्थूल ही हैं । क्योंकि जैसा आरम्भ मे ही कहा गया है कि रेणु विद्यार्थी-अवस्था का चित्रण ही मुख्यत करना चाहते हैं । इसीकारण 'मोना' की विद्यार्थी-अवस्था पर ही वे केंद्रित हो गये हैं । सम्भवत प्रकरण २५ को रखकर वे मोना की जिन्दगी के उत्तरार्द्ध को स्पष्ट करना चाहते हैं ।

(२) इस उपन्यास की कथावस्तु राजनीति से सम्बन्धित होते हुए भी राजनीतिक नही है । प्रेम से सम्बन्धित होकर भी प्रेममूलक नही है । राजनीति यहाँ पृष्ठभूमि के रूप मे है । प्रेम यहाँ प्रेरणा के रूप है । इसे पूर्णत आचलिक भी कह नही सकते । यह 'कस्बाई' परिवेश मे लिखी गई एक अन्-आचलिक कृति है । इसी कारण किसी परम्परावद्ध चौखट मे इसकी कथावस्तु को रख नही सकते । अब तक के लेखकों का ध्यान जिस आयु की ओर गया नही था, वहाँ रेणु का ध्यान गया हुआ है । प्रत्येक अवस्था के व्यक्तियो के साथ कुछ खास प्रकार के कथानक जोडने की हमारी परम्परा है । यहा पर तो बाल्यावस्था—किशोरावस्था तथा युवावस्था

का सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है। वातावरण तथा मानसिक संघर्ष का बड़ा ही सहज चित्रण हुआ है। इस संघर्ष से ही व्यक्तित्व विकास को स्पष्ट किया गया है।

(३) प्रकरण १ से २ तक मनमोहन का नये गाँव के नये स्कूल मे जाने का तथा उस नये गाँव का चित्रण किया गया है। प्रकरण ३ से ६ तक मनमोहन जिनके यहाँ रहता है उनका तथा उसके नये मित्रो का चित्रण किया गया है। प्रकरण ७ से ही उपन्यास का आरम्भ होता है। 'प्रियंवदा' के सम्पर्क मे आने के बाद ही मनमोहन के जीवन मे एक नई क्रान्ति हो जाती है। आगे होने वाली घटनाओ के संकेत भी यही पर मिलने लगते है। इसी कारण यहाँ से 'आरम्भ' मानना पड़ता है। तो फिर प्रकरण १ से ६ तक की संगति क्या है? आरम्भ, विकास तथा अन्त को अधिक आवश्यक, सहज तथा यथार्थ बनाने के लिए लेखक ने इन छ प्रकरणों की आयोजना की। इसीलिए इन्हे 'पृष्ठभूमि' के रूप मे स्वीकार करना पड़ता है। "जहाँ पर दिए संकेतों का विस्तार किया जाता है, उसे 'मध्य' कहते हैं।" इस दृष्टि से प्रकरण ९ से २३ तक 'मध्य' है। २४वाँ प्रकरण 'अन्त' है, क्योकि आगे की किसी भी घटना का संकेत यहाँ नही मिलता। परन्तु फिर २५वाँ प्रकरण लिखा गया है। उसे 'उपसंहार' के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार पृष्ठभूमि–आरम्भ-मध्य-अन्त और उपसंहार यह इसका स्थूल शिल्प विधान है। प्रकरण ८ के बाद ही कथा-वस्तु सहज रूप से बढ़ने लगती है।

(४) कथानक के विकास मे सुसूत्रता का अभाव है। घटनाओ को स्पर्श करते हुए आगे चलते हैं। एक मे से दूसरी घटना निकली हो—ऐसा नही लगता। वास्तव मे इसमे एक ही प्रमुख घटना है—स्कूल हड़ताल अर्थात् केनिंग वाली घटना। इसी एक घटना के कारण मनमोहन की जिन्दगी मे बहुत बड़ा परिवर्तन हो जाता है। अन्य घटनाएँ अधूरी-अधूरी-सी लगती हैं। चरित्र प्रधान कथानक के कारण शायद ऐसा हुआ है। केवल उन्ही घटनाओ का लेखक संकेत देता जाता है, जिनके कारण 'चरित्र' की कोई विशेषता स्पष्ट हो जाती हो। इसीलिए घटनाएँ कथाविकास के लिए नही आती, चरित्र-चित्रण के लिए आती हैं।

(५) कथावस्तु अत्यधिक यथार्थ है। सन् १९३०-३१ का वातावरण ही कुछ ऐसा था कि प्रत्येक व्यक्ति राष्ट्र के लिए मर मिटने को तैयार हो रहा था। ऐसे समय छोटे छोटे बालकों की प्रतिक्रियाओ को लेखक ने शब्दबद्ध किया है। 'मनमोहन' को यथार्थ रूप मे हमे स्वीकार करना पड़ता है। केवल मनमोहन ही नही अपितु उसके साथ जुड़े हुए वातावरण मे अत्यधिक यथार्थता है। मोहरिल मामा तथा उनका परिवार, अररिया कोर्ट, वहाँ के लोग, उनकी मनोवृत्ति, परम्परागत आस्थाएँ, विश्वास, पूरन विश्वास का चरित्र, सरस्वतिया की स्थिति, काका, मनमोहन के पिता–

आदि अत्यधिक यथार्थ रूप मे उभरकर आये हैं। तत्कालीन भारतीय राजनीति की पृष्ठभूमि मे लेखक ने जिस समाज को अंकित किया है, वह जीवन्त हो उठा है। मनमोहन के मन मे शरवतिया के प्रति इधर जो एक विचित्र सा ( परन्तु आयु के अनुसार बडा ही यथार्थ) शारीरिक आकर्षण उत्पन्न हो रहा था, उसके कारण भी इसकी यथार्थता और गहरी हो जाती है। (प्रकरण १६, पृष्ठ ९६)

(६) कथावस्तु मे कौतूहल-उत्सुकता के तत्त्व पर्याप्त मात्रा मे हैं। पृष्ठभूमि और उपसहार के बावजूद भी कथावस्तु आकर्षक बन पडी है। मनमोहन, शरवतिया, मनमोहन की माँ का स्वप्न, नीलू, काका, हडताल, प्रियोदा आदि विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओ को लेकर पाठको के मन मे सतत उत्सुकता बनी रहती है, जिज्ञासा निर्माण हो जाती है। इतने छोटे उपन्यास मे भी रेणु पाठको के मन को पूरी तरह से आकृष्ट कर लेते हैं।

इसकी कथावस्तु की सबसे बडी विशेषता इसकी मौलिकता मे है। जैसा कि आरम्भ मे ही कहा गया है कि सम्भवत रेणु पहले लेखक हैं जिन्होने स्वतन्त्रता-सग्राम मे विद्यार्थियो के योगदान को लेकर इतना हृदयस्पर्शी उपन्यास लिखा है। इसमे न परम्पराबद्ध प्रेम है, न यौन आकर्षण, न सस्ते और रूमानी सवाद, न बहुत बडा उपदेश या आदर्श। अपनी कमजोरियो को लेकर मनमोहन जिन्दगी के चौराहे किस प्रकार पार करता रहा, इसका सहज तथा तटस्थ चित्रण इसमे किया गया है। इसी कारण इसकी मौलिकता कथानक के चुनाव तथा चरित्र-चित्रण की स्वाभाविकता मे है।

(८) इसकी कथावस्तु समसामयिक जीवन पर आधारित है। कुछ हद तक इसे 'ऐतिहासिक उपन्यासो' की कोटि मे रख सकते हैं। क्योकि ऐतिहासिक घटनाओ की नींव पर ही कथानक का भवन खडा है। कथावस्तु की इसी ऐतिहासिकता के कारण इसमे अनेकार्थ की शक्ति नही है। आज के सन्दर्भ से यह नया अर्थ दे नही सकता। इसकी कथावस्तु की यह सबसे बडी मर्यादा है।

(९) इसकी शैली तरल और साकेतिकता को लिए हुए हैं। इस शैली मे खास 'रेणुपन' के दर्शन स्थान-स्थान पर होते हैं। अन्तिम प्रकरण मे पूर्वदीप्ति ( flash-back ) पद्धति का प्रयोग किया गया है। इसे मिश्रित शैली कहना उचित है।

(१०) एक ज्वलन्त युग को, राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए तडपने वाले युवकों की मन स्थिति को, उनकी इच्छा-आकाक्षा तथा सयम को रेणु ने अत्यधिक सहजता के साथ व्यक्त किया है। यह इस कथावस्तु की सबसे बडी विशेषता है। मनमोहन, शरवतिया तथा नीलू ये ऐसे प्रसग थे जहाँ कोई भी लेखक कथानक को अधिक रोमान्टिक और भावुक बना सकता था। परन्तु रेणु की पकड यथार्थ पर से

क्षणभर के लिए भी छूटती नहीं। इसी कारण ऐसे प्रसग लाने के बावजूद भी वह सहज रूप मे उनका निर्वाह करता है। उसकी प्रतिभा और लेखनी का यह सबसे बड़ा सयम है। इस सयम के दर्शन जहाँ-तहाँ इस उपन्यास मे होते है।

[ इसकी आंचलिकता पर आगे विचार किया गया है। ]

चरित्र-चित्रण

मनमोहन —जैसा कि कहा गया है मनमोहन इस उपन्यास का केन्द्रीय चरित्र है। सम्पूर्ण उपन्यास पर वह छा गया है। शास्त्रीय शब्दावली का प्रयोग करके हम यह कह सकते हैं कि वही इस उपन्यास का नायक है। क्योंकि सभी प्रमुख घटनाएँ उसके कारण घटित होती हैं तथा घटनाओ का वहन भी वह करता है। उसके बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक का चित्रण इसमे है। उसके जीवन चरित्र का क्रमिक विकास देखने का हम यहाँ प्रयत्न करेंगे।

एक छोटे-से देहात-सिमरबनी मे उसका जन्म हुआ है, और वही पर आरभ की पढाई। "इस बार तो उसे अपर प्रायमरी की परीक्षा मे छात्रवृत्ति मिली है।"[१] आगे की पढाई के लिए उसे अब शहर जाना है। लडका पढने के लिए शहर जा रहा है, इसलिए पिता ने बार-बार कहा है—"शहर जाकर शहरी लडका मत बन जाना। बीड़ी-सिगरेट मत पीना।"[१] वह मन ही-मन सोच रहा है—"शहरी ? शहर जाकर शहरी मत बन जाना ! तो फिर शहर के स्कूल मे भेजते ही क्यो हैं ?"[११] स्पष्ट है कि छोटा मनमोहन बुद्धिमान है। उसे किसी दूसरे देहात के स्कूल मे भेजने का भी आग्रह हुआ है। परन्तु उसके बाबूजी के अनुसार शहर के स्कूल मे ही जाना ठीक होगा। शहर के स्कूल मे जाने के पूर्व उसके मन मे इस शहर के प्रति अनेक प्रश्न उभर रहे थे। अग्रेजी मे बात करनी होगी, विशेष तरीके के कपडे पहनने होंगे" आदि आदि। सारी तैयारी के बाद मनमोहन शहर की ओर निकलता है तो उसका मन उदास हो जाता है। अपनी माँ, बहन और काका को छोडकर वह पहली बार दूर जा रहा था। उसकी इस मन स्थिति का बडा ही सहज चित्रण रेणु यहाँ करते हैं। रेलगाडी मे पैर रखते समय बाबूजी ने कहा था—"सँभलकर पैर रखना पाँवदान पर। फिसल मत जाना।"[११] 'फिसल मत जाना' इस वाक्य को मनमोहन जिन्दगीभर याद रख गया है। और इसीकारण जिन्दगी के पाँवदान पर पैर पक्के रखना उसने सीख लिया है। आगे कभी वह फिसल नही सका, हालाँकि प्रसग कई आये।

शहर के स्कूल मे पहली बार भरती होने के बाद उसे कई नई बातें मालूम हुई। जैसे—"यहाँ फुटबाल खेलना जानना होगा।"[११] नये मित्रो—लालू, रोशी आदि का परिचय हुआ। जिस घर मे मनमोहन के रहने की व्यवस्था हो गई थी उस मोटरिल मामा के घर के एक ही सदस्य से वह प्रभावित हुआ है, वह है शरवतिया। 'पता नही क्यो उसे शरवतिया दीदी के आंचल मे माँ के आंचल की गन्ध आती

है।"[14] इस शहर मे आने के कुछ ही दिनो बाद वह प्रियोदा के सम्पर्क मे आता है और यही से उसके जीवन मे क्रातिकारी परिवर्तन शुरू हो जाते हैं। अपनी मातृभूमि की गुलामी का एहसास उसे हो जाता है।—"मनमोहन की आँखो के आगे बहुत देर तक प्रियोदा के कुर्ते पर टँकी हुई 'गोल चकत्ती' की तस्वीर छाई रही · नजीर मे जकडी एक देवी की मूर्ति। नीचे लिखा हुआ था—वन्दे मातरम्!"[15] यह तस्वीर जिन्दगी के आखिरी समय तक उसके दिलो दिमाग पर छाई रही है।

स्कूल के शरारती लडके तथा कठोर स्वभाव के मास्टरो के कारण मनमोहन इतन निराश और उदास हो जाता है कि वह यहाँ से हमेशा के लिए अपने घर वापिस जाना चाहता है। 'मैं यहाँ नही पढ़ूँगा। मैं आज ही घर जाऊँगा।"[16] परन्तु शरबतिया और पिता के समझाने पर वह इस विचार को निकाल देता है। वास्तव मे वह इस शहर मे पढता रहा प्रियोदा के व्यक्तित्व के ही कारण। प्रियोदा के 'किशोर क्लब' का सदस्य हो जाने के बाद तो उसे यहाँ की जिन्दगी मे काफी आनन्द आने लगता है। वह जितना भावुक है, उतना ही बुद्धिमान। अपने मन और बुद्धि को जो बात पटती है, वह उसे चुपचाप करता करता है, चाहे जितना विरोध हो। इसी कारण स्काउट-ड्रेस के लिए दिए गए पैसो से वह खद्दर का कपडा खरीदता है। और केनिंग की घटना होने के बाद पिताजी और काका के अनशन के बावजूद भी वह प्रियोदा का साथ छोडने को तैयार नही होता। उसका विश्वास था कि वह जो कुछ भी कर रहा है, वह बुरा नही है। वह अब धीरे-धीरे निर्भय बनते जा रहा है। प्रियोदा की यह बात उसे पूर्णत. मान्य हो चुकी है कि 'दस और देश का काम करनेवाला तो खुद ही भूत होता है—उसको भूत क्या कर सकता है?"[17] इसीलिए ग्रामीण अचल से आए हुए इस मनमोहन के हृदय से भूत, प्रेत, पुलिस, अग्रेज आदि का डर निकलने लगता है। "मुनीजी इतना जल्दी निडर हो गया। यहाँ गाँव मे जिस दिन कोई "लाल पगडी" वाला आ जाता, तो दिनभर घर मे छिपा रहता था—डर से। अब देखिए कि 'टिकस चेकर' से लेकर गाट साहब तक से अग्रेजी मे बतियाता है। सैकडो लाल पगडी वाले पुलिस के सामने खद्दर की वर्दी पहनकर 'लैफ रैट' करता हुआ शान से चला जाता है।"[18] यह परिवर्तन प्रियोदा के सम्पर्क के कारण ही समव हो सका है। गान्धीजी की गिरफ्तारी के बाद प्रियोदा के नेतृत्व मे स्कूल मे हडताल की जाती है। आरम्भ मे तो हडताल मे भाग लने वालो की सख्या काफी थी। परन्तु "पुलिस के सिपाहियो का नाम सुनकर अधिकाश विद्यार्थी घबराए और भागे।"[19] और रेस्टिकेट के भय से "तीसरे दिन करीब करीब हर दर्जे के हडताली छात्रो ने लिखकर माफी माँग ली—सात सँतानो के सिवा।"[20] इन सात सँतानो मे प्रियोदा और उसके क्लब के छह सदस्य ही थे—जिनमे सबस छोटा मनमोहन था। फिर केनिंग की घटना हुई। इन सातो को स्कूल के मैदान मे

सभी छात्रों के बीच छड़ी से पीटा गया। गाँव के लोग भी काफी संख्या में आए हुए थे। मनमोहन ने उस दिन अद्भुत साहस का परिचय दिया। इसी कारण "मनमोहन को किसी ने कंधे पर उठा लिया है। उसकी देह में गुदगुदी लगती है।"[११] और डॉक्टर बनर्जी का अधपगला कम्पाउन्डर बोतल से दूध जैसी दवा एक बर्तन में डालकर पट्टी भिगो रहा है और हँस रहा है. "य खोब रोक्तो दिये नेहीं जाएगा— अर्थात् यह रक्त देकर नहीं जाएगा।"[१२] इस प्रकार मनमोहन अब उस कस्बे का 'वीर बाल्क'[१३] बन गया है। केवल ऐसे ही कार्यों में वह निर्भयता के साथ आगे बढ़ नहीं रहा है, तो स्कूली परीक्षाओं में भी वह सबसे आगे है। "मनमोहन को छमाही परीक्षा में डबल परमोशन मिला है। छै महीना में ही एक क्लास पास। अब कौन कह सकता है कि मुनीजी पढ़ने के बदले हड़ताल करता है।"[१४] इतनी कम उम्र में उसे काफी प्रतिष्ठा मिल गई है। कभी-कभी उसकी इच्छा होती है कि पढ़ाई लिखाई छोड़कर 'स्वतन्त्रता-आन्दोलन' में कूदा जाए। परन्तु "बड़े महाराज कहते हैं कि अभी तुम लोगों का समय नहीं आया। अभी पढ़ो-लिखो, देह और मन को मजबूत बनाओ।'[१५] स्वतन्त्रता-आन्दोलन की ओर मनमोहन के इस प्रकार मुड़ जाने के कारण 'काका' भी इस आन्दोलन में कूद पड़े हैं। और मनमोहन के पिताजी अब इस काम के प्रति पहले की तरह तिरस्कार से नहीं देखते। उलटे "वे तो अब बड़े निश्चिन्त हैं। असल में बड़े महाराज का ही असर हुआ है।" उन्होंने कहा—"बड़े महाराज जो कहें, वही करना। वह बुरा रास्ता क्यों बतलाएँगे? तुम्हारे काका के बिना कोई काम रुका पड़ा तो नहीं है। जेल में तिवारी जी वगैरह के 'संगत' से आदमी बन जायगा।"[१६] इस बीच मनमोहन बड़े महाराज द्वारा स्थापित 'स्टुडेंट्स होम' में जाकर रहने लगा है। इसके भी कई मनोवैज्ञानिक कारण हैं। जैसे-जैसे वह अपनी बाल्यावस्था को छोड़कर कैशोर्यावस्था में प्रवेश कर रहा है, वैसे-वैसे शरबतिया के प्रति उसके मन में यौन आकर्षण बढ़ रहा है। मोहरिल मामा के घर का वातावरण वैसे भी बड़ा ही खराब है। उसमें फिर विधवा शरबतिया! शराब और मटरू की संगत। "नहीं तो, नहीं तो किसी दिन वह एक घूँट दारू पी लेगा, घुघनी खाकर किसी दिन . हे वीर! विवेकानन्द स्वामी की मूर्ति "[१७] इस स्टुडेंट्स होम में आने के बाद उसकी सारी जिन्दगी ही बदल जाती है। सब कुछ नये ढंग से जानने की कोशिश वह करने लगा है। इस बीच पढ़ाई अधूरी छोड़कर राजनीति में प्रवेश करने वालों की संख्या कम नहीं थी। परन्तु बड़े महाराज ने कहा है—' देखो मोना! तुम्हारे ऊपर मुझे बहुत भरोसा है। कभी झोंक में आकर तुम भी पढ़ना-लिखना मत छोड़ बैठना। अभी सीधे चले चलो। राह में, ठौर में कहीं बैठना नहीं है। कितने ही चौराहे आएँगे। न दाएँ मुड़ना, न बाएँ—सीधे चलते जाना।"[१८] बड़े महाराज के इसी उपदेश और मार्गदर्शन

के कारण वह सीधे बढने की कोशिश कर रहा है। काल-चक्र अपनी गति के साथ आगे बढ रहा है। मनमोहन की जिन्दगी मे आकर्षण के 'कितने ही चौराहे" आ रहे हैं। वह सब को पार करते हुए आगे बढ रहा है। शरबतिया के आकर्षण का चौराहा, नीलू के प्रति सहज सुलभ आकर्षण का चौराहा, प्रतिष्ठा का चौराहा! सब को तटस्थता से देखते हुए वह आगे बढ रहा है। न दाएँ मुड रहा है और न बाएँ। अलबत्ता उसके मन मे द्वन्द्व जरूर है। परन्तु इस द्वन्द्वात्मक स्थिति को वह सहज रूप से जी लेता है और लगातार आगे बढता जाता है। 'इधर दीपू-तरू की भाजी नीलू से मिलने की उसे इच्छा हो रही है। इसके लिए उसने नियम का भग भी किया है।"[१५] परन्तु फिर वह समल जाता है। १५ जनवरी, १९३४ ई० मे बिहार मे भूमि-कम्प हुआ। "प्रलयकारी भूकप की विनाश लीला की खबरें चारो ओर से आ रही हैं। मुंगेर, मुजफ्फरपुर, दरभगा मे हजारो ला ो पडी हुई हैं। मलवे के नीचे हजारो जानें दम तोड रही हैं। महाश्मशान! सारे उत्तर विहार मे त्राहि-त्राहि मची हुई है।'[१६] और इसीकारण मनमोहन वहाँ के अस्ताल मे काम करते समय वह अनुभव करता है कि "हर अवेड के चेहरे पर वह अपने बाबूजी के मुखडे की छाया देखता है। सभी घायल, बीमार औरतें उसकी माँएँ हैं कितनी पुष्पी, नीलू, गुनी जी, शरबतिया दीदी प्रियोदा कितने कितने आह! चीख पुकार!'[१७] डेढ महीने के बाद मनमोहन वहाँ से लौट आता है। फिर वही चक्र! जिन्दगी अपनी गति से आगे बढ रही हैं। और सन् १९४२ का 'भारत छोडो' आदोलन! इस कस्बे के छात्र भी 'ट्रेजरी आफिस' पर तिरगा झडा फहराने का निर्णय लेते हैं। सूरज और हफीज तो हिन्दू मुस्लिम दगे मे शहीद हो गए। अब कृत्यानन्द, शिवनाथ, हरेन्द्र, अशर्फी, प्रियोदा और मनमोहन मिलकर 'ट्रेजरी आफिस' हर तिरगा फहराने का निर्णय ले चुके हैं। अग्रेजों की ओर से भी सारी तैयारी है। १२ से २० की आयु के ये लडके झडा लेकर जैसे ही आगे बढने लगते हैं, तुरन्त गोलियाँ चलने लगती हैं। फिर भी तिरगा नीचे गिरेगा नही। एक शहीद हो गया है तो दूसरे के हाथ मे झडा देकर ही। 'और देखते-ही देखते एक के बाद एक धराशायी होने लगे। प्रियोदा, कृत्यानन्द, अशर्फी, मोला और तपू—एक गिरता, दूसरा आगे बढकर उसके हाथ से झडा लेता। दूसरा गिरता तीसरा झडा थामता। चौथे ने गिरने से पहले मोना को आवाज दी—अपने जाडीदार को। किन्तु मोना को पकडकर नीलू पागल की तरह चिल्ला रही थी—नही—नही!"'[१८] और इसी कारण मोना बच गया है। परन्तु—"मैं जिन्दगीभर जलता रहूँगा तुम्हारा चिताओ की आग कलेजे मे लेकर। तुमने मुझे पुकारा कमाडर! तुम्हारी पुकार पर तुम्हारे हुक्म पर मैं—मैं दोषी हूँ। अनुशासन मग किया है मैंने। मुझे गलत मत समझना प्रियोदा, कृत्या, अशर्फी, मोला।'[१९]

इसी पश्चात्ताप की आग मे मोना जिन्दगीभर जलता रहा। मातृभूमि पर शहीद होने का उसका सपना अधूरा ही रहा। सन् १९६५ के भारत-पाक युद्ध मे इस मोना का छोटा भाई जनमोहन शहीद हुआ। और तब स्वामी सच्चिदानन्द (मोना) अनुभव करते हैं—"पाँच-पाँच चिताओं की आग से एक युग से झुलसते हृदय पर चन्दन लेप रहा है कोई। अब मुडना होगा माँ के पास नही गुनीजी कौन गुनीजी ? कौन जनमोहन कौन माँ ? इतने इतने जनमोहन सच्चिदानन्द !"[३४]

मनमोहन के चरित्र का यह क्रमिक विकास देखने के बाद हम उसके सम्बन्ध मे निम्नलिखित निष्कर्ष दे सकते हैं।

(१) मनमोहन का यह चरित्र अत्यधिक यथार्थ है। वह प्रातिनिधिक भी है और विशिष्ट भी। उसमे मानव दुर्बलताएँ हैं। और जहाँ जहाँ पर ये मानव-सुलभ दुर्बलताएँ बतलाई गई हैं—शरबतिया का आकर्षण, नीलू का आकर्षण, प्रतिष्ठा का आकर्षण—वहाँ-वहाँ पर वह यथार्थ बन पड़ा है। परन्तु जहाँ पर वह इन कम-जोरियो पर विजय प्राप्त करके आगे बढ़ने लगता है, वहाँ पर वह 'विशिष्ट' बन जाता है। इस प्रकार 'प्रातिनिधिकता' और 'विशिष्टता' का जाने अनजाने सुन्दर समन्वय इसके चरित्र मे हुआ है। इसी समन्वय के कारण यह चरित्र अधिक आक-र्षक तथा यथार्थ बन पड़ा है।

(२) मनमोहन 'स्थिर' स्वभाव का व्यक्ति नही है। उसमे विकासात्मकता के सारे लक्षण प्राप्त हैं। अक्सर 'ध्येयवादी' लोग स्थिर चरित्र के होते हैं। परन्तु मनमोहन अपनी बुद्धि और अनुभव के बल पर आगे बढ़ने की कोशिश करता है। किसी एक विशिष्ट सिद्धान्त को स्वीकार करके ठीक उसी प्रकार चलने का उसका अन्धा प्रयत्न नही है। प्रियोदा, बड़े महाराज तथा अपने व्यक्तिगत अनुभवो के माध्यम से वह जिन्दगी को समझने की कोशिश करता है और उसी तरीके से जीने की भी। इसी विशेषता के कारण वह बड़ा ही जीवन्त और सहज लगता है।

(३) इसके व्यक्तित्व विकास मे एक निश्चित प्रकार का क्रम है। एक के बाद एक घटनाएँ रखी गई हैं। छात्रावस्था-युवावस्था तथा प्रौढावस्था। प्रत्येक अवस्था मे जो दिक्कतें आई हैं, उनका सकेत रेणु देते गए हैं। युवावस्था की उसकी निर्भयता, कुछ कर बतलाने की जिद तथा यौन आकर्षण का बड़ा ही सूक्ष्म चित्रण किया गया है। अर्थात् हर अवस्था मे 'चौराहे' आते हैं। पर प्रत्येक चौराहे पर से गुजर कर वह आगे चला जाता है। चौराहो का आकर्षण उसे थोडी देर के लिए बाधकर रख देता है। परन्तु चौराहे को ही मजिल समझकर वह वही रुक नही जाता। श्री कान्तिदेव ने अपनी पुस्तक "रेणु का आचलिक कथा-साहित्य" मे कितने चौराहो का सम्बन्ध राष्ट्र की गति से माना है। "यह जीवन्त राष्ट्र एक के बाद

एक कितने ही चौराहो को पार करता गया है।" "और यह महाप्राण जनता पुन उनके गन्दे मनसूबो को रौंदकर आगे बढती जाती है। न दाएँ मुडती है न बाएँ, आगे ही बढती है।"[1] वास्तव मे कितने चौराहो का सम्बन्ध राष्ट्र की गति के साथ नही, मनमोहन के चरित्र के साथ ही है। क्योकि 'मनमोहन' ही अनेक चक्रो को, चौराहो को पार करता हुआ आगे बढने लगता है। 'चौराहा' तो वास्तव मे एक परीक्षा-स्थल है। हमारे सन्तो ने इसी को 'माया-मोह' कहा है। जिन्दगी मे भी इस प्रकार के अनेक चौराहे आते हैं जो हमे मजिल की ओर जाने नही देते। सौभाग्य से मनमोहन इन चौराहो रूपी परीक्षा-स्थल पर से उत्तीर्ण होकर आगे बढ जाता है—यह उसके चरित्र की सबसे बडी विशेषता है।

(४) मनमोहन आरम्भ से 'आदर्श' की खोज मे निकला है। वह अपना सम्पूर्ण जीवन "दस और देश" के लिए देना चाहता है। उसका तो सपना था—देश के लिए मर मिटने का। उसके सभी साथी इस सपने को पूर्ण कर सके हैं। और वह अकेला बचा रहा है—वह भी अपनी भीतरी कमजोरी के कारण, नीलू के कारण। उसी पश्चाताप की अग्नि मे वह जल रहा है। शहीद होने का सपना पूरा नही हुआ तो क्या हुआ, वह दूसरे तरीके से तो अपने सपने को पूरा कर सकता है। इसी कारण वह "दस और देश" का काम कर रहा है—स्वामी सच्चिदानन्द बनकर। वास्तव मे २५वें प्रकरण मे उसका यह उदात्त और धीरगम्भीर रूप उसके 'आदर्श' को ही स्पष्ट करता है। माँ पिता, भाई-बहन आदि के व्यक्तिगत प्रेम का इतना उदात्तीकरण हो गया है कि वह प्रत्येक मे अपने माँ-पिता अथवा भाई-बहन को देखता है। इस प्रकार रेणु इसे पूर्णत आदर्श मे परिवर्तित कर देते हैं। इस आदर्श तक पहुँचने के लिए उसे कितने ही चौराहो को पार करना पडता है, इसे हम न भूलें।

(५) संस्कार तथा वातावरण के समन्वय से मनमोहन का व्यक्तित्व बना है। प्रकृतित वह बुद्धिमान है। अच्छे साथी मिले, इसी कारण उसकी बुद्धिमत्ता विकसित हो सकी है। एक ओर मोहरिल मामा का गन्दा घर है, तो दूसरी ओर प्रियोदा जैसे प्रखर राष्ट्रीयवादी मित्र। घरेलू सस्कार उत्तम थे। पिता के कठोर व्यावहारिक ज्ञान और काका के लाड-प्यार के सस्कार हैं। कस्बे मे आने के बाद शरबतिया की ममता, प्रियोदा की निर्ममता तथा बडे महराज के मार्गदर्शन से उसके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। उपर्युक्त सभी बातो का उसके व्यक्तित्व मे अद्भुत समन्वय हुआ है, और इसी कारण वह अपनी मजिल तक पहुँच सका है।

इस प्रकार रेणु 'मनमोहन' के माध्यम से तत्कालीन युग की बाल तथा युवा मन स्थिति को व्यक्त कर गये हैं। सन् १९३०–३५ का वातावरण ही कुछ ऐसा था कि मनमोहन की तरह ऐसे सैंकडो युवक "दस और देश" के लिए निकल पडे थे।

मनमोहन एक ऐसा ही युवक है। तत्कालीन वातावरण का विचार किये बगैर हम इस चरित्र पर न्याय नहीं कर सकते। २०वीं शताब्दी के इस स्वार्थ से परिपूर्ण युग में मनमोहन तथा उसके साथियों का यह कार्य शायद 'बेवकूफी' अथवा 'पागलपन' का हो सकता है। परन्तु १९२० से १९४५ तक का युग ही ऐसे 'पागलपन' और 'बेवकूफियों' से भरा हुआ था। वास्तव में मनमोहन के इस व्यक्तित्व को लेकर साथी प्रियोदा के एक गीत की पंक्ति याद आती है—' सवाय बोलि आमाय पागल, आमि सवाय के पागल बोली।"

प्रियोदा—मनमोहन के बाद सबसे अधिक प्रभावित कर जाने वाला पात्र प्रियोदा ही है। "रेवरण्ड हेडमास्टर का बेटा प्रियोदा–प्रियव्रत राय—मट्रिक में पढ़ता है। स्कूल के सभी लड़के और मास्टर उसे प्यार करते हैं। स्कूल ही नहीं, उस छोटे से कस्बे में उसको प्राय सभी जानते हैं। "स्कूल का कोई छात्र या शिक्षक बीमार पड़ा कि प्रियोदा अपनी टोली के साथ उसके घर पर हाजिर।"[1] प्रियोदा ने एक 'किशोर क्लब' बनाया है। यह 'किशोर क्लब' स्कूल के सभी दोस्तों के काम आता है। 'किशोर क्लब' के सदस्य बीमार की सेवा करते हैं, सन्यासी आश्रम के लिए मुठिया वसूलते हैं। शराब-बन्दी का आग्रह करते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं। और सबसे बढ़कर राष्ट्रीय गतिविधियों की जानकारी छात्र तथा सामान्य लोगों को देते हैं और समय आने पर हड़ताल भी करते हैं। पहले ये सात थे। बैनिंग की घटना के बाद दो और सदस्य इसमें शामिल हुए हैं। अब ये नौरत्न हैं। इन नौरत्नों के सरताज हैं 'प्रियोदा'। प्रियोदा गंभीर प्रवृत्ति के हैं। बौद्धिकता और भावुकता का अद्भुत समन्वय इनमें हुआ है। इसी भावुकता के कारण ही पूरन विश्वास जैसे स्वार्थी, क्रूर तथा सशयी छात्र को उन्होंने 'स्टूडेंट्स होम' में प्रवेश दिलवाया था। क्योंकि ' प्रिया ने ही पूरन की पैरवी और सिफारिश करके उनको (बड़े महाराज) राजी किया था—महाराज ! पूरन खूब प्रतिभावान् लड़का है। उसे रखना ही होगा।"[2] प्रियोदा नियम के बड़े पक्के हैं। 'किशोर क्लब' के नियमों का भग उन्हें कभी पसंद नहीं आता। गालियों का प्रयोग, डरपोक तथा सकुचित वृत्ति उन्हें कभी भी स्वीकार नहीं है। इसीलिए वे हर बार साथियों को डाटते रहते हैं। इस डाट में प्यार भी है और आदर्शों के अनुकूल व्यक्तित्वों को ढालने की जिद भी। प्रियोदा की निर्भयता के कारण ही हड़ताल सफल हो जाती है। प्रियोदा के मार्गदर्शक बड़े महाराज हैं। परन्तु बड़े महाराज के इशारे पर नाचने वाले ये नहीं हैं। राजनीति के प्रति तो वे अत्यधिक सजग हैं। इसी कारण तो गांधीजी को जेल होने के बाद वे हड़ताल कराते हैं। और सन् १९४२ के 'चले जाव' आन्दोलन में आनी आर से कुछ करने की प्रतिज्ञा करते हैं उस दिन ट्रेजरी ऑफिस पर तिरंगा फहराने के प्रयत्न में वे शहीद हो जाते हैं।

आरम्भ से अंत तक प्रियोदा का व्यक्तित्व तेजस्वी है। वह है ही १५-२० वर्ष का युवक। परन्तु लेखक भी उसके सामने शायद नतमस्तक है। इसीलिए प्रत्येक स्थान पर उसके लिए आदरसूचक शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। 'नेतृत्व' की शक्ति प्रियोदा को जन्म से ही मिली है। यह नेतृत्व सत्ता अथवा आज की तरह का नहीं। इस नेतृत्व मे वह सबसे आगे है। चाहे केनिंग की घटना हो अथवा फायरिंग की घटना। वह गाधीजी के व्यक्तित्व से प्रेरित है। 'सर्वसेवाभाव' की उसने प्रतिज्ञा ही की है। इस सर्वसेवाभाव के कारण ही उसने किशोर क्लब' की स्थापना की है। इसी सेवाभाव के कारण वह भूकम्प के बाद उत्तर बिहार मे दौडकर जाता है। गाधीजी का वह अन्धा भक्त नही है। इसका सबसे बडा प्रमाण क्रांतिकारियो के प्रति उसकी श्रद्धा मे प्रकट होता है। एक ओर वह बडी श्रद्धा से तकली कातता है तो दूसरी ओर क्रान्तिकारियो की कहानियाँ भी सुनाता है। उसे पता है कि स्वतन्त्रता के लिए चल रहे इस यज्ञ मे अनेक आहुतियाँ देनी पडेगी। इसी कारण बाघा यतीन की मृत्यु पर वह कहता है—'बात रोने की नही, हँसने की है। अब देरी नही। स्वराज्य करीब आ रहा है—धीरे-धीरे। और भी मरेंगे। मारे जाएँगे ।"[१८] एक दिन वह अपनी भी आहुति इस यज्ञ मे दे देता है। मनमोहन से भी प्रियोदा का व्यक्तित्व अधिक प्रखर है।

प्रियोदा का सबसे बडा कार्य यह है कि उसने नायक मनमोहन के चरित्र को ही मोड दिया है। मनमोहन जो कुछ भी बन सका है, उसका बहुत बडा श्रेय तो प्रियोदा को ही है। शायद ऐसा बहुत कम बार होता है कि नायक को नायकत्व किसी दूसरे की प्रेरणा, मार्गदर्शन तथा व्यक्तित्व से मिल जाए। प्रियोदा न होता तो मोना का व्यक्तित्व ही न बनता।

शरबतिया —आज की भारतीय युवती का प्रतिनिधित्व शरबतिया करती है। वह विधवा है। सन् १९३०-३५ के जमाने मे इस प्रकार की विधवाओ की समस्या बडी गम्भीर थी। इस काल मे इस विषय पर सैकडो उपन्यास लिखे गए हैं। शरबतिया तो पतिगृह जाने के पूर्व ही विधवा बन गई है। विधवा जीवन की सम्पूर्ण करुणा को लेकर वह यहाँ आई है। माँ-बाप एकदम प्रतिकूल स्वभाव के हैं। पिता का शराब पीना और माँ का उसमे शरीक होना उसे कतई पसन्द नही। छोटा भाई मटरू दिन ब दिन बिछड रहा है इससे वह चिन्तित है। उसके सारे दर्द को रेणु ने मुखरित नही किया है। परन्तु ऐसा लगता है कि शरबतिया के अपने निश्चित स्वप्न है—जिन्दगी के प्रति। मनमोहन आने के बाद तो उसकी जिन्दगी मे ही परिवतन हो जाता है। 'शरबतिया को यह क्या हो गया है ? मनमोहन जब से आया है वह एकदम बदल गई है। अब वह दिनभर फिरकी की तरह काम करती रहती है।"[१९] इस परिवर्तन के मूल मे मनमोहन का स्वभाव है। मनमोहन को देखकर

उसका वात्सल्य अधिक विकसित होता है। वात्सल्य की अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम मिल जाता है। इसी कारण वह मनमोहन की सभी प्रकार से देख भाल करती है। इस घर को छोड़कर वह जाएगा, यह सुनकर रोती है। मनमोहन के प्रति वह पूर्णत समर्पित है। इस समर्पण मे न शरीर है, न कोई अतृप्त इच्छा। इसमें तो 'शुद्ध वात्सल्य' है। मनमोहन के प्रति उसके इस प्रकार के व्यवहार से घर के सब सदस्य नाराज हैं। माँ मनमोहन के साथ उसका नाम जोड़कर गन्दी गालियाँ देती है। मटरू भी इसी प्रकार के संकेत करता है। पिता मोहरिल शरबतिया का हाथ किसी प्रौढ व्यक्ति के हाथ मे देकर पैसे कमाना चाहता है। इसी कारण इस परिवार मे वह एकदम अलग पड जाती है। मनमोहन स्टूडेंट्स होम' मे रहने के लिए चला जाने के बाद तो वह काफी उदास और निराश रहने लगती है। सन् १९३६ के प्रान्तीय स्वराज्य के बाद मनमोहन शरबतिया को एकदम प्रसिद्धि दिला देता है। शरबतिया के हाथो वह शहीद बालिका विद्यालय का शिलान्यास करा देता है। परिणामत दूसरे दिन 'पूर्णियाँ समाचार' के मुखपृष्ठ पर बडी-सी तस्वीर छपती है—शिलामयी शरबती देवी की।" और इसी कारण एक स्त्री कहती भी है—"तुम्हारा भाजा मोहन चाहेगा तो वह भी (पेन्सन) एक दिन मिल जाएगा।··· नमक का बदला चुकाना वह नही भूलेगा।"[१८] स्पष्ट है कि शरबतिया के चरित्र पर अनेक आरोप किए जा रहे हैं। परन्तु शरबतिया चुपचाप अपनी जिन्दगी जीती चली जाती है। एक दिन माँ और पिता मिलकर उसका चुमौना कर देते हैं। "शरबतिया का चुमौना हो गया, ससुराल चली गई है।"[१९]

शरबतिया मनमोहन के लिए प्रेरणा थी और मनमोहन उसके लिए। निन्दा तथा दु खो को वह चुपचाप सहती रही। परन्तु वह कभी नाराज नहीं रही। भीतर-ही-भीतर जलती रही, परन्तु सबको प्रकाश देते हुए। वह एक बाती की तरह थी, जो खुद तो जलती रहती है, परन्तु औरो को प्रकाश देते हुए।

**काका** —मनमोहन के काका अशिक्षित और सर्वसामान्य जन के प्रतिनिधि होने के बावजूद भी पाठको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। भारतीय ग्रामीण जनजीवन की श्रद्धाओ, अन्धविश्वासो तथा संस्कारो से काका का व्यक्तित्व बना है। काका का मनमोहन पर सर्वाधिक प्यार है। वास्तव मे "माँ के बदले मनमोहन को उसके काका ने माँ का लाड-प्यार दिया है।"[२०] मनमोहन की माँ तो मनमोहन को अपना नही पराया लडका मानती है। क्योकि उसके सपने मे अक्सर बडी-दाढी-मूँछो वाला एक जटाधारी आता है।"[२१] इस जटाधारी को उसने आश्वासन दिया है कि "बाबा! यह आपका ही बच्चा है। मैं तो इसकी दाई हूँ; पालनी हूँ इसको।"[२२] और इस दिन से सचमुच वह मनमोहन की दाई बनी है और माँ बना है काका। मनमोहन के बचपन से ही उसकी हर तरह की सेवा काका करते रहना

है । इसी कारण "उनके स्वभाव मे कुछ स्त्री-सुलभ गुण-दोष आ गए हैं ।"[१] काका की उम्र यही २५-३० के आस पास की है । कटिहार के पास के एक गाँव पाँकी-टिकली मे उनकी शादी हुई थी । परन्तु "काकी का स्वर्गवास हो गया, गौना के पहले ही ।"[१] इस प्रकार काका 'अकेले' हैं । अर्थात् लौकिक दृष्टि से । वैसे तो उनका अपना पुत्र मनमोहन है, भाईसाहब हैं और भाभी भी । काका काम धधा कुछ नही करते । सब कुछ मनमोहन के पिताजी ही देखते हैं । सयुक्त परिवार के कारण काका का बेकाम रहना खटकता भी नही । "वह यहाँ करता ही क्या था ? दिनभर इस दरवाजे से उस चौपाल मे बेकार बेबात की बातो मे समय बरबाद करता था ।"[१] मनमोहन को खबर लेने वह प्रत्येक रविवार को अररिया कोर्ट जाता है । मोना के बगैर उसका जी ही नही लगता । मोना स्कूल से नाराज हो गया है, वह वहाँ पढना नही चाहता, खूब रो रहा था, यह सुनकर काका खुद रोने लगते हैं । और बडे भाई के मना करने पर भी "अब भैया बिगडें मुझपर या जो करें । मैं तो कल दही मछली लेकर जाऊँगा ही ।"[१४]

स्पष्ट है काका के पास माँ का हृदय है । स्त्री प्रेम उन्हे नही मिला । शायद पत्नी प्रेम का ही उदात्तीकरण होकर 'वात्सल्य' मे परिवर्तित हो गया है । व्यक्तिगत जिन्दगी दु खपूर्ण है, परन्तु वह हमेशा हँसते हुए जीते हैं । पहले इस 'अकेलेपन' और 'दु ख' का परिवर्तन अथवा उदात्तीकरण पहले 'मनमोहन के प्रेम' मे हो जाता है, और बाद मे बडे महाराज की सगत के कारण इसी प्रेम का उदात्तीकरण 'राष्ट्र-प्रेम' मे हो जाता है । मनमोहन के प्यार के कारण ही वह राष्ट्रीय आन्दोलन मे कूद पडे । आरम्भ म तो उन्हे मनमोहन के इस प्रकार के सामाजिक कार्यों के प्रति चिढ ही थी । अपनी अज्ञानता के कारण वह प्रभातफेरी को भीख माँगना कहते हैं । और फिर उलटे पूछते हैं "भीख माँगने को प्रभातफेरी कहते हैं ?"[१] उन्हें लगता है कि मनमोहन को "चार दिन मे ही शहर की हवा लग जाएगी, यह जानता तो भैया को हरगिज '[१] उन्हे सदेह है कि मनमोहन अब उन्हें मडलजी मास्टर की तरह अपने काका के बारे मे लोगो से कहेगा—"ही इज माय सरह्वण्ट । अभी तो साल भी पूरा नही हुआ है ।"[१९] केनिंग की घटना के बाद तो काका मनमोहन के साथ ही रहने लगते हैं । और मनमोहन एक दिन उनका परिचय बडे महाराज के साथ करा देता है । यही से अशिक्षित काका मे क्रान्तिकारी परिवर्तन शुरू हो जाते हैं । इस कस्बे मे मनमोहन के पास आकर वह रुके थे, मनमोहन को ऐसे कामो से दूर रखने के उद्देश्य से । परन्तु धीरे-धीरे वे खुद राष्ट्रीय आन्दोलनो मे रुचि लेने लगे । वास्तव मे यह बडे महाराज, प्रियोदा और मनमोहन की जीत है । इससे भी बढकर काका के भावुक तथा विशाल हृदय का यह प्रमाण है । बडे महाराज से पहली बार मिल आने के बाद काका कहते हैं " साधु सन्यासियो की क्या बात । कोई मतर पढ़-

कर मन फेर देते हैं।"[१४] मन फेर जाने के कारण—"टमटम से उतरकर मनमोहन के काका सीधे रासाल बाबू की दुकान में गये, खादी की धोती खरीदी, खादी का कुर्ता सिलने को दिया।"[१५] इतना ही नहीं एक दिन पिकेटिंग करके जेल में भी चले गए। जेल जाते समय "काका ने हाथ की हथकडी दिखलाकर कहा—'अब तो खुश हो।'"[१६] स्पष्ट है काका आन्दोलन में कूद चुके हैं, मनमोहन की प्रसन्नता के लिए। अर्थात् बड़े महाराज की बातें उन्हें अच्छी लगती हैं। उन्हें इस बात का विश्वास हो गया है कि वह जो कुछ भी कर रहा है, बुरा नहीं है। काका के जेल चले जाने से मनमोहन के पिताजी को कोई दुःख नहीं। उलटे वे तो कहते हैं—"जेल में तिवारी जी वगैरह की 'संगत' में आदमी बन जाएगा।"[१७] जेल में जाकर सचमुच वे आदमी बनने की कोशिश कर रहे थे। बैठे-बैठे क्या करेंगे? चरखा कातते हैं, मन नहीं चरखा कातते हैं, मन नहीं लगता है तो किताब पढ़ते हैं। उर्दू शिक्षक भी मँगवा ली है। यहाँ एक होमियोपैथी डॉक्टर भी पिकेटिंग करके आए हैं। उनसे डाक्टरी पढ़ता हूँ। सुबह में आसन भी शुरु कर दिया है।"[१८] इस प्रकार एक अशिक्षित व्यक्ति स्वतन्त्रता-आन्दोलन में धीरे धीरे कैसे खीचा गया, इसका बड़ा सहज और मनोवैज्ञानिक चित्रण रेणु ने यहाँ किया है। सन् १९३० से ४७ तक के इस काल में परिवार की इस युवा पीढ़ी के कारण प्रौढ़, बड़े तथा बूढ़े भी इस आन्दोलन में इन युवकों के प्रेम की मजबूरी के कारण अथवा उनके उत्साह के कारण कूद पड़े। काका अशिक्षित होते हुए भी दुनियादारी समझ लेने की कोशिश करते हैं। वे भावुक हैं, और उतने ही सहज। काका के हृदयरूपी कागज पर मात्र मन-मोहन का प्यार ही लिखा हुआ था। बड़े महाराज हृदयरूपी कागज पर 'राष्ट्रीयता', 'शिक्षा', 'बलिदान' आदि शब्द भी लिख देते हैं। इस सामान्य पात्र के भीतर सुप्ता-वस्था में स्थित असामान्य गुणों का संकेत रेणु ने इस उपन्यास में किया है। काका हर नई बात के प्रति सजग हैं। आम भारतीय व्यक्ति की तरह प्रत्येक बात के प्रति सन्देही भी। जैसे ही यह सन्देह समाप्त हो जाता है, वे खुद काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं। इसी कारण 'आलस्य' की व्यर्थता का ज्ञान हो जाने के बाद वे लगातार इस प्रकार के राष्ट्रीय कामों में मग्न हो जाते हैं। आम भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व काका करते हैं। स्त्री-मन की सारी 'ममता' इनमें इकट्ठी हुई है। यह 'ममता' इनमें इकट्ठी हुई है। यह ममता पहले केवल गहरी थी, अब वह अधिक व्यापक बन गई है—यही इस मन की असामान्यता है।

**शीर्षक की प्रतीकात्मकता**—प्रतीकात्मक शीर्षक देने की प्रवृत्ति 'रेणु' में सर्वाधिक है। "मैला आंचल', 'परती परिकथा', 'जुलूस' आदि इसके प्रमाण हैं। कहानियों के शीर्षक भी वह इसी प्रकार से देते हैं। 'रसप्रिया', 'लाल पान की बेगम' आदि। सम्भवतः आंचलिक कथा-साहित्य की यह विशेषता ही है। 'कितने चौराहे'

शीर्षक भी इसी परम्परा मे है। अब प्रश्न है कि 'कितने चौराहे' शीर्षक द्वारा रेणु किस बात को स्पष्ट करना चाहते हैं। श्री पूर्णदेव ने इस शीर्षक का सम्बन्ध राष्ट्र के साथ जोडने का प्रयत्न किया है, जो पूर्णत असंगत है। पूर्णदेव के अनुसार "उग्र क्रान्तिकारी देशभक्तो के सघर्ष से लेकर सन् १९६५ के पाकिस्तानी आक्रमण तक यह जीवन्त राष्ट्र एक-के-एक कितने ही चौराहो को पार करता गया है।"[१८] वास्तव मे इस शीर्षक का सम्बन्ध उपन्यास के प्रमख पात्र मनमोहन के साथ ही है। उपन्यास मे इस शीर्षक के सम्बन्ध मे दो-तीन स्थान पर उल्लेख हुआ है। बडे महाराज मनमोहन से एक स्थान पर कहते हैं—"*कभी झोक मे आकर तुम भी पढना-लिखना मत छोड बैठना। · अभी सीधे बढे चलो। राह मे छाँव मे कही बैठना नही है। कितने चौराहे आएँगे। न दाएँ मुडना, न बाएँ—सीधे चलते जाना।*"[१९] एक और स्थान पर—"*मनमोहन अभी इधर-उधर नही देखेगा। सीधा चलता जाएगा। किसी चौराहे पर मुडेगा नही—न दाहिने, न बाएँ।*"[२०] इन सकेतो से स्पष्ट है कि 'कितने चौराहे' शीर्षक का सम्बन्ध एक विशेष ध्येयवादी जीवन-दृष्टि से है। राष्ट्र के साथ इस शीर्षक का कतई सम्बन्ध नही है। व्यक्ति के जीवन से ही इसका सम्बन्ध घटित किया जा सकता है। क्योकि व्यक्ति-जीवन मे ही आकर्षण के अनेक ऐसे प्रसग आते हैं, जिस कारण उसके रुकने की सभावना होती है। 'कितने चौराहे' पार करके ही व्यक्ति को आगे बढना पडता है। व्यक्ति को उसकी ध्येयवादिता से गुमराह करने वाले ये चौराहे अनगिनत हैं। और आधुनिक युग मे तो इन चौराहो की सख्या बढती जा रही है। मनमोहन की जिन्दगी मे भी ये चौराहे आये हैं। कानून की पढाई अग्रेजो के कानून की सेवा करना अथवा ऊँची नौकरी करना, यह उसके बाल-मन की मजिल थी। परन्तु प्रियोदा के सम्पर्क में आने के बाद यह 'मजिल' नही 'चौराहा' सावित हुआ है। इसीलिए मनमोहन इस चौराहे की ओर मुडता ही नही। बाद मे दारबतिया का प्यार' चौराहा बन जाता है। और मनमोहन बडे ही सयम तथा कठोरता से इसे भी पार करता है। क्रान्तिकारियो की जीवन-कहानियाँ सुनकर पढाई बीच मे छोडकर उधर चले जाने की इच्छा होती है। "*मनमोहन सोचता है अपने बारे मे · लोग उसका नाम लें, जयजयकार करें, बहादुर कहे, उसकी तसवीर छापे, गीतो मे उसके नाम का जिक्र हो।*"[२१] '*प्रतिष्ठा*' का यह चौराहा उसकी जिन्दगी मे आया है। परन्तु फिर "*वह तय करता है कि अब वह ऐसे सपने नहीं देखेगा।*"[२२] '*नीलू का प्यार' भी एक चौराहा बन गया था। मनमोहन इस नीलू के कारण ही तो शहीद नही हो सका है। इसी कारण पश्चात्ताप की अग्नि मे वह झुलसता रहा। और फिर 'अकेलेपन' की यात्रा शुरू हो जाती है। इस प्रकार के कई चौराहो को पार करने वाला ध्येयवादी आदमी जिन्दगी मे 'अकेला' ही रह जाता है।* मनमोहन इसी कारण अन्त मे '*अकेला*' ही है।

अपनी मंजिल बनाकर उसकी ओर बढ़ने वाले दो प्रकार के लोग होते हैं। एक वे जिनके मार्ग पर कोई 'चौराहा' आता ही नही। मोह, उलझन अथवा द्वन्द्वात्मक स्थिति से वे गुज़रते ही नही। सीधे चलने लगते हैं। और मार्ग मे कोई बाधा उपस्थित नही होती। बड़े सुदैवी होते हैं ऐसे लोग ! परन्तु दूसरे प्रकार के वे लोग होते हैं जो मंजिल की ओर बढ़ने लगते हैं तो अनेक प्रकार के 'चौराहे' आने लगते हैं। वासना, सम्पत्ति, संतति, प्रतिष्ठा, मोह, स्वार्थ आदि अनेक प्रकार के इन चौराहो को वे दृढ़ता, निष्ठा तथा संयम के साथ पार करते हुए मंजिल पर पहुँच जाते हैं। ऐसे ही लोग महान् कहलाने योग्य होते हैं। मनमोहन इसीप्रकार का व्यक्ति है। पहले के लोगों का रास्ता सीधा, सरल होता है। उन्हें कोई परीक्षा नही देनी पड़ती। दूसरे प्रकार के लोगो का मार्ग काटो से भरा हुआ होता है। उन्हे कई परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं। अनिर्णय की स्थितियाँ उभरती हैं। यही पर एक बहुत बडा खतरा होता है कि वे किसी 'आकर्षक चौराहे' को ही 'मंजिल' समझकर स्वीकार कर लें। वास्तव मे ये चौराहे परीक्षा के केन्द्र होते हैं। मनमोहन इन सारी परीक्षाओ मे सर्वाधिक सफल हो गया है। इस प्रकार इस शीर्षक का सम्बन्ध सीधे मनमोहन की जिन्दगी के साथ जुड़ा हुआ है।

इस शीर्षक द्वारा लेखक ने सन् १९३०–४६ तक के लोगो की जीवन-दृष्टि की ओर संकेत किया है। विविध प्रकार के मोह तथा आकर्षणो को त्याग कर इस देश की जनता स्वतन्त्रता-आन्दोलन मे कूद पड़ी थी। ११ वर्ष के मनमोहन से लेकर ३०–३५ वर्ष के काका, हफीज मियाँ, बड़े म̣हाराज की जीवन-दृष्टि इसी प्रकार की थी। वे लोग इन अनेक चौराहो को पार करते हुए आगे बढे, इसीलिए स्वतन्त्रता का उपभोग हमारी पीढी कर पा रही है।

शास्त्रीय दृष्टि से विचार करें तो कहना होगा कि शीर्षक देने की कई परम्पराएँ रही हैं। उपन्यास मे वर्णित (अ) प्रमुख घटना (आ) प्रमुख पात्र (इ) प्रमुख स्थान अथवा (ई) प्रमुख जीवन-दृष्टि को केन्द्र मे रखकर शीर्षक दिये जाते हैं। आधुनिक काल मे 'प्रतीकात्मक शीर्षक' देने की पद्धति शुरू हुई है। प्रतीकात्मक शीर्षक एक ही समय अनेक अर्थ देने लगते हैं। 'कितने चौराहे' यहाँ शीर्षक इस अर्थ मे प्रतीकात्मक है कि यह विशिष्ट जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करता है। प्रमुख पात्र की मन स्थिति को व्यक्त करता है तथा घटनाओ की ओर भी संकेत करता है।

इस शीर्षक के द्वारा लेखक नई पीढ़ी के सम्मुख आदर्श भी रख रहा है। जीवन के इस काल-प्रवाह मे आने वाले खतरो की ओर भी सूचित कर रहा है। सम्भवतः वह अप्रत्यक्ष रूप से सुझा रहा है कि एक 'मनमोहन' इन चौराहों को पार करता हुआ आगे निकल चुका है। हमारी स्थिति क्या है ? ऐसा तो नही हो रहा है कि हम जिसे मंजिल समझकर आगे बढ़ रहे हैं, वह वास्तव मे 'चौराहा' तो नही

क्या इन चौराहो को पार करने की चारित्रिक दृढता, सयम तथा नियत्रित मन हमारे पास है ? आखिर मजिल और चौराहो मे अन्तर कैसे कर पाएँगे ? सभवत मजिल वही श्रेष्ठ है जिससे 'दस' और 'देश' को लाभ होता हो । हमारी मजिल 'दस और देश' से सम्बन्धित है अथवा केवल 'मैं' से ? वास्तव मे यह शीर्षक युवा पीढी को आत्म निरीक्षण के लिए मजबूर कर देता है । इसीकारण यह शीर्षक अत्यन्त ही सार्थक और आकर्षक बन गया है । छात्रों पर योग्य और आदर्श सस्कार डालने की शक्ति इस उपन्यास और शीर्षक मे है । इसीकारण इसे एक "सस्कारप्रधान उपन्यास" कह सकते हैं।

आचलिकता —'कितने चौराहे' की आचलिकता को लेकर अनेक प्रश्न उठाये जा सकते है और उठाए गए भी हैं। श्री पूर्णदेव एम० ए० इसे ' रेणु का पाँचवाँ और अब तक प्रकाशित आखिरी आँचलिक उपन्यास"[११] मानते हैं । दूसरी ओर डा० विवेकीराय अपने प्रवन्ध "स्वातत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्राम-जीवन" मे रेणु के आचलिक कथा साहित्य के अन्तर्गत 'मैला आचल', 'परती परिकथा' और 'जुलूस' इन तीन उपन्यासो तथा 'ठुमरी' और 'आदिम रात्रि की महक' इन कहानी-सग्रहो का उल्लेख करते हैं । आचलिक उपन्यासो के अन्तर्गत वे 'कितने चौराहे' का वही पर उल्लख नही करते ।[१२] स्पष्ट है विवेकीराय इसे आचलिक नही मानते । डा० ज्ञानचन्द्र गुप्त के अनुसार "आचलिकता की दृष्टि से रेणु को अत्यधिक सफलता मिली "मैला आचल' मे । परन्तु बाद मे 'रेणु जी स्वय अपने दाद के तीन उपन्यासो—'जुलूस', 'दीर्घतपा' और 'कितने चौराहे' मे चुकते से दृष्टिगत होते हैं अन्यथा चमत्कारिकता के चक्कर मे न पडते ।'[१३] इन तीन उद्धरणो से स्पष्ट है कि 'कितने चौराहे' की आचलिकता पर एक निश्चित निर्णय नही दिया जा सकता । दुर्भाग्य से हमारे यहाँ ऐसा समझा जाता है कि श्रेष्ठ आचलिक कथाकार की प्रत्येक कृति आचलिक ही होती है । इसी कारण रेणु की प्रत्येक कृति को आचलिक घोषित किया गया है । अथवा एक दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण यह हो सकता है कि आचलिकता के मानदण्ड अभी स्पष्ट नही हुए हैं । अन्य विधाओ की अपेक्षा यह काफी नई होने से अभी हम निश्चित रूप से कुछ निर्णय नही ले पा रहे हैं । इसी कारण यह समीक्षा की एक मर्यादा हो सकती है । सर्वसाधारणत 'भाषा' तथा 'परिवेश' इन दो मानदडो के आधार पर ही कृति की आचलिकता सिद्ध की जा रही है । भाषा तथा परिवेश का तो आचलिक साहित्य मे अनन्य साधारण महत्त्व होता है । यहाँ तो 'परिवेश' ही नायक है । परिवेश की विशिष्टता के कारण ही पात्रो की प्रतिक्रिया विशिष्ट पद्धति से होती रहती है । हर कार्य, घटना तथा चारित्रिक दोष के लिए 'परिवेश ही कारण होता है । इस परिवेश का बडा ही सूक्ष्म, विस्तृत तथा तटस्थ चित्रण आचलिक कथा-साहित्य मे आवश्यक होता है । भाषा और परिवेश के साथ-साथ वहाँ की

संस्कृति का चित्रण भी जरूरी होता है । डा० विवेकीराय ने अपने प्रबन्ध में आंच-लिक साहित्य के मानदण्डों को निश्चित करने का प्रामाणिक प्रयत्न किया है । उनके अनुसार आंचलिक साहित्य में ग्राम-जीवन की आर्थिक समस्याओं (जमींदारी, योजना विकास, सहकारिता, गरीबी, भूमिहीन और भूदान, मध्यमवर्ग, नारी-चित्रण, नगरोन्मुखता, निम्न मध्यवर्ग, आर्थिक विघटन, आर्थिक संक्रमण), सांस्कृतिक स्थितियों (धर्म, धर्म की दीवारें, विवाह, विवाह-विकृतियाँ, क्रीडा, त्योहार, मेला, लोकाचार, अन्धविश्वास, लोकगीत, लोककथा, रामलीला, सरकारी समारोह, शिक्षा, अध्यापक, अछूत, ग्राम-सौन्दर्य, ग्राम-रचना), नये सामाजिक मूल्यों ( मूल्य संक्रमण, नई नैतिकता, अस्पताल, परिवार नियोजन, सम्बन्धों में तनाव, पारिवारिक, सामाजिक तथा व्यक्ति-विघटन, भ्रष्टाचार) तथा नये गाँव की समस्याओं (ग्राम-पंचायत, पंचायतों के दोष, सभापति, सरपंच, चुनाव-संघर्ष )[१६] का चित्र जरूरी है । श्री पूर्णदेव के अनुसार "इन उपन्यासों की दृष्टि अंचलकेंद्रित होती है ।"[१७] "कथा के संगठन का आधार कथानक, पात्र अथवा उद्देश्य-विशेष न होकर एक विशिष्ट भूभाग होता है, अतः कथानक अंचल-केन्द्रित होता है ।"[१८] जैनेन्द्र जी के अनुसार "आंचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है जिसके केन्द्र में कोई पात्र या चरित्र उतना नहीं, जितना वह भूभाग स्वयं है ।"[१९] "नायक शून्यता आंचलिक उपन्यासों की एक प्रमुख विशेषता कही जा सकती है ।"[२०] 'विभिन्न पात्रों की अलग-अलग विशेषताएँ मिलकर अंचल के सामूहिक चरित्र को प्रकट करती है ।"[२१] "लेखक उस अंचल-विशेष की भौगोलिक स्थिति और प्राकृतिक विभूतियों का यथातथ्य चित्रण करके उसके बहिरंग का मानचित्र प्रस्तुत करता है तथा दूसरी ओर वहाँ के निवासियों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारों और परम्पराओं का अंकन करके उस अंचल की आन्तरिक चेतना को निरूपित करता है ।"[२२] डा० धनंजय वर्मा के अनुसार "उपन्यासों में लोकरंगों को उभारकर किसी अंचल-विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाले उपन्यासों को आंचलिक उपन्यास कहा जायगा ।"[२३] डा० हरदयाल के अनुसार "आंचलिक उपन्यास वह है जिसमें अपरिचित भूमियों और अज्ञात जातियों के वैचित्र्यपूर्ण जीवन का चित्रण हो । जिसमें वहाँ की भाषा, लोकोक्तियाँ, लोककथाएँ लोकगीत, मुहावरे और लहजा, वेशभूषा, धार्मिक-जीवन, समाज, संस्कृति तथा आर्थिक और राजनीतिक जागरण के प्रश्न एक साथ उभरकर आएँ ।"[२४] इनकी संरचना को लेकर कहा गया है कि आंचलिक उपन्यासों की संरचना के प्रमुख विधायक तत्व हैं—"नवीन कथा-विन्यास, जटिल यथार्थवादी विशिष्ट परिवेश, पात्रों की परिवर्तित मन.स्थितियाँ, आंचलिक सन्दर्भों एवं स्वरों से रचित भाषा तथा बिम्बों, प्रतीकों और रंगों की अद्भुत योजना ।"[२५] इन विभिन्न उद्धरणों में आंचलिक उपन्यासों के मानदण्ड निश्चित करने का प्रयत्न हुआ है । इन विभिन्न मतों के आधार

पर आंचलिक उपन्यासों के मानदण्ड स्थिर किये जा सकते हैं—जो इस प्रकार होंगे—

(१) ग्रामजीवन की आर्थिक समस्याओ, सास्कृतिक स्थितियो, नये सामाजिक मूल्यो तथा गाँव की नई समस्याओं का चित्रण उसमे हो।

(२) दृष्टि अचल-केन्द्रित हो।

(३) नायकशून्यता हो-अचल का सामूहिक चरित्र ही व्यक्त हो।

(४) अचल की आन्तरिक चेतना व्यक्त हो।

(५) *अचल विशेष की माया, लोककथा, लोकगीत मुहावरे, वेशभूषा, धर्म-जीवन आदि की अभिव्यक्ति हो।*

(६) नवीन कथा विन्यास, जटिल यथार्थवादी विशिष्ट परिवेश, पात्रो की परिवर्तित मन स्थितियां, आंचलिक सन्दर्भ, आंचलिक बिम्ब, प्रतीक और रगो की योजना।

उपर्युक्त छह मानदडो के आधार पर 'कितने चौराहे उपन्यास की समीक्षा अगर हम करना चाहे तो काफी निराश होना पडता है। क्योकि कितने चौराहे' पूर्णत आंचलिक उपन्यास है ही नहीं। किसी एक विशेष अचल के कारण यह कथा घटित हुई है—ऐसा भी दावा नही कर सकते। भारत के किसी भी प्रदेश के किसी भी कस्बे के स्कूल के बच्चो मे ऐसा घटित होना सभव है। चरित्रो के परिवर्तन तथा घटनाओ के लिए *'अचल' नहीं 'वह विशेष काल कारणीभूत है। इसीकारण 'कितन चौराहे' काल-विशेष की नीव पर खडा है, अचल विशेष की नहीं।* केवल रेणु ने यह उपन्यास लिखा है इसलिए आचलिक कहना वास्तव म उस काल विशेष की शक्ति के प्रति अन्याय करना है। अररिया कोट के स्थान पर भारत का कोई भी कस्बा हो सकता है। हाँ, हम अलबत्ता यह कह सकते हैं कि 'कितने चौराहे' मे 'कस्बाई जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति हुई है। पृष्ठभूमि के रूप मे यहाँ कस्बा है। कस्बाई जीवन के गुण-दोषो की चर्चा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इसमे काफी हुई है। वास्तव मे आधुनिक भारत की संस्कृति 'कस्बो' मे ही विकसित हो रही है। कस्बे-जो न शहर हैं और न देहात। आंचलिकता क गुण इसमे हैं तथा शहरी जीवन के दोष भी।

पूरन विश्वास, उसकी सदायी वृत्ति *बड महाराज को लेकर* विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ, पूरन *विश्वास का भ्रष्टाचार के मामले म पकडा जाना मोहरिल मामा* का घर, मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण, दीपू-तपू और *नीटू का व्यक्तित्व*, वकीलो के घर, उनका व्यवहार, ट्रेजरी ऑफिस, कोर्ट, तहसील, पिकेटिंग, जेल—आदि विभिन्न व्यक्तियो, स्थानो, घटनाओ से स्पष्ट है कि इस उपन्यास का सम्बन्ध कस्बे से ही अधिक है। कस्बाई जीवन की सारी विशेषताओ की अभिव्यक्ति इसमे हुई है। इसका

अर्थ यह नहीं है कि इसमें आंचलिक तत्त्व है ही नहीं। इसमें शहर और अंचल के संस्कारों का समन्वय हुआ है। इसीकारण इस उपन्यास में आंचलिक तत्त्वों को हम रेखांकित कर सकते हैं। डा० विवेकीराय ने जिस तरह अपने प्रबन्ध के परिशिष्ट २ में हाल ही प्रकाशित चार उपन्यासों (अलग-अलग वैतरणी, जल टूटता हुआ, राग दरबारी और रीछ) के सन्दर्भ में जो शीर्षक 'अनांचलिक उपन्यास, जिसमें समका लीन लोक जीवन रेखांकित हुआ है' दिया है, वही 'कितने चौराहे' के सम्बन्ध में भी पूर्णतः सार्थक लगता है। क्योंकि इसमें भी लोक-जीवन के अंधविश्वासों (मनमोहन की माँ का स्वप्न), लोकगीतों (गाँधी से सम्बन्धित गीत), कृषि-संस्कृति, कृषि सौंदर्य और विवाह विकृतियों (सरस्वतिया के नये विवाह को लेकर), शिक्षा (मनमोहन की आरम्भिक शिक्षा), परम्परागत धारणाओं (जिस लड़की का कपाल चौड़ा हो वह जवानी में ही बेवा हो जाती है।[१५]), ग्रामीण जनता पर होने वाले अत्याचारों (महँगाई, अकाल, अनावृष्टि के मारे किसानों पर जमींदारों का जोर-जुल्म, अत्याचार होना है।)[१६] का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसकी शैली में आंच लिक शब्दों का जहाँ-तहाँ प्रयोग भी हुआ है। परन्तु इसमें आंचलिकता के अन्य लक्षण नायक-शून्यता, अंचल-केन्द्रित दृष्टि, अंचल का सामूहिक चरित्र, जटिल यथार्थ-वादी विशिष्ट परिवेश, आंचलिक बिम्ब प्रतीक, अंचल की आन्तरिक चेतना—आदि का सम्पूर्ण अभाव है। लेखक ने 'अररिया कोट' को कस्बा कहा है। कस्बे की सारी विशेषताएँ अररिया कोट में मिलती हैं। पूरी कथावस्तु 'अररिया कोर्ट' के परिवेश में ही घटित होती है। फिर यह, कहना कि यह 'आंचलिक उपन्यास' है, 'अररिया कोर्ट' के अस्तित्व को ही नकारना है।

## टिप्पणियाँ

१ रेणु का आंचलिक कथा साहित्य श्री पूर्णदेव, पृष्ठ सं० ५९
२ कितने चौराहे फणीश्वरनाथ रेणु . पृ० ८३
३ कितने चौराहे, पृ० ९९
४, ५. वही, पृ० १४१
६, ७ वही, पृ० १४३
८, ९, १०, ११ वही, पृ० ७
१२, वही, पृ० ११
१३. वही, पृ० १६
१४, १६ वही, पृ० ३१
१५ वही, पृ० ३०
१७ वही, पृ० ४४

१८ कितने चौराहे, पृ० ५८
१९ वही, पृ० ६२
२० वही, पृ० ६३
२१, २२, वही, पृ० ६७
२३ वही, पृ० ६८
२४ वही, पृ० ७६
२५ वही, पृ० ७९
२६ वही, पृ० ८९
२७ वही, पृ० ९६
२८ वही, पृ० ९९
२९ वही, पृ० ११२
३० वही पृ० ११६
३१ वही, पृ० ११७
३२, ३३ वही, पृ० १४०
३४, ३५ वही, पृ० १४३
३६ वही, पृ० ४०
३७ वही, पृ० १०६
३८ वही, पृ० ८८
३९ वही, पृ० ३४
४० वही, पृ० १२९
४१ वही, पृ० १३८
४२ वही, पृ० ४७
४३ वही, पृ० ४६
४४, ४५ वही, पृ० ४७
४६ वही, पृ० २७
४७ वही, पृ० ८९
४८ वही, पृ० ४७
४९ वही, पृ० ४९
५० वही, पृ० ५१
५२ वही, पृ० ५७
५३ वही, पृ० ७१
५४ वही, पृ० ७६
५५ वही, पृ० ८०

५६, ५७ कितने चौराहे, पृ० ८०
५९ वही, पृ० ९९
६० वही, पृ० १०७
६१, ६२ वही, पृ० ११०
७६ वही, पृ० ४६
७७ वही, पृ० १३७
३५, ५८, ६३ रेणु का आंचलिक कथा साहित्य श्री पूर्णदेव एम ए, पृ० ५९
६४ स्वातन्त्र्योत्तर कथा-साहित्य म ग्राम-जीवन डा विवेकीराय, पृ० १४१-१४५
६५ आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प डा ज्ञानचन्द्र गुप्त, पृ० २०
६६ स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य म ग्राम जीवन : डा विवेकीराय, पृ १०-१४
६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२ रेणु का आंचलिक कथा साहित्य श्री पूर्णदेव पृ १२-१३
७३ आलोचना (त्रैमासिक) अक्तूबर, १९६७, डा धनंजय वर्मा
७४ आधुनिक हिन्दी साहित्य डा हरदयाल, पृ ८०
७५ आंचलिक उपन्यास संवेदना और शिल्प ' ज्ञानचन्द्र गुप्त पृ १७

# राग दरबारी : भारतीय जीवन का जीवन्त दस्तावेज

ओमप्रकाश होलीकर

---

आज के भारतीय जीवन के इस पक्ष की (पतनोन्मुखता, गिरावट, विकृति, मूल्यहीनता) बहुत सी विभिन्न स्थितियों के बड़े प्रभावी चित्र 'राग दरबारी' में हैं, जो हमारे चिर-परिचित अनुभव को फिर से ताजा करते हैं।

—नेमिचन्द्र जैन

'रागदरबारी' ग्रामीण यथार्थ की क्रूरता को बहुत निर्मम भाव से उजागर कर सका है। —रामदरश मिश्र

आज़ाद हिन्दुस्तान की राजनीति से इस दौर में चले विकास कार्यों से, सरकार और उसकी नौकरशाही से तथा दूसरे औज़ारों की गतिविधियों से इस दरमियान किस तरह की औलादें पैदा हुई हैं; उनका व्यक्तित्व-शास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र क्या है—यही रागदरबारी की वस्तु है।

—कमलेश

'समाज का प्रतिनिधित्व'—की दृष्टि से रागदरबारी को महाकाव्यात्मक उपन्यास कहने में कोई संकोच नहीं होता।

—शांतिस्वरूप गुप्त

ग्रामाणिक अनुभूतियों को लेकर जिस प्रकार इस उपन्यास का आरम्भ हुआ है, यदि व्यंग्य एवं हल्के-फुल्के सतही विवरणों के मोह में न पड़कर उसे गहरी अन्तरदृष्टि से, सूक्ष्मता से ग्रहण करने की कोशिश की होती तो निश्चय ही यह उपन्यास विगत बीस वर्षों की एक विशिष्ट उपलब्धि बन सकता था। —लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

११

# राग दरबारी

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज का चित्र इस काल के उपन्यासों का प्रमुख विषय है। इन उपन्यासकारों ने स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज की उथल-पुथल, आरोह-अवरोह, गति स्थिति, पुरातन अधुनातन का संघर्ष तथा टूटन, घुटन, क्षोभ, निराशा, हताशा, कुंठा, मूल्यहीनता, अनैतिकता आदि आधुनिक समाज की मानसिकता को अपना उपजीव्य बनाया। कविता और कहानी में आधुनिकता के ये बिम्ब स्पष्ट और बहुलता से उभरे हैं, किन्तु उपन्यास और वह भी विशालकाय उपन्यास में बहुत कम मात्रा में चित्रित हुए हैं। सम्भवतः इसका कारण उपन्यास के लिए आवश्यक विराट् और व्यापक अनुभव का होना नितांत जरूरी है, जो कि कुछ ही रचनाकारों के पास होता है। व्यापक कथा-फलक और विराट अनुभव वाले उपन्यासों में 'राग दरबारी' अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए है।

**राग दरबारी : औपन्यासिक कटघरे के दायरे में**—इस उपन्यास का रचना-काल सन् १९६८ ई० है। इस उपन्यास का मूल विषय स्वतन्त्रता-परवर्ती भारतीय समाज की मूल्यहीनता को चित्रित करना है। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक आदि सभी दृष्टियों से भारतीय समाज पतन के कगार पर खड़ा हुआ है। इस गिरावट या पतनोन्मुखता को ही श्रीलाल शुक्ल ने अपनी कथा के केन्द्रीय स्थल के रूप में स्वीकारा है।

**कथानक**—उपन्यास की कथा का मुख्य केन्द्र 'शिवपालगंज' है। 'शिवपालगंज' उत्तर प्रदेश का एक काल्पनिक गाँव है। इस गाँव की दैनंदिन जीवन की घटनाओं का ब्योरा प्रस्तुत किया गया है। यह गाँव वास्तविक रूप से अपना कोई अस्तित्व नहीं रखता। वह प्रतीक है—स्वातन्त्र्योत्तर भारत के किसी भी विकृत तथा पतनोन्मुख गाँव का और साथ ही सम्पूर्ण भारत का भी। क्योंकि स्वयं 'भारत' ग्रामों में ही बसा हुआ है। इसलिए रचनाकार ने गाँव की कल्पना के माध्यम से सम्पूर्ण भारत की पतनोन्मुखता का मखौल उड़ाया है। शिवपालगंज केवल उत्तर भारत का ही कोई गाँव हो, यह भी जरूरी नहीं है। हाँ, अलबत्ता यह जरूर है कि इस गाँव की

कुछ विशिष्ट अचलीय छटाएँ वही परिलक्षित होती हैं जो समग्र है, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण भारत के गाँवों मे न मौजूद हो । किन्तु ग्रामीण जीवन की इन आचलिक छटाओ, रीति रिवाजो की बजाय लेखक का गाँव के समग्र चित्र को प्रस्तुत करना ध्येय रहा है । अत 'शिवपालगज' का मूल स्वर—पतनोन्मुखता गिरावट विकृति, मूल्यहीनता—जो हमे भारत के किसी भी गाँव मे सुनाई पडता है । यहाँ तक कि नामपरिवर्तन से यह अपना ही गाँव प्रतीत होने लगता है, जो कि हमे चिर परिचित है जिसकी सभी घटनाएँ जीवन प्रक्रिया आदि से हम सम्बद्ध हैं । एक गाँव को केन्द्र मानकर भी लेखक की तलस्पर्शिनी दृष्टि से उसका कोई भी पक्ष अछूता नही रह सका है । अत्यन्त व्यापक धरातल पर उसकी कथा का विकास होता चलता है । समाज के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलू को उसने बहुत खूबी के साथ चित्रित किया है, जिसे देखकर अपने ही गाँव का चिर-परिचित समग्र चित्र पाठको की आँखो के सामने तैर उठता है । "आज के भारतीय जीवन के इस पक्ष की बहुत सी विभिन्न स्थितियो के बडे प्रभावी चित्र 'राग दरबारी' मे हैं जो हमारे चिर-परिचित अनुभव को फिर से ताजा करते हैं ।" हाँ, यह शिवपालगज स्वाभाविक ग्रामो से थोडा-सा प्रगत और उन्नत दिखाई देता है, किन्तु इस अन्तर से भी अस्वाभाविकता नही आ पाती । क्योकि भौतिक या बाह्य उन्नति की बजाय दोनो के दैनदिन क्रिया-कलाप, जीवन-पद्धति इत्यादि समान दिखाई देती हैं ।

३७४ पृष्ठो के इस विशालकाय उपन्यास के कथाफलक का व्यापक होना जरूरी ही है । अत कथा का मूल विषय शिवपालगज का चित्रण ही है और इस गाँव मे भी 'छगामल विद्यालय इटरमीजिएट कॉलेज' को कथा के केन्द्र के रूप मे चुना है । इस बडे उपन्यास की मुख्य कथा को एक ही पक्ति मे इस प्रकार कहा जा सकता है—'शिवपालगज' के सभी क्षेत्रो की उथल-पुथल का चित्रण । वस्तुत इतने सुदीर्घ उपन्यास मे मूल्यहीन एक ग्राम का चित्र प्रस्तुत करना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, क्योंकि विकृति, घिनौनापन, गिरावट, मूल्यहीनता आदि से ग्रस्त भारतीय समाज के चित्र का साक्षात्कार पाठक शुरू से अन्त तक करता है—बिना ऊबते हुए । यही श्रीलाल शुक्ल का सब से बडा कौशल है । व्यग्य उसका एक ऐसा माध्यम है कि जिससे वे भारतीय सामाजिक मूल्यहीनता की पर्तों को उघाडते हुए भी पाठको का ध्यान आकृष्ट किए हुए रहते हैं । लेखक शिवपालगज का चित्रण करते हुए उस गाँव की छोटी-से छोटी गतिविधि पर पूरी-पूरी नजर रखता है । इसलिए वह गाँव के माध्यम से—सहकारी सस्था, चुनाव, पचायत, बैंक, पुलिस, शिक्षा सस्थाएँ, प्राध्यापक, प्राचार्य, सचालक मडल, न्यायालय, वैद्य, सरकारी नौकर, डॉक्टर, दुकानदार, व्यापारी, अफसर, सत्तारूढ दल, विरोधी दल, पचवार्षिक योजनाएँ, भ्रष्टाचार, युवा जगत्, प्रेम, अतरराष्ट्रीय स्थिति, फिल्म, जुआरी, रिक्शावाले, पहलवान, गुडे,

तृपि, अखबार, विज्ञापन, विवाह पद्धति, दहेज प्रथा, बेकारी, धर्म, यूथ फेस्टिवल, *नारेबाजी, खेलकूद, भूदान यज्ञ, वनसरक्षण, वृक्षारोपण, भाषा समस्या, बुद्धिजीवियो* की पलायनवादी वृत्ति इत्यादि न जाने कितने ही ऐसे दैनंदिन जीवन के विषयो का स्पर्श करता हुआ अपनी कथा का विकास करता है—व्यग्य के सहारे।

*विषय की परिधि अत्यन्त विशाल है। अत केवल अध्ययन की सुविधा के* लिए वैद्यजी की कथा को मुख्य कथा और शेष कथाओ को सहायक कथाओ के रूप मे माना जा सकता है। यद्यपि ऐसा विभाजन न तो समव है, न ही लेखक का उद्देश्य रहा है। *क्योकि मुख्य कथा जितनी महत्वपूर्ण, उतनी ही और कही-कही तो* उससे ज्यादा ये सहायक कथाएँ विविध पहलुओ को उजागर करने मे समर्थ बन पडी है। विषय की विविधता से कथानक मे रोचकता का समावेश हुआ है, किन्तु *साथ ही सुसूत्रता का अभाव दिखाई देता है। कथा बिखरी बिखरी सी लगती है* फिर भी कथानक मे कही ऊब नही आ पायी है। ऊब और एकसूत्रता के अभाव को लेखक ने परिच्छेद विभाजन के माध्यम से कम करने का प्रयत्न किया है। क्योकि ये परिच्छेद स्वय एक पृथक् स्नैप है, चित्र हैं जो मूल्यहीनता, विकृति विसगति और अनैतिकता का पर्दाफाश करते हैं। पृष्ठो की बडी सख्या के कारण उत्पन्न होने वाली नीरसता से इसो परिच्छेद विभाजन ने बचाया है। साथ ही ये विभिन्न परिच्छेद भिन्न भिन्न परिस्थितियो का अकन करते हैं जिनसे विषय-वैविध्यता के कारण भी नीरसता नही आ पाई है। उपन्यास की कथा की गति मे आरोह प्रत्यारोह भी नहीं है अत कथानक की गति मे त्वरा नही है। वह समान गति से अपनी आस पास की भूमि का स्पर्श करता है। किन्तु कथानक की गति मे त्वरा न होते हुए भी पाठक व्यग्य के माध्यम से उत्पन्न होने वाली रोचकता के कारण कथा मे रमा रहता है। शुरू से अत तक कही-कोई उतार-चढाव नही। कथानक समान धरातल पर चलता है। उपन्यास के प्रारम्भ मे कोई पृष्ठभूमि नही है और न ही अन्त मे उपसहार।

कथानक की सब से बडी विशेषता है विषय का मौलिक होना। यद्यपि सामाजिक पतन की अवस्था को लेकर न जाने कितने ही उपन्यास हिन्दी मे लिखे गए हैं फिर भी उन सब से अलग दृष्टिकोण को लेकर, व्यग्य का सहारा लेकर, व्यग्य से मूल्यहीनता के साक्षात्कार से उत्पन्न मानसिक तनाव को हल्का कर लेखक ने भारतीय समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है जो पूर्णत यथार्थ है। 'राग दरबारी' ग्रामीण यथार्थ की क्रूरता को बहुत निर्मम भाव से उजागर कर सका है।"[१] विषय की इस मौलिकता के कारण कथानक में नवीनता, रोचकता, कौतूहल, प्रभावोत्पादन और आकर्षकता आ गई है। लेखक की विशेषता विषय को नवीन दृष्टिकोण से व्याख्यायित करने तथा प्रस्तुत करने में हैं। उनके लेखन का विषय एक सामाजिक जानवर है, मानव प्राणी नही। श्रीलाल शुक्ल ने इन्सान के भीतर बैठे हुए हैवान

को चित्रित करने की कोशिश की है जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिए घातक है, मानव-संस्कृति का रोग है। और व्यंग्यकार के लिए तो यह और भी आवश्यक बन जाता है कि वह मानव के बाह्य चित्रण की बजाय उसके भीतरी स्वरूप को उजागर करे। वैद्य, रंगनाथ आदि के माध्यम से लेखक ने आधुनिक सामाजिक जीवन की विकृति, दमुँहापन, मुखौटेपन को अभिव्यक्त किया है। अतः सम्पूर्ण 'राग दरबारी' में 'शिवपालगंज' के गंजहो का चित्रण प्रमुख नहीं अपितु मानसिक, सांस्कृतिक और नैतिक दृष्टि से विकृत और पतित मानव का चित्र प्रस्तुत करना रहा है, जो कि पशु या हैवान को अपने भीतर सहेजे और संजोए हुए है। वही हमारा असली स्वरूप है जिसे हम छिपाए रहते हैं। एकांत में जिससे साक्षात्कार करते हैं, जो हमारे जीवन का नियामक और संचालक है। इन्सानियत की खाल में छिपे हुए हैवानियत को चित्रित करना उनका प्रमुख ध्येय है। और इस पशु का चित्र व्यंग्य के माध्यम से खींचा है जो मर्माहत करने की बजाय गुदगुदाता है और अंततोगत्वा आत्म साक्षात्कार के लिए बाध्य करता है। इसी दृष्टि से ऊपर विषय को पूर्णतया मौलिक कहा गया है। "आजाद हिन्दुस्तान की राजनीति से, इस दौर में चले विकास-कार्यों से, सरकार और उसकी नौकरशाही से तथा दूसरे औजारों की गतिविधियों से इस दरमियान किस तरह की औलादें पैदा हुई हैं, उनका व्यक्तित्वशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्र क्या है—यही 'राग दरबारी' की वस्तु है।"[1]

कथानक की दूसरी विशेषता है—घटनात्मक सत्यता की। लेखक सम्पूर्ण उपन्यास में यथार्थ की संभावना का नहीं अपितु यथार्थ का चित्रण करता है। जो है का वह अनावरण करता है। चाहिए की कल्पना नहीं करता। अतः घोर तथा क्रूर यथार्थपरक लेखक का दृष्टिकोण रहा है किन्तु फिर भी कहीं भी वीभत्सता तथा अश्लीलता के दर्शन नहीं होते। गाँव को केन्द्र बनाने के कारण "आज की राजनीति ने भारतीय गाँव की जिन्दगी को कितना तोड़ दिया है, उसमें कैसे-कैसे अजनबी स्वर उभार दिए हैं, लेखक ने बहुत सहज भाव से इस यथार्थ को मूर्त किया है।"[2] लेखक गाँव के जीवन की प्रत्येक घटना का अंकन करता है, फिर वह गाँव की क्यों न हो। कई आलोचकों के मतानुसार लेखक ऐसे प्रसंगों से बच सकता था, जिससे कथा में वीभत्सता और अश्लीलता नहीं आ पाती थी। किन्तु ऐसे वर्णन जो कि दो-तीन स्थान पर आए हैं, वे सोद्देश्य हैं—संकेत मात्र से काम नहीं चल सकता था। अतः जान-बूझकर किन्तु अश्लील या घोर यथार्थवादी दृष्टिकोण को न रखकर ग्रामीण जीवन की सपाटता का अत्यन्त सपाट बयानी से वर्णन किया है। 'राग दरबारी' जब गाँव की कथा को केन्द्र मानकर लिखा गया है तो गाँव की सामान्य घटना को भी चित्रित करना लेखक का कर्त्तव्य हो जाता है। अतः औरतों के प्रातर्विधि में सम्बन्धित वर्णन ग्रामीण जीवन-पद्धति की श्रेष्ठता के उपहास रूप में किया गया है।

एक तरफ हम गाँवो म भारत की आत्मा और सस्कृति को मौजूद बताते हैं, तो दूसरी तरफ आश्चर्य की बात है कि ग्रामीण जीवन सामान्य मानव की नागरी सभ्यता और प्रगति से कोसों दूर है और इस दूरी को पाटने का कोई प्रयत्न नही करते हैं। यहाँ वे राममनोहर लोहिया की विचारधारा के समीप आ जाते हैं। उनका मत था कि मनुष्य की स्वच्छता का मूल्याकन करना हो तो उसके शौचालय को देखकर किया जा सकता है। *अत यदि आधुनिक ग्रामीण जीवन मे अभी भी इस ओर किसी राजनेता या समाज सुधारक का खयाल नही जा पाता जो कि नितात जरूरी है। अत इस वर्णन को अश्लील कहना समुचित प्रतीत नही होता। तभी तो विदेशी यात्री अल्डुअस हक्सले भारत-यात्रा के अपने सस्मरणो से अविस्मरणीय ऐतिहासिक घटनाओ और सुरम्य स्थलो के साथ साथ 'गार्ड ऑफ आनर' वाले दृश्य का सकेत करना नही भूले हैं।* लेखक पर अश्लीलता का आरोप लगाना अयुक्तियुक्त है। क्योकि अगर उसे अश्लील चित्र प्रस्तुत करने होते तो स्त्री-पुरुष सम्बन्धो से भरे उद्दीपक चित्रो की कल्पना कर सकता था किन्तु वह उनसे बचता चला है। फिर भी दो चार स्थला पर ऐसे दृश्यो को वह चित्रित करता है तो यथार्थपरक ही, न कि उद्दीपक।

कथानक का सबसे महत्त्वपूर्ण भाग 'पलायन-सगीत' है, जिसकी समायोजना लेखक ने साभिप्राय की है। शुरू से अन्त तक व्यग्यात्मक शैली के कारण हास्य मौजूद रहता है किन्तु 'पलायन सगीत'—जो कि अतिम परिच्छेद का अन्तिम भाग है—मे आकर गाभीर्य, विषाद, हताशा, यथार्थ और आत्म-परीक्षण के स्वर मुखरित हुए हैं। लेखक को ऐसे लोगो से चिढ पैदा हो जाती है जो अपने को बुद्धिजीवी कहते हैं। ये स्वय को 'cream of the society' समझते हैं। जिनमे वैचारिक सघर्ष तो मौजूद रहता है किन्तु अवसर आने पर जीवन की यथार्थता और कटुता को झेलने की बजाय, उन सघर्षों से टकराने की जगह पलायन का मार्ग ढूढते हैं। वे केवल सामाजिक व्यवस्था तथा अव्यवस्था के प्रति आक्रोश की भाषा करना जानते हैं, उसे कृति म उतारना नही। कथनी और करनी का अन्तर इन बुद्धिजीवियो के व्यक्तित्व का प्रमुख गुण है। ये केवल 'अतीत' मे ही जीते हैं। और यह 'अतीत बोध' ही उन्हे अकर्मण्य बनाता है। *इन बुद्धिजीवियो का काल्पनिक जगत् दल दल या कीचड के समान है, जिससे उबरना अत्यन्त कठिन है। रगनाथ के माध्यम से आधुनिक तथा-कथित बुद्धिजीवियो के रूप को 'पलायन-सगीत' मे उभारा है। यही आकर कथा पाठक को कुछ सोचने के लिए, अपने भीतर झाकने के लिए विवश कर देती है।*

इतना होते हुए भी कथानक मे एकात्मकता और सगठनात्मकता का अभाव दिखाई देता है जिसे शैलीगत कौशल, परिच्छेद विभाजन ने काफी अशो तक दूर किया है। वर्णनात्मक और विवरणात्मक शैली मे सुदोर्घ कथा का विकास हुआ है, फिर भी पाठक कहीं भी ऊबता नही। अत. नि सन्दिग्ध रूप स कहा जा सकता है

कि कुछ दोषों के बावजूद भी कथाओं को गूथने में लेखक अत्यन्त सफल रहा है।

पात्र—विशालकाय उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक न हो तो ही आश्चर्य का विषय है। विषय-वैविध्य के कारण पात्रों की संख्या का यहाँ बाहुल्य है। प्रमुख रूप से १०-१२ पात्र समस्त कथा में गुथे हुए हैं—वैद्यजी, रंगनाथ, रुप्पन, प्रिन्सिपल, सनीचर, बद्री पहलवान, लंगड़, रामाधीन, बेला। किन्तु इन पात्रों में वैद्यजी और रंगनाथ प्रमुख हैं। वैद्यजी सम्पूर्ण घटनाओं के संचालक हैं और रंगनाथ तटस्थ द्रष्टा। इसके अतिरिक्त पात्र स्वयं अपना अस्तित्व रखते हुए भी वे किसी विशिष्ट प्रवृत्ति को चित्रित करने के माध्यम बने हैं।

वैद्य कथा के प्रमुख पात्र है। वे ही नायक कहे जा सकते हैं। सारी कथा का ताना-बाना वैद्यजी के चारों ओर ही बुना जाता है। उनके घर पर सारा दरबार जमा होता है। वहीं से सारे गाँव की व्यवस्था की जाती है। वैद्य ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए हैं अत आदर और श्रद्धा के वे योग्य ही हैं। दूसरे उनका व्यवसाय भी वैद्य का जो कि मानव शरीर का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। अत. चाहते हुए या न चाहते हुए भी सभी की श्रद्धा यदि वैद्यजी के प्रति हो, तो इसमें बेचारे वैद्यजी का क्या दोष ? वे ही शिवपालगंज पर राज्य करते हैं किन्तु अपनी इच्छा से नहीं—जनता की इच्छा से। वस्तुत "असली शिवपालगंज वैद्यजी की बैठक में था।"[1] उनके घर की बैठक में दरबार लगा करता है। उनके न रहते हुए बहुत से 'गजहे' उस दरबार की देखभाल करते हैं। और वैद्यजी का काम सेवा का काम है अत सारे गाँव की देखभाल करना उनका काम है। सारे गाँव की प्रगति और विकास के साधनों और उपायों के वे प्रवर्त्तक और संरक्षक हैं। गाँव की सभी संस्थाओं के वे चेयरमैन हैं। हाँ, जब कभी उनकी इच्छा होती है तो वे किसी दूसरे को—सनीचर—कोई एकाध पद दे देते हैं। किन्तु मुख्य पद 'छंगामल इण्टरमीजिएट कॉलेज' मैनेजर का पद वे कभी नहीं छोड़ते। इसी प्रकार 'को-ऑपरेटिव यूनियन' के बारे में रंगनाथ के द्वारा पूछे जाने पर रुप्पन का यह कहना "मैनेजिंग डाइरेक्टर थे और रहेंगे।"[2] उनकी सक्षमता को प्रतिपादित करता है। उनका यह मत था कि ये पद त्रिकाला-बाधित हैं। कोई सत्ता आए, किसी का शासन हो, कोई-सी भी शासन-प्रणाली व्यवहार में लायी जाए, इनसे वैद्यजी के नेतृत्व और सेवा-भाव में कोई अन्तर नहीं आता। स्वातन्त्र्योत्तर काल में आधुनिक जीवन में व्याप्त हुई crisis of leadership की वैद्यजी जीती-जागती तस्वीर हैं। सिद्धान्त, आदर्श, पक्ष, मानवीयता आदि सारी बातें व्यर्थ हैं। येन केन प्रकारेण सत्ता को हथियाना आज की नेतागीरी का प्रमुख नारा है। वैद्यजी यदि चुनाव में जीत नहीं पाते तो वे समग्र पद्धति को स्वीकार करते हैं। वे साध्य पर बल देते हैं, साधन पर नहीं। वे सब की सहायता करते हैं बशर्ते वह सिद्धान्तों या आदर्शों की लड़ाई न हो। लंगड़ को वे कहते हैं—"जाओ

भाई तुम धर्म की लडाई लड रहे हो, उसमे मैं क्या सहायता कर सकता हूँ।'
इसके साथ 'को ऑपरेटिव यूनियन' मे गबन होने पर उनकी स्पष्टवादिता और सत्यप्रियता द्रष्टव्य है—"अब तो हम कह सकते हैं कि हम सच्चे आदमी हैं। गबन हुआ है और हमने छिपाया नही है।" और गबन कोई दोष नही है व्यक्तित्व का। क्योकि हर वस्तु को तरफ देखने का उनका अपना दृष्टिकोण है। हर शब्द का उनका एक अपना ही अर्थ है—जो लचीला है, स्वार्थ के लिए उसे खूब तोडा मरोडा जा सकता है। उनका तर्क है कि "गबन वही कर सकता है, जिसकी अपनी मुद्राएँ न हो।' और सहकारी सम्पत्ति किसी विशेष व्यक्ति की न होकर सब की सम्पत्ति है। यदि कोई इस सम्पत्ति का उपयोग करता है तो वह गबन नही करता अपितु उसका अनुचित व्यय करता है। और यदि गबन हो भी जाए तो इसमे चौंकने का कोई कारण नही क्योकि 'सहकारी सम्पत्ति के साथ गबन शब्द जुडते देखकर उससे घबराना न चाहिए।' गबन और सहकारिता मानो परस्पर पूरक हैं। यही उसकी नियति है। और साथ ही व्यक्ति को अपने भीतर रहने वाले दोष छिपाने नही चाहिए। उनका सिद्धान्त है कि "दोष को छिपाना न चाहिए, नही तो जड पकड लेता है।" अत वे अपनी बुराइयो को बेलौस और बेरोक सब के सामने कह देते हैं। इसमे उनका क्या दोष जो ऐसे भीतर और बाहर दोनो से समान रहने वाले व्यक्ति को अगर सामान्य जनता डकारने की वृत्ति कहती हो।

इस प्रकार वैद्यजी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ऐसे ही अन्तर्विरोधो से भरा हुआ है जो आधुनिक नेता के प्रतीक रूप मे चित्रित है। आधुनिक नेताओ मे मौजूद स्वार्थप्रियता, अवसरवादिता, प्रतिष्ठा कुर्सी प्रेम, रिश्वतखोरी भ्रष्टाचार, गुटबदी, भाई भतीजावाद, झूठ आश्वासन सामाजिक जीवन के महत्त्वपूर्ण पहलुओ को अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ उजागर करने मे लेखक समर्थ हुआ है। इन आधुनिक नेताओ की अपनी भाषा, अपनी ही सस्कृति है। प्राचीन परिभाषाएँ नवीन रूप मे ढल गई है। इसलिए वैद्यजी भी ईशोपनिषद के मन्त्र के आधार पर अपने जीवन को ढालते हैं— तेन त्यक्तेन भुजीथा' अर्थात् त्याग द्वारा भोग करना चाहिए। अन्तर केवल यही है कि ये नेता पहले उपभोग करते हैं, जिसकी अति के कारण उन्हे वे पद छोडने पडते हैं। तब वे सब के सामने 'त्याग का आदर्श रखते है और फिर तिकडमबाजी के द्वारा पुन उसे प्राप्त कर लेते हैं।

वैद्यजी के व्यक्तित्व का एक महत्त्वपूर्ण अग है कि वे शिवपालगज के प्रत्येक व्यक्ति को खूब अच्छी तरह पहचानते है। यह नेता या शासक का कर्त्तव्य भी है। तभी वह उनके दु खो और कठिनाइयो को दूर कर सकता है। किन्तु इसके साथ साथ दूसरी बात यह है कि उनके व्यक्तित्व का जनता पूरी तरह नही पहचान पाती। ऐसा व्यक्ति ही आधुनिक समाज म चिर नेता रह सकता है। गयादीन का मत है

कि नेता के लिए यह गुण अत्यन्त आवश्यक है—"चाहिए यह कि लीडर तो जनता की नस-नस की बात जानता हो, पर जनता लीडर के बारे मे कुछ भी न जानती हो।"[१३] वैद्यजी ऐसे ही नेता हैं—"ऐसा मैनेजर पूरे मुल्क मे न मिलेगा। सीधे के लिए बिल्कुल सीधे हैं और हरामी के लिए खानदानी हरामी।"[१४]

वैद्यजी 'गुटबंदी' को अपना धर्म समझते हैं। नेता बनने के लिए गुटबंदी निहायत जरूरी है। इसके बिना वह समाज-कार्य नहीं कर पाता। इस गुटबंदी का केन्द्र है—'छगामल विद्यालय इण्टरमीजिएट कॉलेज।' इस कॉलेज मे प्राध्यापकों को बिना इण्टरव्यू के नौकरी पर रख लिया जाता है। केवल एक ही योग्यता होनी चाहिए—वैद्यजी के साथ या उनकी चमचेगीरी। 'प्रिंसिपल' ऐसे व्यक्ति को नियुक्त किया गया है जिसका काम कॉलेज को व्यवस्थित रूप से चलाने की बजाय कॉलेज के प्रांगण मे बीती हुई और होने वाली घटना की सूचना पहले वैद्यजी के दरबार मे मिलनी चाहिए। उनके आदेश के बिना कोई कार्य नहीं हो सकता। "गुटबंदी परमात्मानुभूति की चरम दशा का एक नाम है वेदांत हमारी परम्परा है और चूंकि गुटबंदी का अर्थ वेदांत से खीचा जा सकता है। इसलिए गुटबंदी भी हमारी परम्परा है और दोनो हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ हैं।"[१५] किन्तु इस गुटबंदी से वे कभी कतराते या घबराते नहीं थे, क्योंकि वैयक्तिक विकास और उन्नति के लिए गुटबंदी अत्यन्त आवश्यक है। कॉलेज मे दो पार्टियाँ, पंचायत मे दो पार्टियाँ, को-ऑपरेटिव यूनियन मे दो पार्टियाँ इसी प्रकार शिवपालगंज की सार्वजनिक संस्थाओं मे वे गुटबंदी बनाए रखते थे। क्योंकि उनके सामने शहरी नेताओं का आदर्श था—"यदि तुम्हारे हाथ मे शक्ति है तो उसका उपयोग प्रत्यक्ष रूप से शक्ति को बढ़ाने के लिए न करो। उसके द्वारा कुछ नई और विरोधी शक्तियाँ पैदा करो और उन्हें इतनी मजबूती दे दो कि वे आपस मे एक दूसरे से संघर्ष करती रहें। इस प्रकार तुम्हारी शक्ति सुरक्षित और सर्वोपरि रहेगी।"[१६]

इस प्रकार समग्र रूप से देखने पर वैद्यजी का व्यक्तित्व चिर-परिचित किसी भी नेता के व्यक्तित्व जैसा लगता है, जो पूर्णत यथार्थ है। अतिरेक, कल्पना या अतिशयोक्ति का अवलम्ब नहीं। बाहर से अत्यन्त सभ्य, पवित्र, सहानुभूतिपूर्ण, नापाक, निर्दय तथा छली दिखाई देता है। वे निंदक, स्वार्थी, अर्थलोलुप, सत्ताकांक्षी हैं। उनके व्यक्तित्व मे कोई कमी नहीं है। कमी है तो सिर्फ एक बात की कि इन्सान की पोशाक मे हैवान के रूप को छिपाकर आते हैं। अब जितना जमीन के ऊपर हैं उतना ही नीचे धुसे हुए हैं। पेशाब मे चिराग जल रहा है।"[१७]

रंगनाथ—दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है रंगनाथ जो कि निस्संगता के साथ शिवपालगंज की जिन्दगी को देखता है। रंगनाथ एम० ए० कर चुका है। आगे उसकी रिसर्च करने की इच्छा है। किन्तु एम० ए० तक पढ़ते हुए उसने अपने स्वास्थ्य को

खो दिया है। और अब स्वास्थ्य सुधार के लिए अपने मामा—वैद्यजी के घर शिवपालगंज—आता है। *रंगनाथ यहाँ बुद्धिजीवी वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है।* रंगनाथ के व्यक्तित्व की सबसे पहली विशेषता यह दिखाई देती है कि बेचारा एम० ए० तक पढ़कर अपने स्वास्थ्य को खो देता है। आधुनिक शहरी संस्कृति की यह जीती-जागती तस्वीर है। बड़ी मेहनत से मध्यवर्ग के ये नवयुवक किसी तरह पढ़कर अपने अस्तित्व को टिकाने के लिए एम० ए० की डिग्री हासिल कर लेते हैं—किन्तु साथ ही तब तक शरीर सम्पत्ति को नष्ट हुई पाते हैं और फिर से उनके जीवन में नौकरी यदि मिल भी जाये, तो भी एक प्रकार की विसंगति मौजूद रहती है। दूसरी बात यह है कि *एम० ए० करने के बाद भी लतियायी हुई कुतिया जैसी वर्तमान शिक्षा-पद्धति* के कारण जीवीकोपार्जन का कोई साधन जुटा नहीं पाता। फलस्वरूप रिसर्च करता है, जिसे वह घास खोदना मानता है। क्योंकि जिस प्रकार घास खोदना एक निरर्थक और निठल्ले का काम है, ठीक उसी प्रकार इस देश में जितने भी बुद्धिजीवी इस कार्य में लगे हुए हैं वे वास्तव में न तो कोई ठोस कार्य कर रहे हैं और निठल्ले होने के कारण अपने को व्यस्त रखने के लिए लोकलाज के कारण रिसर्च का बहाना कर रहे हैं। अतः इस देश में विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली गवेषणाएँ—शुद्ध व मौलिक गवेषणाएँ न होकर आयातित, अनुवादित और चोरी हुई गवेषणाएँ करवाई जा रही है, जिनका वास्तविक जीवन में कोई उपयोग नहीं। अन्यथा यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि जिस देश में प्रत्येक बड़ी विडम्बना है कि जिस देश में प्रत्येक वर्ष विज्ञान और साहित्य के क्षेत्र में असंख्य नवयुवक अपने शोध-ग्रन्थ प्रस्तुत कर रहे हो वह देश आज भी शिक्षा और विज्ञान दोनों ही दृष्टियों से संसार के प्रगत राष्ट्रों से सैकड़ों साल पिछड़ा हुआ है।

रंगनाथ के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है, वैचारिक संघर्ष। आजकल ये तथाकथित बुद्धिजीवी वैचारिक संघर्ष में ही जीते हैं। किसी भी विचारधारा या जीवन-पद्धति के स्वयं ही दो प्रतिकूल तटों की कल्पना कर संघर्षरत रहना। किन्तु इनका यह संघर्ष मानसिक धरातल पर घटित होता है। इनका जीवन समस्याओं से *आक्रांत रहता है। शंका तथा सन्देह की नजरों के कारण इन्हें सभी स्थानों पर* विकल्प की बू आने लगती है परिणामतः वे स्वयं अपने विचारों पर दृढ़ नहीं रह पाते। जिस दृढ़ता और निश्चय को लेकर रंगनाथ शुरू में दिखाई देते हैं वह अन्त में दिखाई नहीं देते हैं।

अवसर आने पर परिस्थिति का सामना न कर पाना रंगनाथ के व्यक्तित्व का *एक पहलू है जो कि आज के बुद्धिजीवी वर्ग पर पूर्णतया चरितार्थ होता है।* यद्यपि रंगनाथ तटस्थ द्रष्टा के रूप में मौजूद है तथापि ग्रामीण व्यक्तियों द्वारा उसकी तार्किकता को काट दिए जाने पर चुप रह जाता है। पढ़ा लिखा होने के कारण मेले के

समय विशिष्ट मूर्ति को देखकर उसे देवता की बजाय सिपाही की मूर्ति बताकर गाँव वालों के सामने उसे सिद्ध नहीं कर पाता, अपितु स्वयं उपहास का पात्र बन जाता है। उसकी तार्किकता का मन्दिर के पुजारी द्वारा कोई युक्तियुक्त उत्तर न दिए जाने पर स्वयं को 'ईसाई' कहलवाकर अपनी ही गलती का अनुभव करता है। तब रूप्पन कहता है—"कसूर तुम्हारा भी नहीं, तुम्हारी पढ़ाई का है।"[12] आधुनिक पढ़ाई ने मनुष्य को इतना निकम्मा बना दिया है कि हम अपने सामने ही सच्चाई पर रहते हुए अपना उपहास करने वाले व्यक्ति के प्रति विद्रोह नहीं कर पाते। ठीक इसी प्रकार खन्ना को निकाल दिये जाने के बाद प्रिंसिपल उन्हें खन्ना की जगह लेने को कहता है। वहाँ भी प्रिंसिपल के द्वारा डाट खाकर तथा अपमानित होकर "कुल मिलाकर उनसे यही साबित होता है कि तुम गधे हो।"[13] इस उपाधि को लेकर वापिस लौटता है। आधुनिक बुद्धिजीवी भी इसी प्रकार सर्वत्र अपमानित, उपहासित, तिरस्कृत होकर भी उसके विरोध में कुछ न कहता हुआ मौन होकर बर्दास्त करता रहता है।

रंगनाथ हमेशा अपने ही काल्पनिक जगत् में विचरण करता रहता है। यह सही है कि वह शहरी संस्कृति और पढ़ाई-लिखाई के संस्कार लेकर गाँव आता है, किन्तु वह गाँव की जिन्दगी में अपना मेल नहीं बिठा पाता। शिवपालगंज का जीवन—चाहे वह विकृत, मूल्यहीन क्यों न हो—यथार्थ है। इस यथार्थ का साक्षात्कार करने से वह कतराता है। वर्तमान से दूर भागता है और अतीत में जीना चाहता है। जिसको लेखक ने 'पलायन-संगीत' में स्पष्ट किया है। बुद्धिजीवी की अकर्मण्यता, पुंसत्वहीनता और पलायनवादी वृत्ति को उद्घाटित किया है। बड़े-बड़े शहरों में रहनेवाले ये अन्धे लोग जो इस देश पर शासन करते हैं, किन्तु देश के यथार्थ चित्र—गाँव—को देखे बिना वातानुकूलित बंगलों, रेस्तरों, क्लबों, सभा और सोसायटी में बैठकर निर्णय लेते हैं। वस्तुतः उनके ये निर्णय वास्तविक परिस्थिति से पलायन ही है। ये बुद्धिजीवी जीवन-संघर्षों को झेलने के बजाय उनसे पलायन करने में ही माहिर हैं। सफेद पोश के इस समाज में छाई हुई नपुंसकता ही रंगनाथ के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। वह केवल आक्रोश की भाषा जानता है, उसे कृति में उतारना नहीं। भावात्मक आक्रोश कर वह अपने कर्तव्य से चुक जाता है, ऐसी उसकी मान्यता है।

शासन-यन्त्रणा और शासकों के बदल जाने के बाद भी प्रक्रिया में कोई अंतर नहीं आ पाया। पहले इंग्लैंड से आकर अंग्रेज यहाँ शासन करते थे जो कि गाँवों को न देखते हुए, उनसे परिचित न होते हुए, उनकी जीवन-पद्धति को निर्धारित करते थे। आज उन अंग्रेजों की जगह बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले ये बुद्धिजीवी जिनका ग्रामीण जीवन से या समस्या के किसी भी यथार्थ पक्ष से सरोकार नहीं है, वे इस

देश की नियति का निर्माण कर रहे है । होना यह चाहिए था कि यह वर्ग वास्तविक जीवन के कार्य-क्षेत्र मे उतरे, स्वार्थ को छोडे किन्तु कागजी घोडे दौडाने मे ये सिद्धहस्त है। अत शिक्षा, राजनीति आदि सभी क्षेत्रो मे हमारी आँखे या तो अतीत मे झाँकती हैं या पश्चिमी चकाचौंध को देखती हैं। "तो हालत यह है कि हैं तो बुद्धिजीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड जाये कि हम अपने बाप की औलाद नहीं हैं तो साबित कर देंगे। चौराहे पर दस जूते मार लो पर एक बार अमेरिका भेज दो।'[१९] विदेश-गमन की धुन हमारे बुद्धिजीवियों पर ऐसी छाई हुई है कि जीवन की एकमेव और अन्तिम इच्छा वही है। सारे ससार को, परिस्थितियो, वस्तुओ, आदर्श और विचारधाराओ को वे ऐसे प्रगत राष्ट्रो के चश्मे से ही देखते हैं। और अगर कभी चापलूसी, रिश्वतखोरी या अवैध मार्गों से अपनी 'रिसर्च' को पूरा करने के लिए कभी विदेश जाने का अगर मौका मिल भी जाता है तो 'उसे विलायत भेज दिया जाता तो वह निश्चय ही बिना हिचक किसी गोरी औरत से शादी कर लेता। बाहर निकलते ही हम लोग प्राय पहला काम यह करते हैं कि किसी से शादी कर डालते हैं और फिर सोचना शुरू करते है कि हम यहाँ क्या करने आये थे।'[२०]

इन बुद्धिजीवियों को एक और बीमारी है और वह है—'क्राइसिस ऑफ काशस'। ये स्वय अपने व्यक्तित्व, मन्तव्य तथा अस्तित्व के प्रति आवश्यकता से अधिक जागरूक रहते हैं। परिणामत जहाँ जरूरत नही वहाँ भी ये अपने को सम्बद्ध मान लेते हैं जिसके कारण मानसिक तनाव, निराशावाद आवारगी, शराब आदि मे वह अपने को पूरी तरह खो देता है। वस्तुत ऐसे को बुद्धिजीवी कहना अपने आप मे ही एक प्रश्न है। क्योंकि ये बुद्धि की बजाय "आहार, निद्रा, भय, मैथुन के सहारे जीवित रहते हैं।"[२१] जो वस्तुत पशु के लक्षण है। इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल ऐसे बुद्धिजीवियो के विषय मे ऐसी धारणा बनाते है कि इन बुद्धिजीवियो और पशु मे कोई अन्तर नहीं है। दोनो की मूल प्रकृति समान है तथापि यह सारे ससार को मूर्ख समझता है। उसकी यह स्थिति है कि "बुद्धिजीवी होने के कारण अपने को बीमार होने के कारण अपने को बुद्धिजीवी साबित करता है। और अन्त म इस बीमारी का अन्त कॉफी-हाउस की बहसो म, शराब की बोतलों मे, आवारा औरतो की बाँहो मे, सरकारी नौकरी मे और कभी कभी आत्म हत्या मे होता है।'[२२]

'पलायन-सगीत' बुद्धिजीवियो की पलायनवादी वृत्ति का पर्दाफाश करता है। ये बुद्धिजीवी जीवन, सघर्ष, समस्या या परिस्थिति को झेलने के बजाय उनसे भागना सिखाते हैं। इनके वक्तव्य, अभिव्यक्ति तथा सुदीर्घ भाषण सामान्य जन को एक बारगी विस्मय विभोर कर डालते हैं। किन्तु अन्त म ये सब 'वाक्पटु' सिद्ध होते हैं। आश्चर्य तो यह है कि इन बुद्धिजीवियो मे राष्ट्रप्रेम, स्वाभिमान आदि की भाव-

मायें दिखाई नहीं देती । छोटे-से छोटे प्रलोभन पर अपनी बुद्धि को बेचने के लिए तैयार हैं। उनके जीवन का एक ही ध्येय है, वह है भौतिक समृद्धि । इस प्रकार ऊपर से साफ दिखाई देने वाले भीतर से अत्यन्त कलुषित है। स्वार्थ, स्वरति, भौतिक समृद्धि इनके जीवन के ध्येय हैं। जो बुद्धिजीवी अपनी बुद्धि को बेचकर भौतिक ऐश्वर्य, सम्पन्नता को प्राप्त नहीं कर पाता वह अपनी निराशा और दुःख को दूर करने के लिए अतीत में छिप जाता है। वर्तमान को झेलने का, जीने का, उससे जूझने का साहस भला इन में कहाँ ? जिस किसी भी प्रकार हो—यथार्थ से पलायन इनके जीवन का प्रमुख मुहावरा है—"भागो, भागो, भागो। यथार्थ तुम्हारा पीछा कर रहा है।" रंगनाथ का शिवपालगंज से शहर को वापिस जाना उसकी इसी पलायनवादिता—जो कि हर बुद्धिजीवी की भी है—का प्रतीक है।

रुप्पन—रुप्पन वैद्यजी का लड़का है। सामन्तशाही प्रवृत्ति के कारण सार्वजनिक सम्पत्ति पर पैतृक अधिकार समझता है। उनकी उम्र १८ वर्ष की है जो हमारे यहाँ बालिग के योग्य समझी जाती है। अतः रुप्पन भी अपने को पूर्णतः स्वतंत्र समझते हैं। यहाँ तक कि पिता का हस्तक्षेप भी उन्हें मंजूर नहीं है। किन्तु वे विद्यार्थी हैं। "स्थानीय कॉलेज की दसवीं कक्षा में पढ़ते थे। पढ़ने से, और खास-तौर से दसवीं कक्षा में पढ़ने से उन्हें बहुत प्रेम था, इसलिए वे पिछले तीन साल से उसमें पड़ रहे थे।"[१७] ऐसे विद्यार्थियों का स्वतन्त्र भारत में नेता बनने का जन्मसिद्ध अधिकार है। रुप्पन भी छोटी-सी इस उम्र में स्थानीय नेता थे। "उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि इंडिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल सफेद करने पड़ते हैं।"[१८] बौद्धिक परिपक्वता के न होते हुए भी वे स्वयं को नेता समझते थे और उनकी नेतागिरी का केन्द्र भी 'छंगामल इण्टरमीडिएट कॉलेज' ही था, जिसके विद्यार्थी पढ़ने की बजाय 'गजहापन' में अत्यन्त माहिर हैं। उन्हें उकसाना, गुटबन्दी करना, हाथापाई की नौबत आना आदि रुप्पन बाबू के लिए अत्यन्त सामान्य बातें थी। यद्यपि शारीरिक सौष्ठव उनके पास नाम मात्र को भी नहीं था, किन्तु नेतागिरी के अधिकार को वे अपना पैतृक हक समझते थे क्योंकि उनके बाप भी नेता थे।"[१९] इसलिए राजनीति के क्षेत्र में वह आचार संहिता, नैतिकता आदि मूल्यों को स्वीकार नहीं करता। वह आधुनिक युवा शक्ति का प्रतीक है; जो स्वतन्त्र भारत के उत्थान और विकास के बजाय पुरानी पीढ़ी के समान स्वार्थ के दलदल में फँसी हुई है। प्रिंसिपल के ज्यादा बकबक करने पर—जो कि वैद्यजी का खास आदमी है—उसके विरोधी खन्ना मास्टर को उकसाता है और "कटके नैव कंटकम्" न्याय के अनुसार प्रिंसिपल तथा वैद्य दोनों को राजनैतिक क्षेत्र से हटाकर स्वयं आसीन होना चाहता है। वह अपनी चिर-परिचित गजही की डंडामार शैली में कहता है—"यह तो पालिटिक्स है। इसमें बड़ा-बड़ा कमीनापन चलता है।"[११]

रूप्पन 'बेला' से प्रेम करता है, क्योंकि वह समझता है कि हर युवा को गाँव की किसी भी युवती से प्रेम करने का अधिकार है। 'बेला' के न चाहते हुए भी येन-केन मार्गेय उसे हथियाना अपना लक्ष्य समझते हैं। वैद्यजी के विरोध करने पर, नाराजगी प्रकट करते हुए "मुझे तुम्हारे आचरण की खबर है" कहने पर वह भी वैद्यजी को खरे-खरे शब्दो मे "तो मुझे भी आप के आचरण की खबर है" कहकर अपने पिता की जबान बन्द कर देता है। प्रेम का क्षेत्र निर्बन्ध और स्वतन्त्र है। उसमे जाति-पाँति, ऊँच नीच, अमीरी-गरीबी की दीवारें नही हैं। इसलिए बेला के न मिलने पर गाँव मे रहने वाली निम्न जाति की मजदूरनियों के साथ दुर्व्यवहार करना कोई अनैतिक नही मानते। *रूप्पन के चरित्र मे आधुनिकता का स्पर्श हुआ* है। वे एक आधुनिक गरम दिमाग दिमाग वाले नवयुवक विद्यार्थी नेता के प्रतिरूप *कहे जा सकते हैं जो विधायक कार्यों की बजाय विध्वंसक की तरफ अधिक झुका हुआ* प्रतीत होता है। अपने पिता के पद, मान और नाम का दुरुपयोग कर अपनी नेता-गिरी के क्षेत्र को व्यापक बनाता है। "तहसीलदार उसका हमजोली, थानेदार उसका दरबारी और प्रिंसिपल उसके मातहत था। मास्टर लोग 'भयाना भव भीषण भीषणाना" और पिताओ का पिता मानते थे।"[१°] समग्र रूप से देखने पर रूप्पन बाबू नवयुवक प्रेमी, मद बुद्धिवाला, तिकडमी, गुटबन्दी और गुडागर्दी कराने वाले पिता के अधिकार, पद, नाम का सदुपयोग करने वाले तथा योग्य पिता का योग्य पुत्र के रूप मे चित्रित हुए हैं।

**प्रिंसिपल**—इस उपन्यास का महत्त्वपूर्ण होते हुए भी गौण और गौण होते हुए भी महत्त्वपूर्ण पात्र है। शिवपालगज मे भी 'कॉलेज' सम्पूर्ण कथा का केन्द्र होने के कारण उसका मुख्य अधिकारी, सर्वेसर्वा मुख्य न हो तो ही आश्चर्य है। छगामल कॉलेज के मैनेजर वैद्य हैं। वैद्य किसी भी व्यक्ति की नियुक्ति या तो भाई-भतीजा-वाद के आधार पर या 'हाँ जी' के स्वभाव के आधार पर करते हैं। इस कॉलेज के प्राचार्य की नियुक्ति दूसरी कोटि के मानदण्डो के आधार पर हुई है। अत शैक्षणिक योग्यता, अच्छी शासन-यन्त्रणा, अनुशासन का महत्त्व आदि इस कॉलेज मे हो तो ही आश्चर्य है। वैद्यजी ने इसके अतिरिक्त उनकी नियुक्ति खास गुण के आधार पर की है—"खर्च का फर्जी नक्शा बनाकर कॉलेज के लिए ज्यादा से ज्यादा सरकारी पैसा *खीचने के लिए।'*[१६] *दुबला-पतला जिस्म वाला यह प्रिंसिपल अपने दूसरे गुण गुस्स* की चरम दशा मे अवधी बोली का इस्तेमाल के लिए प्रसिद्ध हैं।

*प्रिंसिपल का काम वैद्यजी के दरबार को प्रतिदिन, कई बार तो दिन म* चार चार बार तक मस्तक टेकना जरूरी है। उनके साथ भग पीते हुए उनकी हाँ मे हाँ मिलाना, चापलूसी करना, झूठी बडाइयाँ मारना और अन्त म डाट खाकर वापिस आ जाना है। वैद्य जैसे नेताओ ने इन शैक्षणिक सस्थाओ को आदन दुकाने समझा

हुआ है। वे स्वयं दलाल हैं जो निरक्षर होते हुए भी प्राचार्य के माध्यम से सरकारी पैसे को तथा बुद्धिजीवियों के वेतन को हड़प करते हैं। कॉलिज की उन्नति, नवन शैक्षणिक वातावरण, विद्यार्थी संख्या और उनके परिणाम प्राध्यापकों की स्थिति आदि पर सोचने का प्रिंसिपल को समय ही नहीं है। किन्तु उनके व्यक्तित्व का एक महत्वपूर्ण भाग उस समय प्रकट होता है जब वह आर्थिक विवशता को अभिव्यक्त करते हैं। प्रिंसिपल भी विवश और मजबूर हैं। आधुनिक जीवन की आर्थिक विपन्नता के लिए न चाहते हुए भी अनैतिकता को स्वीकार करना पड़ता है स्वाभिमान को तिलांजलि देनी पड़ती है। "मुझे चार चार बहनों की शादी करनी है। एक कौड़ी पास नहीं है। अगर वैद्यजी कान पकड़कर कॉलिज से निकाल दें तो मांगे भीख तक न मिलेगी।" पारिवारिक उत्तरदायित्व सामान्य व्यक्ति के स्वाभिमान की जड़ें हिला देता है और तब उसे न चाहते हुए कुत्तों की जिन्दगी बसर करनी पड़ती है। प्रिंसिपल के इस कथन के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने आधुनिक संस्था प्रमुखों की *आर्थिक विपन्नता और पारिवारिक बोझ की चक्की में पीसने वाले व्यक्तित्व के चरित्र* को रेखांकित किया है। क्योंकि पढ़ लिखकर भी किसी-न किसी पद पर नौकरी ही करनी है और नौकरी के लिए स्वाभिमान को छोड़कर चमचेगिरी की वृत्ति को अपनाना जरूरी है। अतः वे रंगनाथ को कहते हैं 'वाइस चान्सलर' के बजाय प्रिंसिपल की नौकरी ज्यादा अच्छी है, क्योंकि वहां दस लोगों के सामने सिर झुकाना पड़ता है यहाँ केवल अकेले वैद्यजी के सामने ही। इसलिए वे विश्वविद्यालय में प्राध्यापक भी नहीं बनते। वे अपनी चारित्रिक विशेषता को इस प्रकार प्रकट करते हैं—"वैद्यजी की खुशामद करा लो, पर हरेक के आगे सिर झुकाने को तैयार नहीं।"[२१]

प्रिंसिपल भी कभी बुद्धिजीवी थे। इसलिए इन बुद्धिजीवियों की चापलूसी वृत्ति, स्वार्थ, रिश्वतखोरी, पलायनवाद और नपुंसकता का खुलकर मजाक उड़ाते हैं। "रिसर्च भी क्या, जिसका खाते हैं उसका गाते हैं।"[२२] कहकर वे स्वयं को तथा इन तथाकथित बुद्धिजीवियों का एक समान धरातल पर बिठलाते हैं। बुद्धिजीवियों के खोखले तर्क और स्वार्थ पर करारा प्रहार करते हुये कहते हैं—"विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यदि यह साबित करना पड़ जाये कि हम अपने बाप की औलाद नहीं, तो साबित कर देंगे।"[२३] अतः जब अनैतिकता और स्वार्थ से समझौता ही करना हो, उसके मार्ग भिन्न हो सकते हैं—प्रिंसिपल का एक अपना मार्ग है। *खन्ना विरोध कर उससे झगड़ लेना चाहे या उन्हें निकलवाना चाहें तो वे कभी* रूपन को कहकर, कभी वैद्यजी को कहकर या अन्य किसी उपाय से उसे इतना विवश करते हैं, जिससे उसे त्यागपत्र देकर जाना पड़ता है।

प्रिंसिपल के भी कभी रंगनाथ के समान कुछ विशिष्ट ध्येय और आदर्श थे। किन्तु प्रिंसिपल भी शिवपालगंज की राजनीति का शिकार है। रंगनाथ को प्रिंसिपल

के मुख से 'पिकासो' का नाम सुनकर गश आ जाता है। वे अच्छे गप्पबाज भी हैं, सहानुभूतिपूर्ण मित्र भी हैं किन्तु इस राजनीति के शिकार होकर आदर्शवादिता की खाल उतारकर व्यावहारिकता की खाल ओढ लेते हैं—जिनसे रगनाथ असहमत हैं। इसी व्यावहारिकता के आधार पर खन्ना के निकाल दिये या चले जाने पर वे उसकी जगह नौकरी करने के लिए रगनाथ को कहते हैं। क्योंकि सारे मुल्क मे शिवपालगज फैला हुआ है। यहाँ नौकरी न कर किसी दूसरी जगह जाओगे तो "जहाँ जाओगे, तुम्हें किसी खन्ना की ही जगह मिलेगी।" कहकर अपनी व्यावहरिकता, विवशता, परिवेश की मार तथा आधुनिक जीवन की विडम्बना को अभिव्यक्त करते हैं। प्रिंसिपल को रगनाथ मे कोई खास लगाव नही किंतु वैद्यजी के भानजे हैं अत उनकी इच्छानुसार उनके रिस्तेदारो को कॉलेज मे नौकरी देकर वे अपनी नौकरी पक्की करते हैं। प्रिंसिपल के माध्यम से शैक्षणिक जगत् मे फैली हुई रिश्वतखोरी, निकम्मापन, स्वार्थ, गुटबन्दी, सरकारी पैसे का दुरुपयोग, भ्रष्टाचार और अनाचार का माध्यम ये सस्थाएँ आदि दोषो को उजागर करने मे समर्थ हुआ है—*व्यग्य के सहारे।*

लँगड—"माथे पर कबीर पथी तिलक, गले मे तुलसी की कठी, आँधी पानी झेला हुआ दढियल चेहरा, दुबली पतली देह मिर्जई पहने हुए। एक पैर घुटने के पास से कटा था।"[१२] ऐसा लगड जो कि शिवपालगज से पाँच कोस दूर रहने वाला, *कबीर और दादू के भजन गाने वाला है—थोडी देर के लिए मूल्य चेतना के वाहक* के रूप मे दिखाई देता है। तहसील से उसे एक नकल लेनी है। उसके लिए वह रिश्वत देना नही चाहता। वह धर्म, सिद्धान्त और सत की लडाई लडता है। ऐसे व्यक्ति को शिवपालगज मे कोई सहायता नहीं देता, जिसमे वह जीवन भर थक कर हार जाता है किन्तु नकल नही मिल पाती। फिर भी लगड मूल्य-चेतना का वाहक बन नही पाता, क्योंकि उसकी 'सत' की लडाई रिश्वत की राशि के विवाद को लेकर शुरू हुई है, रिश्वत को नही।

इसके अतिरिक्त सनीचर, बद्री पहलवान, गयादीन, रामाधीन, जोगनाथ इत्यादि अनेक पात्र हैं जो आधुनिक सामाजिक जीवन के विविध पक्षो को उजागर करते हैं। 'बेला' जो एकमात्र प्रमुख स्त्री पात्र है। इसके माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय समाज के नारी जगत् की जातीयता, विवाह-प्रथा, प्रेम, दहेज आदि पर्तों को उद्घाटित किया है। 'राग दरबारी' के सभी पात्र उसकी कथा के मूल स्वर के अनुकूल हैं। कथा और पात्रों मे परस्पर कही कोई विरोध नही दिखाई देता। सभी पात्र यथार्थ, स्वाभाविक तथा जीवन्त हैं। हाँ, इनम सघर्ष दिखाई नही देता। क्योंकि पतनोन्मुख शिवपालगज मे मूल्यो की बजाय मूल्यहीनता की स्थिति है। सभी पात्रो का विकास सहज और नैसर्गिक है। उनमे कहीं भी कृत्रिमता नहीं है। कोई भी पात्र असाधारण तथा अपवादात्मक रूप म नही दिखाई देता। यह सम्भव है

कि 'टार्च बीअरर' के रूप मे कोई पात्र मौजूद न हो—क्योंकि श्रीलाल शुक्ल का यह उद्देश्य भी नहीं है। 'राग दरबारी' का प्रत्येक पात्र एक तरफ वैयक्तिक स्वरूप को लिए हुए है जो कि गौण दिखाई देता है, किन्तु दूसरी तरफ आधुनिक समाज मे मौजूद ऐसी ही विशेषताओ से समन्वित पात्रों का स्मरण कराते हैं जो उसका मुख्य है। निःसन्दिग्ध रूप से पात्रों की सृष्टि मे श्रीलाल शुक्ल को सफलता मिली है।

**कथोपकथन**—दीर्घकाय उपन्यास मे संवादो का सुन्दर समायोजन इस उपन्यास म ऊबताहट आने से बचाता है। सम्पूर्ण उपन्यास वर्णनात्मक और विवरणात्मक शैली मे लिखा गया है। जिसने पाठक के ऊब जाने का भय पूरा-पूरा बना रहता है। किन्तु लेखक ने उपर्युक्त शैली को अपनाकर भी व्यंग का उसे मुलम्मा चढ़ाकर संवादो के सौन्दर्य को उत्तम बढ़ाया है। 'राग दरबारी' मे सम्वाद तिहरे ढग से काम करते हैं—(अ) कथा का विकास, (ब) पात्रो की व्याख्या, (स) लेखक के उद्देश्य का स्पष्टीकरण।

समग्र कथा यद्यपि वर्णन प्रधान ही है किन्तु उपन्यास के प्रारम्भ मे ही सड़क और ट्रक का व्यंग्यात्मक वर्णन करने के बाद ड्राइवर और रगनाथ के संवादो से कथा को गति और एक नवीन अर्थ प्राप्त होता है। इन संवादो को उन्होने सान पर चढ़ाकर खूब तीक्ष्ण किया हुआ है। इसलिये प्रारम्भ से ही वे पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं और साथ ही कथा को गति भी देते चलते हैं। दूसरा पात्रो की चारित्रिक विशेषताओं का उद्घाटन लेखक सम्वादो के माध्यम से करता है। पात्रो का केवल बहिरंग लेखक ने चित्रित किया है किन्तु उनका अन्तरंग—जो उपन्यास का मूल स्वर है—पारस्परिक संवादो म ही अभिव्यक्त हुआ है। प्रिंसिपल का सही रूप हमारे सामने वैद्य जी, खन्ना और रगनाथ के साथ अलग-अलग किए सम्वादो मे स्पष्ट हो पाता है। प्रिंसिपल के व्यक्तित्व की आन्तरिक पीड़ा, विवशता सम्वादो के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुई है, वर्णन और विश्लेषण से नहीं। इस प्रकार सभी पात्र—रुप्पन, वैद्य, गयादीन, खन्ना, सनीचर लगड़ इत्यादि—अपने आन्तरिक चरित्र को सम्वादो मे उद्घटित करते हैं। तीसरा—लेखक* के उद्देश्य का स्पष्टीकरण है। श्रीलाल शुक्ल स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज की विकृतावस्था को चित्रित करना चाहते हैं। यदि लेखक केवल वर्णनात्मकता से उसका चित्र प्रस्तुत करता तो शायद प्रभावोत्पादक, यथार्थ तथा आकर्षक न बन पाता। किन्तु व्यंग्य की सान पर चढ़ हुए इन सम्वादो ने प्रत्येक क्षेत्र मे मौजूद खोखलेपन, दुमुँहपन, स्वार्थी तथा आंतिकता की स्थिति को बड़ी खूबी से चित्रित किया है। विकृतावस्था के चित्रण के कारण उत्पन्न कटुता, तनाव और रिक्तता पाठक के मन म अरुचि उत्पन्न कर सकती थी। किन्तु इन सम्वादो ने उल्टे उसे रोचक बनाया है। इस दृष्टि से ये

सम्वाद लेखक के उद्देश्य को और स्पष्टता से उजागर करने मे समर्थ हुए है।

इसके अतिरिक्त 'राग दरबारी' के सम्वादो के कुछ अन्य आकर्षक गुण हैं; जिनमे सर्व प्रथम है *उपयुक्तता*। यहाँ यह उपयुक्तता चार दृष्टियो से दिखाई देती है—घटना, वातावरण, अवसर और पात्र। घटनाएँ जिस प्रकार और जिस स्तर की हैं सम्वाद भी उसी स्तर के लेखक प्रयुक्त करता चलता है। वातावरण यहाँ परिवेश के लिए प्रयुक्त हुआ है। सम्पूर्ण उपन्यास ही परिवेश का चित्रण करता है और जहाँ कही भी लेखक को अपने लक्ष्य को सकेतित करने का अवसर मिला है वहाँ वह चूका नही। पात्रानुकूल सम्वाद तो आदि से अन्त तक विद्यमान हैं। सक्षिप्तता इसके कथोपकथन का अपना ही गुण है। समूचे उपन्यास मे लघु सम्वादो का ही प्रयोग हुआ है फिर भी वैद्य जी के भाषण बहुत लम्बे हैं किन्तु वे सोद्देश्य हैं, उबाने वाले नही हैं। इसी सक्षिप्तता के कारण सरसता और रोचकता का स्वय समावेश हो गया है। कुछ स्थानो पर वैद्य जी के भाषण उबाने वाले है। परन्तु वह आधुनिक नेताओ की भाषणबाजी वृत्ति का पर्दाफाश करने के लिए सोद्देश्य प्रयुक्त हैं। तीसरा गुण है स्वाभाविकता का। समाज का यथातथ्य चित्रण करने वाले लेखक के लिए यह अत्यन्त जरूरी है। स्वाभाविकता के बिना विकृति ग्राह्य न होकर *त्याज्य बन जाती है—मानसिक स्तर पर। प्रिंसिपल, वैद्य इत्यादि* पात्रो के सवाद अत्यन्त स्वाभाविक तथा यथार्थ है। वस्तुत आज का सारा शिवपालगज वैद्य जी की बैठक मे समाया हुआ है। पात्र और कथा ये समानान्तर स्तर पर चलते हैं; शास्त्रीय शब्दावली मे इसे ही सम्बद्धता कहा गया है। अनुकूलता इसके सम्वादो का अपना ही वैशिष्ट्य है। यह अनुकूलता भिन्न-भिन्न स्तरो की है—परिस्थिति, मन स्थिति, अवस्था, उम्र इत्यादि। सभी पात्रो के सम्वाद इन्ही भिन्न-भिन्न स्तरो की अनुकूलता को लिए हुए है। इस उपन्यास के सम्वादो की सबसे बडी विशेषता है चरित्रोद्घाटन की। श्रीलाल शुक्ल ने शिवपालगज तथा शिवपालगजीय प्रवृत्तियो का उद्घाटन अपना उद्देश्य समझा है अत मनुष्य के मन के भीतर छिपे हुए सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलुओ को सम्वादो के माध्यम से ही उद्घाटित कर खोखले मनुष्य के कृत्रिम रूप को उजागर किया है। समग्र रूप से कहा जाये तो इसके सवाद चुटीले तथा रसीले है वे एक तरफ पाठक को रिझाते चलते हैं तो दूसरी ओर यथार्थ का दर्शन कराते हैं। लेखक नि.सदिग्ध रूप से सवादो की सृष्टि म सफल है।

भाषा शैली —श्रीलाल शुक्ल भाषा के खिलाडी हैं। शब्द तथा शब्द के भीतर रहने वाले विभिन्न अर्थों पर उनका पूरा अधिकार है। प्रमुख रूप से उन्होंने पाँच प्रकार की भाषाओ का प्रयोग किया है। (क) पात्रानुकूल भाषा —उपन्यास के सभी पात्र सामाजिक हैं अत. समाज मे जिस प्रकार भाषा बोली जाती है उसी भाषा का यहाँ प्रयोग हुआ है। सरपच, प्रिंसिपल, पहलवान तथा गजहे इनकी भाषा

अत्यन्त स्वाभाविक है। क्योंकि समाज के निचले तबके से सुन्दर भाषा की कल्पना भी व्यर्थ है (ख) ग्राम्य भाषा —यह इस उपन्यास का दोष भी है और गुण भी प्रातर्विधि तथा ग्रामीण स्त्रियों के शौच-समय के सम्वादों मे लेखक ने ग्राम्यत्व दोष से युक्त भाषा का प्रयोग किया है किन्तु उसे अश्लील नहीं कहा जा सकता हाँ, उसमे फूहड़पन जरूर है परन्तु वह यथार्थ है। (ग) विभिन्न भाषाओं का प्रयोग — भाषा विचारों की वाहिका है। वह साधन है अभिव्यक्ति का। अत लेखक विभिन्न भाषाओं से शब्दों को ग्रहण करता है बिना किसी संकोच के। अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृत आदि सभी प्रकार की भाषाओं से योग्य शब्दों को ग्रहण कर अर्थ-छटाओं की अभिव्यक्ति को वह महत्वपूर्ण समझता है। किन्तु कहीं भी यह भाषा खिचड़ी नहीं लगती अपितु वे स्वाभाविक रूप से आने के कारण ऐसे उपयुक्त हुए हैं कि उनका विदेशीपन समाप्त हुआ सा लगता है। (घ) लोक भाषा —बीच-बीच में इस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है जैसे प्रसिद्ध 'अवधी' का प्रयोग करते हैं। किन्तु लोक भाषा का प्रयोग बहुत कम स्थान पर और कम मात्रा में ही हुआ है। (ङ) कृत्रिम भाषा :—बीच-बीच में सरसता, चुटीलापन, श्रम-परिहार और मनोरंजन के लिए 'मकरी' जैसी कृत्रिम भाषा का प्रयोग किया गया है।

वस्तुत यह तो शास्त्रीय परिधि है जिसमें इसकी भाषागत खूबियों को बिठाया गया है। किन्तु श्रीलाल शुक्ल भाषा के कुशल शिल्पी हैं। अतः उनमे किसी किसी प्रकार का दुराग्रह नहीं। भाषा प्रवाहपूर्ण, सरस तथा सरल है। प्रवाह, सरलता और सरसता के लिए मुहावरे, लोकोक्ति तथा संस्कृत के श्लोक जड़ते चलते हैं। अपने व्यंग्यात्मक कथन के समर्थन में कहीं श्रेष्ठ कवियों की पंक्तियाँ, फिल्मी गीत, कहीं उर्दू के शेर कहीं-कहीं कुछ विशिष्ट पंक्तियाँ—हेर फेर कर जड़ते चलते हैं जिनसे वे अत्यन्त मार्मिक व्यंग्य का स्वरूप धारण कर लेते हैं।

श्रीलाल शुक्ल की भाषा की सशक्त अस्त्र है, व्यंग्य। समाज की विद्रूपता, विकृति तथा पतनोन्मुख अवस्था के चित्र प्रस्तुत करने वाले कलाकार को व्यंग्य का अवलम्ब अत्यन्त आवश्यक है। श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य ऊपर से रिझाने वाला, हँसाने वाला तथा गुदगुदाने वाला है किन्तु भीतरी स्तर पर असह्य हो जाता है, मन को कचोटता रहता है, टीसता है, सालता है। इस टीस का निर्माण ही लेखक का मुख्य उद्देश्य है। 'राग दरबारी' पाठकों को आन्तरिक रुदन कराती है।

शैली —राग दरबारी मुख्य रूप से वर्णनात्मक शैली में लिखा गया है। शुरू से अन्त तक चित्रों और वर्णनों की ही भरमार है। किन्तु लेखक इतना निपुण है कि पाठकों में नीरसता पैदा होने की सम्भावना के साथ ही एकाध हँसी की फुलझड़ी छोड़ देता है। या फिर तनाव को व्यंग्य के माध्यम से हल्का करता है, और साथ ही कथानक को गति देता है, इसके अतिरिक्त अन्य शैलियों का प्रयोग

भी लेखक ने किया है—हास्य व्यग्य रिपोर्ताज, विश्लेषणात्मक आचलिक तथा *सवादात्मक । जहाँ जिस किसी शैली से अपना लक्ष्य उदघटित किया जा सकता है* उसे नि संकोच लेखक ने स्वीकारा है ।

देश काल वातावरण—आधुनिक उपन्यासो मे इस तत्व का बहुत कम मात्रा मे प्रयोग मिलता है । वस्तुत ऐतिहासिक उपन्यासो म ही इनका पूर्णता के साथ निर्वाह हुआ है । किन्तु समाज का हूबहू चित्रण करते समय लेखक ने देशकाल और *वातावरण का चित्रण अत्यन्त सजगता के साथ किया है । देहाती और शहराती* संस्कृति के द्व द्व को बखूबी चित्रित किया है । कही कहीं इनका विपरीत चित्रण भी मिलता है—वह सोद्देश्य है । लेखक मानवीय विकृत मूल्यो और गन्दी सतहो को उभारना चाहता है अत यह लेखक की सफलता ही है । सबसे बडी विशेषता यह है कि उसने स्थानीय रगो (Local colours) का *प्रयोग अत्यन्त कुशलता के साथ किया है । वातावरण के समानान्तर ही स्थानीय रगो का प्रयोग हुआ है । उपन्यास* का मूल स्वर जिन्दगी की विकृति को दिखाना है । शिवपालगज उत्तर भारत का विशिष्ट अञ्चल होने के कारण उत्तर भारतीय सस्कृति उसमे मौजूद है किन्तु वह शिवपालगज पर हावी नही हुई है । स्थानीय रगो के प्रयोग से समूचे उपन्यास मे *सजीवता आ गई है । उपन्यास मे अनेक स्थानो पर आचलिकता का प्रभाव दिखाई* देता है । पात्रो की वेश भूषा भाषा अवधी तथा गजहो का चित्रण करते समय आचलिकता का पुट आया है । इस आँचलिकता के स्पर्श ने कथानक मे यथार्थता ला दी है । तीसरी विशेषता है प्रकृति चित्रण की । किन्तु यहाँ बहुत कम मात्रा मे प्रकृति का चित्रण हुआ है । *यहाँ प्रकृति का चित्रण परिवेश और मानसिक स्थिति के उद्घाटन के लिए किया गया है प्रकृति चित्रण मे लेखक का मन नही रमा जो* स्वाभाविक ही है ।

उद्देश्य —स्वातन्त्र्योत्तर भारत की पतनोन्मुख अवस्था का यथातथ्य चित्रण लेखक का प्रमुख उद्देश्य है । लेखक भी जन-सामान्य के समान ही निराश, हताश *और पीडित है किन्तु वह जीवन या यथार्थ स भागता नही ।* वह हमे जूझना सिखाता है । जीवन जीना है तो कर्मठ होकर ही । अत उपन्यासकार केवल गन्दगी विकृति गिरावट मूल्यसकट आदि स्वरो को यदि गुजाता है तो अश्लीलता भद्दे और फूहड रूप म नही बल्कि आशावादी स्वरो के साथ पाठको के जीवन के प्रति आकृष्ट करता है । वह पाठको को मृत्यु से परे ढकेलकर जीवन की ओर फकता है । *इस दृष्टि से लेखक अपने उद्देश्य मे सफल है । यह ठीक है कि वह समस्याओ* का समाधान नही सुझाता सुधार का उपदेश नही देता किन्तु यथातथ्य के दर्शन कराकर वह एक टीस हमारे भीतर जरूर पैदा करता है जो हमे फिर से सोचने के लिए मजबूर करता है । हम आत्मनिरीक्षण क लिए बाध्य करता है । यही हम

उपन्यास का उद्देश्य है जिसमें लेखक पूर्णतया सफल है ।

राग दरबारी महाकाव्यात्मक उपन्यास ?

'गोदान' के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य में महाकाव्यात्मक उपन्यास की चर्चा विस्तार से शुरू हुई । वस्तुतः केवल पृष्ठों के आधिक्य से कोई भी कृति महाकाव्यात्मकता का स्पर्श नहीं कर पाती । जब तक उपन्यास की कथावस्तु, पात्र तथा भाषा-शैली में औदात्य, गाम्भीर्य वैविध्य व्यापकत्व, देशकालातीतत्व आदि गुण नहीं आते तब तक उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास कहना अनुचित ही कहलायेगा। यहाँ हम चार तत्त्वों-कथानक, पात्र, भाषा-शैली तथा उद्देश्य के आधार पर राग-दरबारी की महाकाव्यात्मकता को निकषेंगे ।

कथानक —इस उपन्यास का कथानक अत्यन्त विशाल है । समाज के प्रत्येक अंग तथा जीवन के प्रत्येक पहलू का सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया गया है । यथार्थ का तो चित्रण करता ही है साथ ही जीवन के सभी सम्भावित कोणों से उसकी व्याख्या करता चलता है । इस कथा का मूल केन्द्र शिवपालगंज नामक एक काल्पनिक गाँव है, जो समग्र हिन्दुस्तान का प्रतीक है । जहाँ 'संस्कारहीनता, नैतिक विघटन और विकृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये हैं । रुप्पन बाबू को सारे हिन्दुस्तान में शिवपालगंज छाया हुआ दिखाई देता है । स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय जन-जीवन की मूल्यहीनता और ह्रासोन्मुख-संस्कृति का खुलकर चित्रण किया गया है । कथानक की विशालता के साथ-साथ विषय वैविध्य भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है । सहकारी संस्था, चुनाव पद्धति, पंचायत, बैंक, पुलिस महकमा, शिक्षालय, प्राध्यापक, मैनेजिंग बॉडी, न्यायालय, वैद्य, डाक्टर, सरकारी नौकर, चपरासी, अफसर, दुकानदार व्यापार, पंचवार्षिक योजनाएँ भ्रष्टाचार, सत्तारूढ़ दल, विरोधी दल, युवा जगत, प्रेम, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति, फिल्म, जुआरी, रिक्शे वाले, पहलवान, गुंडे, कृषि, नारेबाजी, नेता, खेलकूद, भूदान यज्ञ, अखबार, विवाह-पद्धति, बेकारी, धर्म, यूथ फेस्टिवल, वन संरक्षण, वृक्षारोपण, अन्ध विश्वास, भाषा-समस्या, नयी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष इत्यादि न जाने कितने विषयों को लेखक ने अपने कथानक में स्थान दिया है । हाँ, इतना जरूर है कि मुख्य विषय के साथ-साथ ही अवसर मिलने पर इन विषयों पर अपना मत व्यंग्यात्मक पद्धति से देता है जो आधुनिक जीवन की कृत्रिमता को बखूबी रेखांकित करता है ।

कथानक की विशालता, वैविध्य तथा घटना बाहुल्य इसकी सफलता है किन्तु इतने मात्र से उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसका कथानक देशकाल की सीमा से अनिबद्ध नहीं । विशिष्ट काल की तथा विशिष्ट परिस्थितियों से घिरे हुए लोगों का चित्रण यहाँ किया गया है । घटनाएँ भी समय सापेक्ष हैं । 'शिवपालगंज को केन्द्र माना है किन्तु यह कथानक में शाश्व-

ता और सार्वजनीनता के तत्त्व को नहीं उत्पन्न कर पाते । फिर भी सदोष क्यो न हो कथानक की दृष्टि से 'राग दरबारी महाकाव्यात्मक उपन्यास की परिधि का स्पर्श तो कर लेता है । "स्थितियाँ इतनी वजनदार हैं कि इन पहलुओं का वस्तुगत प्रस्तुतीकरण ही महान उपन्यास बन जाता है । अत समाज का प्रतिनिधित्व *(chronic Quality)* की दृष्टि से *राग दरबारी को महाकाव्यात्मक उपन्यास* कहने मे कोई सकोच नही होता ।'[१]

पात्र —इस उपन्यास मे पात्र बहुलता और पात्र-वैविध्य विद्यमान है । किंतु शाश्वततथा अमर पात्र नहीं हैं, जो कि महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए आवश्यक है । इस उपन्यास मे वैद्य जी तथा रगनाथ ये दो ही प्रतिनिधि पात्र हैं जो कि सशक्त हैं अन्य पात्रो के प्रतिनिधित्व मे कोई अर्थवत्ता नही है किन्तु उपर्युक्त दोनो प्रातिनिधिक पात्रो के व्यक्तित्व मे कोई औदात्य नही और न ही कोई Tregic element है । इसके अतिरिक्त समूचे उपन्यास मे एक भी ऐसा पात्र नही जो जाति का प्रतिनिधित्व करता हो और सबसे बडे आश्चर्य की बात है कि स्त्री पात्र का तो अभाव है, जो महाकाव्यात्मक उपन्यास की दृष्टि से दोष ही माना जायगा । कोई भी पात्र व्यक्तित्व के भीतरी-सघर्ष, तनाव और घुटन को चित्रित नहीं करता न ही कोई पात्र मूल्यो की प्रतिष्ठापना ही करता है, केवल समाज मे विद्यमान पतित या पतनो मुख पात्रो को ही चित्रित किया गया है । यह ठीक है, कि ये पात्र यथार्थ और विकृति का हूबहू चित्र प्रस्तुत करते हैं किन्तु व्यक्तित्व के प्रति आस्था उत्पन्न नही कर पाते । "पर वे पात्र कहाँ हैं जो दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं, लेकिन अन्धेरे मे ही कही उनकी सघर्ष यात्रा अनवरत चल रही है और वे दिन-रात अपने-अपने रास्तो को पा लेने या उसे बना लेने के लिए बेचैन हैं ।"[१] अत पात्र की दृष्टि से देखा जाये तो 'राग दरबारी' का कोई भी पात्र महाकाव्यात्मक उपन्यास के स्तर का नही है ।

शिल्प —'राग दरबारी' की भाषा मे यथार्थता है, सरसता है, प्रवाह है और प्रभावोत्पादकता है किन्तु उसमे गाभीर्य का अभाव है । उपन्यासकार गाँव की जिन्दगी को चित्रित करना अपना ध्येय मानकर चला है अत जब गाँव ही फूहड, बेहूदा तथा भद्दा है तो उसकी अभिव्यक्ति उससे भिन्न कैसे ? जन सामान्य के जीवन को चित्रित करने के कारण तथा उसमे जीवतता लाने के लिए सामान्य जन की भाषा का प्रयोग किया है । कही-कही लोक भाषा का प्रयोग किया है । इतना ही नही कई स्थानो पर उनकी भाषा मे ग्राम्यत्व दोष भी मिलते हैं । इसके अतिरिक्त इनके प्रकृति वर्णन भी अभिजात्य नही और काव्यात्मक भी नही हैं । इनकी भाषा का सबसे बडा अस्त्र है व्यग्य । व्यग्य श्रीलाल शुक्ल की सीमा भी है और उपलब्धि भी । *आद्यात उपन्यास मे व्यग्य समाया हुआ है, अत. कई स्थानो पर वह हल्का-*फुल्का हो गया है । "प्रामाणिक अनुभूतियो को लेकर जिस प्रकार इस उपन्यास

का आरम्भ हुआ, यदि व्यग्य एव हल्के-फुल्के सतही विवरणो के मोह मे न पडकर उसे गहरी अन्तर्दृष्टि से, सूक्ष्मता से ग्रहण करने की कोशिश की होती तो निश्चय ही यह उपन्यास विगत बीस वर्षों की एक विशिष्ट उपलब्धि बन सकता था।"[15] आलोचक का यह कथन स्पष्ट कर देता है कि लेखक व्यग्य के मोह मे पडकर महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए आवश्यक औदात्त्य और गाभीर्य को नही बटोर पाया है और यही वह महाकाव्यात्मक उपन्यास की मात्रा की दृष्टि से हल्का लगता है।

उद्देश्य:—'राग दरबारी' स्वातन्त्र्योत्तर विघटन का हूबहू चित्र प्रस्तुत करता है। किन्तु इसमे किसी आदर्श स्थिति की कल्पना तक भी नही की गई है, न ही लेखक उदात्त ध्येय को लेकर चला है। इसके उद्देश्य से पाठको को न तो कोई सदेश मिलता है और न ही विशिष्ट जीवन दृष्टि। महाकाव्यात्मक उपन्यास के लिए उदात्त लक्ष्य का होना नितात अनिवार्य है। अत उद्देश्य की दृष्टि से भी यह उपन्यास महाकाव्यात्मक उपन्यास की कोटि मे नही बैठ पाता है।

उपर्युक्त चार तत्त्वो के आधार पर किये गये विवेचन से स्पष्ट है कि 'राग-दरबारी' की विशालता तथा दीर्घकायत्व उसे महाकाव्यात्मक उपन्यास की कोटि मे बिठा पाने मे असमर्थ है।

**राग दरबारी . व्यग्य कृति या व्यग्य दृष्टि**

व्यग्य-कृति या व्यग्यदृष्टि से युक्त यह उपन्यास लिखा गया है। इसको परखने के लिए व्यग्य की परिभाषा को जानना अत्यन्त आवश्यक है। डिफो ने "The end of satire is Reformation व्यग्य का लक्ष्य सुधार को माना है। इसी प्रकार स्विफ्ट, ड्रायडन आदि लेखको ने व्यग्य का प्रमुख उद्देश्य मानव के व्यक्तित्व मे निहित दोषो के सुधार को ही माना है। व्यग्यकार का कार्य डॉक्टर के समान है जो समाज मे फैली हुई गन्दगी को दूर करता है। वह यथार्थ का उद्घाटक, दोष-सुधारक, नियम-प्रतिष्ठापक, न्यायाधीश, आदर्शों का पालक, नीति-मत्ता का प्रस्तोता, दोषी को दण्डित करने वाला, सामाजिक असतुलन को नष्ट कर उसे संतुलित करने वाला होता है। कई सतहो पर एक साथ काम करता है। इसलिए उसे Moral agent तथा Social Scavanger कहा जाता है।

राग दरबारी १९६८ मे लिखा गया। समूचा भारत राजनैतिक दृष्टि से पतन की कगार पर खडा हुआ था। चारो तरफ उच्छृ खलता छाई हुई थी। सभी आदर्शों तथा मूल्यो का अवमूल्यन हो चुका था। ऐसे समय से प्रभावित होकर ही लेखक ने उपन्यास के कथानक का ताना-बाना बुना है। शिवपालगज कथापट का केन्द्रबिन्दु है, जो प्रतीक या प्रतिनिधि रूप मे चित्रित है। इसी शिवपालगज मे सारा भारत समाया हुआ है। इस गाँव मे सभी क्षेत्रो मे अन्याय, अत्याचार, भ्रष्टाचार, आर्थिक शोषण, नैराश्य, कुण्ठा तथा नैतिक अवमूल्यन का साम्राज्य है।

"सच्चा व्यंग जीवन से सीधा साक्षात्कार होता है, जीवन की सच्ची समीक्षा होती है। यह शर्त तो रागदरबारी पूरी करता है किन्तु इसके साथ ही "विसंगतियों से टकराने का साहस पैदा करना सफल व्यंग का काम है। यह मनुष्य को एक और अच्छा मनुष्य बनाने की एक प्रक्रिया है।" व्यंग्यकार के इस ध्येय की पूर्ति रागदरबारी नहीं कर पाता है अत इसे व्यंग-कृति कहने की बजाय व्यंग-दृष्टि युक्त लिखा गया या क्रीडा-दृष्टि युक्त (Comic) लिखा गया उपन्यास कहना अधिक समीचीन जान पड़ता है। दूसरी बात यह कि लेखक घटना और पात्र दोनों दृष्टियों से घोर यथार्थ का उद्घाटन तो करता है किन्तु मूल्यों के प्रतिष्ठापक पात्र का अभाव दिखाई देता है। तीसरी बात यह कि हास्य व्यंग की अति के भी कारण दोष उत्पन्न हुआ है। इसीलिए आलोचकों ने 'स्माइल ए टू डे', 'स्वतन्त्रता दिवस का सप्लीमेंट', 'अच्छा मजाक' आदि विशेषण दिए है, जो प्रभाव के गाम्भीर्य को हल्का करते हैं। अत समग्र रूप से विचार करने पर डॉ० शांतिस्वरूप गुप्त के मत से सहमत होकर कहा जा सकता है कि रागदरबारी को "व्यंग-कृति तो नहीं कहा जा सकता, पर उसमें व्यंग दृष्टि या क्रीडा (Comic) दृष्टि अवश्य है। पूरे उपन्यास को इसी क्रीडा-दृष्टि से देखा गया है। व्यंग-दृष्टि ने उपन्यास की समृद्धि में निश्चित योगदान दिया है।"

**आंचलिकता का प्रश्न** —मानव में आंचलिक प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन काल से विद्यमान है। वह जिस अंचल में पलता है उसे अभिव्यक्ति देना चाहता है। यह आंचलिक प्रवृत्ति कलाकार को व्यापक फैलाव की बजाय गुणात्मक गहनता की ओर ले जाती है। आंचलिक कलाकार उस अंचल विशेष के रीति रिवाज, धर्म, संस्कृति तथा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक इन सभी चित्रों को विस्तार से प्रस्तुत करता है। कोश में अंचल शब्द के दो अर्थ दिए गए हैं —(१) अंचल शब्द एक ऐसे भूखण्ड विशेष का वाचक है जो सांस्कृतिक, आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से अपने आप में एक इकाई हो जिसके जीवन की कुछ अपनी विशेषताएँ हो।" (२) जनपद और क्षेत्र 'अंचल' के कोशगत अर्थ को जान लेने के बाद आंचलिक उपन्यासों के मूल तत्वों का संकेत करना भी आवश्यक हो जाता है जिसके आधार पर ही रागदरबारी आंचलिक उपन्यास है या नहीं, यह सिद्ध किया जा सकता है। प्रमुख रूप से आंचलिक उपन्यास के छ मूलतत्व हैं :—

(क) कथानक का आंचलिक आधार
(ख) लोक संस्कृति का चित्रण
(ग) अंचल की राजनीतिक और आर्थिक स्थिति का चित्रण
(घ) भौगोलिक स्थिति का अंकन या प्रकृति-चित्रण
(ङ) पात्रों के चरित्र विकास में अंचल का योग

(च) जनजागरण की नयी दिशा का संकेत ।

उपर्युक्त इन छः तत्त्वों के आधार पर रागदरबारी को निकष कर देखा जाए तो यह सिद्ध होता है—

(क) शिवपालगंज विशिष्ट अंचल मात्र नहीं है । रूप्पन बाबू तो स्वयं कहते हैं कि "सारे मुलक में शिवपालगंज फैला है ।" वस्तुतः शिवपालगंज तो प्रतीक है पतनोन्मुख और मूल्यहीन स्वातन्त्र्योत्तर समग्र भारत का । अतः जब शिवपालगंज विशिष्ट अंचल ही नहीं सिद्ध होता तो अन्य तर्क स्वयं निराधार हो जाते हैं ।

(ख) आंचलिक उपन्यासों में नैतिक मूल्यों का खंडन-मंडन तथा विकास और प्रतिष्ठापना की चर्चा नहीं होती किन्तु 'रागदरबारी' का तो यही मूल उपजीव्य है ।

(ग) आंचलिक उपन्यास व्यापकता की बजाय संक्षिप्तता का चित्रण करते हैं । किन्तु 'रागदरबारी' शिवपालगंज के माध्यम से स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय मूल्य-हीनता का दस्तावेज है । इसे स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाज का दर्पण कहा जा सकता है ।

(घ) 'शिवपालगंज' के शिवप्रसाद सिंह के 'करैता' की गाँव की तरह तो है जिसमें ग्रामीण, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थितियों के चित्र मौजूद हैं किन्तु 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' से सर्वथा भिन्न है ।

(ङ) 'रागदरबारी' में गाँव की जिन्दगी को रूपायित किया गया है, यत्र-तत्र ग्रामीण भाषा का प्रयोग भी किया गया है किन्तु इतने से कोई उपन्यास आंच-लिक नहीं कहलाया जा सकता ।

उपर्युक्त समीक्षण से यह स्पष्ट है कि 'रागदरबारी' दरबारी गाँव की जिन्दगी से घनिष्ठतापूर्वक सम्बद्ध होते हुए भी एक अत्यन्त अनांचलिक उपन्यास है । गाँव के माध्यम से यह आधुनिक भारतीय जीवन की मूल्यहीनता और संस्कारहीनता को एक सहज निर्ममता के साथ अनावृत करता है ।"[१५]

**शीर्षक की प्रतीकात्मकता**—शीर्षक और कृति का परस्पर सम्बन्ध रहता है । शीर्षक से ही कृति के कथानक का बोध होता है, और कथानक का मूलभाव शीर्षक में केन्द्रित रहता है । किन्तु आजकल यह आवश्यक नहीं रहा है फिर भी पारस्परिक सम्बन्ध को अस्वीकारा नहीं जा सकता । 'रागदरबारी' में किसी साहित्यिक मानदण्ड के समीप होने की बजाय जिन्दगी के ज्यादा समीप होने की कोशिश है ।[१६] यह कथन स्पष्ट करता है कि रागदरबारी जीवन की धारा को पकड़ने का प्रयास है । लेखक का लक्ष्य देश में फैले हुए अनाचार, भ्रष्टाचार, अन्याय तथा अवमूल्यन को चित्रित करना है । समूचे उपन्यास का सम्बन्ध ही भारतीय जीवन से है । अतः शीर्षक का सम्बन्ध भी जीवन से है किन्तु उसे प्रतीकात्मक रूप से रखा गया है । दरबारी शब्द से सामंती संस्कृति का चित्र पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत होता

है, जिसमे राजा की रुचि को प्रधानता को महत्व दिया जाता था। दरबारी उसकी पूर्ति करने के लिए विवश होते थे। यहाँ तक कि वह उनका स्वभाव ही बन जाता था। लेखक का मत है कि आज भी भारत मे सामतवाद के नष्ट होने के बाद भी सामन्तवादी मनोवृत्ति नष्ट नही हुई। प्राचीन राजा महाराजाओ के स्थान पर आधुनिक मत्रियों ने, अधिकारियो ने स्वय को आसीन कर लिया है। सामान्य जनता आज भी दरबारी बनी हुई है। आधुनिक नेता सामतो के प्रतीक के रूप मे तथा सामान्य जन दरबारी के रूप मे चित्रित हैं। इस प्रकार प्रतीकात्मक अर्थ लगाने का ठोस आधार यह है कि श्रीलाल शुक्ल की अभिव्यक्ति का प्रमुख साधन व्यग्य है। सम्पूर्ण कथा मे लाक्षणिक अर्थ प्रमुख है। ऐसे व्यग्य कथाकार से शीर्षक अछूता रहे यह सम्भव ही नही। अत शीर्षक का सम्बन्ध जीवन से है, भारतीय जनमानस की मनोवृत्ति से है। "यह शीर्षक न तो सगीतशास्त्र से कोई सम्बन्ध रखता है और न तो दर्शन एव धर्म से।

स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद नये सामतो का उदय हुआ है और नये दरबारी अस्तित्व मे आए है। ये दरबारी परोपजीवी प्रवृत्ति वाले हैं जो वगुलाभगत नेताओ की 'राग' अलाप रहे हैं।"[१६]

**रागदरबारी कृति की राह से कृति की पहचान** —जिस प्रकार जीवन और मूल्य निरन्तर परिवर्तित होते रहते हैं उसी प्रकार साहित्य और उसके प्रतिमान भी निरन्तर परिवर्तित होते चलते हैं। साहित्य के रूप के साथ समीक्षा के प्रतिमान न बदले तो सच्ची समीक्षा सम्भव ही नही। अत 'रागदरबारी' की समीक्षा पूर्व-निर्धारित मानदण्डो के आधार पर न कर 'रागदरबारी' के माध्यम से ही की जाए तो ज्यादा उपयुक्त होगी। ऊपर औपन्यासिक तत्वो के आधार पर की गई समीक्षा का शीर्षक ही स्वय स्पष्ट कर देता है कि वह केवल अध्ययन की सुविधा मात्र के लिए है। किसी भी कृति की सही पहचान उसके बीच से गुजर कर ही सभव है। यहाँ हमने यही प्रयास किया है।

'रागदरबारी' १९६८ मे प्रकाशित रचना है जबकि भारतीय समाज पतन की चरम अवस्था पर पहुँचा हुआ था। किसी भी पीढ़ी के लिए स्वतन्त्रता प्राप्ति ही अन्तिम ध्येय नही होना चाहिए। उपलब्ध स्वतन्त्रता के अस्तित्व को टिकाना अत्यन्त आवश्यक होता है। किन्तु भारत मे इस प्रकार नही हुआ। पराधीनता के काल मे जनता की वृत्ति त्याग, सेवा, देशप्रेम आदि से समन्वित थी। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही हमारी मनोवृत्ति मे अवसरवादिता, स्वरति, व्यक्तिपूजा, ऐश आराम की वृत्ति, चारित्रिक अभाव, अनुशासनहीनता, दायित्वहीनता कार्यकुशलता का अभाव आदि ऐसे घर कर बैठ गए जिससे सामाजिक जीवन मे एक प्रकार की असगति और अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी। चारों तरफ नैतिक पतन छा गया। कोई भी राष्ट्र या

व्यक्ति पारिश्रिक उन्नति के बिना समृद्ध नही बन सकता । स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारतीय समाज मे प्रत्येक व्यक्ति (Crisis of Leadership) और (Crisis of Character) मे इस प्रकार फँसा गया है कि उसके बाहर वह नही निकल पा रहा है ।

यह युग असतोष और अस्वीकार का युग है । आधुनिक पीढी मे यह असतोष और अस्वीकार परिस्थितिजन्य है । अत आधुनिक पीढी के व्यक्ति को पुराने नेता, विश्वास, आस्था, आदर्श, परम्परा और मूल्यो से सख्त नफरत है । वह इन सबको तोडना चाहता है, बदलना चाहता है । पुराने आदर्शों और मूल्यो की जडे इस असगति ने पूरी तरह हिला दी हैं जिससे चारो तरफ एक प्रकार का असतुलन, आक्रोश, निराशा और कुण्ठा भारतीय जन-जीवन मे विद्यमान दिखाई देती है ।

'रागदरबारी' का कथा पट उपर्युक्त सामाजिक यथार्थ के तन्तुओ से निर्मित है । वस्तुत 'रागदरबारी' स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय यथार्थ का दर्पण है । 'शिवपालगज' कथा का केन्द्रबिन्दु है जो सारे मुलक मे फैला हुआ है । रागदरबारी भारतीय जीवन का आत्मसाक्षात्कार है और इसका माध्यम है व्यग्य । व्यग्य जीवन की सच्ची समीक्षा है । अतः लेखक ने व्यग्य के माध्यम से भारतीय जीवन की अव्यवस्था, रिक्तता और मूल्यहीनता के चित्र उपस्थित किये हैं । यह युग नारो का युग है, ठोस कार्य का कम । स्वतन्त्रता के बाद भारतीय सामाजिक जीवन की उपलब्धि के नाम हुल्लडबाजी, नगई, विघटन, असुरक्षा, असहकार, तस्करी, सस्था-जीविता, मोहभग, तनाव, लूटवृत्ति, भ्रष्टाचार, महँगाई, दिशाहीन विद्रोह इ० अनगिनत वृत्तियो को गिनाया जा सकता है । 'रागदरबारी' इन सब वृत्तियो का कच्चा चिट्ठा है । इसलिए उसे भारतीय यथार्थ जीवन का दस्तावेज कहा गया है । जिसमे स्थितियाँ और कथ्य वर्णन-क्रम से नही जीवन-क्रम से अर्थात् उन्हें जिए जाने की व्यग सवेदनाओ से ओत-प्रोत है ।

लेखक ने कथा के माध्यम से समाज की विसगति की उजागर किया है जैसे इस कथा का केन्द्र शिक्षा-सस्था है जिसका प्रमुख कार्य गुटबन्दी और अशिक्षा देना है, पुलिस असुरक्षा के लिए है, सहकार—स्वाहाकार तथा गबन के लिए, राजनीति अराजकता के लिए है । देशरक्षक आज देशभक्षक बन बैठे हैं । चुनाव—बलात् सर्वसम्मति से लिए जाते हैं । अधिकारी रिश्वतखोर हैं । इस प्रकार सारा समाज एक प्रकार के छद्मरूप को धारण किए हुए है । प्रत्येक व्यक्ति मुखौटा ओढे हुए है अत असली व्यक्तित्व की पहचान करना अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है । उपन्यास को पढते हुए ऐसा लगता है कि मानो आदि से अन्त तक घटनाएँ घटित नही होती अपितु दुर्घटनाएँ होती हैं । और आश्चर्य है कि जनसामान्य तब भी निष्क्रिय, निश्चेष्ट और निश्चिन्त है ।

इस प्रकार लेखक ने समाज के उस अग को जो मूल्यहीन और खोखला है, व्यग के माध्यम से उद्घाटित किया है । संभव है कि कथापट 'समग्रता' को न लिए हो किन्तु निसदिग्ध रूप से यह स्वीकार करना होगा कि स्वातत्र्योत्तर भारतीय जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने मे श्रीलाल शुक्ल को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है ।

कथा के समान सभी पात्र 'स्वरति' मे मग्न हैं । हाँ, यह ठीक है कि कोई भी पात्र 'आदर्श पात्र' नही है जो कि स्वाभाविक है । क्योकि यथार्थ जीवन मे ही कही आदर्श नही रहा है तो कृति मे कैसे सम्भव है ? सभी पात्र यथार्थ तथा जीवन्त है ।

वैद्य कुलपूज्य ब्राह्मण हैं । पेशा वैद्यकी है । साथ ही वे स्कूल मैनेजर तथा कोऑपरेटिव के मैनेजिंग डायरेक्टर हैं । इतने से ही वे सन्तुष्ट नही । पचायत को भी वे अपने आधीन रखने का प्रयत्न करते हैं । वैद्य आधुनिक नेताओ के प्रतीक हैं, जो बगुलाभगत हैं । शाकाहारी पोशाक पहनकर मासाहार करते हैं । प्रिन्सिपल वैद्य के दरवाजे पर भाग घोटते हैं । उनका प्रमुख कार्य कॉलेज मे गुटबन्दी, मारपीट, गदगी, नगई, गालीगलौज, वाह मात इ० कराना है । किसी भी शिक्षक को उसकी योग्यता पर नही अपितु या तो चापलूसी के आधार पर या वैद्यजी के रिश्तो के आधार पर नियुक्त करते हैं । आधुनिक अधिकारियो की प्रमुख चापलूसी वृत्ति के रूप मे प्रिंसिपल प्रतिनिधि रूप मे चित्रित किए गए हैं । रुप्पन ७८ वर्षीय युवक है । असतोष एव अस्वीकार उनके व्यक्तित्व के प्रमुख अग हैं । स्कूल मैनेजर के पुत्र हैं, छ.त्रनेता हैं तथा साथ स्थानीय राजनीति मे सक्रिय भाग लेते हैं । वे उच्छृखलता उदण्डता तथा अनुशासनहीनता के रोग से ग्रस्त हैं । स्कूल, थाना, कौऑपरेटिव सस्था आदि सब मे युवक होने के नाते दखलदाजी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं । रूप्पन की सबसे बडी विशेषता है कि युवक होने के कारण जब मन मे आए तब वे किसी भी युवती से प्रेम करने का अधिकार रखते हैं । वस्तुत रूप्पन के माध्यम से आधुनिक छात्रनेताओ की स्वार्थवृत्ति का पर्दाफाश किया है । रगनाथ काफी पढे-लिखे हैं । अत. अकर्मण्य, निष्क्रिय तथा निठल्ले हैं । समाज उन्हे बुद्धिजीवी कहता है अतः वे यथार्थ से पलायन करते हैं, अतीत के स्वप्नो मे रमने वाले, कायर, आत्मघाती, कुण्ठित, खोखले, पराश्रित, निराश आदि रोगो से ग्रस्त हैं । उनका समूचा व्यक्तित्व लिजलिजा है जो अधिक पढ-लिख लेने के कारण है । रगनाथ यहाँ आधुनिक बुद्धिजीवी के प्रतिनिधि पात्र रूप मे चित्रित है जो यथार्थ से दूर भागकर स्वरति मे डूबकर आत्मघात करता है । लगड और खन्ना—दो ऐसे पात्र हैं जो थोडे से आदर्शों को लेकर जीते हैं । वे भी पूर्णत आदर्श पात्र नही है । सभव भी नही क्योकि लेखक का उद्देश्य यथार्थ का चित्रण है । एक नकल के लिए लगड को अपने जीवन से हाथ धोना पडता है । आधुनिक लालफीताशाही तथा आदर्शवादिता का

निर्मम उपहास किया गया है ।

इन प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त सनीचर, मोतीराम, मालवीय, छोटा पहलवान, रामाधीन आदि वैयक्तिक चरित्रों के माध्यम से लेखक ने उनके स्वार्थवृत्ति तथा खोखलेपन का पर्दाफाश किया है । और दरोगा, जज, वकील, सिपाही, पच, चपरासी, गवाह, इंजीनियर, किसान, कुटुम्ब नियोजन अधिकारी, क्लर्क आदि प्रातिनिधिक पात्रों के माध्यम से इनकी भ्रष्टाचार, कामचोर, रिश्वतखोरी वृत्ति का अकन किया है । बेला एकमेव स्त्री पात्र है जो गौण पात्र है । नारी सत्ता आज भी भारतीय जीवन मे उपेक्षित है, इसका ज्वलन्त उदाहरण है ।

सम्भव है कि उपर्युक्त पात्रो मे मूल्यो का प्रतिष्ठापक पात्र न हो अत लक्ष्मी-सागर वार्ष्णेय ने पात्रो को लेकर खूब आलोचना की है कि जहां समाज ही ऐसे पात्रो से भरा हुआ हो, जिसने उसे जीर्ण-शीर्ण, खोखला, रुग्ण तथा मोहभग की आस्था तक पहुँचाया हो वहाँ आदर्शो के प्रति आस्था रखने वाले पात्रो का सृजन यथार्थ न होकर काल्पनिक होगा जो उपन्यास मे गुण की बजाय दोष ही अधिक साबित होगा ।

कथ्य के नवीन होने के कारण लेखक को नए शिल्प का अवलम्ब ग्रहण करना पडा है । कथ्य के अनुकूल शिल्प को ढाला है । विसगतिमय समाज को प्रस्तुत करने के लिए व्यग को साधन के रूप मे ग्रहण किया है । इनके सवाद सक्षिप्त, चुभते, तीखे तथा आन्तरिक विसगति को उद्घाटित करने वाले हैं । व्यग, उनका सबल अस्त्र है । सवादो ने कथा को गति दी है और साथ ही हास्य की सृष्टि भी । भाषा पर लेखक को असाधारण अधिकार है । भाषा न तो सस्कृतनिष्ठ है न ही अत्यन्त गम्भीर तथा न ही विशिष्ट गरिमामडित । जनसामान्य के अनुकूल ही भाषा का प्रयोग सर्वत्र हुआ है । भाषा मे कही भी त्रुटि दिखाई नही देती । वह सीधी-सादी, सरल, तत्सम, तद्भव तथा देशज शब्दो को लिए हुए चलती है । भाषा का प्रमुख साधन है व्यग । इसी व्यग से अभिधेय अर्थ के साथ लक्षणिक अर्थ का सकेत देते चलते हैं । अभिधापरक अर्थ हास्य की सृष्टि करता है तो लाक्षणिक पाठक के अन्त-र्मन मे पीडा और आक्रोश जगाता है । भाषा मे मुहावरे, लोकोक्तियाँ, फिल्मीगान तथा सस्कृति की उक्तियों को तोड-मरोड कर जडा है किन्तु वे विकृत अर्थ को स्पष्ट करते हैं । कहीं-कहीं काव्यात्मक भाषा का भी प्रयोग हुआ है । कृत्रिम भाषा का सोद्देश्य प्रयोग भी मिलता है । प्रत्येक शब्द नये आयामो को उद्घाटित करता है जिससे कथनभगिमा मे सादगी और तीखेपन का समावेश हुआ है । व्यग के माध्यम से लेखक ने अर्थो के खोखलेपन विभिन्न आयाम, व्यजकता, लाक्षणिकता, हास्य का उद्रेक तथा आन्तरिक पीडा को व्यक्त किया है । व्यग इसके शिल्प की सबसे बड़ी उपलब्धि है ।

इस प्रकार कृति की राह से गुजरने पर यह कृति सम्भव है कि उपन्यास के तत्त्वों के आधार पर श्रेष्ठ उपन्यास सिद्ध न हो, महाकाव्यात्मक उपन्यास के लक्षण न हों, श्रेष्ठ व्यंग-कृति न हो किन्तु यह निःसंदिग्ध रूप से स्वीकार करना होगा कि 'राग दरबारी' भारतीय स्वातन्त्र्योत्तर जीवन के चारित्रिक ह्रास तथा जीवन के विभिन्न सदोष अंगों के चित्रण के माध्यम से वह आत्मसाक्षात्कार कराता है, यही उसकी महती उपलब्धि है।

## टिप्पणियाँ

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान नेमिचन्द्र जैन
२ आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि डॉ रामदरश मिश्र, पृ० ११८
३ आलोचना त्रैमासिक कमलेश का लेख
४ आज का हिन्दी साहित्य : संवेदना और दृष्टि : डॉ रामदरश मिश्र पृ० १२६
५, ६ रागदरबारी श्रीलाल शुक्ल, पृ० ३३
७ वही, पृ० ४१
८ वही, पृ० ४५
९, १०, ११ वही, ३२७
१२ वही, ३४४
१३ वही, ३६
१४ वही, पृ० ८९
१५ वही, पृ० ३२३
१६ वही, पृ० २०५
१७ वही, पृ० १३६
१८ वही, पृ० ३७४
१९ वही, पृ० २१८
२० वही, पृ० ८१
२१ वही, पृ० १६५
२२ वही, पृ० १८५
२३, २४, २५ वही, पृ० २१
२६ वही, पृ० १६७
२७ वही, पृ० २७१
२८ वही, पृ० २८
२९ वही, पृ० २१५
३०, ३१ वही, पृ० २१८
३२ वही, पृ० ३९

३३ हिन्दी उपन्यास महाकाव्य के स्वर डॉ शान्तिस्वरूप गुप्त
३४, ३५ डॉ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
३६ रागदरबारी • प्रकाशकीय वक्तव्य
३७ कमलेश
३८ डॉ त्रिभुवन सिंह

# विपात्र का कथ्य : दरमियानी दूरियों का दर्द

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

मुक्ति, अकेले मे अकेले की नही हो सकती। यदि वह है तो सब के साथ है।
—मुक्तिबोध

अद्वैत का ब्रह्म मात्र 'अनस्तित्व का अस्तित्व' है जिसकी मनुष्य को बिल्कुल जरूरत नही है। —मुक्तिबोध

व्यक्तिस्वातन्त्र्य का ढोंग करने वाले विषमताग्रस्त देशों में मजदूरी के कारण जननेन्द्रिय भी बेचे जाते हैं।

गरीबी की वेदना और धन की अहम्ग्रस्त वासना के गुणीकरण के कारण भीतर और बाहर की दरिद्रता बढती ही जाती है। —मुक्तिबोध

वेदना स्वयं कर्म का उत्साह उत्पन्न नही कर सकती। —मुक्तिबोध

सवाल जिन्दगी में होने वाली गलतियों का नही है, सवाल उन फासलों का है, जिन्हें बीचोबीच रखकर गल्ती नही सुधारी जा सकती। ऐसा क्यों इसलिए कि हर एक को घमण्ड है कि उसके अपने पास जो कुछ है वह मूल्यवान है
—मुक्तिबोध

## १२
# विपात्र

'विपात्र' उपन्यास मुक्ति की उपनिषद् है। मुक्तिबोध ने पारम्परिक भारतीय विचारधारा के समान ही मुक्ति को मानव जीवन का परम पुरुषार्थ माना है, किन्तु उनकी मुक्ति-विषयक धारणा पारम्परिक धारणा से एकदम भिन्न है। उनकी दृष्टि मे परलोक सम्बद्ध एवं व्यक्तिपरक मुक्ति की कैवल्यात्मक धारणा उद्दाम स्वार्थमात्र है। इस *उद्दाम स्वार्थ के मूल मे ब्रह्मविषयक अद्वैतवाद की विचारधारा है।* उनके अनुसार अद्वैतवाद का यह ब्रह्म 'मात्र अनस्तित्व' का अतिस्तत्व है, जिसकी मनुष्य को 'बिलकुल जरूरत नही है।'[१] उन्होंने 'ओ काव्यात्मन् फणिधर' कविता मे ब्रह्म के मुँह का टेढापन कहते हुए स्पष्ट किया है कि इसी ब्रह्म के आश्रय मे अमीर अधिक अमीर और गरीब अधिक गरीब बनते चले जा रहे हैं। इस व्यक्तिपरक ब्रह्म की आराधना से प्राप्त होने वाली मुक्ति की धारणा के विपरीत उनका तो विचार यह है कि—'*मुक्ति, अकेले मे अकेले को नही हो सकती।*" "*यदि वह है तो सबके साथ है।*"[२]

सब के साथ रहकर "भीतर व बाहर के दलिद्दर से मुक्ति"[१] प्राप्त करना ही उनकी दृष्टि में सच्ची मुक्ति है। दूसरो के साथ सघन आत्मीय सम्बन्धो के परिवेश मे जीने को ही वे जीवन का परम पुरुषार्थ मानते हैं। सघन आत्मीय सम्बन्धो से रहित जीवन उनकी दृष्टि मे शून्य मात्र है।

भीतर और बाहर की दरिद्रता से मुक्ति पाने के लिए व्यक्ति व्यक्ति के बीच *सघन आत्मीय सम्बन्धो का स्थापित होना अनिवार्य है। मुक्तिबोध ने व्यक्ति-व्यक्ति* के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्धो के महत्त्व पर बल देते हुए लिखा है कि—'विभिन्न वायुमण्डलो और दिक्कालो मे से आए हुए लोग भी, एक ठडे घने पीपल की छाया के नीचे विश्राम करते हुए गले मिलें तो इसमे मुझे प्रकृति का विशेष उद्देश्य ही दिखाई देता है।"[४]

इस प्रकार के विविध मिलन-स्थलो पर स्थापित हुए सम्बन्धो के माध्यम से *ही व्यक्तियो मे उस सामाजिकता का उदय होता है, जिसे मुक्ति की माता कहा जा* सकता है। सौहार्दपूर्ण सामाजिक सम्बन्धो के कारण अनेक व्यक्ति एक सामाजिक

इकाई के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। आत्मीय सम्बन्ध के जादूभरे प्रभाव से एक और एक व्यक्ति मिलकर गणित के नियम के अनुसार दो नहीं हो जाते, बल्कि एक ही बने रहते हैं। मुक्तिबोध ने इसीलिए कहा है—

"एक-घन एक से
पुनः एक बनाने का यत्न है अविरत।"[१]

एक-घन एक से पुनः एक बनाने वाले आत्मीय सम्बन्धों पर विचार करते हुए व्यक्तियों की रुचि भिन्नता को भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि "आदमी की पसन्दगी-नापसन्दगी, रहन-सहन आदि के तरीके अलग-अलग होते हैं। किसी दूसरे आदमी के ढाँचे में वे फिट नहीं किए जा सकते।"[२] दूसरे के ढाँचे में फिट करने के प्रयत्न आत्मीयता का आधारभूत व्यक्तित्व तिरोहित हो जाता है और व्यक्ति के नाम पर केवल वह कठपुतली या अधिक-से-अधिक रोबो मात्र बनकर रह जाता है। 'विपात्र' का बास दूसरों की जिन्दगियों को शासित करके उनकी गतिविधियों को अपने अनुकूल ढालना चाहता है। बास के अनुकूल ढाँचे में कसा जाना निवेदक को अपने व्यक्तित्व के प्रतिकूल प्रतीत होता है। ढाँचे के कसाव से मुक्त रहने के लिए उसकी आत्मा छटपटाने लगती है; क्योंकि व्यष्टि ही नहीं, अपितु समष्टि के विकास के लिए व्यक्ति स्वातन्त्र्य की नितान्त आवश्यकता है। स्वतन्त्र व्यक्तियों में ही आत्मीय सम्बन्ध स्थापित हो सकते हैं, परतन्त्र कठपुतलियों में नहीं।

व्यक्तिस्वातन्त्र्य की समस्या बड़ी नाजुक समस्या है। विशिष्ट ढाँचे में कस डालने वाली समाज-व्यवस्था में जिस प्रकार व्यक्तिस्वातंत्र्य असम्भव है, उसी प्रकार भेदाभेद की विषमता से ग्रस्त शोषणयुक्त समाज में भी वह असम्भव है। विषमता-ग्रस्त समाज में व्यक्तिस्वातन्त्र्य केवल उन व्यक्तियों को ही प्राप्त होता है, जिनके पास पैसा होता है। शोषित निर्धनों को तो 'स्वतन्त्रता बेचने की आजादी की मजबूरी" हो सकती है। इस मजबूरी के कारण अलग-अलग लोग अपनी आजीविका को पाने के लिए अलग-अलग ढंग से पूँछ हिलाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। इसी कारण विद्या केन्द्र के लोग बॉस के सामने अलग-अलग शैली से अपनी-अपनी पूँछ हिलाते हुए दीख पड़ते हैं। यह बात दूसरी है कि पूँछ हिलाने के बावजूद निवेदक रावसाहब के समान अपने को बॉस के सामने हीनता से ग्रस्त होकर पूर्णत समर्पित नहीं कर पाता है। लेकिन वह बॉस से झगड़ा मोल लेने को भी तैयार नहीं हो पाता, क्योंकि उसकी यह पन्द्रहवीं नौकरी है। उसे यह अच्छी तरह से मालूम है कि नौकरी को दुतकारना आसान है, किन्तु पेट पालना बहुत मुश्किल है। बॉस से झगड़ा करके नौकर को दुतकारने का विचार आते ही उसके सामने घर के सारे दुर्भाग्य आ खड़े होते हैं। लम्बे-लम्बे रोग तथा बालबच्चों और बूढ़े माता-पिता की जिम्मेदारियाँ उसे अक्षमता के बोझ से कुण्ठित करके प्रवाह-पतित सूखे काठ की तरह परिस्थितियों की विवशता

मे बहे चले जाने के लिए बाध्य कर देती हैं। दूसरी ओर मनावत अपनी चौदहवीं नौकरी को बनाए रखने के लिए मौकापरस्त बनने के लिए विवश है। अपने अनुभवों के आधार पर उसे यह मालूम हो गया है कि खोटा सिक्का अच्छा चलता है। यह दशा मध्यमवर्ग के व्यक्तियो की है। निम्नवर्ग के व्यक्तियों की विवशता का तो कोई अन्त ही नही है। पूंजीबल पर उच्च वर्ग के लोग उन्हे गुलाम बनाने के लिए पूरी तरह से स्वतन्त्र हैं। *तात्पर्य यह है कि विषमता से ग्रस्त समाज मे अपनी-अपनी रुचि* के अनुकूल अपने अपने व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने के लिए मनुष्य को व्यक्तिस्वातंत्र्य मिल सकना सभव नही है। यही कारण है कि तथाकथित व्यक्तिस्वातन्त्र्य का ढोग करने वाले विषमताग्रस्त देशो मे मजबूरी के कारण "जननेन्द्रिय भी बेचे जाते हैं।"[4]

वर्गवैषम्य से पीडित समाज मे आत्मीय सम्बन्धो को स्थापित करने के लिए आवश्यक सच्चा व्यक्तिस्वातंत्र्य न होने के कारण शोषित व्यक्ति वेदना की अधिकता के कारण आत्मबद्ध बन जाता है। एक ओर वह निस्सहायता और असुरक्षितता के कारण किसी अन्य व्यक्ति पर विश्वास करने की क्षमता खो बैठता है तथा दूसरी ओर उसका आत्मविश्वास लुप्त हो जाता है। परिणामत हीनता का शिकार बनने के कारण उसमे कर्म का उत्साह रह नही पाता। दु ख की अतिमात्रा उसके व्यक्तित्व को मांजने के स्थान पर घिस डालती है। वह अपनी पेट की आग बुझाने के लिए चोरी करने के *लिए विवश हो जाता है*। उसकी विवशता को समझने का प्रयत्न करने के स्थान पर उच्च वर्ग का व्यक्ति निर्धन व्यक्ति को चोर और आवारा समझने *लगता है। 'लामलोम की समझदारी' के कारण उसकी मानवीय समझदारी लुप्त* हो जाती है। निर्धनता से सम्बन्धित यह मानसिक ग्रन्थि बॉस मे भी है। 'दो कदम चलने मे भी तकलीफ' महसूस करने वाला बॉस पेट के लिए मछली या आम चुराने वाले फटेहाल गरीब लडको को बेरहमी से पीटता है। परन्तु यही बॉस बगीचे के आम तोडकर खाने वाली कॉलेज की लडकियो के पीछे-पीछे घूमता है। उसके मन मे गरीबो के प्रति असीम घृणा है। वह शोषक वर्ग की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाला पात्र है। वह जनता को कुत्ता और गरीब को कमीना समझता है। वह अपने मातहतो को सस्कृति के नाम पर गरीबो से घृणा करने के लिए उकसाता है। उसकी दृष्टि मे गरीबो की बस्ती 'डिसरेप्यूटेबल जगह' है। इस प्रकार की जगहो मे रहने वाले शोषित मनुष्यो के व्यक्तित्व, इतने अधिक कुचल जाते हैं कि वे शोषकों की 'मेहरबानी' या उपभोग्यता को प्राप्त करने मे गौरव का अनुभव *करने लगते हैं। अंग्रेज अफसरो की उपभोग्या बनी काली नौकरानियाँ इस बात पर* गर्व किया करती थी कि वे 'बडो के घर' मे हैं। स्वाधीनता के बाद विदेशी शोषको का स्थान देशी उच्च वर्ग के लोगो ने लिया है।

जिस प्रकार शोषणजन्य वेदना व्यक्ति को आत्मबद्ध बनाती है, उसी प्रकार

शोषकों की वासना भी उन्हें आत्मबद्ध बना डालती है। शोषणयुक्त समाज में शोषक उच्च वर्ग को वासनामयी कल्पनाओं में रममाण होने के लिए भरपूर सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। वासना की अधिकता के कारण इस वर्ग के लोग उत्तरोत्तर अधिकाधिक व्यक्तिबद्ध बनते चले जाते हैं। *गरीबों से आत्मीय सम्बन्ध प्रस्थापित करना* इन लोगों को अपमानास्पद प्रतीत होता है। बॉस इन्हीं लोगों में से एक है। बॉस के अतिरिक्त उच्च वर्ग के एक अन्य शराबी और रण्डीबाज रईस का समावेश 'विपात्र' में किया गया है। इस रईस की अपनी कोई कमाई नहीं है और न ही उसकी अपनी कोई मेहनत है। उसने केवल 'विधवा जमींदारिन के साथ मेहनत की है।'[1] इसी *मेहनत के बल पर वह हर तीसरे साल कार बदलता है और हर दूसरे साल प्रेमिका।* इस वर्ग के लोगों के लिए ही श्री अज्ञेय ने यह लिखा है कि इन लोगों को श्रम के नाम पर केवल रतिश्रम से ही परिचय होता है।[1] *ऐसे ही लोगों के पीछे विधायक* फिरते दिखाई देते हैं, जो श्यामल जनसमुदाय से मतों को पाकर जीतने के बाद उस समुदाय को बड़े ठाठ से भूल जाया करते हैं।

शोषक वर्ग से सम्बन्धित एक मुनीम का बेटा मनावत है। वह स्वयं स्वीकार करता है कि गरीब लोगों से ब्याज-बट्टा करके उसके पिता ने अपना घर भरा है। मनावत के पिता ने अपने बेटे को शोषण की तिजारत के सब 'गुर' बता दिए थे, किन्तु मनावत को तिजारत करना नामजूर था। वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता था। उसने पिता से बगावत करके दूसरों की स्वतन्त्रता खरीदने के काम से इनकार कर दिया। उसने 'शैतान का बच्चा' होते हुए भी शैतान बनना नहीं चाहा, किन्तु समाज के शैतानी ढाँचे ने उसे 'शैतान का नौकर' बनाकर छोड़ा। समाज की रचना ही कुछ इस प्रकार की है कि इसमें शोषक बनने से इनकार करने पर शोषित बनने के लिए विवश होना पड़ता है। इस प्रकार के समाज में *व्यक्तिस्वातंत्र्य जनता* के लिए छलना मात्र होता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि शोषणग्रस्त समाजव्यवस्था में वेदना और वासना से उत्पन्न व्यक्तिबद्धताओं के कारण व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आधार पर व्यक्ति-व्यक्ति के बीच आत्मीय सम्बन्ध प्रस्थापित करने के लिए अवकाश ही नहीं होता। इस प्रकार के समाज में एक ओर अस्तित्वरक्षा के संघर्ष में थके हारे वेदनाग्रस्त लोग व्यक्तिबद्ध बन जाते हैं तथा दूसरी ओर सम्पन्न लोग वासनाग्रस्त हो जाने के कारण अहंकार के दलदल में धँसकर व्यक्तिबद्ध बन जाते हैं। 'गरीबी की वेदना और धन की अहग्रस्त वासना के युग्मीकरण'[1] के कारण भीतर और बाहर की दरिद्रता बढ़ती ही जाती है। समाज दुराचारों का अड्डा बन जाता है। गरीबी की वेदना धन की वासना की पूर्ति के लिए विवश हो जाती है। इसी स्थिति को दृष्टि में रखकर मुक्तिबोध ने लिखा है कि—

शोषण की अतिमात्रा
स्वार्थों की सुखदात्रा
जब जब सम्पन्न हुई
आत्मा से अर्थ गया, मर गई सभ्यता ।'[११]

उच्च वर्ग और निम्न वर्ग की वासना और वेदना से उत्पन्न आत्मबद्धताओ के कारण इन दो वर्गों के व्यक्तियो म दरमियानी फासले उभर आते है । ऊँच नीच की भावना से उत्पन्न होने वाले इन फासलो को निवेदक ने अक्षादा वाले फासले कहा है । ये फासले उस प्रकार के फासले हैं जिस प्रकार के फासले एक ही निसैनी की उपरली और निचली सीढियो पर खडे दो व्यक्तियो के बीच मे होते है । *इस प्रकार के फासले सबसे अधिक खतरनाक होते हैं, क्योकि उपरली और निचली* सीढियो पर खडे व्यक्तियो मे सघर्ष छिड जाने पर घातक परिणाम सामने आते हैं । इन फासलो के मूल मे घृणा है । आज तक उच्चवर्ग के लोग निम्नवर्ग के लोगो से घृणा करते आए है, किन्तु अब निम्न वर्ग के लोगो मे ज्यो-ज्यो आत्मचेतना जाग रही है, त्यो त्यो उनमे उच्चवर्ग के प्रति असतोष और घृणा का भाव बढता जा रहा है । वे उच्चवर्ग से अपना सम्बन्ध तोडने के लिए या तो ईसाई बन रहे हैं या सघबद्ध होकर बौद्ध धर्म की शरण मे जा रहे है । उनके इस धर्मान्तर के मूल मे आध्यात्मिकता की भूख प्रमुख कारण नही है, अपितु उत्पीडक उच्चवर्ग से मुक्ति पाने की इच्छा है । इन उच्च और निम्न वर्गों की पारस्परिक घृणा का अवश्यम्भावी परिणाम सामाजिक विस्फोट के रूप मे फलने वाला है । वर्गवैषम्य की खाई को पाटे *बिना उस विस्फोट के घातक प्रभावो से बचा नही जा सकता ।* इस खाई मे फैले हुए दलदल को सुखाने के लिए क्रान्ति के ज्वालामुखी की आग ही चाहिए । इस आग का एक मात्र अन्य पर्याय वर्गवैषम्य को दूर करने वाला वास्तविक समाजवाद ही है । "समाजवाद ही जनसाधारण की मुक्ति का राजपथ है ।"[११] समाजवादी समाजव्यवस्था मे ही

"श्रम गरिमा का पी दूध
सत्य नवजात
विकसता जाएगा ।।"[१४]

धनजीवी उच्चवर्ग के सम्पर्क से मध्यवर्ग के व्यक्तियो मे भी जनघृणा की भावना सक्रमित हो गई है । इस वर्ग मे जनता से घुल-मिल जाने वाले, मनावत जैसे लोग विरले ही होते है, जो 'काफे द मजदूर' की 'अच्छी चाय' पीना पसन्द करते हो। स्वय निवेदक को अपनी माँ से यह शिकायत है कि गरीब घर से आई हुई उसकी माँ खाते-पीते परिवार की गृहलक्ष्मी बनने के बाद धीरे-धीरे अपनी जमीन को ही तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगी है । लेकिन निवेदक निम्नवर्ग के फटीचरो से घृणा

करना नहीं चाहता। जनता को कुत्ता समझने वाले वॉस पर उसे बेहद गुस्सा आता है। गंदी गली से गुजरते हुए बूढ़ी ठठरी और शिशु ठठरी को देखकर उसके अवचेतन मे से अनायास ही जबर्दस्त आह निकल पड़ती है। उसके लिए मनुष्य की अच्छाई की एक मात्र कसौटी व्यक्तिगत हित को जनसामान्य के हित के नीचे रखना है। उसकी दृष्टि मे वही मनुष्य अच्छा है, जिसके हृदय मे गरीब जनता के लिए करुणा की नदी लहराती है। इसीलिए उसका कहना है कि—

"आदमी की दर्दभरी गहरी पुकार सुन
पड़ता है दौड़ जो
आदमी है वह खूब।"

मध्यमवर्ग और निम्नवर्ग के बीच अथाह वाले घृणाजन्य फासले तो हैं ही, किन्तु मध्यमवर्ग के उच्च मध्यम वर्ग और निम्न मध्यम वर्ग के स्तरो में भी ये फासले पैदा हो गए हैं। धन की सुविधा के कारण ऊँचा ज्ञान प्राप्त करने वाले लोग विश्वविद्यालयो, सचिवालयो आदि मे पद प्राप्त करने के बाद प्राथमिक पाठशालाओ के शिक्षको को बड़ी ही तुच्छता की दृष्टि से देखने लगते हैं। इस दृष्टि को बढ़ाने मे अंग्रेजी दासता का भी बड़ा भारी हाथ है। अंग्रेजी की ऊँची शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति प्राय अपने को जनसाधारण से ही नहीं, अपितु निम्न मध्यम वर्ग से भी वरिष्ठ समझने लगते हैं।

अथाह वाले फासलो के अतिरिक्त एक अन्य प्रकार के फासले होते हैं, जिन्हे निवेदक ने देशान्तर वाले फासले कहा है। ये फासले दो भिन्न वर्गों के व्यक्तियो के बीच मे नही, अपितु एक ही वर्ग के व्यक्तियो के बीच होते हैं। ये फासले उस प्रकार के फासले हैं, जिस प्रकार के फासले एक ही समतल मैदान पर खड़े हुए व्यक्तियो मे होते हैं। 'विपात्र' मे देशान्तर वाले फासलो का उल्लेख मध्यम वर्ग के सदर्भ मे हुआ है। यहाँ यह प्रश्न खड़ा होता है कि इस वर्ग के लोग व्यक्तिबद्धता को जन्म देने वाले वासना और वेदना के कारणो से मुक्त होने पर भी दरमियानी दूरियो के दर्द से क्यो पीड़ित है? ऊँचा ज्ञान पाने के बावजूद अथाह वाले तथा देशान्तर वाले फासलो को लाँघने मे असमर्थ क्यो हैं? इसी विवेचन के प्रसग मे निवेदक ने चिढ़कर यह उत्तर दिया है कि—"हम मे सामाजिक चेतना नहीं थी क्योंकि असल मे हम सब लोग हरामखोर थे।"[11]

बुद्धिजीवी वर्ग की असामाजिकता का विश्लेषण करते हुए निवेदक ने यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल मे ज्ञान वैयक्तिक मोक्ष का साधन माना गया था। आधुनिक काल मे ज्ञान विषयक आध्यात्मिक एव मोक्ष पर दृष्टिकोण के अनुपयुक्त हो जाने पर ज्ञान को भीतर और बाहर की दरिद्रता से मुक्ति दिलाने वाली सामाजिकता का साधन बना दिया जाना चाहिए था, किन्तु पूँजीवादी समाज मे दुर्भाग्य

से ऐसा नही हो सका । वह व्यक्ति की भौतिक उन्नति की पूर्ति का साधन मात्र बनकर रह गया । इसीलिए शिक्षित लोग 'अच्छी जिन्दगी बसर करने' की 'विशेष जीवन प्रणाली के उपासक' बन गए । वे 'ठाठ से रहने के चक्कर से बँधे हुए बुराई के चक्कर, मे फँस गए ।' 'चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति प्राप्त करना' उनके जीवन का नियम बन गया । इसी के परिणामस्वरूप 'खाओ, पिओ, मौज करो' का सिद्धान्त उनके लिए 'मारो खाओ, हाथ मत आओ' के सिद्धान्त मे बदल गया । नतीजा यह हुआ कि "उदर से लेकर शिश्न तक के पूर्तिवाले जो ऐंद्रियिक जीवन है" उस पर 'बौद्धिक कलई' करना मात्र ज्ञान का उद्देश्य हो गया । संस्कृति और 'ऊँची बातचीत' व्यक्ति की 'आत्मा को सहलाने का एक तरीका' बनकर रह गई । ऊँची बातचीत मे पिछड जाने के भय पर विजय पाने के लिए रावसाहब जैसे लोग रोज दो-चार अखबार देख लिया करते है । इस कोटि के लोग "अपनी बर्बरता को ढाँकने के लिए रवीन्द्र की जयन्तियाँ मनाते हैं अपने पशुत्व को छिपाने के लिए, सुन्दर भावो से जगली आत्मा को ढँकते हैं ।"[१८] इन लोगो के लेखे 'ब्राह्मणेन निष्कारण षडङ्ग वेदो ज्ञेयोध्येयश्च' की मुक्ति का कोई महत्व ही नही है । विशुद्ध जिज्ञासा उनकी दृष्टि मे निरर्थक है । ज्ञान के द्वारा अपने व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने का विचार सपने मे भी उनके मन मे नही आता । इसी कारण राव साहब की दृष्टि मे 'जगत का ज्ञानार्जन आदर नही अपितु उपेक्षा और दया की वस्तु है क्योकि वह अपने अर्जित ज्ञान का उपयोग करके कैरियर नही बना सका ।' अपना-अपना कैरियर बनाने के लिए रावसाहब जैसे लोग बाँस की खपैलें बनकर इसी घात मे लगे रहते हैं कि किसी प्रकार वे दूसरी खपैलो से अधिक प्रिय बनकर और अधिक ऊँचे ओहदे पर पहुँच जाएँ । ऊँचे ओहदे पर पहुँचने की स्पर्धा के कारण सहयोगी लोग प्रतियोगी प्रतीत होने लगते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि सहयोगियो के बीच मे देशान्तर वाली दूरियाँ आ जाती हैं । अवसरवाद के शिकार बने हुए ये लोग व्यक्तिस्वातन्त्र्य के नाम पर अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए दौड धूप मे लगे रहते हैं । अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए किसी दूसरे के हित को चूल्हे मे झोकने मे इन्हे कतई सकोच नही होता । ऐसे लोगो के लिए मुक्ति बोध ने कहा है कि—

"बौद्धिक वर्ग है क्रीतदास,
किराये के विचारो का उद्भास ।"[१९]

क्रीतदास बौद्धिक वर्ग के रावसाहब जैसे अवसरवादी लोगो की जिज्ञासा मूल मे ही दुर्भावनाग्रस्त होने के कारण के समान होती है, क्योकि स्वार्थ साधन मे अनुपयोगी जिज्ञासा इन लोगो को निरर्थक प्रतीत होती है । ये लोग कभी अपने उच्च स्तर को प्रदर्शित करने के लिए किसी बहस मे भी भाग लेते हैं तो वे अपने

अन्तरग व्यक्तित्व मे पशुता से मुक्त नही हो पाते । थोथी बहसो मे लगे हुए ऐसे ही लोगो के सम्बन्ध मे मुक्तिबोध ने लिखा है—

"और मेरी आँखें उन बहस करने वालो के
कपडों मे छिपी हुई
सघन रहस्यमय पूछ देखती ! !"[१]

मध्यम वर्ग के जगत जैसे अध्ययनशील व्यक्ति इतने अन्तर्मुख होते हैं कि वे अपने को बाहर की दुनिया मे अजनबी महसूस करने लगते हैं। उनका क्रिया-शक्तिहीन निस्सग जीवन समाज की दृष्टि से निरर्थक हो जाता है। उनमे सामाजिक क्षेत्र मे घुसने की शक्ति नही होती। समाज से असपृक्त रहने के कारण किसी दरीना के साथ विलायत मे जाकर घर बसाने के स्वप्न देखा करते हैं। इस प्रकार वे लोग विदेश जाकर लौट भी आएँ तो उनकी स्थिति ऐसी होती है—"लौट विदेश से। अपने ही घर पर मैं इस तरह नवीन हूँ। इतना अधिक मौलिक हूँ— । असल नही।" साहित्य के अध्ययन के कारण इन लोगो को मानवीय जीवनमूल्यो को समझने की शक्ति अगर प्राप्त हो जाती है, तो भी क्रियाशीलता के अभाव मे ये जीवनमूल्य जानकारी मात्र बन कर रह जाते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति बारीक बेईमानियो के सूफियाना अन्दाज से भले ही मुक्त हो, किन्तु जनता से असपृक्त रहकर आत्मतोष मे जीने के पाप से ये बरी नही किए जा सकते। ज्ञान के द्वार लाया गया उत्तरदायित्व निभाने के लिए खतरो का सामना करने से कतराने वाले ये लोग भी सामाजिक दुर्दशा की जिम्मेदारी से मुक्त नही हो सकते। ऐसे ही लोगो के सम्बन्ध मे मुक्तिबोध ने लिखा है कि—"आजकल सचाई का सबसे बड़ा दुश्मन असत्य नही, स्वय सचाई ही है, क्योकि वह ऐंठती नही, सज्जनता को साथ लेकर चलती हैं।"[२] इन लोगो मे अपने जीवन मूल्यो के प्रति दुर्दान्त स्नेह की आस्तिकता का अभाव होता है, परिणामत उनम जीवन की वास्तविक अस्मिता का उदय नही हो पाता। अस्मिता से वचित ये लोग सृजन की क्षमता को खो बैठते हैं। इसी कारण इनका जीवन निस्सग और अन्तर्मुख बन जाता है।

मध्यम वर्ग के लोग उपर्युक्त असामाजिकताओ के कारण दुरभियानी फासलो से पीडित हो उठते हैं। अपनी पीडा से राहत पाने के लिए इस वर्ग के लोग 'सम्मिलन वासना' का सहारा लेते हैं। महफिलबाजी, गपबाजी आदि इसी सम्मिलन वासना को तृप्त करने के अनेक साधन हैं। आत्मीय सम्बन्ध से हीन यह थोथी सामाजिकता फासलो को मिटाने के स्थान पर बढाने म ही सहायक होती है। "क्लब मे जाकर 'ब्रिज' खेलने के बावजूद इन लोगो के बीच की खाई को पाटने वाले ब्रिज तैयार नही हो पाते। महफिल्बाजी म अजीब सी घुटन महसूस होने लगती है। कॉफी हाउस मे दो चार घण्टे गप्पे लगाने के बाद ताजगी महसूस होने

के स्थान पर विरक्ति की टूटन मन को पीडित करने लगती है। मित्रो को चिट्ठियाँ लिखने और उनसे फोन करने के बाद भी ये फासले ज्यो-केन्त्यो बने रहते हैं। ऊपरी सम्बन्धो के कारण ये लोग परिचित होकर भी अपरिचित रह जाते हैं, क्योकि परिचय सतही और छिछला होता है और अपरिचय घना और कडा। एक अबूझ वेपहचान दर्द इन लोगो के जीवन की गति को अवरुद्ध कर डालता है। थोथी सामाजिकता से 'सोशल' वनने का प्रयत्न इनको अकेलेपन के दर्द से मुक्त नही कर सकता। फासले बने रहते हैं, क्योकि फासलो को पाटने वाली सृजनशील सकल्प-शक्ति इनमे नही होती। दरमियानी फासलो को दूर करने का एक मात्र उपाय सृजनशीलता को अपनाना है। निस्सगता को झटक कर क्रियाशील वनना है। खयाली धुन्ध मे खोये रहने से अपने को उवार कर बुद्धिजीवियो को साल्वादोरद मादारिमागा की पगत छोडनी होगी और उसे एड्ना सेण्ट विसेण्ट मिले के समान शोषित को शोषणमुक्त करने के लिए क्रियाशील बनना होगा। पीडितो के प्रति सच्ची करुणा के विना क्रियाशीलता सम्भव नही है। इसलिए मुक्तिबोध ने कहा है—

> " करुणा करनी की माँ है।
> बाकी सब कुहासा है, धुआँसा है।"[२२]

यदि करुणा प्रेरित क्रियाशीलता को अपनाकर मध्यम वर्ग वर्गवैषम्य से ग्रस्त समाजव्यवस्था को नही बदलेगा, तो दरमियानी फासले बने रहेगे और प्रेम का भूखा सवेदनशील मनुष्य एक ओर सहानुभूति का एक एक कण पाने के लिए तरस कर रह जायगा। वर्ग वैषम्य अगर किसी प्रकार बना रहा, तो मनुष्य की प्रेम प्रदान करने की शक्ति, दूसरी ओर, क्षीण होती चली जायगी। इन फासलो के कारण न निम्नवर्ग सुखी है और न सुविधाभोगी उच्च वर्ग सतुष्ट है। उच्च वर्ग के बॉस फासलो से पीडित हैं और अहसान तथा अधिकार के बल पर अपने मातहतो का 'साथ' पाना चाहते है पर क्या वह उन्हे मिल पाता है? मध्यम वर्ग के लोग भी अकेलेपन से घिर कर त्रस्त हैं। उनकी स्थिति कटी हुई डाल के समान निजत्व से हीन हो गई है। सृजनशीलता के अभाव मे वे एवीलार्ड बनकर रह गए है। विद्याकेन्द्र का सारा वातावरण घुटन से भरा है। इस घुटन से भरे तिलस्म को तोडकर बाहर आने के लिए वहाँ के शिक्षको की आत्माएँ तडप रही हैं, पर निस्सगता के कारण तिलस्म की कैद तोड पाने मे असमर्थ हैं। हेमिग्वे जैसा उदग्र जिजीविषा से सम्पन्न व्यक्ति पूँजीवादी समाज मे सर्वत्र व्याप्त अकेलेपन की असहायता के कारण आत्महत्या करने के लिए विवश हो गया, फिर सामान्य लोगो की स्थिति का कहना ही क्या? व्यक्तियो को जिजीविषा को सार्थक रूप मे क्रियाशील वनाए रखने के लिए सामाजिक विषमता को नष्ट करके आत्मीय सम्बन्धो का

विकसित करना ही होगा ।

दरमियानी फासलो को दूर करने के लिए आत्मीय सम्बन्ध आवश्यक हैं और आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्वतन्त्र व्यक्तित्व अपेक्षित हैं । मध्यम वर्ग के लोगो की आत्माएँ प्राय पैसो के लिए बिक जाने के कारण तिजारती जननेन्द्रियो के समान हो जाती है । इस प्रकार के बिके हुए लोगो के साथ 'आत्मीय' सम्बन्ध स्थापित नहीं किए जा सकते, क्योंकि इनके पास आत्मा होती ही कहाँ है ? मुक्तिबोध की दृष्टि मे 'सामाजिक व्यक्तित्व' का नाम ही 'आत्मा' है । बिके हुए आत्महीन लोगो के साथ सम्बन्ध रखने की अपेक्षा दुनिया के किसी अँधेरे कोने मे मर जाना निवेदक को पसन्द है । इसीलिए दर्शनशास्त्री मिश्र ने विद्या केन्द्र के घुटनभरे वातावरण को छोडकर चले जाने का इरादा निवेदक के पास व्यक्त किया, तो निवेदक को उसका साहस अच्छा ही लगा । परन्तु इसके साथ अपनी जिम्मेदारियो से भरी जिन्दगी की असहायता का अनुभव भी उसे तीव्रता के साथ हुआ । अपनी असमर्थता के अनुभव के कारण वह मिश्र के साथ के बावजूद अकेला अनुभव करने लगा । दिल की हलचल के मुताबिक 'हलचल' न कर पाने से उसकी दशा उस छपाई मशीन के समान हो गई, जो चल तो रही है, पर कागज के न होने से छपाई के काम मे व्यर्थ सिद्ध हो रही है । सृजनशील सकल्प शक्ति के कुठित हो जाने के कारण उत्पन्न बजरपन ने उसे बुरी तरह से थका-हारा बना डाला है । इस विपरीततम स्थिति मे भी उसकी कडिमल जान ने आत्म-समर्पण करने से इनकार कर दिया है । वह मृत्यु के अन्धेरे मे समा जाने की कल्पना करने तक की सुविधा पाने के लिए खाली नहीं है । उसे निराशा ने ग्रस नहीं लिया है, इसलिए 'से नो टु डेथ' यह पुस्तक का नाम अच्छा लगता है । उसे जनसमुदाय की 'तालीम की भूख' देखकर यह विश्वास हो चला है कि भविष्य उज्ज्वल है । उपन्यास का अन्त करते-करते वह एड्ना सेण्ट विन्सेण्ट मिले के समान सघन आत्मीय सम्बन्धो के परिवेश मे जीने का सकल्प व्यक्त करता है । वह 'सकर्मक सन्चित् वेदना भास्वर' समानधर्मा को न पाकर मुक्तिबोध ने लिखा है—

> "अपने समाज मे अकेला हूँ बिलकुल,
> मुझमे जो भयानक छटपटाहट है
> नहीं वह किसी मे ।"[11]

'विपात्र' के निवेदक ने दरमियानी फासलो और अकेलेपन की पीडा को व्यक्त करते हुए आत्मीय सम्बन्धो के स्वरूप को भी स्पष्ट किया है । रुचिभिन्नता के कारण व्यक्ति-व्यक्ति के बीच भेद तो बना ही रहेगा और भेद के होने पर भिन्न रुचि के व्यक्तियो मे टकराहट होती ही रहेगी । मतभेदो की दूरियो के बावजूद आत्मीय सबन्धो के कारण दरमियानी फासले और अकेलापन नहीं रहगे । मतभेदो

और रुचिभेदो की दूरियाँ लीलाभूमि मे परिवर्तित हो जाएँगी। पारस्परिक सक्रिय आत्मिक सम्बन्ध अपने निर्वैयक्तिक गीलेपन से लीलाभूमि को हरियाली से समृद्ध कर देंगे। यह लीला क्या है? इसका प्रयोजन कौन सा है? इन प्रश्नो के उत्तर मे हमारा ध्यान परमेश्वर की लीला की व्याख्या की ओर सहज ही चला जाता है। परमेश्वर भी अपने अकेलेपन की निरानन्दता को लीला के द्वारा आनन्द मे परिवर्तित कर देता है। लीला के अतिरिक्त उसका दूसरा प्रयोजन नही है। इसी प्रकार दुनियादारी के प्रयोजनो से मुक्त सहज मानवीय सम्बन्ध ही लीला है। सहज मानवीयता की छाया मे व्यक्तित्वो की खुली टकराहट भी एक दूसरे के दृष्टिकोणो को विशद बनाने मे सहायक ही बनेगी। मुक्तिबोध ने इसीलिए कहा है कि—"एक दूसरे का मूल्यांकन करते। हम निज को सँवारते जाते है।" अन्त करण का आयतन सक्षिप्त न हो, तो फासले महकते सुनहले फैलावो मे रूपातरित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे किसी से हाथ मिलाते ही दिलो के मिलने मे विलम्ब नही होता। तभी तो मुक्तिबोध का कहना है कि—

> " हाथ तुम्हारे मे जब भी मित्र का हाथ
> फैलेगी बरगद छाँह वही।"[३४]

निष्कर्ष यह है कि 'विपात्र' बुद्धिजीवियो के सकट की अभिव्यक्ति है। श्रीकात वर्मा ने मुक्तिबोध की कहानियो के सम्बन्ध मे जो यह लिखा है कि—"मुक्तिबोध की कहानियाँ मध्यम वर्ग के विरुद्ध एक जिरह है,"[३५] वह 'विपात्र' पर भी पूर्णत लागू है। मध्यम वर्ग के विरुद्ध की गई यह जिरह उसे 'जनचरित्री' बनाने के लिए जनता का पक्ष लेकर की गई है। विद्यानिवास मिश्र ने ठीक ही कहा है कि—"मुक्तिबोध का काव्य (साहित्य) ऐसा नरकाव्य है, जिसमे नारायण की आँखो की व्यथा भरी है।"[३६]

## टिप्पणियाँ

१ चाँद का मुह टेढा है मुक्तिबोध पृ १२९
२ विपात्र पृ [illegible]
३ वही, पृ १९७
४ विपात्र पृ० ७३
५ चाँद का मुंह टेढा है, पृ० ८६
६ विपात्र, पृ० ३०
७. वही, पृ० ३२
८ वही, पृ० ७५
९ वही ,पृ० ५४

१० "हम लोगों का एकमात्र श्रम है—सुरतिश्रम
उस अन्त्यज का एकमात्र सुख है—मैथुन सुख।" (अज्ञेय)
११ विपात्र, पृ० ८४
१२ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० १९६
१३ नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध मुक्तिबोध, पृ० ११५
१४ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० १३९
१५ वही, पृ० ४५
१६ विपात्र, पृ० ३३
१७ काठ का सपना, पृ० ३४
१८ विपात्र, पृ० ८०
१९ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० ३०४
२० वही, पृ० २१
२१ एक साहित्यिक की डायरी, पृ० ५०
२२ काठ का सपना, पृ० ४४
२३ चाँद का मुँह टेढ़ा है, पृ० २५५
२४ वही, पृ० ६
२५ काठ का सपना . प्राक्कथन, पृ० ९
२६ गजानन माधव मुक्तिबोध : सं० लक्ष्मणदत्त गौतम, पृ० २३९

# वे दिन : अकेलेपन की अवसादपूर्ण गाथा

डा० चन्द्रभानु सोनवणे

"आधुनिकता बोध का तीसरा मोड 'वे दिन' है, जिसमे आधुनिकता की कलात्मक अभिव्यक्ति बडी सहजता से हुई है।"

डा० इन्द्रनाथ मदान

"मृत्युबोध और अकेलेपन का बोध आधुनिक मानसिकता के महत्त्वपूर्ण अग हैं। 'वे दिन' के कलेवर मे इन अगो को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।"

"लडाई मे बहुत लोग मरते हैं—इसमे कुछ अजीब नही है        लेकिन कुछ चीजें हैं जो लडाई के बाद मर जाती हैं—शांति के दिनो मे        हम उनमे से थे।"

'वे दिन'

'वे दिन उपन्यास मे मृत्युबोध की चर्चा गौण रूप से आई है, उसका मुख्य विषय तो अकेलेपन का बोध है।"

"व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के अलगाव के अँधेरे को परिचय के द्वारा भेद कर अन्तरग सम्बन्ध स्थापित किए बिना अकेलेपन की पीडा से मुक्ति सम्भव नहीं है।"

"बुनियादी अकेलेपन की सवेदना को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास इन्द्रिय सवेदनो और मनोदशाओ को 'विविड' और 'वडरफुल' ढग से अकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है।"

## १३
## वे दिन

डॉक्टर इन्द्रनाथ मदान आधुनिकता-बोध की दृष्टि से हिन्दी उपन्यास-साहित्य के तीन महत्त्वपूर्ण मोड मानते हैं। उनके अनुसार पहला मोड 'गोदान' है, जिसमे आधुनिकता का अर्थ स्पष्ट हुआ है तथा दूसरा मोड शेखर . एक जीवनी' है जिसमे आधुनिकता का विकसित रूप अकित हुआ है। आधुनिकता बोध का तीसरा मोड वे दिन' है जिसमे आधुनिकता की कलात्मक अभिव्यक्ति बडी सहजता से हुई है।[1] प्रथमत आधुनिकता-बोध की दृष्टि से 'वे दिन' पर विचार करना उपयुक्त होगा।

आधुनिकता-बोध आज सारे ससार के साहित्य क्षेत्र का सर्वाधिक प्रचलित फैशन है। श्री निर्मल वर्मा हिन्दी साहित्य मे आधुनिकता बोध के अध्वर्यु व्यक्तियो मे से एक माने जाते हैं। इसलिए उनके साहित्य मे आधुनिकता बोध से सम्बद्ध मानसिकता का समावेश अनिवार्यत हुआ है। मृत्युबोध और अकेलेपन का बोध आधुनिक मानसिकता के महत्त्वपूर्ण अग हैं। 'वे दिन' के कलेवर मे इन अगो को महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

यद्यपि 'वे दिन मे मृत्युबोध की चर्चा कुछ एक प्रसगो मे हुई है, किन्तु इन प्रसगो मे मृत्युबोध ओढी हुई मानसिकता मात्र प्रतीत होती है। पश्चिमी ससार मे मृत्युबोध का प्रमुख आधार युद्ध की विभीषिका रही है। प्रस्तुत उपन्यास का घटना-स्थान प्राग नगर है, जो चेकोस्लोवाकिया की राजधानी है। यद्यपि यह नगर द्वितीय महायुद्ध की विभीषिका मे से गुजरा है, किन्तु इस उपन्यास मे किसी ऐसे स्थल को अकित नही किया गया है, जो इस विभीषिका को साकार करने के लिए आधार बन सके। इसके अतिरिक्त भुक्तभोगी पात्रो के माध्यम से भी मृत्युबोध को उभारने मे लेखक को सफलता नही मिली है। भुक्तभोगी पात्रो मे से एक पात्र फ्राज है, जिसका यह कहना है कि "तुम्हें अपना बचपन लडाई मे नही गुजारना चाहिए वह जिन्दगी भर पीछा नहीं छोडती।"[1] यद्यपि फ्राज का बचपन लडाई मे गुजरा था, किन्तु वह लडाई किस रूप मे उसके पीछे पडी है, यह स्पष्ट नही है। सचमुच ही

यदि लड़ाई उसके पीछे पड़ी होती, तो वह 'तटस्थ भाव से' लड़ाई की घटनाएँ न सुनाता। फ्राज के अतिरिक्त लड़ाई की विभीषिका मे से गुजरा हुआ दूसरा पात्र रायना है, जिसने जवानी के दिनो मे लड़ाई का आतक सहा है। इस कारण वह शस्त्रास्त्रो के खिलौनो से भी सख्त नफरत करती है। यद्यपि उसने जाक के प्रसग मे नाजियो के कॉन्सेंट्रेशन कैम्प का उल्लेख किया है, किन्तु यह उल्लेख निरातक-सा ही प्रतीत होता है। इस प्रसग से यह भी स्पष्ट नही हो पाता कि लड़ाई की विभीषिका म से बच निकलने के बावजूद ऐसे कौन-से कारण हैं जिनके कारण लड़ाई के बाद शान्ति के दिनो म उसे अपना घर ही कॉन्सेंट्रेशन कैम्प लगने लगा। हम उन कारणो को समझ पाने मे असमर्थ रह जाते हैं, जिनके कारण रायना अपने और जाक के सम्बन्ध मे यह कहती है कि 'लड़ाई मे बहुत लोग मरते हैं—इसमे कुछ अजीब नही है लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं—शान्ति के दिनो मे हम उनमे से थे।"[1]

'वे दिन' उपन्यास मे मृत्यु के आतक की अभिव्यक्ति केवल उस पोलिश यहूदी के प्रसग मे हो सकी है, जिसके लिए महज जीना मात्र जीवन का सबसे बड़ा सुख था। यहूदी होने के कारण नाजियो ने उसे गोली स उड़ा दिया था। मृत्युबोध से सम्बन्धित यह छोटी-सी वर्णित घटना कथानक का अत्यत गौण भाग है और इस घटना के झकझोरने वाले प्रभाव के अकन मे लेखक विशेष रूप से प्रवृत्त नही है।

लड़ाई के अतिरिक्त शासन विशेष के आतक के माध्यम से भी मृत्युबोध को उभारा जा सकता था। विभक्त बर्लिन इस प्रकार के आतक का धारदार स्थल बन सकता था, किन्तु विभक्त बर्लिन की दृष्टि से केवल इतना ही कहा गया है कि फ्राज की माँ पश्चिम बर्लिन मे रहती थी और हर महीने उसकी ओर से फ्राज को कुछ न कुछ मिलता ही रहता था। इसी कारण फ्राज के साथी उससे मजाक मे कहा करते थे कि उसे दोनो दुनियाओ का 'आनन्द' मिलता है। साम्यवादी दुनिया के अमूर्त चेकोस्लोवाकिया के शासन के प्रतिबन्धमय रूप की दृष्टि से केवल इतना ही उल्लेख हुआ है कि हॉस्टेल के रेडियो पर केवल प्राग को सुनने की व्यवस्था थी। इसके अतिरिक्त फ्राज के कमरे मे दीवार पर लगे निजिन्सकी के चित्र का उल्लेख है, फ्राज ने जिसे 'शैतान' कहा है। निजिन्सकी कौन है और उसकी शैतानियत का रूप क्या है, यह सामान्य पाठक के लिए उलझन बना रहता है। कहने का आशय यह है कि मृत्युबोध को उभार सकने वाले सभावित स्थलो का यथोचित उपयोग नही किया जा सकता है। इसके विपरीत प्राग का चित्रण 'सिटी ऑफ ड्रीम्स' के रूप मे ही हुआ है। स्टेटिक्सिक के सम्बन्ध मे रायना तो यह कहती भी है कि—"इट इज लाइक ड्रीम लैण्ड।" ऐसी स्थिति मे उपन्यासगत मृत्यु का डर उसी प्रकार अवास्त-

विक डर सा प्रतीत होता है, जिस प्रकार स्कैटिंग रिंक की उस लडकी का डर है, जो लडको के सीटी बजाने पर डर का अभिनय करते हुए चीख उठती है और उसकी वह चीख उनकी हँसी के ठहाको मे डूब जाती है। ड्रीम-लैण्ड के वातावरण मे मृत्यु का डर विलाए बिना कैसे रह सकता है ?

उपन्यास के भारतीय पात्रो की दृष्टि से तो मृत्युबोध बैठे ठाले की बातचीत तक ही सीमित है। थानथुन से बातें करते समय इदी लडाई की चर्चा छोड देता है, जिस पर थानथुन 'मुसकराकर पूछ ही बैठता है कि मुद्दत से बीती लडाई की बात उसे कैसे सहसा याद आ गई ? स्वय इदी को यह पता नही है कि इस 'अजीब' बात की याद उसे क्यो हो आई है ? कि "एक बार मैं ऊँचे टावर पर चढा था उस दिन मैंने पहली बार मृत्यु के बारे मे सोचा था।" अपने मृत्युविषयक चिन्तन पर उसे 'हैरानी' अवश्य है, किन्तु वह मृत्युबोध के आतक से सर्वथा मुक्त है। स्पष्ट है कि इदी और थानथुन के लिए मृत्युबोध की चर्चा केवल फैशन की वस्तु है, जीवन की भोगी हुई सचाई नही। अनुभव की सचाई के अभाव के कारण ही वे मृत्युबोध से आतकित नही हैं।

'वे दिन' उपन्यास में मृत्युबोध की चर्चा गौण रूप से आई है, उसका मुख्य विषय तो अकेलेपन का बोध है। आधुनिकता बोध के अनुसार यह अकेलेपन का बोध महज जीने के नगे वनैले आतक से जुडा है। सामान्यत यह समझा जाता है कि अकेलेपन का रामबाण इलाज प्रेम है, किन्तु आधुनिकता बोध का बुनियादी अकेलापन इस इलाज के किए जाने पर भी घटने के स्थान पर बढने वाला मर्ज है। 'वे दिन' उपन्यास मे इसी बुनियादी अकेलेपन की अवसादमय स्थिति की अभिव्यक्ति है। हमे यह देखना है कि अकेलेपन की इस मूल सवेदना को अभिव्यक्त करने मे लेखक को किस सीमा तक सफलता मिली है ?

अकेलेपन की सवेदना को गहराने के लिए लेखक ने 'वे दिन' मे अत्यन्त सतर्कता से प्रयत्न किया है। उपन्यास का आरम्भ अकेलेपन की असहाय स्थिति से किया गया है तथा उपन्यास का अन्त अकेलेपन की पीडा को भुलाने के लिए प्राग से दूर पहाडो पर चले जाने के इदी के विचार के साथ हुआ है। उपन्यास के बीच मे स्थान-स्थान पर अकेलेपन को प्रगाढतर रूप मे उपस्थित करने के लिए विविध प्रकारो से सहायता ली गई है। और तो और, वीरान टैक्सी-स्टैण्ड के टेलीफोन की 'आतुर अकेली पुकार' को सुनने वाले के अभाव का अकन सोद्देश्य है। इसी प्रकार होस्टल के सूने गलियारे मे अचानक अकेले पड गये बच्चे के समान बार-बार चीख उठने वाले टेलीफोन का उल्लेख अकेलेपन के भावबोध की गूँज लिए हुए है। पात्र एव परिस्थिति का चयन करते समय अकेलेपन की अनुकूलता को दृष्टि मे रखकर परदेश मे अस्थायी रूप से रहने वाले विद्यार्थियो को चुनने मे लेखक का कौशल

प्रकट है । प्राय एसे विद्यार्थियो के प्रति स्थानीय लोगो की जिज्ञासा म्यूजियम इन्ट-रेस्ट तक ही सीमित होती है । अन्यथा प्राय इन विदेशी विद्यार्थियो को अलग ही छोड दिया जाता है । इसके कारण इदी और थानथुन तीन-तीन वर्ष से प्राग मे रहने के बावजूद अपने को अजनबी अनुभव करते हैं । इसके अतिरिक्त उपन्यास की कथा का काल क्रिसमस की छुट्टियो का काल है । छुट्टियो के कारण इदी का रूमानियम रूममेट किसी दूसरे स्थान पर चला गया है जिसके कारण इदी अकेलेपन का अनुभव करता है ।

आधुनिक-बोध के अनुसार हर व्यक्ति दूसरे के लिए अंधेरा है । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच के अलगाव के अँधेरे को परिचय के द्वारा भेद कर अन्तरग सम्बन्ध स्थापित किए बिना अकेलेपन की पीडा से मुक्ति सभव नही है । अत होस्टल के विदेशी विद्यार्थियो मे अन्तरग घरेलू सम्बन्ध की मायावी ललक का होना स्वाभाविक ही है । होस्टल के तीसरी मजिल पर लेलीग्रेड का रहनेवाला युगोस्लाव मेल्नकोविच राजनी-तिक कारण से अपने घर नही जा सकता । वह जब कभी आधी रात को अपनी पीडा को एकोर्डियन के स्वरो मे वाणी दे देता, तो होस्टल के विद्यार्थी एक दूसरे के कानो मे फुसफुसा कर कहते—"यह मेलन्कोविच है, जो अपने घर नहीं जा सकता ।"[1] स्वय इंदी को अपने कमरे मे रायना को गुनगुनाते हुए बर्तन धोते देखकर घर के आत्मीय वातावरण को याद या आती है । उसे ऐसा लगने लगता है कि जैसे वह अपने घर मे ही है और उसकी बडी बहन रसोईघर मे काम करते समय धीरे-धीरे गुनगुना रही है किन्तु घर के आत्मीय वातावरण की याद करने वाले इसी इदी की पत्रविषयक उत्सुकता अपनी बहन के आत्मीयतापूर्ण पत्र को पाकर सहसा मर जाती है । यह समझ मे नही आता कि वह बहन के पत्र को पढकर उस रात मन से अपने घर क्यो नही जाना चाहता था ? वह उस पत्र को अगले दिन पढने के लिए जेब म रख छोडता है । शुक्रवार को मिले इस पत्र को वह रविवार को भी नहीं पढ पाता । इतना ही नही, उसे इस बात की हलकी-सी खुशी ही होती है कि बिजली के न होने के कारण वह उस पत्र को पढ नही पायेगा । इदी ने इस पत्र को बाद मे कब पढा, या कभी पढा ही नहीं, इसके सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ नही कहा गया है । बहन के पत्र को इस प्रकार उपेक्षा करने वाला इदी यदि अकेलेपन की पीडा का शिकार है, तो वह उसके लिए बहुत कुछ खुद जिम्मेदार है । यदि उसे अपने घर की याद नहीं सताती, तो घरेलू सम्बन्ध के अभाव के कारण उत्पन्न उसकी अकेलेपन की पीडा का मतलब ही नही रह जाता । इदी के समान ही घर की अवहेलना थानथुन मे भी दिखाई देती है ।

अकेलेपन की पीडा को भोगने वाले इदी, थानथुन आदि आधुनिक युवको की तुलना मे हमे कुछ अन्य पात्र ऐसे दिखाई देते हैं, जो घरेलू सम्बन्धो से टूट कर

दिशाहारा उल्का की तरह भटक नही गए हैं। फ्रांज की माता दूसरा विवाह करके पश्चिमी बर्लिन मे बस जाने के बाद भी अपने अट्ठाईस वर्ष के बेटे को हर महीने कुछ-न-कुछ भेजती ही रहती है। इसी प्रकार थानयुन की माता इकलौते बेटे के विदेश चले जाने पर 'बहुत अकेली' रह जाती है। वह दूसरा विवाह करने से पूर्व अपने बेटे के सुख का विचार छोड नही पाती, इसीलिए वह अपने विवाह के सम्बन्ध मे बेटे की प्रतिक्रिया को जानने के लिए उत्सुक है। फ्राज और थानयुन की इन माताओं के अतिरिक्त पीटर जैसा सामान्य गेटकीपर भी घर से जुडी हुई आत्मीयता की भावना से वचित नही है। होस्टल के विद्यार्थी धनाभाव की दशा मे घर चिट्ठी लिखने के लिए डाक टिकट खरीदने के बहाने हमेशा पीटर से पैसा उधार लेते रहते हैं। पैसा देते समय पीटर को इस बात का सतोष होता है कि हजारो मील दूर रहने के बाव जूद ये विद्यार्थी अपने घरो को नही भूले हैं। घर विषयक इस आत्मीयता के कारण होस्टल के तरुण विद्यार्थियो की तुलना मे वह 'सेंट' तो क्या, एंजिल से कम नही है।

अपने-अपने घरो से उदासीन इन विद्यार्थियो का प्रतिनिधित्व इदी करता है। उसके पक्ष मे यह कहा जा सकता है कि उसने ऐसी उम्र मे घर को छोडा है, जब कि बचपन का सम्बन्ध घर से टूट जाता है तथा बडप्पन का नया रिश्ता अभी जुड नही पाता। घर छोडने के बाद विशिष्ट काल तक घर से दूर भिन्न सास्कृतिक वातावरण मे रहने के बाद उसके लिए फिर से अपने पुराने घर मे पहले की तरह लौट सकना सम्भव नही है। ऐसी स्थिति मे उसे घर बहुत अवास्तविक-सा जान पडता है, जैसे वह दूसरे की चीज हो, दूसरे की स्मृति हो। यह तर्क एक सीमा तक ही सच है, क्योकि घरेलू आत्मीय सम्बन्ध दो व्यक्तियो के बीच के अन्तराल को पाटने मे समर्थ हो सकते हैं। यदि दुर्जनतोषन्याय से यह स्वीकार भी कर लिया जाए कि तेजी से मानसिक विकास लाने वाली उम्र मे घर छोडने के बाद घर का लगाव नही रह पाता, तो यह भी उतना ही सच है कि इसी उम्र मे नए रिश्ते जोडने की सभावनाएँ भी सबसे अधिक होती हैं। इसके लिए एक मात्र शर्त इतनी है कि व्यक्ति मे परखने की प्रवृत्ति हो। यदि हम अन्य व्यक्ति की प्राइवेसी का आदर करने के शिष्टाचार के नाम पर उसकी निजी जिन्दगी मे दखल न देने की मान्यता से चिपके रहेंगे, तो अकेलेपन की भावना के अतिरिक्त हमारे हाथ और क्या लग सकता है? हम एक दूसरे की निजी जिन्दगी का परिचय केवल व्यावहारिकता की दृष्टि से ही नही पाना चाहते। व्यावहारिकता की सीमाओ मे बँधा हुआ सतही परिचय हमे भीड मे भी अकेला बना देता है। इसलिए इदी का यह विचार कि हम एक दूसरे को इतनी सीमा तक जानने लगे थे, जहाँ यह पता चल जाता है कि हममे से कोई एक दूसरे की मदद नहीं कर सकता। यदि कोई कुछ मदद कर भी

सकता है, तो उतनी नहीं, जितनी दूसरे को जरूरत है, ठीक नहीं है। यह ठीक है कि एक विशिष्ट सीमा के आगे कोई किसी की मदद नहीं कर सकता, किन्तु यह भी सही है कि वह परिचय-जन्य सहानुभूति दे सकता है, जो सबसे बड़ी मदद सिद्ध होती है और जिसके कारण नरक की धधक भी नहीं रह जाती। ट्रेजडी तो यह है कि इदी के समान रायना भी अपने और इदी के सतही परिचय को आवश्यकता से अधिक समझती है। रायना की इस धारणा के पीछे दूध से जलने के बाद छाछ को भी फूँक-फूँक कर पीने वाले व्यक्ति की सतर्कता है। व्यावहारिकता के बने बनाए घेरे से बाहर आकर प्राप्त किए गए परिचय में ही अन्तरंग सम्बन्ध का खुलापन महसूस होता है और इस प्रकार के खुलेपन में ही किसी के व्यक्तित्व का स्वस्थ विकास होता है।

अकेलेपन की संवेदना के इस प्रसंग में यह देखना आवश्यक है कि अकेलेपन से पीड़ित पात्रों ने अपने अपने अकेलेपन से मुक्ति पाने के लिए जिन मार्गों का सहारा लिया है, वे कहाँ तक सही हैं। प्रथमतः हम रायना के अकेलेपन पर विचार करें, तो हमें यह दिखाई देता है कि अपने अकेलेपन से छुटकारा पाने के लिए वियेना से बाहर प्राग आदि नगरों में जाती रहती है। इन प्राग आदि पराये नगरों में भी वह सर्दियों के मौसम में जाना पसन्द करती है, क्योंकि सर्दियों के दिनों में टूरिस्टों की भीड़ नहीं रहती। पराये नगरों में भी अगर अकेलेपन का उसे अनुभव होने लगता है, तो वह उस अकेलेपन को बहलाने के लिए ट्रेनें बदलती रहती है, जिससे उसका अकेलापन बहुत कुछ कम हो जाता है। अकेलेपन के तनाव से मुक्त होने के लिए वह इदी के समान अपने को शराब में डुबो देना चाहती है। शराब के नशे की एक सीमा के बाद प्रायः मनुष्य ढेर-सी बातें कहने के लिए आतुर हो जाता है। नशे में उसे इस बात का भान नहीं रह जाता कि सुनने वाले के लिए उसकी बातें विशेष महत्त्व की हैं या नहीं। श्रोता की सहृदयता निजी अन्तरंग को खोलने की कसौटी होती है। शराबी आदमी नशे में इस कसौटी को परखने की शक्ति खो देता है। नशे के माध्यम से अकेलेपन से छुटकारा पाने की यह प्रवृत्ति तात्कालिक उपाय मात्र बनकर रह जाती है। अकेलेपन के दबाव और तनाव के प्रसंग में शराब के नशे का समर्थन केवल उस दशा में ही किया जा सकता है, जबकि दबाव और तनाव हार जाएं और वह नशा वैयक्तिकअकेलेपन के अलगाव को भेदने की भूमिका बन जाए। मनिस्टरी से जरा नीचे उतरने के बाद होस्टिनेस या शराब में भरपूर बियर पीने के बाद ही रायना इदी के सामने सहज भाव से खुलकर बोलने लगती है और इस खुलेपन के कारण इन दोनों में निकटता का अहसास बढ़ जाता है। प्रस्तुत उपन्यास में केवल इसी दृष्टि से शराब के नशे को स्थान दिया गया होता या मौसम के तकाजे के अनुसार उसकी मात्रा नियत होती, तो कोई बात नहीं थी, किन्तु खटकनेवाली

बात तो यह है कि सम्पूर्ण उपन्यास शराब से सराबोर है।

उपन्यास का घटनास्थल प्राग बियर के नगर के रूप मे मे विख्यात है। इस बियर के नगर से सम्बन्धित इस उपन्यास मे बियर का तो जैसे अखण्ड साम्राज्य है। उपन्यास के प्रारम्भ मे ही इदी टूरिस्ट एजेन्सी मे जाने से पहले बियर पीता है और उसके बियर पान के साथ ही उपन्यास का अन्त होता है। उसे बियर पीने के बाद गिलास मे बची हुई बियर फेंकना हमेशा ही अखरता है। इसीलिये वह होस्टिनेस या सराय मे रायना के गिलास मे बची हुई बियर को उसके बरावर मना करने के बावजूद पी कर खत्म कर देता है। बियर के अतिरिक्त अन्य अनेक शराबो का भी वह रसिक है। उसके पलग के नीचे का भाग तो मानो शराब की खाली बोतलो का 'सैलर' ही है। वह तो कुछ पी कर सभलने वाले व्यक्तियो मे से एक है।[१]

इदी के समान ही रायना पीती ही नही, बेतहाशा पीती है। उसे तो बचपन से ही बियर पीने की आदत है। *इन प्रमुख पात्रो के अतिरिक्त उपन्यास के अन्य पात्र* भी प्राय जब तब पीते ही रहते हैं। और तो और पीटर जैसा गौण पात्र भी गेट-कीपरी करते करते विदेशी टिकट इकट्ठा करता रहता है और उन्हे बेच कर अपनी रात को बियर के पैसे जुटाता रहता है।

'वे दिन' उपन्यास मे केवल शराब का ही बोलबाला नही है, अपितु वोद्का, स्लीवोवित्से (ब्राडी), शैरी कोन्याक, तोकाई, पापरिका आदि न जाने कितने जाने अनजाने शराबो के नाम आये हैं। इतना ही नही, विभिन्न शराबो के प्रभाव वैशिष्ट्य की सूक्ष्मताओ का जहाँ-तहाँ उल्लेख हुआ है। कहते हैं कि वोद्का सुख का चिह्न है, जिसे पीने के बाद इदी को हमेशा भूख सताने लगती थी। स्लीवोवित्से (ब्राडी) को पीकर ऐसे लगने लगता है, 'जैसे अन्तडियो मे कोई धीमे धीमे गुदगुदी कर रहा हो।'"[४] कोन्याक तो अपने प्रभाव मे अद्भुत होती है। "और चीजें प्यास *बुझाती है, कोन्याक उसमे खेलती है—और वह खलती नही। वह खोलती है* दिन भर के जमा किए हुए शब्दो को।"[६] इन सबसे भिन्न प्रभाव तोकाई का पडता है। वह "शुरू-शुरू मे हमेशा खामोश-सा बना देती है। लेकिन लगता नही कि हम खामोश बैठे है। हम सुनने लगते हैं—आवाजो को, जो अब हैं या जो हमने बहुत पहले सुनी थी और यह 'सुनना' उतना ही उत्तेजित कर देता है जितना बातें करना। पीने के समय कुछ बीता हुआ नही लगता। लगता है, सब स्मृतियाँ एक जगह ठहर गई हैं—पानी के नीचे सुडौल, चमकीले पत्थरो की तरह।"[१] अनावश्यक रूप म जहाँ-तहाँ की गई शराबो की चर्चा के विषय को अनावश्यक आलोचना विस्तार से बचने के लिए हम यही पर छोड देना ठीक समझते हैं।

*अकेलेपन के दुख को जिस प्रकार कुछ काल के लिये शराब की मस्ती म* डुबोने का प्रयत्न किया जाता है, उसी प्रकार उसे मदन की मस्ती मे भी अल्पकाल

के लिए डुबोया जा सकता है। कुछ लोगो का तो ऐसा विचार है कि अकेलेपन का रामबाण इलाज ही मदनमस्ती है। उनका तर्क है कि अद्वैतवाद का एकाकी ब्रह्म भी अकेलेपन की ऊब से उबरने के लिये निजी स्वरूप को ही पति-पत्नी के रूप मे द्विधा विभक्त करके स्वरूपगत आनन्द को विषयगत रूप देकर भोग करता है। मदन या काम विषयक यह विचार गलत नही है, इसमे केवल इतना परिवर्तन कर लेना चाहिए कि काम अकेलेपन का शर्तिया इलाज तभी बन सकता है, जब कि वह सहभोक्ताओ के अन्तरग सम्बन्ध की भूमिका बन कर सहभोक्ताओ को एक दूसरे का पूरक अधीन बना दे। अन्यथा यह भी शराब की मस्ती की तरह तात्कालिक भुलावा मात्र बन कर रह जाता है। प्रस्तुत उपन्यास मे देह की सतह तक सीमित रह जाने वाले काम सम्बन्धो का अनेक प्रसगो मे उल्लेख हुआ है। उपन्यास के प्रारम्भिक भाग मे ही इदो ने शिकायत करते हुए उस नियम का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार कोई भी विद्यार्थी आठ बजे के बाद अपनी प्रेमिका को होस्टल पर नही ला सकता था। उसे यह नियम 'काफी हास्यास्पद' लगता है। इस नियम के कारण गर्मियो मे तो विशेष अडचन नही होती थी, क्योकि गर्मियो की रातो मे अपनी-अपनी लडकियो के साथ वेन्सोवी गार्डन्स आदि स्थानो मे सहवास का सुख उठाया जा सकता था; किन्तु सर्दियो के दिनो के लिए यह नियम अत्यन्त ही असुविधाजनक था। सर्दियो के दिन फ्राज जैसे विद्यार्थियो के लिए अडचन नही थी, क्योकि वह होस्टल पर नही रहता था। उसके कमरे पर उसकी लडकी कभी भी आ जा सकती थी। सर्दियो मे उसके कमरे मे अगीठी मे सुलगती हुई आग देख कर ही उसके मित्र जान जाते थे कि उसकी लडकी मारिया घर मे है। होस्टल पर रहने वाले साहसी प्रेमी सर्दियो के दिनो मे भी म्यूजियम आदि की सीढियो के अँधेरे कोनो मे यथाकथचित् सहवाससुख उठा ही लेते थे, किन्तु निश्चिन्तता और सुविधापूर्वक नही। इसलिए विद्यार्थी सर्दियो के दिनो मे होस्टल के गेटकीपर या 'एजिल' को मना कर इस मुश्किल से बच जाते थे। होस्टल के कमरे मे एक दूसरी दिक्कत अवश्य थी और वह थी रूममेट की। अपने रूमानियम रूममेट की प्रेमिकाओ के कारण इदो को अक्सर अपनी शामे होस्टल के बाहर काटनी पडती थी। इदो की असुविधा का विचार करके उसके रूममेट ने उसे आँखें मूँदकर अपने पलँग पर लेटे रह सकने की अनुमति ही नही दे रखी थी अपितु यहाँ तक कह रखा था कि चाहे वह बीच-बीच मे आँखें खोल कर देख भी सकता है। अपने रूममेट के समान इदी को भी कोई निश्चित प्रेमिका नही थी। वह हर तीन चार महीनो के बाद किसी नई अपरिचित के साथ अपने प्रिय होटल स्वादिया मे पहुँच जाता था। उस होस्टल के क्लॉकरूम के काउटर पर काम करने वाली मिसेज तानिया हर बदलो हुई लडकी को देखकर पहले तो दुःखी हो जाती थी, किन्तु बाद मे उसका दुःख कुतूहल मे बदल गया था।

इदी उसरे दुःख को तो सह लेता था, किन्तु उसके कुतूहल के कारण उसे शर्म महसूस होती थी। गनीमत है कि शर्म को पूरी तरह से घोल कर पी नही गया था।

*लड़की-बदल* इदी के लिए रायना का सम्बन्ध अपने पूर्वसम्बन्धों से भिन्न प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध हुआ। पहले ही दिन रायना के अबोध ढंग से फ्लर्ट होने के बाद वह इदी के लिए टूरिस्ट कम स्टूडेंट हो गई थी। दूसरे दिन इदी के चूमने और आलिंगन करने के तरीके से ही वह जान गई थी कि इदी इन बातो मे 'बहुत अभ्यस्त' है। तीसरे दिन तो वह रायना को भोगने की तैयारी करके ही होस्टल से निकला था। इसलिए उसने कड़ाके की सर्दी में सवेरे स्नान किया था। होस्टल के लडके किसी लडकी से मिलना हो तो ही सर्दियो मे नहाने का कष्ट उठाते थे। नहाने मे दिलचस्पी न होते हुए भी इदी ने विशेष कारण से ही सवेरे स्नान किया था। इस प्रसग मे इदी ने नग्न होकर अपने गुह्यांग को छूकर प्यार करने का जो विवरण उपस्थित किया है, वह बडा ही अनावश्यक है। रायना को भोगने की इदी की योजना सहज ही सफल हो गई, क्योंकि रायना भी तो अधिक दिन अकेली नही रह सकती थी। दूसरे शहरो मे उसके साथ जो घटित होता था, वह प्राग मे भी घटित हुआ। इदी और रायना दोनो के लिए ही दैहिक सम्बन्ध म कोई नवीनता की बात नही थी, किन्तु दोनो ने ही इस दैहिक सम्बन्ध मे यह अनुभव किया कि यह केवल रोजमर्रा की चीज नही है। आत्मीयता के स्पर्श ने इस सम्बन्ध के स्वरूप को मौलिक रूप से परिवर्तित कर दिया था। इस सम्बन्ध की आत्मीयता को गणितीय पद्धति से सकारण सिद्ध करना सरल कार्य नही है। इस प्रसग मे इतना अवश्य कहा जा सकता है कि कभी-कभी दैहिक सम्बन्ध के माध्यम से सहभोक्ताओ को अपने व्यक्तित्वो की परस्पर सवादी आतरिक लयो की उपलब्धि हो जाती है। इदी के जीवन मच पर रायना का पदार्पण अप्रत्याशित रूप मे हुआ, किन्तु उसे यह अनिवार्य ही प्रतीत हुआ। इस सम्बन्ध के विषय मे आपेक्षिकता की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि इदी ने जिन्दगी भर बहुत-से दरवाजो को खटखटाया, किन्तु उसे उन दरवाजो के परे कुछ नही मिला। एक दिन अकस्मात् उसका हाथ उस दरवाजे के भीतर से खीच लिया गया, जिसको उसने खटखटाने का विचार भी नही किया था। उस हाथ ने इदी को इस तरह से पकडा कि वह उसे जिन्दगी भर छोड नही सका। दरवाजो को खटखटा कर बढ जाने वाली जिंदगी में वह पहली बार रुका और वही का होकर रह गया। उसे बड़े ही अनजाने रूप से 'झूठे बसन्त' के दिनो म जिंदगी के असली बसत के दिनो का अनुभव मिला। इदी ने इन दिनो का अधिकतम आनन्द बडी आतुरता से निचोडा और अब उसी के कारण पूरी तरह से निचुड सा गया है। उसके लिए रायना का सम्बन्ध महज चेतना की सतही परत को छूकर ही गुजर नही गया, अपितु

चेतना की गहनतम परतों को विक्षुब्ध करने वाला सिद्ध हुआ। इसलिये रायना के साथ भोगी हुई स्थितियों को वह आज अकेले भोगने के लिए विवश है। आज भी अतीत से वर्तमान मे पहुँचने वाली रायना की अधीर और आग्रहपूर्ण आवाज इदी को पकड लेती है। रायना के सम्बन्ध के दिन, आज की अकेली पुकार के दिन बन कर रह गए हैं। ये वे दिन हैं, जिन्हे इदी न छोड सकता है और न ही दुबारा पकड सकता है। यही स्थिति कुछ भिन्न सदर्भों के साथ रायना के लिए भी सच है। ठिठुरन के दिनो मे इदी के आत्मीय सम्बन्ध की ऊष्मा पाकर जाक के साथ अनुभूत जिंदगी के सुलगते क्षणो की उसकी सजातीय एव सघनतर स्मृतियाँ फिर से दहक उठती हैं। रायना के लिए इदी के सम्बन्ध के दिन मन को हॉंट करने वाली पूर्व-स्मृतियों को उत्प्रेरित करने वाले दिन हैं। इसी कारण इन दिनो मे इदी जितना ही रायना से अपने लिए सुख छीनता जाता था, उतना ही रायना अपने जाक से सम्बन्धित उन दिनो की स्मृतियो के कारण खाली होती चली गई थी। उसके लिए प्राग के ये दिन वियेना के उन दिनो के साथ अनिवार्यत जुडे हुए हैं।

'वे दिन' उपन्यास इन्दी और रायना के सम्बन्ध के गिने-चुने साढे तीन दिनो की कहानी है। उसके सम्बन्ध के विकास को बडी ही सूक्ष्मता और सशक्तता के साथ उपस्थित किया है। इस सम्बन्ध के स्थापित होने के पूर्व इन दोनो चरित्रो की मानसिक भूमिकाओ को ध्यान मे रखना आवश्यक है। इन दोनो का पारस्परिक सम्बन्ध होने से पूर्व दोनों की मानसिक भूमिकाओ मे इगे मूलभूत अन्तर दिखाई देता है। रायना से मिलने से पूर्व इन्दी अनेक लडकियो से मिला था, परन्तु इन दैहिक मिलना मे मन के मिलन से वह प्राय. मुक्त ही रहा था। इदी ने रायना से मिलने पर ही प्रथमत आत्मीय लगाव का अनुभव किया। इदी के समान ही रायना अपने कामसम्बन्धो मे एकनिष्ठ नही रही है, किन्तु इन सम्बन्धो मे से उसका और जाक का सम्बन्ध गहरी आत्मीयता का सम्बन्ध रहा है। इस सम्बन्ध के अतिरिक्त उसके शेष कामसम्बन्ध केवल शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन मात्र रहे हैं। जाक के सम्बन्ध ने उसे अकेलेपन की पीडा से छुटकारा पाने के लिए टूरिस्ट बना दिया है। टूरिस्ट के नाते हो वह इन्टरप्रेटर का काम करने वाले इदी से मिली। इदी और रायना मे उम्र का अन्तर भी उपेक्षणीय नहीं है। इदी जवान है और रायना प्रौढ़। इसके अतिरिक्त रायना के साथ मीता भी है, जो उसके उत्तरदायित्व और अलगाव को बनाये रखने का कारण है।

इदी और रायना का प्रथमत मिलन इन्टरप्रेटर और टूरिस्ट का मिलन था। टूरिस्टो मे मूलतः ही ठडा सा परायापन होता है। तिस पर यह टूरिस्ट तो अपनी पूर्वस्मृतियो के कारण विशेष रूप से अन्तर्मुख है। उससे परिचय बढाने के लिए उसका अपने से बाहर निकलना आवश्यक था। अपने को दूसरे तक बढा कर ही

परिचय बढाया जा सकता है, इसलिए बहिर्मुखता परिचय या सम्बन्ध की पहली शर्त है। कोई भी मनुष्य बहिर्मुख होकर किसी नए व्यक्ति से सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। नए व्यक्ति से इस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करते समय सुरक्षा की भावना व्यक्ति-मात्र म आती ही है। इसी कारण रायना ने इदी को पहले-पहल खतरनाक-सा समझ लिया था। नयेपन के आतक को दूर करने के लिए एक दूसरे के अँधेरे को भेदने वाला विश्वास अपेक्षित है। नयेपन के सकोच और सदेह को दूर करके ही यह विश्वास पाया जा सकता है। इदी के केवल इन्टरप्रेटर मात्र बने रहने पर यह बात सभव नही थी। इसलिए वह रायना को सहजत प्रसन्न करने के लिए प्रयत्न कराता है। इसके लिए वह रायना के लिए अधिकतम उपयोगी होना चाहता है, जिससे कि वह कृतज्ञ होकर वह इदी के प्रति उन्मुख हो सके। रायना के लिए उपयोगी न हो सकने की स्थिति मे उसे झुँझलाहट-सी होती है। शॉपिंग के समय जर्मन जाने वाली शॉपगर्ल के प्रसग मे इदी ने इसीलिए अपने को बेकार सा महसूस किया है। वह रायना के लिए उपयोगी पडने के प्रयत्न मे 'रिलेदेवू का बिल अदा करना चाहता है, किन्तु दूसरी ओर उसके द्वारा बिल चुकाए जाने पर रायना जरूरत से अधिक गम्भीर हो जाती है। वह नही चाहती उसके कारण दूसरे को खर्च करना पडे। किन्तु इसके साथ ही वह इदी के प्रति अपने को उपकृत अनुभव करती है। वह इदी से यह कहती है कि अगर तुम न होते, तो मैं इतना सब कुछ नही देख सकती थी। इस प्रकार दोनो के बीच नएपन का सकोच और संदेह ज्यो-ज्यो दूर होता चला गया, त्यो-त्यो पहचान बढती चली गई। इदी और रायना यह भूल गयें कि वे टूरिस्ट और इण्टरप्रेटर से बातें कर रहे है।

इदी और रायना की बढती हुई पहचान के बीच सहसा अपहचान के क्षण उभर आते थे। बहिर्मुख होने पर भी रायना आन्तरिक दु खद स्मृतियो के स्पर्श से बीच बीच मे अचानक ही अस्वस्थ हो उठती थी। उसकी आँखो मे अजीब-सा ठडा-पन घिर आता था। उसकी हँसी ऐसी हो जाती थी कि वह मन को अधिक आश्वस्त नही करती थी। उसका स्वर सब प्रकार के भावो से निचुडकर एकदम खाली सा हो उठता था। यद्यपि वह वियेना से छुटकारा पाने के लिए प्राग आई थी, किन्तु प्राग मे वह उन्ही चीजो को देखना चाहती थी, जिन्हे वह जाक के साथ पहले देख चुकी थी। परिणामत वह वियेना के अतीत से छूट नही पाती थी। अतीत से लगाव के कारण ही वह संट लारेंतो को अकेले ही देखना चाहती है। इस प्रसग मे अकेले-पन का अवसर देने के कारण वह इदी के प्रति कृतज्ञ-सी हो उठती है। अतीत की स्मृतियों के कारण रायना और इदी के बीच कितनी ही बार अनुपस्थित जाक सर्वा-धिक उपस्थित जान पडता था। जाक की इन उपस्थितियो का अनुभव करके इदी को लगा कि वह रायना से बहुत बाद मे मिला है। इसके अतिरिक्त रायना और जाक

के सम्बन्धों का मधुरतम मूर्त रूप मूर्ति मीता है, जिसे नकार सकना रायना के लिए असम्भव है। मीता कभी जाक के साथ रहता है और कभी रायना के साथ। रायना अक्सर शनिवार की शाम को जाक से मिलती रहती है और उसने अब भी यह विश्वास खोया नहीं है कि उसका और जाक का सम्बन्ध फिर से उसी प्रकार शुरू हो सकता है, जिस प्रकार वह प्रथमतः शुरू हुआ था। इन सब कारणों से इंदी को रायना के साथ रहते हुए ऐसा अनुभव होता है, जैसे वह किसी घर के भीतर पहुँचने के बावजूद घर के बाहर खड़ा है।

एक ओर रायना जहाँ जाक को भुला नहीं पाती, वहाँ वह जाक की स्मृतियों से पीड़ित होकर उनसे मुक्त होना भी चाहती है। वह इंदी के साथ बिताये जा रहे वर्तमान के काल में कल को पूरी तरह भूल जाना चाहती है। वह अपने अतीत की दृष्टि से पूरी तरह मर जाना चाहती है, किन्तु मरना सरल तो नहीं है। वह दूसरे दिन इंदी से यह कहती है कि आज मैंने पूरे दिन वियेना के बारे में नहीं सोचा। मेरे संग ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। रायना के इस कथन के तुरन्त बाद ही सेंट लॉरेंतो का प्रसंग है। वह कल के बने-बनाए चीजों के घेरे से बाहर आना चाहती है, किन्तु बाहर आते ही पुनः घेर ली जाती है। इंदी के कमरे पर इन चीजों के घिराव से बचने के लिए वह इंदी की आवाज सुनते रहना चाहती है। उसे भय है कि कहीं उसे अकेले पाकर पूर्वस्मृति की डायन झपट्टा मार कर फिर से उठा न ले जाये। कितनी ही बार इंदी ने उसे पूर्वस्मृति के चंगुल से छुड़ाकर वर्तमान में खींच लाने के लिए प्रयत्न किया है। इस प्रकार अतीत की स्मृतियाँ रायना के अन्दर में जलते-बुझते विद्युत्दीपों के समान कार्यरत रही हैं। स्मृतियों के ये विद्युत्दीप फ्यूज हुए दीप नहीं हैं। इसी कारण इंदी और रायना के सम्बन्ध के बीच में पहचान और अपहचान की लुकाछिपी उपन्यास में आद्यंत चलती ही रही है।

इंदी और रायना के सम्बन्ध का एक पहलू दैहिक भी है। रिल्के रेंदेवू में रायना ने अबोध ढंग से फ्लर्ट होकर इंदी के हाथ पर अपना हाथ रख दिया और उसके हाथ की गरमाई के साथ इस सम्बन्ध की गरमाई का आरम्भ हुआ। स्केटिंग रिंक की ओर जाते समय ठंड से बचने के लिए रायना ने अपना हाथ इंदी के डफल-कोट की जेब में डाल दिया था। जब रूमाल निकालने और रखने के लिए इंदी जेब में हाथ डालता, तो रायना के हाथ का स्पर्श पाकर उसके सारे शरीर में झुरझुरी-सी फैल जाती थी। इसी प्रसंग में सड़क को स्केटिंग रिंक से जोड़ने वाले छोटे-से सँकरे लकड़ी के पुल पर से गुजरते हुए इंदी रायना का हाथ जेब से निकाल कर पकड़ लेता है और पुल पार कर लेने के बाद डर के रहने पर भी रायना इंदी के हाथ को कसकर पकड़े रही है। पहले ही दिन परिचय में इतनी सघनता आ गई थी कि रायना को विस्मय हो रहा था कि वह इंदी से सुबह ही तो मिली थी। यद्यपि पूरे

दिन विशेष कुछ नही हुआ था, किन्तु 'होने का सुख' अपनेपन के कारण 'शुरू' हो गया था। निकटत्ता का अनुभव करने के लिए रायना इदी से 'मिसेज रैमान' न कह कर सिर्फ 'रायना' कहने के लिए कहती है। सम्बन्ध की थोडी-सी सघनता के साथ इदी के मन मे विस्मयकारी डर से जुडी हुई अजीब-सी पगली आकाक्षा ने झांकना शुरू कर दिया था, किन्तु रायना की आँखो मे सिमट आये अजीब-से डर को देखकर वह जहाँ की तहाँ स्तब्ध बनी रही। उस दिन होटल के पोर्च के पास परस्पर विदा लेने के बाद इ दी की आकाक्षा और रायना का डर एक दूसरे से बेखबर रात-भर पडे रहे।''

पहले दिन परस्पर विदा होने के बाद रायना बहुत देर तक सो न सकी। वह होटल के बाहर भटकने के लिए निकल गई और उसने म्यूजियम के पास के टेलीफोन बूथ से इदी को फोन किया, किन्तु इंदी कमरे पर नही था। दूसरे दिन रायना ने इदी से पूछा कि मेरे फोन करने से तुम्हें बुरा तो नही लगा। इसी दिन इदी की रायना को चूमने की इच्छा अप्रत्याशित रूप से दो बार पूरी हुई। प्रथम प्रसग मे रायना के मुँह फेर कर कुछ कहते हुए इदी के होठ उसके मुँह पर घिसटते चले गये और अवसर से लाभ उठाकर इदी ने उसे चूम लिया। 'मीता आता होगा' कहकर रायना ने अपने को अलग कर लिया। इसी दिन पुन. 'हँगरवाल' के निकट रायना के द्वारा जलती हुई तीली बुझाने के बाद स्थानीय प्रथा के अनुसार फिर से चुबन लिया और कपडो को भेदकर नगे बदन को टटोलने वाला आलिगन भी पाया। इन अप्रत्याशित चुबन और आलिगन को पाने के बाद दूसरे दिन रायना से विदा होने से पूर्व कुछ 'चीज' इदी की देह मे फडफडाने लगी।''

तीसरे दिन थियेटर जाते समय गली मे से गुजरते हुए प्रेमी-युगलो की छायाएँ देखकर इदी असमजस म रायना से कुछ अलग हो जाता था, जिसके कारण रायना जरा सा मुसकरा देती है। वह सहज ढग से आउट-डोर प्रेमियो को देखकर आगे बढ *जाती थी। इस सहजता के कारण इदी को रायना अपने से बडी लगने लगती थी।* इसके बाद थियेटर के अँधेरे मे सगीत के प्रभाव से रायना और इदी की धमनियो मे चाह के स्पदन फडफडाने लगे। इस चाह मे डर और सुख दोनो थे। किन्तु थियेटर से निकलकर मानेश रेस्तराँ मे भरपूर पी लेने के बाद एक अजीब सी लापरवाही मे डर विलीन हो गया। एक निडर-सा चमकीला आह्लाद दोनो पर छा गया। रेस्तराँ *से बाहर आने पर उन्होंने अपनी चाह मे सिमट आये विश्वास का अनुभव किया,* जिसे वे पिछले तीन दिनो से अँधेरे मे टटोल रहे थे। दोनो ही इस विश्वास की छाया मे होस्टल के कमरे मे पहुँचे। वहाँ अब वह चाह उन दोनो के शरीरो मे *मोमबत्ती की कौंध रही थी। उस मर्मांतक चाह ने दोनो को अपने मे वसोट लिया।* दोनो ने एक दूसरे के अलगाव को भेद कर एक दूसरे की देह मे अपनी सतह को

टटोलते हुए डूब जाने दिया। इस प्रकार इदी और रायना शारीरिक एवं मानसिक सम्बन्ध के विकास पर टिप्पणी करना चाहें, तो हम रायना के शब्दों को उधार लेकर कह सकते हैं कि—"इट इज सो विविड गुड वंडरफुल।"

रायना और इदी के विवाहवाह्य काम सम्बन्ध के इस प्रसंग में नैतिकता की समस्या उठाई जा सकती है। स्वयं रायना ने इसके सम्बन्ध में यह कहा है कि—"यह शायद अनैतिक है ।"[१२] यह सम्बन्ध समाज की पारम्परिक धारणाओं के अनुसार अनैतिक होते हुए भी व्यक्ति की सहज शारीरिक आवश्यकताओं के नाते स्वाभाविक भी है। सम्भवतः इसीलिए रायना ने 'शायद' शब्द का प्रयोग किया है। यह ठीक है कि शरीर धर्म के नाते मनुष्य के कामसम्बन्ध की अवहेलना नहीं की जा सकती, किन्तु 'मनुष्य' के नाते कुछ तथ्यों का पालन उतना ही अनिवार्य है। मनुष्य के कामसम्बन्ध का पहला पथ्य यह है कि इसमें सहभोक्ताओं की आपसी रजामन्दी अवश्य हो। बलात्कार इस सम्बन्ध का सबसे बड़ा कुपथ्य है। आपसी रजामंदी के बाद दूसरा पथ्य सह भोक्ताओं पर पड़ने वाला स्वस्थ प्रभाव है। तात्कालिक कामज्वर की सन्निपात दशा में सम्बन्ध घटित हो जाने के बाद ज्वर के उतरने के बाद अगर सह-भोक्ताओं में से किसी एक को भी पछतावा हो, तो वह सम्बन्ध स्वस्थ प्रभाव का अविरोधी न होने के कारण केवल 'मिजरी' बन कर रह जाता है। कामसम्बन्ध का तीसरा पथ्य दायित्व से सम्बन्धित है। दायित्व की दृष्टि से कामसम्बन्ध के सहभोक्ता विश्वामित्र के समान अपने सामाजिक दायित्व से इनकार करना इस क्षेत्र की सबसे बड़ी अनैतिकता है। स्वस्थ कामसम्बन्ध की ये न्यूनतम कसौटियाँ हैं और इन कसौटियों के अनुसार इदी और रायना के कामसम्बन्ध को विवाहवाह्य होने मात्र से अस्वस्थ नहीं कहा जा सकता। विवाहवाह्य होते हुए भी यह सम्बन्ध सौहार्दवाह्य नहीं है। इस सम्बन्ध में जहाँ दोनों की आपसी रजामन्दी है, वहाँ वे दोनों सम्बन्धोत्तर काल में पछतावे की भावना से मुक्त हैं। इस सम्बन्ध की उपलब्धि की पर्याप्तता से रायना सन्तुष्ट ही है। सामाजिकता की दृष्टि से प्रस्तुत प्रसंग में मीता को सामाजिक दायित्व का केन्द्र कहा जा सकता है। हम देखते हैं कि रायना ने अपने और इदी के सम्बन्ध को मीता से छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है। रायना के इस कामसम्बन्ध के दायित्व की केन्द्रेतर अनेक परिधियाँ कही जा सकती हैं, और उनकी दृष्टि से इस सम्बन्ध की विवादास्पदता अवश्य है।

इदी और रायना के सम्बन्ध की कथा के माध्यम से अकेलेपन की संवेदना को अभिव्यक्त करना ही लेखक का उद्देश्य है। इसी उद्देश्य की पूर्ति में उपन्यास के सभी उपकरण या तत्त्व समर्पित हैं। कथानक के नाम पर केवल पाँच दिनों की कहानी है, जिनमें पहला और अन्तिम दिन कथानक के भूमिका और उपसंहार भागों के समान है। कथानक को स्मृत्यात्मक पद्धति से उपस्थित किया गया है और कथा-

नक का प्रारम्भ कालविपर्यय की पद्धति का अवलम्ब करके उपस्थित किया गया है। इस कथानक मे ऐसा कुछ नही है, जिसे हम घटना कह सकें। केवले 'होने के सुख' की अभिव्यक्ति है। केवल इदी और रायना तीन चार दिन साथ रहे हैं, जिसे असाधारण घटना तो क्या घटना भी कह सकना कठिन है। दोनो के साथ रहते-रहते जो कुछ हुआ, वह एकदम अप्रत्याशित नही है। इस साथ रहने मे जो कुछ भी समय *व्यतीत हुआ है, वह कुछ भी मानी नही रखता। महत्त्व तो उन दोनो के सम्बन्ध के* बीच जिंदगी का अहसास कराने वाले सुलगते क्षणो का है और यह उन्ही क्षणो की कहानी है। इसलिए इस उपन्यास के कथानक मे याद करके तरतीबवार ढग से कहने *लायक विशेष कुछ नही है।*

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से भी लम्बी चौडी बातें उपस्थित करने के लिए बहुत कम अवकाश है। अकेलेपन की सवेदना की आलोचना के प्रसग मे इदी और रायना के चरित्र के विविध पहलुओ का उल्लेख किया जा चुका है। चरित्र चित्रण के नाम पर उसे यहाँ फिर से दोहराना निरर्थक है। केवल इदी और रायना से भिन्न चरित्रो का सक्षेप मे विचार कर लेना उपयुक्त है। इन गौण चरित्रो मे मीता ही ऐसा पात्र है, जो इदी और रायना, दोनो के सपर्क मे आया है। वह बालक होते हुए भी समझ का आदी है। उसमे बचपन की जिद् का अभाव है। वह वही सब कुछ करना चाहता है, जिससे उसकी माँ की प्रसन्नता बढे। शॉपिंग के समय माँ के कुछ समय के लिये न मिलने पर वह परेशान अवश्य हो जाता है, किन्तु आतकित नही, क्योकि वह माँ के विचित्र व्यवहार से परिचित है, लेकिन वह यह नही चाहता कि एक अजनबी इटरप्रेटर भी इतनी जल्दी माँ के इस व्यवहार का परिचय पा ले। उसके इस व्यवहार के कारण स्वय इदी को अपनी घबराहट बचकानी सी जान *पडी। मीता के सम्बन्ध की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात सेंट लॉरेंतो के प्रसग मे दीख* पड़ती है। सेंट लॉरेंतो के भीतर से वापस आने के बाद वह गत स्मृतियों और माँ के दुख के कारण अँधेरे मे करुण विषाद से भरकर सिसकने लगता है। मीता की *यह अकाल-प्रौढता रायना के गहनतम दुख की अभिव्यजना भी है।*

इदी, रायना और मीता के अतिरिक्त गौण पात्रो मे धानयुन, फ्राज और मारिया महत्त्वपूर्ण हैं। इनमे धानयुन इदी के समान अकेलेपन से ग्रस्त है। उसके *स्वभाव मे आक्रामकता का अश विशेष उल्लेखनीय है, जो कहा बहुत गहरी अधीरता* के साथ जुडी हुई है; इसीलिये उसे अकेला छोड देते समय इदी का हमेशा एक भय जकड लेता है। धानयुन के समान फ्राज नाम का दूसरा चरित्र है। वह हिनेमाटोग्राफी का अध्ययन करने के लिए प्राग *आया हुआ है*, किन्तु वह अपने अध्यापन केन्द्र से सतुष्ट नही है। वह बहुत जल्दी डेस्परेट हो जाता है। उसके सम्बन्ध में इदी यह सोचता है कि अगर वह हिटलर के काल मे बच्चा न होकर वयस्क होता तो वह

नाजी-शासन को कैसे निभा पाता। आज उसकी आयु अट्ठाईस वर्ष की है और मारिया को वह अपनी 'लड़की' कहकर इसी से परिचित कराता है। वह मारिया को अपने साथ जर्मनी ले जाना चाहता है, किन्तु दो साल से कोशिश करने के बाद भी उसे वीसा नहीं मिल पाता। वह चाहे तो मारिया से विवाह करके वीसा पाने का मार्ग पा सकता है, किन्तु वह ऐसा नहीं करना चाहता। वह मारिया से विवाह यदि करेगा, तो वीसा की शर्त पर नहीं। इस समय तो वह 'सिर्फ साथ' रहता है।[11] विवाह न करके सिर्फ साथ रहने की उसकी बात कुछ सगत नहीं जान पड़ती। साथ रहने में साथी की सुविधा अन्तर्निहित है और यह विवाह द्वारा ही सम्भव है।

मारिया इस उपन्यास का गौण पात्र होते हुए भी अविस्मरणीय है। वह जर्मन एम्बेसी में काम करती है तथा रोमन कैथोलिक लड़कियों के फ्लैट के एक कमरे में स्टेफान्का के साथ रहती है। उसके जीवन में रलीपवाकर की निर्भयता है। सजी-सँवरी 'कापी' में लिखे किसी पूर्वनिश्चित रफ ड्राफ्ट के अनुसार जीने जैसी बात उसमें है ही नहीं। उसमें जो कुछ है, वह अन्तिम रूप से 'आखिरी' है। उसने अगर फ्राज को चाहा है, तो सहज ढग से चाहा है। उसका डेस्पेरेट होना भी उसकी सहजता का अग होता है। इसलिये अपना दुःख किसी दूसरे को दिखाने की प्रवृत्ति उसमे नहीं है। वह यह जानते हुये भी कि फ्राज को उसकी जरूरत नहीं है, अपने सहज प्रेम के कारण फ्राज के साथ रहती है। फ्राज मारिया को बिना सूचित किये बर्लिन जाने वाला है, यह बात मारिया को मालूम है, किंतु उसे इस बात की शिकायत नहीं है।

मारिया के जीने में जिस प्रकार सजे-सँवरे ड्राफ्ट का स्थान नहीं, उसी प्रकार कपड़े पहनने के मामले में भी सजा-सँवरापन नहीं है। उसके साथी अक्सर सोचते हैं कि मारिया को कपड़े पहनने का सलीका उसे भले ही न आता हो, किन्तु सहज ढग से जिंदगी जीने का सलीका वह जानती है। उसका अन्तःकरण सम्पन्न है। किसी भी प्रकार की प्रत्यादान की भावना के बिना वह अपने मित्रो की सहायता करती चली जाती है। जब इंदी आदि के पास कुछ न रहता था, तब अक्सर वे मारिया के घर खाने चले जाते थे। कितनी ही बार रात की अनुचित घड़ियो में उन्होंने उसे कुछ क्राउन्स के लिए जगाया था। कहने का आशय यह है कि मारिया के जीवन में औपचारिकता ढूँढने पर भी दिखाई नहीं देती।

जिस प्रकार मारिया के जीवन में जीने का ड्राफ्ट का अभाव है, उसी प्रकार उपन्यास में उसका अस्तित्व पूर्वनियोजित ड्राफ्ट का अंग नहीं प्रतीत होता।

'वे दिन' उपन्यास का देशकाल अत्यन्त सीमित है। उपन्यास के अवसादपूर्ण अकेलेपन की सवेदना के अनुसार ही उसका स्वरूप है। प्रस्तुत उपन्यास विगत दिनो की कहानी है। पुराने दिनों की अवसादपूर्णता के समान पुराने होस्टल की पुरानी

मजिल इदी का निवासस्थान है। एक सर्दीला साँवला सा मैलापन उपन्यास के सारे वातावरण मे घुला हुआ है। गिरते हुए बर्फ के गालो के बीच बत्तियो का पीलापन रास्तो पर फैला हुआ दिखाई देता है। रास्तो पर बर्फ के कारण तरल गिलगिलापन गीली थरथराहट लिए पडा दिखाई देता है। ये क्रिसमस की छुट्टियो का समय है। चार दिन की चाँदनी के समान 'झूठे वसत' के दो एक दिन देखते ही देखते धुन्ध मे खो जाते हैं।

प्रस्तुत उन्यास की भाषा-शैली सचमुच ही अद्भुत है। इन्द्रियो के सूक्ष्मतर सवेदनो को इतनी सहजता और सशक्तता से साथ अकित किया गया है कि उन्हें पढकर आश्चर्यचकित रह जाना पडता है। इन्द्रिय सवेदनो की कुशल अभिव्यक्ति के स्थल उपन्यास म न जान कितने है, उनमे से इने गिने सवेदनो का ही यहाँ नमूने के रूप मे उल्लेख कि जा सकता है। इन्द्रिय सवेदनो मे रूपसवेदनो की अभिव्यक्ति के स्थल सबसे अधिक हैं। इदी के कमरे पर बुक शेल्फ स सिर टिकाकर अनजाने सोई हुई रायना का वर्णन करते हुए कहा गया है—"उसके चेहरे पर अब भी 'जागे रहने' का चौंका सा भाव था, जो अक्सर उन लोगो के चेहरे पर जमा रहता है, जो बिना सोने का इरादा किए अनायास सो जाते हैं।" लाउज के नीचे वाले होटल के बार मे से बियर पीकर बाहर आने पर किया गया वर्णन देखिए—"जब हम भीतर बैठे थे, दोपहर चली गई थी। अब अँधेरा था—नर्म और उज्ज्वल, जैसा दोपहर के बाद आता है, अगर वह दिन भर सूखी और चमकीली रही हो।"[१५]

रूपसवेदन के समान स्वरसवेदन की अभिव्यक्तिक्षमता के स्थल भी 'वे दिन' मे अनेक हैं। स्वरसवेदनो की सूक्ष्मता की ऐसी पकड अन्यत्र दुर्लभ है। लेतना पहाडी की ऊँचाई पर पहुँचने के बाद हवा की आवाज से अलग नदी की 'डार्क एण्ड डीप' आवाज के सम्बन्ध मे इदी कहता है—"इतनी ऊँचाई से उसका स्वर एक धीमी-सी थपथपाहट-सा लगता था। कभी वह एक एकदम बुझ जाता था। तब हवा बीच मे *आ जाती थी* । *फिर वह उठता था, अपने आप एक कमजोर आग्रह की तरह* जैसे वह अपने आप एक कमजोर आग्रह की तरह, जैसे वह अपने को हवा से मुक्त करने के लिए छटपटा रहा हो।"[१६] प्रस्तुत उपन्यास मे सगीत के विविध सवेदनो के प्रभावभेद का तो अव्याख्येय ढग से अकन हुआ है। ऑडिटोरियम मे आरकेस्ट्रा की वायलिन के स्वर का अकन देखिये—"आरकेस्ट्रा के जगल से सिर्फ एक वायलिन की सास उठती थी, घास पर हिलती हुई—एक चौंकी-सी चीख, सरसराते पानी के नीचे एक चमकीले पत्थर की तरह भीगी, कठोर और चमकीली, जिसे तुम छू सकते थे, फिर वह मरने लगती थी।"[१७] 'ए पीस बाई रावेल' के रिकॉर्ड से निकलने वाले 'पियानो के सुर बहुत ऊपर जाकर फुलझडियों की तरह खुल जाते थे।"[१८] मानेश रेस्तराँ मे सुने स्वरो का स्वरूप देखिये—"आरकेस्ट्रा के वायलिन का सुर उपर उठा

था—सुनहरा और भूरा, हवा में कांपता हुआ—जैसे कोई हाथ से मुँह ढक कर बहुत धीरे-धीरे रो रहा हो।"[१९] इन अभिव्यक्तियों में विशिष्ट इन्द्रियसंवेदन को तदितर इन्द्रियसंवेदन की शब्दावली द्वारा अभिव्यक्त करने में तो जैसे लेखक को कमाल हासिल है। कहीं कहीं एक से अधिक इन्द्रियसंवेदनों को बड़ी सहजता से व्यक्त किया गया है। शब्द और गंध की समन्वित अभिव्यक्ति देखिये—"जहाँ (होस्टल की छत पर) हर इतवार को प्राग के गिरजों की घंटियाँ तिरती आती हैं ... तुम सोते हुए भी उन्हें सुन सकते हो। तुम उन्हें सूंघ सकते हो। उनमें चिमनियों का धुंआ है।"[२०]

इन्द्रियसंवेदना के वैविध्य के समान ही विचारों और मानसिक स्थितियों का भी उसी क्षमता से उपन्यास में स्थान-स्थान पर वर्णन हुआ है। स्लीवावित्से को पीने के बाद की चकराहट को देखिए—'चकराहट का भी कैसा अजीब रंग होता है ... बादल-सी हल्की और सफेद—सिर की नसों के बीच तिरती हुई—तुम जानते हो, वह पकड़ के बाहर है, लेकिन उसके पीछे भागते रहते हो, जब तक नींद उसे दबोच नहीं लेती।"[२१] एक अन्य उदाहरण देकर हम इस चर्चा को समेट लेना चाहते हैं। रायना द्वारा अपनी प्रतीक्षा किये जाने की बात सोचकर इंदी उसकी अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है—"एक उम्र में यह विचार ही बहुत रुआंसा लगता है कि कोई खाली खाली-सा होकर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो ... एक क्षण बहुत सुख-सा भी होता है—बाद में। लगता है, तुम सबसे अलग हो। ... तुम्हें अचानक पहली बार अपनी अनिवार्यता का पता चलता है। और उस कातर से डर का ... जिसमें पहली बार तुम्हारे माँ-बाप साझा नहीं करते ... तुम्हारे मित्र भी नहीं। वह डर कुछ वैसा ही विस्मयकारी है, जब पहली बार तुम किसी हवाई कम्पनी के पैम्फलेट में ये शब्द देखते हो—Once in the sky, you are on your own !"[२२]

भाषा शैली की उपर्युक्त सामर्थ्य के साथ एक अन्य विशेषता की ओर पाठक का ध्यान बरबस चला ही जाता है। विशिष्ट विचार या अनुभूति को गहराने के लिए वाक्यविशेष की विविध प्रसंगों में पुनरावृत्ति करने की प्रवृत्ति उपन्यास में दिखाई पड़ती है। "सच ... क्या तुम विश्वास नहीं करते?"—वाक्य यत्किंचित हेर-फेर के साथ उपन्यास में आठ स्थलों पर आया है। इसी प्रकार रायना द्वारा उच्चरित वाक्य—"आई विल डाई" भी अनेक स्थलों पर रायना की वेदना को तीव्रतर रूप में व्यक्त करने के लिए दोहराया गया है।

'वे दिन' उपन्यास की भाषाशैली में एक विशिष्ट दोष भी है। जिस प्रकार टूरिस्ट एजेन्सी का चीफ अंग्रेजी बोलने का मौका हाथ से नहीं जाने देता था, उसी प्रकार लेखक इस उपन्यास में अंग्रेजी शब्द एवं वाक्य घुसेड़ देने का मौका अपने हाथ से जाने नहीं देता। उपन्यास में सैंकड़ों स्थानों पर अंग्रेजी शब्दों का आवश्यक और

अनावश्यक रूप मे प्रयोग किया गया है। 'कॉरीडोर', 'म्यूजियम' आदि शब्दो के स्थान पर 'गलियारा', 'अजायबघर' आदि शब्दो का प्रयोग किया जा सकता था। संज्ञा शब्दो तक गनीमत है, किन्तु अनेक स्थानो पर अंग्रेजी के विशेषणो का भी प्रयोग किया गया है—'अॉलकोहालिक आँखे' ( शराबी आँखें ) आदि ऐसे ही प्रयोग हैं। सारे उपन्यास मे अंग्रेजी के पच्चीस से अधिक पूर्ण वाक्यो का प्रयोग किया गया है और इनमे से दो-तीन स्थानो पर ये वाक्य रोमन लिपि मे ही अंकित किये गए हैं। अंग्रेजी के शब्द, विशेषण और वाक्य ही नही, अपितु व्याकरण भी कही कही प्रयुक्त हुआ है—'फ्राउन्स', 'कॉन्ट्रासेप्टिव्ज' आदि बहुवचन रूप इसी प्रकार के हैं। 'अपना समय लेना' आदि प्रयोग अंग्रेजी मुहावरो के मक्खीमार अनुवाद होने से अनुचित है।

प्रस्तुत उपन्यास का घटनास्थल चेकोस्लोवाकिया है, अत कुछेक चेक शब्दो और वाक्यो का आना स्थानीय रगत देने के लिए क्षम्य हो सकता है। 'चैडोक' ( टूरिस्ट ब्यूरो ), 'लीपा' (लिंडन ट्री) आदि इनेगिने शब्दो का प्रयोग उचित ही लगता है। उपन्यास मे कुछेक चेक वाक्य भी आये हैं। मानेश रेस्तराँ मे एक अधेड व्यक्ति इदी से एक-दो प्रश्न चेक मे करता है, जिनका अनुवाद बर्थनियो मे दे दिया गया है। इस प्रसग के 'वेल्मीहैस्वा' (बहुत सुन्दर है)[१] आदि वाक्य इसी प्रकार के हैं। किन्तु एक स्थान पर चेक बोलने से नफरत करने वाला थानयुन अत्यधिक प्रसन्नता की मनोदशा मे 'ताक नजदार'[१] कहता है, जिसका अर्थ न दिये जाने के कारण हम ताकते ही रह जाते है।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन के बाद सक्षिप्ततम निष्कर्ष के रूप मे यह कहा जा सकता है कि बुनियादी अकेलेपन की सवेदना को अभिव्यक्त करने वाला यह उपन्यास इन्द्रियसवेदनो और मनोदशाओ को 'विविड' और 'वंडरफुल' ढग से अंकित करने के कारण अद्वितीय हो गया है।

## टिप्पणियाँ

१ आज का हिन्दी उपन्यास—डॉ० इन्द्रनाथ मदान, पृ० १००
२ वे दिन, (तृतीय सस्करण), पृ० ९७
३ वे दिन, पृ० २११
४. वही, पृ० ८२
५ वही, पृ० ३०
६ वही, पृ० १६६
७ वही, पृ० ३७
८ वही, पृ० ९३

९. वही, १९१
१०. वही, पृ० ९२
११ वही, पृ० १४४
१२. वही, २०८
१३ वही, ९७
१४ वही, पृ० २१४
१५. वही, पृ० १३०
१६. वही, पृ० १३७
१७ वही, पृ० १७७
१८ वही, पृ० १७८
१९ वही, पृ० १९३
२०. वही, पृ० १०२
२१. वही, पृ० ३७
२२ वही, पृ० १०४
२३. वही, पृ० १९२
२४ वही, पृ० ३३

०

## धरती धन न अपना :
## युगयुगांतर के सर्वकष शोषण की कहानी

डॉ० चन्द्रभानु सोनवणे

---

"प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य 'आर्थिक अभावों की चक्की मे युगयुगान्तरो से पिस रहे हरिजन वर्ग के जीवन का चित्रण करना है।"

—श्री जगदीशचन्द्र

कथ्य की दृष्टि से 'धरती धन न अपना' उपन्यास हरिजनों की आर्थिक शोषण की कहानी है।

उपन्यास की कहानी कथ्य के अनुकूल विकसित होती है, किन्तु अन्त मे वह प्रेमकथा के रूप मे पर्यवसित होती है।

यह व्यक्ति प्रधान उपन्यास नही है। इसमे चमार समाज के व्यापक शोषण का चित्र खींचा गया है।

१४

## धरती धन न अपना

भारत की लोकसंख्या मुख्यत गाँवो म बसती है। शहर की अपेक्षा गाँव का आर्थिक ढाँचा भिन्न प्रकार का होता है। शहर के आर्थिक ढाँचे का आधार उद्योग और व्यापार होता है तथा गाँव के आर्थिक ढाँचे का आधार खेती। मुख्यत खेती पर जीवननिर्वाह करने वाले ग्रामीण समाज को हम सहज ही दो भागो मे बटाँ हुआ पाते है। इस समाज का पहला भाग भूस्वामियो का होता है तथा दूसरा भाग भूमि-हीन कृषि मजदूरो का। भारत के भिन्न-भिन्न भागो मे जमीदारी *व्यवस्था और रैय्यतवारी व्यवस्था के कारण भूस्वामियो की स्थिति बहुधा भिन्न भिन्न रही है, किन्तु भूमिहीन मजदूरो की स्थिति सारे देश मे एक सी ही* दिखाई देती है। मुशी प्रेमचन्द ने अल्पभूधारक किसान के जीवन को केन्द्र बनाकर अपने 'गोदान' मे उनके आर्थिक शोषण का सच्चा चित्र खीचा है। 'गोदान' के होरी ने यह कहा है—'मजूर बन जाय, तो किसान हो जाता है। किसान बिगड जाय, तो मजूर हो जाता है।" होरी का यह कथन सीमित मात्रा मे ही सत्य है। सामान्यत गाँव का भूधारक सवर्ण होता है और गाँव का असवर्ण वर्ग भूमि मजदूर। उत्तर भारत मे गाँव का यह मजदूर प्राय चमार होता है। हर गाँव मे इन असवर्ण चमारो की बस्ती सवर्णो की बस्ती स अलग बसी हुई होती है, जिसे पजाब मे 'चमादडी' कहा जाता है। उत्तर भारत की लोकसंख्या मे चमारों के अनुपात को देखकर आश्चर्य होता है। यदि 'चमार' शब्द 'चर्मकार' से निकला हुआ माना जाए, तो इस अनुपात के सम्बन्ध मे कोई सयुक्तिक कारण नहीं दिया जा सकता। वस्तुत. 'चर्मकार' शब्द के अतिरिक्त 'चमार' शब्द का मूल स्रोत 'शम्बर' शब्द भी है।' आग्नेय *वश की कृष्णवर्णीय* शम्बर जाति *को पराजित करके गौरवर्णीय आर्यो ने उन्हे भूमिहीन बनाकर भूदास ही नहीं बनाया, अपितु उन्हे हमेशा के लिए असवर्ण वर्ग मे भी डाल दिया है।* जातिगत इस परम्परा के कारण चमारो का रग काला ही होता है। इसी कारण चमारो से गाली गलौज करते हुए सवर्ण लोग उन्हे 'कोयले के पुत्तर' कह देते हैं। सवर्णो और असवर्णो मे पाया जाने वाला रगविषयक यह भेद पजाब, हरयाणा आदि प्रदेशो मे विशेषत

देखा जा सकता है । कभी कभी अपवाद रूप से असवर्ण वर्गों में एक-आध गोरे रंग का व्यक्ति दिखाई पड जाता है । हरामी इसी प्रकार का लडका है । "गोरा कमीन और काला ब्राह्मण दोनो हरामी होते हैं"[२] की कहावत के अनुसार उसके बाप ने ही उसका यह नामकरण कर दिया है । पालो और बग्गे के पोल-धप्पे का सारा प्रसग ही इसी रंग विषयक दृष्टि से आपूर्ण है । परम्परा और रग विषयक इस चर्चा को यहीं रोककर मुख्य विषय के विश्लेषण की ओर हम मुडते हैं ।

मुशी प्रेमचन्द ने अल्प भूधारक किसान की समस्या का चित्रण 'गोदान' के माध्यम से किया है । भूमिहीन मजदूरो की समस्या को वे पूरी क्षमता के साथ 'गोदान' मे उपस्थित नही कर सके हैं । इन भूमिहीन मजदूरो की समस्या का चित्रण करने के लिए हिन्दी साहित्य किसी अन्य 'कलम के मजदूर' की प्रतीक्षा कर रहा था । इस प्रतीक्षा को श्री जगदीशचन्द्र ने 'धरती धन न अपना' लिखकर बहुत कुछ सफल करने का प्रयत्न किया है । उन्होंने उपन्यास के प्रारम्भिक वक्तव्य 'मेरी ओर से' मे यह स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य "आर्थिक अभावो की चक्की में युगयुगातरो से पिस रहे हरिजन" वर्ग के जीवन का चित्रण करना है । हमे यह देखना है कि भारतीय जीवन के इस कटे हुए सन्दर्भ के चित्रण मे लेखक कहाँ तक सफल हो सका है ।

गाँव मे भूधारक और भूमि-मजदूर परस्पराश्रित होते हैं । भूमि-मजदूरो के बिना न भूधारको का गुजारा हो सकता है और न ही भूधारको के बिना मजदूरो का । भूधारको और मजदूरो की यह परस्पराश्रितता शोषक और शोषित के सम्बन्ध पर टिकी हुई होती है । शोषक और शोषित का यह सम्बन्ध परम्परा से चला आ रहा है । गाँव की व्यवस्था का ढाँचा ही कुछ इस प्रकार का होता है कि परम्परा से चले आते हुए धधे को बदलना आसान नही होता । इस व्यवस्था के कारण किसी चमार का भूस्वामी बनना असभव-सा हो जाता है । अपवाद रूप म ही किसी चमार के पास जमीन होती है । चमार दूसरो की जमीनो पर मजदूरी करते चले आए हैं । प्राय. हर जमीन मालिक का अपना चमार होता है, जो उसके घर पर गोबर-पानी आदि का सारा काम किया करता है । कभी-कभी एक आध चमार मजदूरी करने के लिए गाँव छोडकर शहर चला भी जाता है, तो वह अपने रिश्तो-नातो के आकर्षण मे बँधकर वापस गाँव चला आता है । काली इसी प्रकार का व्यक्ति है । वह छह वर्ष शहरो मे रहकर बडे अरमानो के साथ अपने गाँव लौटा है । गाँव लौटने पर उसे यह जानने में देर नही लगी कि दुनिया, विशेषत गाँव की दुनिया, गरीब आदमी के लिए बडी तग जगह है । गाँव की दुनिया म कोई चमार अगर किसी कारण से खुशहाल भी हो जाता है, तो उसकी खुशहाली चार दिन की चाँदनी बनकर रह जाती है । यही दशा काली की होने मे देर नही लगी । अपनी थोडी-बहुत खुशहाली

के काल मे उसने यह अनुभव किया कि गाँव मे चमार होना ही बहुत बडा पाप है। शहर मे उसे हर चीज पैसे देकर मिल जाती थी, किन्तु गाँव मे चमार के हाथ दूध बेचने मे अपमान समझने वाले चौधरियो के यहाँ से उसे दूध मिलना मुश्किल हो गया। गाँव मे तो चमार को दूध, लस्सी आदि चीजें भीख की सूरत मे मिलती थी और भीख जबरदस्ती नही ली जा सकती थी। इसी प्रकार विभिन्न प्रसगो पर उसने अनुभव किया कि चौधरी हरनाम सिंह उसे चमार होने के कारण नीच समझता है, छज्जू शाह उसे कर्ज देने की दृष्टि से किसी गिनती मे शुमार नही करता, मट्ठे वाला मुशी उसे विश्वासयोग्य नही समझता, क्योकि उसके पास जमीन नही है। इतना ही नही, गाँव का हर सवर्ण आदमी चमार को पशु और मूढ समझता है। सतासिह तो यहाँ तक कहता है कि—"गाँव मे कुत्तों और चमारो की पहचान रखना मुश्किल है।"[1] अपना पुराना कोठा ढहदेकर नया मकान बनाने के समय उसे यह ज्ञात हुआ कि चमादडी की सारी जमीन गाँव के जमींदारो की साँझी जमीन है। अपने मकान की जमीन के लिए निक्कू से उसे लडते हुए देखकर जब छज्जूशाह ने कहा—"इन कमीनो के दिमाग मे जरूर कोई कीडा होगा, जो उस जमीन के लिए लड रहे हैं जो इनकी नही है'—तो काली ने महसूस किया कि वह तो मलबे का भी मालिक नही है, क्योकि मलवे की मिट्टी भी गाँव के उस छप्पड की मिट्टी है, जो सबका साँझा छप्पड है। उसे यह जानकर बडा दुःख हुआ कि गाँव मे उसकी हस्ती शून्य के बराबर है। उसने महसूस किया कि—"इस मुहल्ले मे हर चीज मौरूसी है चमारो की औलाद तक मौरूसी है।"[2]

अकिंचनता की स्थिति के कारण गाँव मे चमार की कोई इज्जत ही नही समझी जाती। गाँव मे तो सिर्फ जमीन और जूते की इज्जत होती है। कितनी ही बार चौधरी लोग 'अपनी साख बनाने और चौधर मनवाने के लिए' चमादडी मे आकर बेबात ही मारपीट कर जाते थे। चौधरी हरनाम सिंह ने अपनी फसल के बरबाद होने पर केवल मगू के कहने मात्र से जीतू को बुरी तरह से पीटा। इस प्रसग मे चमादडी के लोगो को बेकसूर होकर भी गालियाँ खाते और पिटते हुए देखकर काली को बडा दुःख हुआ। कितने ही चमार इस प्रसग मे गालियाँ सुनकर इस प्रकार से हँस पडते थे, जैसे कि उन पर फूल फेंके गए हो। काली को भी स्मरण हो आया कि स्वय उसने लडकपन मे इसी प्रकार कई बार मार खाई थी और उसे कभी शर्म महसूस नही हुई थी। किन्तु अब जीतू को बिना बात के पीटे जाने पर उसे गुस्सा आ रहा था। उसे यह देखकर अत्यन्त दुःख हुआ कि चौधरी द्वारा घायल किए गए जीतू को उसके घर तक पहुँचाने की हिम्मत भी किसी मे नही है। चौधरियो ने चमारों को मारपीट करके इतना 'सीधा' और निरीह बना रखा था कि उनमे से किसी को भी काल मे डालने पर चूमने का सवाल नही उठता था। किसी

मे इतनी हिम्मत नहीं थी कि आगे बढ़कर किसी चौधरी से यह कह सके कि यह नाजायज रूप से मार-पीट कर रहा है, आगे बढ़कर हाथ पकड़ लेने की बात तो बहुत दूर की चीज थी। जब काली ने चौधरी मुंशी को निरपराध नंदसिंह को पीटने से रोकना चाहा, तो हरनामसिंह ने इस प्रसंग मे काली से स्पष्ट रूप से कह दिया—"कान खोल कर सुन ले, चौधरी के मुकाबले मे गल्ती हमेशा कमीन की होती है।"[१] ऐसी स्थिति मे नदी मे रह कर मगरमच्छो से विरोध करने की हिम्मत ही किसी मे नहीं रह गई थी। सब लोग अपनी-अपनी चमड़ी बचाए रखने मे ही कुशल-क्षेम समझते थे। चाची प्रतापी ने इसीलिए काली को सलाह दी थी कि दूसरो के झगड़ो मे हमे क्या लेना है।

चौधरियो और चमारो के किसी भी झगड़े मे अदालत से न्याय मागने मे चौधरियो को हेठी महसूस होती थी। चमार तो चौधरियो के विरुद्ध अदालत और थाने तक जाने की सोच भी नही सकते थे। उन्हे मालूम था कि थानेवाले चौधरियो से पूजा पाकर चमारो को ही दिन मे तारे और रात मे सूरज दिखाए बिना न रहेंगे। ऐसी स्थिति मे अपने मन को समझाने का एक ही तरीका था कि गरीबो की आह प्लेग से भी बुरी होती है। आत्मसमाधान की इस प्रवृत्ति के कारण हद दर्जे की गरीबी मे भी वे बिना किसी शिकायत और विरोध के अपनी जिन्दगियाँ बिताए चले जाते थे। चमादड़ी मे गरीबी इतनी थी कि सारे मुहल्ले मे किसी का पक्का मकान तो क्या, किसी का पक्का चूल्हा तक नही था। खाने-पीने की दशा यह थी कि गेहूँ की रोटी उन्हे सौगात लगती थी। काली को गेहूँ का आटा खाने और खांड पीने पर प्रीतो को हैरानी होती है और वह महसूस करने लगती है कि जैसे काली किसी देश का राजा हो। गाढ़ी लस्सी ही निहाली के न्यामत बन गई है, उसे भी देखे हुए कई साल हो गये हैं। वह तो घी का रंग और स्वाद तक भूल-सी गई है। चाची प्रतापी की चिता से उठने वाली घी की सुगंध को सूँघ कर प्रीतो कहती है—"मामी प्रतापी ने पिछले जन्म मे बहुत ही अच्छे कर्म किए होंगे जो उसकी चिता पर भी देसी घी डाला गया है। एक हम हैं, जिन्होंने जीते जी भी देसी घी चख कर नहीं देखा।"[२] गरीबी की इस दशा के कारण चमार की जवानी चार दिन भी टिक नहीं पाती। ऐसा लगता है कि जैसे यौवन और बुढ़ापा दोनो उसके पास एक साथ ही पहुँच जाते हैं। सूखे बेर जैसी प्राणहीन-सी चमारो की शक्लें मानो उनके शोषित जीवन का साक्षात् प्रमाण बनकर हमारे सामने उपस्थित हो जाती है।

एक ओर आर्थिक दृष्टि से दीन-हीन चमारो की यह दुर्दशा है, तो दूसरी ओर चौधरी लोग अच्छा खाने-पीते हैं। इन खाते-पीते लोगो मे भी सर्तासिंह जैसे लोग हैं, जिनकी जिन्दगी ब्याह के बिना सुलगती लकड़ी-सी बन गई है। सिर पर

माँ बाप की छाया न होने से शादी न हो सकी और अपनी भाभी के बच्चों को पोसने में ही उसकी जिन्दगी बरबाद हो गई। उसके पास दो चार खेत होते तो सहज ही उसकी शादी हो सकती थी। क्योंकि पास में पैसा हो तो अर्थी पर लेट कर भी शादी करने के लिए लडकी मिल जाती है। यह सतासिंह नंदसिंह की लडकी पाशो से फँसा हुआ है। ऐसे लोगों को सुलगती लकडी को बुझाने के लिए चमारिनें मिल ही जाती हैं। काली ने जब नन्दसिंह से उसके पाशो के सम्बन्ध के विषय में पूछा तो उसने बिना किसी झिझक के उत्तर दिया—'वही जो कुत्ते का कुतिया से होता है।' सतासिंह के समान गाँव के दूसरे जाट भी चमादडी की लडकियों को जब तब भोगते रहते हैं। ये जाट लोग तो केवल अपनी सगी बहन की सौगंध खाते हैं। सतासिंह स्पष्टत कहता है—"जो आदमी रोज पाओ भर अन्न खाता है वो हर जवान लडकी को अपनी बहन नहीं समझ सकता। बीबा, जवानी चीज ही ऐसी है।" इस प्रकार की स्थिति के कारण ही प्रीतो और प्रतापी के झगडे के समय गाँव का कोई जाट ऐसा नहीं रह गया था, जिसका जिक्र इस लडाई के समय न हुआ हो। चौधरी हरदेव लच्छो के पीछे पडा है और मगू चमार बडी बेशर्मी से उसे यह सलाह देता है कि 'यह उसी घोडी की बछेरी है जिस पर कभी बडा चौधरी बहुत मेहरबान था।" लच्छो को देखकर "तेरे हिक ते आलना पाया नी जंगली कबूतर ने"—गाने वाले हरदेव से मगू कहता है—"यह कबूतरी जंगली नहीं, पालतू है। दाना देखते ही बैठ जाएगी।" उसे यह कहने मे कोई शर्म महसूस नहीं हुई कि जाट लडकों के सुगठित शरीरों का फायदा चमारन को ही होता है। चौधरी हरनामसिंह के आसरे का लाभ उठा कर मगू ने चमादडी में कम ज्यादतियाँ नहीं की हैं। उससे दिलसुख ने कहा है—"अरे मगू तू तो चमादडी का राँझा है। पट्ठे ने उसे (लच्छो को) पूरी तरह जवान भी न होने दिया। पहले ही उस पर काठी डाल दी।" जाट लोग चमारिनों के सम्बन्ध में बेशर्मी से बातें करने में सकोच नहीं करते और मगू जैसे चमार की बेशर्मी हद से गुजर जाती है, जब कि वह अपनी बहन के सम्बन्ध में बुरी बातें सुन कर भी ही ही करके हँसते हुए सुन लेता है। चौधरी हरनाम सिंह मगू को 'कुत्ता चमार' कहता है, किन्तु फिर भी मगू चौधरी की दहलीज चाटता रहता है। कभी मगू के बाप ने चौधरी से पाँच सौ रुपए लिए थे। इस कर्ज को उतार न पाने पर वह सारी उम्र चौधरी के यहाँ काम करता रहा और उसके मरने के बाद पाँच-सात साल से मगू भी चौधरी का काम कर रहा है। सारी चमादडी के काम करने से इनकार करने पर भी कर्जदार होने के कारण मगू काम करने से इनकार नहीं कर सकता।

गाँव में काम है मेहनत है, किन्तु कमाई नहीं है। तिस पर चौधरियों के यहाँ बेगार करनी पडती है, सो अलग। जीनू ने सारे साल चौधरी हरनामसिंह के

यहाँ बेगार की है, किन्तु इतना करने पर भी चौधरी उसे बुरी तरह से पीटता है। सारे जमाने की हवा बदल गई है, किन्तु घमादडी की हवा ज्यों-की-त्यों है। काली के आने के बाद अवश्य परिवर्तन दिखाई देता है। बाढ़ के बाद तोड़े गए बाँध को दुरुस्त करने के लिए चमारों से चौधरी ने जब बेगार लेनी चाही, तो काली के नेतृत्व में चमार बेगार करने से इनकार कर देते हैं। चमारों की हड़ताल का जवाब चौधरियों ने बायकाट करके देने का प्रयत्न किया। धरती और धन के अभाव में चमारों की हड़ताल छह दिनों के बाद टूट गई। पेट की थोड़ी बहुत व्यवस्था किए बिना हड़ताल टिक ही कैसे सकती थी। हड़ताल के दिनों में गाँव के व्यापारी जमींदारों के साथ थे, क्योंकि शोषक व्यवस्था में वे भी जमींदारों के सहभागी थे। इसके अतिरिक्त चौधरियों की शक्ति के सामने व्यापारियों को झुकने के सिवाय चारा भी नहीं था। डॉक्टर बिशनदास गरीबी का इलाज केवल जबानी रूप में बताते थे, ठोस रूप में वे भी सहायता करने को तैयार न थे।

परलोक सुधारने का दावा करने वाले धर्म भी चमारों के इहलोक को सुधारने में कोई मदद न दे सके। हिन्दू धर्म ने चमारों के मन में यह बात पक्की तरह से बिठा दी थी कि—"रबजी ने जिसको चमार पैदा किया है, वह चमार ही रहेगा, चौधरी नहीं बनेगा। सब कर्मों का फल है।" वे केवल परमात्मा का आसरा ढूंढते रह जाते थे। बाढ़ में जाटों ने अपने कुएँ पर चमारों को पानी भरने नहीं दिया और मन्दिर के परमात्मा का कुआँ भी उनके लिए निषिद्ध था। पादरी के नल पर पानी भरने लगे, तो पादरानी ने उन्हें रोक दिया। इसी प्रकार हड़ताल के समय जब पादरी से काली ने सहायता मांगी चाही तो पादरी ने यह स्पष्ट कह दिया कि वह विधर्मियों को किस बूते पर सहायता दे सकता है। यदि धर्म बदल भी लिया जाए, तो चमार की स्थिति में कोई विशेष फर्क नहीं पड़ता। धर्म बदलने से जात तो बदलती नहीं। पंडित संतराम जैसे लोगों को दुर्-दुर् करने से तंग आ कर नंद सिंह सिख बन गया, किन्तु रहा वह चमार का चमार ही। मजहबी सिख का नया नाम अवश्य उसे मिल गया। अन्त में वह ईसाई बनने का निश्चय कर लेता है। ईसाई बनने के बाद नंदसिंह और उसके लड़के कैसे दीखते हैं, यह देखने के लिए चर्च के पास बच्चों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। इस प्रसंग में सरना नाई उनके बाल मूंडने के लिए भी तैयार नहीं होता, किन्तु पैसे के लालच में अन्त में बाल मूंड देता है। ईसाई बनने के बाद एक दिन मुंहफट घड़म चौधरी नंदसिंह से कहता है—"सुना चमारा, ईसाई बनने के बाद कुछ फर्क पड़ा है? क्या टट्टी-पेशाब पहले की तरह करता है या तरीका बदल गया है।" वस्तुतः धर्मों का वर्तमान रूप शोषितों के लिए अफीम की तरह है। धर्म के आधार पर ही संतराम जैसे लोग मुफ्त की खाते हैं। घड़म चौधरी का कहना सही है—"पंडिता, तुम्हें पकी-पकाई

रोटी मिल जाती हैं। मेह हो या आँधी, धूप हो या छाँव तेरे हद्दे (दान की रोटी) पक्के हैं। "दो दिन मेहनत करके रोटी खानी पडे तो तुम्हें पता चल जाए कि पेट से बडा कोई पापी नही।" वह इसी प्रसग मे सतराम से यह भी कहता है कि—"सवेरे शाम ठाकुरो को स्नान कराना, घटी बजाना, धूप जलाना और शख बजाना। बाकी मौज ही मौज है।" ठाकुरो का तो नाम ही है, असली भोग तो तू ही लगाता है।

शोषित समाज के लोग परमात्मा से डरते रहने मे ही अपनी कुशल समझते हैं। इसके बावजूद हुकमा के बारह बच्चे मर गये। परमात्मा के डर के कारण उसने *कभी शिकायत भी नही की। शिकायत करने पर न जानें तेरहवाँ बच्चा भी* शिकायत के दण्ड के रूप मे कही परमात्मा न छीन ले! धार्मिक बन्धनो के कारण ही काली अपने गोत्र की लडकी ज्ञानो से विवाह नही कर सकता।

कथ्य की दृष्टि से 'धरती धन न अपना' उपन्यास हरिजनो के आर्थिक शोषण की कहानी है। इस कहानी को कालीदास की कहानी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यास की कहानी कथ्य के अनुकूल विकसित होती है, किन्तु अन्त मे वह प्रेम कथा के रूप मे पर्यवसित हो जाती है। हडताल के टूटने के बाद उपन्यास के अन्तिम चार परिच्छेद काली और ज्ञानो की प्रेम कहानी बनकर उपन्यास के पूर्व प्रभाव को बिखेर-सा देते हैं। ज्ञानो की प्रेम व्यथा के कारण काली धरती का परित्याग करने को विवश हो जाता है। काली न जाने कितने अरमानो को लेकर ही वह न जाने धरती के किस कोने मे विलीन हो गया। यदि वह कही जिन्दा भी रहा होगा, तो उसका गाँव वापस आने का ख्याल केवल तडप मे ही बदल कर रह *गया होगा*।

श्री जगदीशचन्द्र ने उपर्युक्त सपूर्ण कथ्य को पजाब के घोडवाहा गाँव की चमादडी को आधार बनाकर व्यक्त किया है। कथानक का प्रारम्भ काली के ग्राम प्रवेश के साथ किया गया है और अन्त निष्क्रमण के साथ। सपूर्ण कथानक उनचास परिच्छेदो मे विभक्त है। गलती से सैंतीसवाँ परिच्छेद छत्तीसवे परिच्छेद मे समाविष्ट हो जाने के कारण उपन्यास से नदारद ही हो गया है। इसी कारण छत्तीसवाँ परिच्छेद अपेक्षाकृत अधिक लम्बा हो गया है। छत्तीसवें परिच्छेद के आठवें पृष्ठ पर "लोगो का विश्वास था'—से प्रारम्भ होने वाले अनुच्छेद को सैंतीसवें परिच्छेद का प्रारम्भ समझना चाहिए। उपन्यास के प्रारम्भ से अन्त तक जहाँ चमादडी के आर्थिक शोषण पर लेखक की दृष्टि केन्द्रित है, वहाँ काली और ज्ञानो की प्रेमकथा पर भी उसका उतना ही ध्यान है। अन्त मे पहुँच कर तो उपन्यास प्रेमकथा की दुखातता पर समाप्त हुआ है।

*'धरती धन न अपना' उपन्यास व्यक्ति प्रधान उपन्यास नही है।* इसमे

चमार समाज के व्यापक शोषण का चित्र खींचा गया है। इसी कारण चमार पात्रो का बाहुल्य स्वाभाविक ही है। उपन्यास मे लगभग अस्सी पात्र हैं, जिनमे से चालीस पात्र चमार समाज के हैं। चमारो के अतिरिक्त बाजीगर, घेंवर, कुम्हार आदि अन्य निम्न वर्गों के शोषित पात्र भी प्रसगत आए है, किन्तु उन पात्रो के चित्रण मे लेखक ने विशेष रुचि नही दिखाई है। बाजीगर लोग बिल्ली, गीदड आदि का भी मांस खा लेते थे, इसलिए उन्हे गाँव से बाहर ही रखा जाता था। पडित सतराम जैसे लोग तो बाजीगरो की परछाई तक को सहन नही कर सकते थे। बाजीगरो मे सुखिया, रोटे ओर हरामी का ही सिरकियो के प्रसग मे चलता हुआ उल्लेख हुआ है। चमारो के बाद उपन्यास मे सबसे अधिक पात्र जाट वर्ग के हैं। इन पात्रो की आवश्यकता इसलिए पडी है, क्योकि शोषित की कहानी शोषको के बिना पूरी ही नही होती।

चमार वर्ग के पात्रो मे सबसे अधिक महत्त्व काली का है। काली के कारण ही कान मे डालने पर भी न चुभने वाले चमार कुछ पैने हो गए हैं। काली घोड-वाहा गाँव का ही चमार है। वह माखे का लडका है, किन्तु पिता के गुजर जाने के कारण सिद्धू चाचा और प्रतापी चाची ने उसे पालपोस कर बडा किया है। बच-पन मे वह अपने ही गाँव की पाठशाला मे चार जमातें पढा है। पढाई के कारण उसमे कोई विशेष अन्तर नही आया है। उसमे ही क्या, घोडवाहा गाँव के किसी चमार मे भी पढाई के कारण सचरित चैतन्य का उल्लेख लेखक ने कही नही किया है। काली अपने बचपन मे अन्य चमार लडको के समान चौधरियो के हाथो मार खाता रहा है, पर इसके लिए उसने कभी शर्म महसूस नही की थी। छह वर्ष बाहर मे रहकर गाँव लौटने के बाद चमार के नाते अपने साथ किए जाने वाले अपमाना-स्पद व्यवहार के कारण वह तिलमिला उठता है। इतना ही नही, अपने समाज के लोगो का अपमान भी उसे अपना अपमान महसूस होता है। इसी कारण वह चौधरी मुँशी को नदसिंह के साथ ज्यादती करते हुए देखकर गुस्से मे आ जाता है। चमार होने के कारण चौधरियो द्वारा ली जाने वाली बेगार के विरुद्ध चमारो का नेतृत्व उसी ने किया है। हडताल के प्रसग मे सवर्ण लोगो के नेतृत्व की पोल उसके सामने पूरी तरह से खुल जाती है। उसे अपने ही समाज के मगू को चौध-रियो के शोषण मे सहायक बनता हुआ देखकर गुस्सा आता है, किन्तु निक्कू के साथ नींव खुदाई के प्रसग में उसका व्यवहार अत्यन्त ही विनयपूर्ण है। वह निक्कू और प्रीतो को मनाने का प्रयत्न करता है। स्पष्ट है कि निक्कू और प्रीतो के प्रति उसके इस व्यवहार के मूल मे यह धारणा है कि निक्कू और प्रीतो एक ओर जहाँ बुजुर्ग हैं, वहाँ दूसरी ओर मगू के खिलौने बने हुए हैं। इसलिए काली बडी समझ-बूझ के साथ इस प्रसग मे व्यवहार करता है। मार-पीट और लडाई-झगडे के प्रसग

मे भी उसने कभी पहल नही की है। पर इतना स्पष्ट है कि वह डर से लडाई-झगड से दूर रहने वाला व्यक्ति नही है। डर डर कर दिन गुजारने से मर जाना ही उसे अच्छा लगता है।

काली के चरित्र का दूसरा पहलू उसके दिल की कोमलता है। वह अपनी चाची के कारण शहर से गाँव लौटा है। चाची के प्रति उसके प्रेम का परिचय चाची की बीमारी के प्रसग मे दीख पडता है। ज्ञानो के प्रसग मे उसके प्रेमी स्वरूप का परिचय मिलता है। वह ज्ञानो के रूप पर ही नही, अपितु उसके गुणो पर भी मुग्ध है। ज्ञानो के प्रेम के कारण ही लोग उसे 'चमादडी का राँझा' कहने लगे है। हड ताल के प्रसग के बाद सामाजिक कार्य की असफलता के कारण निराशाग्रस्त होकर ही सभवत उसने अपने को ज्ञानो मे खोने का प्रयत्न किया है। लालू पहलवान को उसका यह सम्बन्ध अनैतिक प्रतीत हुआ है और इसीलिए उसने काली को अपने काम पर से निकाल दिया है। इसके बाद काली आजीविका के लिए क्या कुछ करता रहता, इसका विचार लेखक ने नही किया है। केवल जब-तब, जहाँ-तहाँ विविध प्रकार की मिलनपद्धतियो को आविष्कार करते हुए उसे दिखाया है। ज्ञानो की मृत्यु के साथ वह ऐसे लुप्त हो गया था जैसे उसे जमीन निगल गई हो।

काली के बाद उपन्यास का दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र ज्ञानो है। जीतू की पिटाई के प्रसग मे ज्ञानो का प्रवेश एक बेबाक और निडर पात्र के रूप म होता है। नाजायज रूप से पिटने वाले लोगो पर उसे गुस्सा आता है। मुँह खोले बिना पिटने वाले बेगैरत लोगो के कारण उसे शर्म महसूस होती है। जायज बात कहने मे वह डरती नही है। निक्कू और काली के झगडे के प्रसग मे उसने अपने ही भाई के विरोध मे यह स्पष्ट कहा कि निक्कू का सिर काली ने नही मगू ने फोडा है। अपनी इस प्रकार की स्पष्टवादिता के कारण उसे कितनी ही बार घर म पिटना पडा है। इसके अतिरिक्त ज्ञानो साहसी प्रेमिका के रूप मे भी हमारे सामने आती है। काली के शीशम के रग के सुगठित शरीर एव स्वाभिमानी स्वभाव पर वह रीझ गई है। उसको अपने घर म उपस्थित पाकर काली को 'चानन ही चानन' नजर आने लगता है। काली के साथ उसके सम्बन्ध म कामभावना हावी नही है। कितनी ही बार काली के शरीर सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करने पर उसने नाराजी व्यक्त की है। इसलिए घड्डम चौधरी का यह कहना असगत है—"मारनिए तेरे अन्दर कितनी आग है, जो बुझने मे नही आती।"' प्यार की प्यास अवश्य उसकी अरत है। काली के साथ इसी प्यार भरे सम्बन्ध के कारण वह 'काली की मोरनी' बन गई है। गर्भवती हो जाने के बाद ज्ञानो काली से अनुनय करती है कि वह उसे घोड़ेवाहा से किसी और जगह भगा कर ले जाए। पर नाबालिग ज्ञानो को ले जाने का साहस काली मे नही था। अन्त मे गर्भ गिराने के प्रयत्न मे वह जहर का शिकार बनकर सदा के लिए

इस दुनिया से विदा हो जाती है ।

काली और ज्ञानो के अतिरिक्त चमारो मे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मगू है । मगू के पिता ने चौधरी हरनाम सिंह से कर्ज के रूप मे पाँच सौ रुपये लिए थे । उस कर्ज के ब्याज मे मगू के पिता ने हरनामसिंह के यहाँ वेगार की और उसके बाद मगू कर रहा है । इसी कारण वह हडताल के दिनो मे चौधरी का काम करने से इनकार नही कर सकता था । असलियत तो यह है कि वह कर्जदार न भी होता तो भी शायद काम करने से इनकार न करता । चौधरी का एजेण्ट बनकर सारी चमादडी पर अपना रोब गाँठना चाहता है । कभी झूठी शिकायत करके जीतू को पिटवाता है और कभी अपनी चौधर न मानने वाले काली के विरुद्ध निक्कू को झगडा करने के लिए उकसाता है । इतना ही नही, चौधरी हरदेव को खुश करने के लिए लच्छो की इज्जत लूटने के लिए प्रेरित करता है । बाबे फत्तू आदि बडे बुजुर्गों का मान सम्मान करना उसने सीखा नही है । और तो और अपनी ही बहन को उसकी सचाई की प्रवृत्ति के लिए जब तब पीट दिया करता है । सक्षेप मे, मगू चमादडी का सबसे अधिक जहरीला आदमी है ।

बाबे फत्तू चमादडी का वयोवृद्ध एव अनुभववृद्ध आदमी है । मुँहदेखी बात करना उसे नही आता । उसके इस गुण के कारण चौधरी लोग भी उसकी इज्जत करते हैं । चम्पा और पालो के झगडे के प्रसग मे उसकी स्पष्टवादिता उल्लेखनीय है। चमारो मे निक्कू भी एक विशिष्ट पात्र है । काम करने मे उसकी रुचि नही है। उस पर बरसते हुए प्रीतो कहती है कि वह बच्चो की पलटन तैयार करने मे ही केवल मर्द है । अन्यथा तिनका तोडने मे भी उसकी बाँहें दर्द करने लगती हैं । मगू द्वारा शराब पिलाने के आश्वासन पर वह काली से झगड पडता है । चमार पात्रो मे प्रीतो पर भी ध्यान गए बिना नही रहता । वह जहानभर की बेशर्म औरत है । दो दर्जन के लगभग बच्चो को जन्म देने के बाद भी तेल आदि के सहारे यौवन की सीमाओ मे बधी रहना चाहती है । चाची प्रतापी उसके चाल चलन के कारण कहती है—"तूने तो हरजाई कुतिया को भी पीछे छोड दिया है ।"[१०] सतासिंह भी काली को सलाह देता है कि—"प्रीतो की भतीजी से ब्याह न करना । अगर वह अपनी बुआ जैसी निकली तो तुम्हें अपने बच्चो की पहचान करना भी मुश्किल हो जाएगी ।"[११] इस हरजाईपन के अतिरिक्त हमेशा खाने-पीने की बातो मे ही आनन्द आता है । उसकी दोनो मूछें तेज हैं ।

सवर्ण पात्रो मे कुछ विशिष्ट पात्र हैं, जिन्हें भुलाया नही जा सकता । इनमे से एक लालू पहलवान है । वह लँगोट का पक्का है । वह माखा का लँगोटिया यार रह चुका है । इसलिए वह काली की बडी आत्मीयता के साथ सहायता करता है । वह टूटी हड्डी जोडने मे बडा निपुण है । यह काम वह आजीविका के रूप मे नही,

अपितु धर्म के रूप म करता है । नूरा पहलवान का हाँथ तोडने के अपराध मे उसके उस्ताद ने उसका लँगोट लेकर पीपल की ऊँची टहनी के साथ बाँधकर लालू को अखाडे मे उतरने से मना कर दिया था । तब से वह आदमी को अगहीन होने से बचाने को अपना धर्म समझता है । वह काली को अपने यहाँ काम के लिए रख लेता है, किन्तु ज्ञानो के साथ काली के सम्बध को जानने के बाद उसे वह अपने घर से निकाल देता है । सवर्ण जाटो मे घड्डम चौधरी (नत्थासिंह) भी हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है । उसे कानून कचहरी का बडा शौक है । दूसरे के कामो मे हस्तक्षेप करना उसे अपना धर्म प्रतीत होता है । वह अपनी सारी जमीन बेचकर खा चुका है । वह नि सतान विधुर है, अत उसे किसी प्रकार की चिता नही है । गाँव की हर बात की जानकारी उसे होती है । वह बडा मुँहफट है । काली और निक्कू के झगडे के प्रसग मे वह पटवारी की लीलो की गरदावरी करने के कारण निन्दा करता है और झगडे का निपटारा करने मे सहायता करके काली से दो रुपए ले लेता है । पटवारी की इस रिश्वत मे उसकी भी साझेदारी है । उपन्यास के अन्य पात्र प्राय वर्ग चरित्र है । डॉक्टर बिशनदास हिन्दुस्तानी नेता हैं । स्यापे की तरह लम्बी बातें करने म ही उसकी अधिक रुचि है । साम्यवादी होते हुए सर्वहारा वर्ग की यातनाओ के साथ उस केवल बौद्धिक हमदर्दी है ।

लेखक का ध्यान उपन्यास के देशकाल पर प्राय नहीं है । घोडवाहा गाँव शिवालक पर्वत के निकट का एक गाँव है, जिसके पास एक नाला सटकर बहता है । उपन्यास मे सावन के महीने मे आई बाढ का वर्णन विशेष रूप से किया गया है । इसी प्रसग के बाद उपन्यास का हडताल का प्रसग है, जिसे आर्थिक समस्या की दृष्टि से उपन्यास की चरमसीमा का प्रसग कहा जा सकता है । प्रेमकथा की दृष्टि से उपन्यास की चरम सीमा ज्ञानो की मृत्यु और काली का लापता होना है । इसके अतिरिक्त देशकाल वर्णन पर लेखक की दृष्टि नही जाती है । चाची प्रतापी की बीमारी के प्रसग मे सातवी के चाँद का उल्लेख है तथा नदसिंह के ईसाई होने के प्रसग मे रविवार होने का । यह उपन्यास ग्रीष्म और वर्षाकाल का उपन्यास है । उपन्यास से सम्बन्धित दिनो की गिनती करने पर ज्ञात होता है कि यह केवल चवालीस दिनो की कथा है ।

भाषा शैली की दृष्टि से हमारा ध्यान सबसे पहले पजाबी शब्दो और वाक्यों की ओर जाता है । यद्यपि पजाबी हिन्दी की बोली नही है, किन्तु लेखक ने उसका भरपूर उपयोग किया है । इसका पहला कारण तो यह है कि लेखक कथानक को आचलिकता के विशिष्ट रग से चमकाना चाहता है तथा दूसरा कारण सवादो की भाषा को अधिक स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न है । लेखक ने सैंकडो पजाबी शब्दो का प्रयोग उपन्यास मे किया है । चो डुड, तद, डग, किट्टा, सुड्डा, धधूना, नगल,

चीचड आदि अनेक शब्द उपन्यास में बिखरे पड़े हैं। इनमें से कुछ शब्दों की वर्तनी अस्थिर है। 'नय' और 'स्तून' शब्दों को 'नैं' और 'सतून' रूप में भी प्रयुक्त किया है। कितने ही शब्दों का अर्थ उनकी बन्धनियों में दिया गया है। उपन्यास में लगभग सौ स्थानों पर बन्धनियों का प्रयोग हुआ है। शब्द के अर्थ का बधनीगत स्पष्टीकरण उपन्यास में उस शब्द के प्रथम प्रयोग के अवसर पर होना चाहिए, किन्तु कितनी ही बार ऐसा नहीं हुआ है। तद कामा आदि ऐसे कुछ शब्द हैं, जिनका स्पष्टीकरण उनके प्रथम प्रयोग के स्थान पर नहीं किया गया है। कहीं-कहीं स्पष्टीकरण अस्पष्ट है। 'थम्मी' 'लकड़ी का मोटा लठ' ही नहीं होती, अपितु 'छत को सहारा देने वाला लकड़ी का स्तून' होता है। कहीं-कहीं बन्धनियों का गलत स्थान पर प्रयोग हुआ है। 'गेहूँ के(बालियाँ)सिट्टे' के स्थान पर 'गेहूँ के सिट्टे(बालियाँ) होना चाहिए। निरर्थक रूप में भी बधनियों का प्रयोग खटकता है। 'दो साफ (ईंट) रोड़े' के स्थान पर 'दो साफ ईंट के रोड़े' होना चाहिए। इसी प्रकार लोग आकर प्रतापी चाची से पूछते हैं—'चाची (नमक) है, चाची (मिर्च) है।' इस स्थान पर बधनी का प्रयोग निरर्थक है। 'शाहवेला' का अर्थ बधनी में 'ब्रेकफास्ट' दिया है, जो अर्थ की दृष्टि से ठीक होते हुए भी इसलिए खटकता है कि स्पष्टीकरण अंग्रेजी शब्द के द्वारा न किया जा करके किसी हिन्दी शब्द के द्वारा किया जाना चाहिए था।"[१२]

पजाब में दीर्घकाल तक मुसलमानी शासन के प्रभाव के कारण उर्दू का बोलबाला रहा है। 'धरती धन न अपना' में उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुत बड़ी मात्रा में हुआ है। गदम, ज़ुबरा, यादफरामोश, जेहन आदि अनेक ऐसे ही उर्दू शब्द हैं। कहीं-कहीं वर्तनीगत अस्थिरता का दोष इन उर्दू शब्दों में भी पाया जाता है। 'खाहमुखाह' और 'खामुखाह' ऐसे ही प्रयोग हैं। कहीं-कहीं एक ही शब्द के उर्दू और हिन्दी के पर्याय कुछ-एक शब्दों के अन्तर पर ही प्रयुक्त हुए हैं। 'खौफ' और 'भय' का प्रयोग केवल एक पंक्ति के अन्तर पर हुआ है। उर्दू शब्दों का पजाबी रूप भी अनेक स्थानों पर दिखाई देता है। 'ग्रिफ्त' (गिरफ्त), 'फरेब' (फरेब) आदि ऐसे अनेक शब्द हैं। 'पेशेवर खिलाड़ी' के स्थान पर (पेशावर खिलाड़ी) का प्रयोग खटकता है।

उपन्यास में केवल शब्दों का ही नहीं, अपितु वाक्यांशों, मुहावरों, वाक्यों और कहावतों में भी पजाबी वाक्यांश आदि हैं। 'रख साइयाँ दी' 'तेरे सदके' आदि ऐसे ही वाक्यांश हैं। कुछ विशेष पजाबी मुहावरे भी जहाँ-तहाँ आए हैं। 'दाड़ा-दाड़ी करना', 'बकरे बुलाना' आदि ऐसे ही मुहावरे हैं। 'थूक से पकौड़े पकाना', 'कटी उँगली में नमक छिड़कना' आदि मुहावरे हिन्दी को समृद्ध करने के लिए उपयोगी हैं। 'घड़ी में सेर और पल में माशा होना' की अपेक्षा 'पल में तोला और पल में माशा होना' अधिक अर्थवाहक मुहावरा है। 'जोरावर का सात बीस का सौ' पजाबी कहावत का हिन्दी रूप है। 'गोरा कमीन और काला ब्राह्मण दोनों हरामी होते हैं।'

यह कहावत भी पजाबी कहावत का हिन्दी रूपान्तर है ।

पजाबी और उर्दू भाषा के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के भी बहुत से शब्द डाक्टर विशनदास आदि की भाषा मे आए है । परोल्तारी, प्रोलतारिया, साबोताज आदि ऐसे अनेक शब्द हैं । 'रप्ट' (रिपोर्ट), 'स्प्रिट' ( स्पिरिट ) आदि कुछ शब्द पजाबी उच्चारण के अनुकूल रखे गए हैं । अंग्रेजी शब्दो के प्रयोग मे भी वर्तनीगत अस्थिरता है । कहीं 'परोलतारी' है, तो कहीं 'प्रोलतारी' । कहीं 'बूरज्वा' का प्रयोग हुआ है तो कहीं 'बूर्जवा' रूप का । इस मामले मे लेखक को अधिक सतर्कता बरतनी चाहिए थी । पंडित सतराम की भाषा मे सस्कृत शब्दो का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक मात्रा मे हुआ है और वह स्वाभाविक भी है । 'अश्नान' 'शराब' आदि ऐसे ही पजाबी उच्चारण से प्रभावित सस्कृत शब्द हैं ।

उपन्यास मे कुछ सुन्दर सूक्तियाँ भी दीखती हैं । इनमे से कुछेक सूक्तियाँ इस प्रकार हैं—"गरीबी आदमी का जमीर खत्म कर देती है", "जिसके पास चादर है, वही चौधरी है"[११] आदि ।

*प्रस्तुत उपन्यास मे अलकारो का प्रयोग अत्यत सहज रूप मे हुआ है ।* ग्रामीण व्यक्तियो द्वारा प्रयुक्त अलकार एव स्वय लेखक द्वारा प्रयुक्त अलकार ग्रामीण वातावरण के अत्यधिक अनुकूल हैं । 'सूखे बेर जैसी प्राणहीन शक्लें'; 'कानो के पर्दे तरबूज के खप्पर की तरह मोटे' आदि प्रयोग ऐसे ही हैं । अपने हाथो अपनी रसाई तैयार करने वाले सतासिंह का यह कहना उपयुक्त ही है कि—"ब्याह के बिना जिंदगी सुलगती लकड़ी की तरह है ।" अन्धेरी रात मे ज्ञानो के दरवाजे पर दस्तक देने वाली ने "इस नर्मी से साँकल उतारी जैसे किसी मुटियार के सिर से चुन्नी उतार रहा हो ।"[१४] *यह उपमा प्रसग के अत्यधिक अनुकूल है ।* प्रतापी चाची का काली से यह कहना कि वह खेड से बिछुड़ी बछिया को देखकर रो दिया करती थी, स्मरण अलकार का सुन्दर उदाहरण है ।[१५] अलकारो का सीमित एव सहज प्रयोग उपन्यास मे सर्वत्र देखा जा सकता है ।

इस उपन्यास मे भाषा की दृष्टि से कुछ व्याकरणगत त्रुटियाँ बहुत खटकती हैं । एक ही प्रसग मे एक ही व्यक्ति के लिए 'तू' और 'तुम' सर्वनामो का प्रयोग किया गया है । चाची प्रतापी कहती है—"तुम्हें तो शायद उसकी सूरत भी याद न हो । सारे खानदान की तू ही तो एक निशानी है ।"[१६] "तू बैठो', 'सुनाओ तू' आदि ऐसे ही अनेक प्रयोग हैं । शब्दो के विकारी रूपो का प्रयोग भी ऐसे ही विकारग्रस्त है, जैसे—'चाचे ने' । 'मजमा से हट कर' मे विकारी रूप का प्रयोग आवश्यक है । 'इतमीनान का साँस' म लिंगगत दोष हैं । 'साँस' शब्द हिन्दी मे स्त्रीलिंग हैं । 'घोबर' या 'घेवर' का स्त्रीलिंग रूप 'घीवरी' या 'घेवरी' ही ठीक है, 'घेवरानी' नही ।[१७] ऐसी ही अनेक व्याकरणगत त्रुटियाँ उपन्यास मे इतस्तत बिखरी पड़ी हैं । इन त्रुटियो

को दूर करना आवश्यक है। इस प्रकार की त्रुटियों के बावजूद उपन्यास की भाषा सहज एवं सप्राण है।

## टिप्पणियाँ

१ निषाद बाँसुरी—ले० श्री कुबेरनाथ राय
२ धरती धन न अपना (प्रथम संस्करण) पृ० १०७
३ धरती धन न अपना पृ० १०८
४ वही, पृ० ६२
५, वही, पृ० २३४
६ वही, पृ० २१६
७ वही, पृ० १६९
८ वही, पृ० १९८
९ वही, पृ० २७१
१० वही, पृ० ८७
११ वही, पृ० १२४
१२. वही, पृ० २६३
१३ वही, पृ० ६९
१४. वही, पृ० २२३
१५ वही, पृ० १३
१६ वही, पृ० १३
१७ वही, पृ० ११३

## तमस :
## साम्प्रदायिकता के अंधेरे में भटकता आम आदमी

सूर्यनारायण रणसुभे

---

ये लोग अपने इतिहास को जानते नहीं, ये केवल उसे जीते भर हैं।

—तमस

देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लड़ते हैं और धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस में लड़ाते हो। क्यों ठीक, है ना!

—तमस

लड़ने वालों के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्य-युग में।"

—तमस

काफिर को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर जान-पहचान के पनाह-गजीन को मारना दूसरी बात। उसका खून करना पहाड़ की चोटी पार करने से ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल में एक पतली-सी लकीर कहीं पर अभी भी खिंची थी, जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।

—तमस

इसे लगा जैसे मानवीय मूल्यों का कोई महत्त्व नहीं होता, वास्तव में महत्त्व केवल तात्कालीन मूल्यों का होता है।

—तमस

## १५
## तमस

इस देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के लिए जो विभिन्न आन्दोलन हुए, उनके परिणामस्वरूप ही अन्तत अंग्रेजो को राजनीतिक स्वतन्त्रता की घोषणा करनी पड़ी। इन विभिन्न आन्दोलनो के कारण अंग्रेज आरम्भ मे भारतीयो को विभिन्न स्तरो पर राजनीतिक स्वतन्त्रता दे रहे थे। इसी कारण चुनाव की नई पद्धति शुरू हुई। नगर-परिषदो से लेकर धीरे-धीरे *प्रान्तीय स्तरो तक के कारोबार मे भाग लेने की छूट दी जाने लगी। कारोबार मे भाग लेने का अर्थ ही है—सत्ता के निकट चले जाना।* सत्ता मे हिस्सा मिलने का अर्थ ही है—विशेषाधिकारो को प्राप्त कर लेना। अपने ऐतिहासिक और संगठित संघर्ष के कारण ये विशेषाधिकार कांग्रेसियो को अधिक प्राप्त होने लगे। और यही से दो सम्प्रदायो के बीच दूरी बढ़ने लगी। आधुनिक शिक्षा की स्पर्धा मे हिन्दू मुसलमानो से अधिक जागरूक थे। राजनीतिक सजगता भी उनमे अधिक रही है। इसी कारण कांग्रेस मे इनकी संख्या अधिक थी। नगर परिषद के चुनावो से लेकर अन्य क्षेत्रो मे कांग्रेस को अधिकार मिलने लगे। परिणामस्वरूप अधिकारो का केन्द्रीकरण हिन्दुओ मे अधिक होने लगा—इसे देखकर शिक्षित मुसल-*मान तिलमिला उठा और धीरे-धीरे वह अपनी कौम को विविध तर्क देकर संगठित करने लगा, भड़काने लगा। यहाँ पर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है* कि हिन्दुओ के भीतर भी सनातनी और कट्टर साम्प्रदायिक शक्तियो की कमी नही थी (जो पुनरुत्थान के नाम से उभरी थी)। ये शक्तियाँ भी इस अलगाव को बढ़ाने मे अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग दे रही थी।

बढ़ते हुए राजनीतिक आन्दोलन, विश्व राजनीति की परिवर्तित दिशायें, दूसरा महायुद्ध तथा बरतानिया की बदली हुई सरकार—इन विविध कारणो से ६ मार्च १९४७ को सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा अंग्रेजो को करनी पड़ी। इसके पूर्व *ही यहाँ साम्प्रदायिक अलगाव अपने चरम-उत्कर्ष पर पहुँच चुका था। १९३३ मे रहमतअली खाँ पाकिस्तान की योजना रख चुके थे। आरम्भ मे मुस्लिम लीग ने इस योजना को अस्वीकार करते हुए—इसे बचकानी हरकत कहा था।* इस *कठोर टीका*

के बावजूद रहमतअली भारत विभाजन अर्थात् स्वतन्त्र पाकिस्तान का प्रचार प्रसार कर रहे थे। कांग्रेस तथा अंग्रेजों के साथ समझौता न होने के कारण मुस्लिम लोकमत धीरे धीरे पाकिस्तान के पक्ष में जाने लगा। श्री जिन्ना—जो अब तक स्वतन्त्र पाकिस्तान के विरोधी थे—बदली हुई परिस्थितियों को देखते हुए—इस माँग का राजनीतिक उपयोग कर लेने लगे। मार्च १९४० के मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में पहली बार स्वतन्त्र पाकिस्तान की माँग रखी गई। इस माँग के कारण सारे देश में खलबली मच गई। इस तरह १९४० से १९४६ तक पाकिस्तान की चर्चा विभिन्न तरीकों से हो रही थी। कांग्रेस तथा अन्य हिन्दुत्ववादी संघटनाएँ इस विभाजन का विरोध कर रही थी और मुस्लिम-लीग 'लेके रहेंगे पाकिस्तान' का नारा लगा रही थी। लीग के कार्यकर्ता इस नारे को जनसामान्य तक पहुँचाने का कार्य व्यवस्थित रूप से कर रहे थे। १० अप्रैल १९४६ को श्री जिन्ना ने मुस्लिम लीग की एक बैठक दिल्ली में बुलाई और उसमें उन्होंने पाकिस्तान की सीमाओं और उसमें सम्मिलित प्रदेशों की योजना स्पष्ट की। उनके अनुसार पाकिस्तान में छः प्रान्त होंगे बंगाल एवं असम [उत्तर पूर्व में] पंजाब उत्तर पश्चिम सीमा प्रदेश एवं प्रान्त, सिन्ध, बलूचिस्तान [उत्तर पश्चिम में]

इसका अर्थ यह हुआ कि अप्रैल १९४६ से ही उपर्युक्त प्रान्तों के हिन्दू एवं मुसलमानों में तनाव के बीज पड चुके थे। यह तनाव धीरे धीरे बढने लगा। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा के बाद (२० फरवरी १९४७) ६ मार्च १९४७ को कांग्रेस-कार्यकारिणी की बैठक हुई और उसमें ब्रिटिश सरकार की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा का हार्दिक स्वागत किया गया तथा स्वतन्त्र पाकिस्तान के बजाए मुस्लिम-लीग के साथ समझौता करने का आग्रह किया गया। रुकी हुई बातचीत से रास्ता निकालने की कोशिश फिर शुरू हो गई। कांग्रेस ने यह सुझाया कि बहुसंख्यकों के आधार पर प्रान्त रचना के लिए वह तैयार है। इस प्रकार पंजाब और बंगाल के विभाजन को कांग्रेस तैयार हो गई। हिन्दू पंजाब एवं मुस्लिम पंजाब। हिन्दू बंगाल एवं मुस्लिम बंगाल। कांग्रेस के कुछ सदस्यों को यह योजना मान्य नहीं थी। इसलिए कांग्रेस-अध्यक्ष ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि पंजाब के विभाजन की बात हम केवल इसलिए कर रहे हैं कि हिंसात्मक घटनाओं की समाप्ति हो जाय। कांग्रेस के इस प्रस्ताव को लीग ने नामंजूर कर दिया और यह कहा कि पाकिस्तान की माँग से वह एक इंच भी पीछे नहीं आना चाहती। कांग्रेस के पंजाब विभाजन की प्रतिक्रिया पंजाब में हुई। हिंसात्मक घटनाओं की समाप्ति के लिए यह योजना रखी गई थी परन्तु दुर्भाग्य से हिंसात्मक घटनाएँ बढ़ने लगी। मुसलमान यह मानकर चलने लगे कि अब उनके प्रदेश में हिन्दुओं की आवश्यकता नहीं है और हिन्दू यह कहने लगे कि अब हमारे प्रदेश में मुस्लिम नहीं रह सकते। लोगों पर अत्याचार शुरू हुए।

इस दृष्टि से मार्च १९४७ से लेकर जनवरी १९४८ तक का दस महीने का समय अराजकता, दगे, आगजनी, बलात्कार और क्रूरता का समय रहा है। उसमे भी मार्च १९४७ से अगस्त १९४७ यह छ महीने सर्वाधिक क्रूर और भयावह रहे हैं। इन छः महीनो मे मनुष्यता के लिए लज्जास्पद घटनाएँ घटित हुईं। २४ मार्च १९४७ को लॉर्ड माऊँटबैटन यहाँ आए। उनके लगातार के प्रयत्न के कारण विभाजन की योजना कांग्रेस को स्वीकार करनी पडी। दो जून १९४७ को कांग्रेस कार्यकारिणी ने विभाजन की माँग को अर्थात् स्वतन्त्र पाकिस्तान के निर्माण को मान्यता दे दी। आम जनता की रही-सही आशाएँ समाप्त हईं। सबको ऐसा लग रहा था कि महात्मा जी इस प्रस्ताव को मान्यता नही देंगे। परन्तु अब सारी आशायें खत्म हुईं। क्योकि उनके विरोध के बावजूद पाकिस्तान को स्वीकृति दी गई। परिणामस्वरूप मुस्लिम बहुसख्य प्रदेश मे जो हिन्दू थे, वे मुस्लिमो की क्रूरता के शिकार बने और यही स्थिति हिन्दू बहुसख्यक प्रदेशो के मुस्लिमो की हुई। केवल एक माह के भीतर यह तय किया गया कि पजाब और बगाल का कौनसा प्रदेश हिन्दुस्तान मे जाएगा और कौनसा पाकिस्तान में। सर्वसामान्य जनता आखिर तक धोखे में रही। स्वतन्त्रता के डेढ माह पूर्व भी उन्हें यह पता नही था कि वे जहाँ हैं वह पाकिस्तानी प्रदेश में जानेवाला इलाका है अथवा हिन्दुस्तान में।

मार्च १९४७ से अगस्त १९४७ के बीच सर्वसामान्य व्यक्तियो की जो असहाय्य स्थिति हुई, विभाजन के नाम पर जो क्रूर अत्याचार हुए, साम्प्रदायिक शक्तियाँ जिस प्रकार कार्य कर रही थी—इन सबको उपन्यासो द्वारा समेटने का प्रयत्न कुछ लेखको ने किया है। विभाजन की इस त्रासदी को लेकर बदीउज्जमाँ ने लिखा है कि 'हजारो वर्ष बाद इस देश में महाभारत जैसी एक और त्रासदी घटी।"[१] इस त्रासदी को विभिन्न कोणो से देखने का प्रयत्न हुआ है। 'तमस' इस प्रकार के उपन्यासो की एक महत्त्वपूर्ण कडी है। 'तमस' के पूर्व यशपाल का "झूठा-सच", यज्ञदत्त शर्मा का "इन्सान", गुरुदत्त का "देश की हत्या", रामानन्द सागर का "और इन्सान मर गया" कमलेश्वर का "लौटे हुए मुसाफिर"—प्रकाशित हो चुके हैं। तमस के लेखक भीष्म साहनी पजाब के हैं और विभाजन के समय वे उसी प्रदेश मे थे। इस कारण इस उपन्यास का महत्त्व अधिक है। एक जनवादी लेखक ने इस समस्या को किस दृष्टि से देखा है—इसकी खोज भी करना जरूरी है।

कथावस्तु अप्रैल १९४७ के समय के पंजाब के एक जिले को परिवेश के रूप मे यहाँ स्वीकार किया गया है। यह जिला और उससे सम्बन्धित कुछ देहातो के साम्प्रदायिक तनाव, सघर्ष और फिसाद को कथावस्तु के रूप मे यहाँ स्वीकार किया गया है। यह वह समय है जब कैबिनेटमिशन की योजना के अनुसार केन्द्र मे अन्तरिम सरकार बन चुकी थी। प० नेहरू इस सरकार के प्रमुख थे। लॉर्ड माऊँटबैटन

दिल्ली आ चुके थे। विभाजन के लिए वे अनुकूल वातावरण बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। छ मार्च १९४७ को कांग्रेस कार्यकारिणी विभाजन को रोकने के लिए बहुसंख्यकों के आधार पर पंजाब और बंगाल का विभाजन करके दो प्रान्तों के निर्माण की योजना रख चुकी थी। पंजाब-विभाजन की योजना मुस्लिम-लीग अस्वीकार कर चुकी थी। अप्रैल के पूर्व ही दिल्ली में ये राजनीतिक घटनाएँ घटित हो चुकी थी। दिल्ली से दूर पंजाब के एक मुस्लिम बहुसंख्यक जिले में इन सबकी प्रतिक्रियाएँ होना स्वाभाविक था। हिन्दुओं के प्रति मुस्लिमों को भड़काया जा रहा था। साम्प्रदायिक शक्तियाँ इसे और अधिक उभार रही थी। कांग्रेस और कम्युनिस्ट समझौता और अमन के लिए प्रयत्नशील थे। और अंग्रेज अधिकारी इन दोनों सम्प्रदायों के हिंसात्मक आन्दोलनों को खामोशी से देख रहे थे। बड़े तबके के शिक्षित हिन्दू और मुसलमानों की अपेक्षा छोटे तबके के लोग सर्वाधिक परेशान थे। उपन्यास में वर्णित इस जिले में कुल छ विभिन्न शक्तियाँ कार्य कर रही थी। कम अधिक मात्रा में हिन्दू-मुस्लिम फिसादों के समय सारे देश में यही छ शक्तियाँ कार्यरत थी। इनमें से कुछ शक्तियाँ एक-दूसरे के विरोध में खड़ी थी तो कुछ एक दूसरे के सहयोग में। एक दूसरे का विरोध करने वाली ये शक्तियाँ एक बिन्दु पर एक दूसरे से मिल जाती हैं। मजेदार बात यह है कि ये छ शक्तियाँ आम आदमी की सुरक्षा और फायदे का नारा लगाती हैं। परन्तु सच्चाई यह है कि इनके कारण आम आदमी की हानि ही अधिक हुई। सुरक्षा और फायदे का इनका नारा एक बहुत बड़ा झूठ था। यह छ शक्तियाँ इस प्रकार हैं—

१ अंग्रेज सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर अंग्रेज थे। आरम्भ से इनकी नीति और समय-समय पर इनके द्वारा लिए गये निर्णय यह स्पष्ट करते हैं कि दो सम्प्रदायों को लड़ाने में ही वे खुद को सुरक्षित अनुभव करते थे। "प्रजा अगर आपस में लड़े तो शासक को किस बात का खतरा है।"[३] "यह देखना निहायत जरूरी था कि जनता का असंतोष ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न भड़के।"[४] "हुकूमत करने वाले यह नहीं देखते कि प्रजा में कौनसी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो यह देखने में होती है कि वे किन-किन बातों में एक दूसरे से अलग हैं।"[५] इन विविध वक्तव्यों से स्पष्ट है कि यह शक्ति दो धर्मों के तनाव को किसी भी स्तर पर कम नहीं करना चाहती थी। हाँ, काफी कुछ हो जाने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक अलबत्ता वे जरूर करते हैं।

मुस्लिम-लीग . मुस्लिमों के हित का नारा लगाकर मुस्लिम-लीग १९०६ से कार्य कर रही है। पढ़े-लिखे और कट्टर धार्मिक मुस्लिम अपने हित के लिए मुस्लिम-लीग के झंडे के नीचे आ गये। जिना जैसा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति लीग को मिल जाने से उसमें नई जान आ गई। १९४० तक आते-आते मुस्लिम बहुसंख्यक

प्रान्तो मे सभी स्तरो पर लीग की स्थापना हुई। "कांग्रेस हिन्दुओ की जमात है। इसके साथ मुसलमानो का कोई वास्ता नही है।"[५] कांग्रेस की नफरत से ही लीग उभरी थी। हिन्दू-मुस्लिम एका करने वाली शक्तियो को भी ये नफरत करते थे। इसी कारण कांग्रेस मे कार्यरत मुसलमानो की इन्होने खिल्ली उडाई। मौलाना आजाद हिन्दुओ का सबसे बडा कुत्ता है। हमे हिन्दुओ से नफरत नहीं, इनके कुत्तो से नफरत है।"[६] कांग्रेस मुस्लिमो की नुमाईन्दी नही कर सकती।"[७] लीग के सामान्य कार्यकर्ता भी जिना के शब्दो मे बोल रहे थे। धीरे-धीरे लीग कट्टर साम्प्रदायिक शक्ति के रूप मे उभरी। लीग की इसी कट्टरता के कारण पजाब के हिन्दुओ को जबरदस्त नुकसान पहुँचा तो दूसरी ओर पजाब तथा प० बगाल के मुस्लिमो को भी काफी नुकसान उठाना पडा।

३ आर्य-समाज · १८७५ मे स्थापित आर्य-समाज सामाजिक सुधार एवं धार्मिक पुनरुत्थान के लिए उठ खडा हुआ था। शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्रो मे आर्य-समाज का कार्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। धार्मिक क्षेत्र मे तो यह कार्य कुछ सीमा तक क्रान्तिकारी ही है। परन्तु धीरे-धीरे समाज के नेता राजनीति के क्षेत्र मे उतर आये। अगर वे केवल अंग्रेजो के विरुद्ध ही जनमत तैयार करते तो कोई हानि की बात नही थी। परन्तु धार्मिक पुनरुत्थान के नाम पर बात-बात मे हिन्दू-सगठन का आग्रह, हिन्दुओ की महानता पर बल, व अन्य धर्मो की खिल्ली उडाने की वृत्ति के कारण समाज मुस्लिमो की विरोधी शक्ति के रूप मे उभरने लगा। उधर मुस्लिमो मे इसी प्रकार का कार्य "वहाबी तहरीक" द्वारा शुरू हुआ। परिणामत· तनाव बढने लगा। अगर ये दोनो पुनरुत्थानवादी धाराएँ धर्म तक ही सीमित रहती तो शायद पृथक राष्ट्रीय आन्दोलनो के विकास का कारण न बनती।"[८] इस प्रकार अलगाव की इस प्रक्रिया मे आर्यसमाज ने गति ला दी।

कम्युनिस्ट : विभाजन के पाप के भागीदार कम्युनिस्ट भी है। परन्तु इसके बावजूद यह सच्चाई है कि इन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए काफी प्रयत्न भी किए। विशेषतः सन् १९४७ के समय लाहौर, अमृतसर तथा पजाब के अन्य बडे शहरो मे वे इस एकता के लिए प्रयत्नशील थे। "हमे यह नही भूलना चाहिए कि हम लोगो को मुसलमानो के खिलाफ भडकाया जा रहा है। हम झूठी अफवाहे सुन-कर एक दूसरे के खिलाफ तैश मे आ रहे हैं।"[९] इनकी दृष्टि राजनीतिक अधिक थी; मानवीय कम।

५ कांग्रेस : म० गांधीजी के नेतृत्व मे विकसित कांग्रेस अपने तरीके से विभाजन का विरोध कर रही थी। राष्ट्रीय स्तर पर इस पार्टी की नीति बहुत ही स्पष्ट थी। परन्तु जब दंगे बढने लगे, हिन्दुओं को नुकसान पहुँचने लगा, तब सामान्य कांग्रेसी कार्यकर्ताओ का विश्वास अहिंसा से उठता गया। मुस्लिम-लीग के जबरदस्त

प्रचार और प्रवाह में ये अकेले पड़ते गये। लोगों के मन में यह बात बैठ गई थी। कि कांग्रेस हिन्दुओं की संस्था है।"[११] जो मुसलमान कांग्रेस में थे, उनको सर्वाधिक तकलीफ हुई। इस उपन्यास के बख्शी जी इसके प्रमाण हैं। विभाजन के निर्णय के बाद तो पूर्वी पंजाब के कांग्रेसी सर्वाधिक हतबल हो गये। उन्हें यह महसूस हो गया कि साम्प्रदायिक शक्तियाँ और हिंसा के सम्मुख गांधीजी के सिद्धान्त पराजित से हो गये हैं। फिर भी आखरी समय तक फसादों को रोकने की कोशिश कांग्रेसी कर रहे थे।

६ सिख—पंजाब के विभाजन का सर्वाधिक विरोध सिख जमात ने किया। परन्तु यह विरोध विधायक नहीं था। क्योंकि इनके विरोध से साम्प्रदायिक शक्तियाँ अधिक उभरी। वे बार-बार सिख कौम के इस संकट को तीन सौ वर्ष पहले लड़े गये धर्मयुद्ध के साथ जोड़ रहे थे। लड़ाकू जाति के रूप में प्रसिद्ध सिखों ने अल्पमत के बावजूद भी मुस्लिमों से टकराने की हिम्मत की। इस सम्पूर्ण समस्या को विवेक और तटस्थता से देखने के बजाए वे इसे केवल युद्ध के स्तर पर ही देखते रहे। परिणामतः नफरत की आग अधिक बढ़ती गई। "लड़ने वालों के पाँव बीसवीं सदी में थे, सिर मध्ययुग में।"[१२]

१९४६–४७ के पंजाब के किसी भी कस्बे में उपर्युक्त छः शक्तियाँ कार्यरत थी। इनमें से चार—कांग्रेस, आर्यसमाज, सिख-समाज और कम्युनिस्ट विभाजन के विरोध में थे। लीग विभाजन के लिए प्रयत्नशील थी और अंग्रेज—जिनके हाथों में सुरक्षा के सारे सूत्र थे वे पूर्णतः तटस्थ थे। अंग्रेजों की इसी हृदयहीन तटस्थता के कारण ही विभाजन का इतिहास रक्त, आगजनी और बलात्कार के साथ जुड़ गया।

उपर्युक्त छः शक्तियाँ इस उपन्यास की कथा पर पूर्णतः छा गयी हैं। शिक्षित-अशिक्षित व्यक्तियों की विचारधारा इनमें से किसी-न किसी एक से प्रभावित है। उनकी चेतना पर यह शक्तियाँ छा गई हैं और उसी के फलस्वरूप वे क्रियारत हैं। मुस्लिम-लीग, आर्य-समाज और सिख-समाज अपनी सम्पूर्ण कट्टरता के बावजूद एक बिन्दु पर निकट आते हैं और वह बिन्दु है—धर्म का राजनीति के लिए उपयोग। इनके कारण ही दंगे बढ़ते गये। सिख और हिन्दू मुसलमानों के प्रति नफरत बढ़ा रहे थे और लीग भी यही कार्य कर रही थी। इन तीन प्रखर शक्तियों के सम्मुख कांग्रेस अकेली पड़ गयी। लीग धर्म के नाम पर जान-बूझकर झगड़ों के लिए वातावरण तैयार करवा रही थी।

कथावस्तु दो खण्डों में विभाजित है। पहले खण्ड में कुल तेरह प्रकरण हैं। नत्थू नामक एक मामूली चमार से कथावस्तु का आरम्भ हो जाता है। पशुओं की खाल उतारना नत्थू का व्यवसाय है। मुरादअली नामक एक कट्टर मुस्लिम व्यक्ति ने उसे एक काम सौंपा है। इस काम के लिए नत्थू को पाँच रुपये दिये गये हैं। कस्बे

के किसी डॉक्टर को एक मरा हुआ सुअर चाहिए और चूंकि मुसलमान यह काम नही कर सकता इसलिए नत्थू को यह काम सौंपा गया है। "हमारे सलोतरी साहिब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए, डाक्टरी काम के लिए।"[११] मुरादअली का काम टालना नत्थू जैसे व्यक्ति को बहुत मुश्किल है। "क्योंकि वह कमेटी का कारिन्दा होने के कारण छोटे-बडे सभी लोगो को उससे काम पडता था।"[१२] बडी मुश्किल से नत्थू ने उस रात वह काम किया परन्तु बाद मे घबराकर वहाँ से भाग निकला। दूसरे दिन प्रात काग्रेस की प्रभात फेरी निकली। हयात बख्शीजी, मास्टर रामदास, मि० मेहता, कश्मीरीलाल, जरनैल, शकर और अब्दुलगनी इस कस्बे के काग्रेसी कार्यकर्ता हैं। अभी इस कस्बे मे नफरत की आग फैली नही है। मुबारकअली, मौलादाद, आदि मुस्लिम लीगी यहाँ हैं। वे अपने तरीके से मुस्लिमो को भडकाने की कोशिश मे हैं। फिर भी कस्बा खामोश है। लोग अपने-अपने दैनंदिन जीवन मे व्यस्त हैं। जिले का डिप्टी कमिश्नर श्री रिचर्ड पत्नी लीजा के साथ प्रातःकाल घोडे पर घूमने निकला है। रोज की तरह लीगियो एव काग्रेसियो मे झपट हो रही है। इसी समय एक जबरदस्त हादसा हुआ है। कही से यह खबर आग की तरह फैल गयी है कि "कोई आदमी सुअर मारकर मस्जिद की सीढियो पर फेंक कर गया है।"[१३] सारा कस्बा सकते मे आ गया है। लीगी चिल्ला रहे हैं कि यह हिन्दुओ का काम है। जरनैल लोगो को यह समझाने की कोशिश कर रहे हैं कि यह अग्रेजो की चाल है। उन्होने ही सुअर मरवा के फेंका है। परन्तु लोग इस बात पर विश्वास करने को तैयार नही हैं। खामोशी और मस्ती से जीने वाले इस शहर मे खलबली मच गई है। हिन्दुओ के मुहल्लो मे जाने से मुस्लिम घबरा रहे हैं और मुस्लिमो के मुहल्लो से गुजरने मे हिन्दू हिचकिचा रहे हैं। इसी समय एक और घटना हुई है। सुअर के मौत का बदला गाय के खून से लिया गया है। गाय को काट दिये जाने के कारण तनाव और बढ़ गया है। इसी समय आर्य-समाज के सत्सग मे वानप्रस्थीजी हिन्दुओ को मुस्लिमो के विरुद्ध भडका रहे हैं। हिन्दुओ को यह हिदायतें दी जा रही हैं कि वे अपनी सुरक्षा की व्यवस्था कर ले। मुस्लिमो ने मस्जिदो मे अस्त्र शस्त्र भर दिये हैं, अब हिन्दुओ को इसका जवाब देना होगा; इसलिए लाठियाँ मगवाई जाएँ, युवको को तैयार कर दिया जाए—इत्यादि।" सबसे पहले अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। सभी सदस्य अपने-अपने घर मे एक एक कनस्तर कडवे तेल का रक्खें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबला तेल शत्रुओ पर डाला जा सकता है, जलते अगारे छत पर से फेंके जा सकते हैं।"[१५] काफी विचार विमर्श के बाद आर्य-समाज की इस सभा मे ये निर्णय लिये गये कि "मुहल्ला-कमेटियाँ बनाई जाएँ, वालटियर कोर बनाई जाय जो शहर के सभी हिन्दुओं सिखो के संगठनो के बीच सम्पर्क रखें, कडवे-तेल के अतिरिक्त रेत और पानी का इन्तजाम किया जाय।"[१६] इस बीच एक

वृद्ध सज्जन बार-बार यह समझाने की कोशिश कर रहे थे कि "डिप्टी कमिश्नर से मिल लेना जरूरी है। उन्हें सारी स्थिति समझायी जाए। "परन्तु उधर कोई गौर नहीं कर रहा था। आश्चर्य इस बात का है कि शहर का एक भी ऐसा वर्ग नहीं है जो इस सारी घटना के मूल में जाकर सच्चाई का उद्घाटन कर सके।" मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर की लाश देखकर 'मुस्लिम तैश में आ गये हैं। और मोहल्ला से हिन्दू। लीगी और हिन्दू दोनों इन पशु हत्याओं को मुद्दा बनाकर एक-दूसरे के विरोध में नारे लगा रहे हैं और संगठित होकर मुकाबले की तैयारी कर रहे हैं। किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की है कि सुअर को मारा किसने? मस्जिद पर लाकर फेंका किसने? इसके मूल में किसी की शरारत है अथवा किसी का कोई भयानक षड्यन्त्र!

कट्टर हिन्दुत्ववादी संगठनाएँ भी अपने तरीके से कार्य कर रही हैं। मास्टर जी रणवीर तथा अन्य आर्यवीर बालकों को समझा रहे हैं "म्लेछ तो गन्दे लोग होते हैं, म्लेछ नहाते नहीं, पाखाना करके हाथ नहीं धोते, एक-दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नहीं जाते ।" रणवीर तथा अन्य बालकों को वे मुस्लिमों के खून करने के नये-नये तरीके समझा रहे हैं।

शहर की इस बदली हुई स्थिति को देखकर कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों के लोगों ने डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड से मिलना जरूरी समझा। इस घटना के तीन चार घंटों बाद ही छः व्यक्ति (चार सिख, दो कांग्रेसी, एक लीगी) रिचर्ड के यहाँ पहुँचे। साथ में मिशन कॉलेज के अमरीकी प्रिन्सिपल हरबर्ट भी थे। "सरकार की तरफ से फौरन ऐसी कार्रवाई की जानी चाहिए जिससे स्थिति काबू में आ जाए। '—वरना— वरना इस शहर पर चीलें मँडराएँगी।" बख्शी जी बार-बार इस वाक्य को दुहराते हैं। परन्तु रिचर्ड इस सम्बन्ध में कुछ भी करना नहीं चाहता। क्योंकि "हम इनके धार्मिक झगड़ों में दखल नहीं देते ।" इन झगड़ों से अंग्रेज सरकार की जड़ें अधिक शक्तिशाली होने वाली हैं। जब बख्शीजी यह फिर दुहराते हैं कि "शहर की रक्षा तो आप ही की जिम्मेदारी है।" तो रिचर्ड यह कहकर के 'ताकत तो इस वक्त पंडित नेहरू के हाथ में है"—टाल देते हैं।" "अगर शहर में पुलिस गश्त करने लगे, जगह-जगह फौज की चौकियाँ बिठा दी जाएँ तो दंगा-फिसाद नहीं होगा, स्थिति काबू में आ जाएगी।" अथवा "आप फौज नहीं बैठा सकते तो शहर में कर्फ्यू लगा दें। इसी से स्थिति सम्भल जाएगी। पुलिस की ही चौकियाँ बैठा दें।" "इस वक्त हालत नाजुक है। अगर मार-काट शुरू हो गई तो इसे सँभालना कठिन होगा। अगर एक हवाई-जहाज ही शहर के ऊपर उड़ जाए तो लोगों को कान हो जाएँगे कि सरकार बाखबर है। फिसाद को रोकने के लिए इतना भी काफी होगा।" इन विविध पर्यायों में से एक भी रिचर्ड स्वीकार करने को तैयार नहीं

है। किसी न किसी बहाने वह प्रत्येक बात को टाल देता है। अग्रेजी नीति का भंडाफोड लेखक ने यहाँ किया है। इसी कारण बख्शीजी यह कहकर उठते हैं कि "आपके अधीन सब कुछ है, साहब, आप कुछ करना चाहें तो।"[११] उलटे व्यग्य से रिचर्ड यह उत्तर देता है कि "वास्तव मे आपका मेरे पास शिकायत लेकर आना ही गलत था। आपको तो प० नेहरू या डिफेंस मिनिस्टर सरदार वलदेवसिंह के पास जाना चाहिये था। सरकार की बागडोर उनके हाथ में है।"[१२] अर्थात् वह इन लोगो की मजबूरी और असहायता की हँसी उडा रहा है। अमरीकी पादरी प्रिन्सिपल हरबर्ट इस समस्या को मानवीय दृष्टि से देख रहा है। इसलिए वह भी रिचर्ड को नम्रतापूर्वक यह आग्रह करता है कि, "शहर की हिफाजत का सवाल राजनीतिक नही है, यह राजनीतिक पार्टियो के ऊपर का सवाल है, शहर के सभी लोगो का, नागरिकों का सवाल है। इसमे अपनी-अपनी पार्टियो को भूल जाना होगा। सरकार का भी रोल इसमे बहुत बडा है। हम सबका मिलकर शहर की स्थिति को सँभाल लेना चाहिए।"[१३] एक अग्रेज का दूसरे अग्रेज से यह आवाहन था। परन्तु इसका कोई परिणाम रिचर्ड पर नही होता। वह तो लोगो को ही उलटे यह समझाता है कि वे अमन कमेटी द्वारा यह काम कर सकते हैं। इसी समय एक और खबर यह आ गई कि, "पुल के पार एक हिन्दू को कत्ल कर दिया गया है। सभी बाजार बन्द हो गये है।"[१४] सुअर की हत्या की प्रतिक्रिया शुरू हुई है। सारे लोग सक्ते मे आ गये हैं और *अग्रेज बहादुर खामोशी से यह सब देख रहे हैं। रिचर्ड के यहाँ से निकलने तक* बख्शी जी ने यह रट लगायी है कि "अभी भी वक्त है, आप कर्फ्यू लगा दें।"[१५] अगर अग्रेज सरकार के विरुद्ध मामूली-सा भी आन्दोलन होता तो क्या रिचर्ड इस प्रकार की भूमिका लेते ? स्पष्ट है कि रिचर्ड के साथ की यह बैठक असफल रही। इसी असफलता को लेकर सारे सदस्य बाहर निकले हैं। सुरक्षित घर पहुँचेंगे अथवा नही इसका डर प्रत्येक को है। काग्रेसी हिन्दुओं का विश्वास डगमगा रहा है। "नाले के पार का सारा इलाका मुसलमानी है और मेरा घर नाले के सिर पर है। फिसाद हो गया तो उस वक्त तुम मुझे बचाने आओगे ? या बापूजी आकर बचाएँगे? उस वक्त तो मुझे मुहल्ले वाले हिन्दुओ का ही आसरा है। छुरा मारने वाला मुझसे यह तो नही पूछेगा कि तुम काग्रेस मे थे या हिन्दू-सभा मे -।"[१६] केवल कुछ घटो मे ही सारे विश्वास टूट रहे है। हिन्दू-सघटन का आग्रह तो अब काग्रेसी भी कर रहे हैं। आदर्शो की अपेक्षा अब व्यवहार को महत्व दिया जा रहा है। परन्तु कोई भी असलियत की खोज करना नही चाह रहा है। भय ने विवेक को खत्म-सा कर दिया है। दुपहर तक शहर के कुछ हिस्सो में यह तनाव धीरे-धीरे कम होने लगा है। "वातावरण मे स्थिरता थी। सुबह की घटना से पैदा होने वाला तनाव कुछ दब गया था। कुछ बिखर गया था। ... नगर का कार्यकलाप फिर से जैसे

किसी संगीत की लय पर चलने लगा हो। जब इब्राहीम इत्रफरोश कधो और गोद पर से तरह-तरह की बोतलें लटकाये एक गली से दूसरी गली इत्रफुलैल की आवाज लगाता अपनी स्थिर चाल से गुजरता जाता तो लगता नगर की इस धुन पर उसके पाँव उठ रहे हैं, इसी धुन पर औरतें अपने घडे लेकर गली के नल पर जाती, इसी धुन की लय पर सडको पर टागे चलते, इसी धुन पर बच्चे स्कूल जाते, लगता, शहर का सारा व्यापार किसी मीठी सहज धुन पर चल रहा है। लगता, इसकी एक कडी टूटेगी तो साज के सारे तार टूट जाएँगे।"[१३] कितना खूबसूरत है यह शहर! परन्तु सवेरे की घटना ने इसकी खूबसूरती को तोड दिया है। शहर के पुराने मन्दिर की दीवार के ऊपर एक घडियाल लगा था। आज वह घडियाल दुरस्त किया जा रहा है। खुदाबख्श दर्जी ने इसको देखते हुए कहा है कि "या अल्लाह, शहर मे फिसाद का डर है · · इस घडियाल की आवाज सुनकर रूह काप जाती है। पहले फिसाद मे जब बजा था तो मण्डी मे आग लगी थी और शोले आधे आसमान को ढके हुए थे।"[१४] आज फिर इसकी तैयारी हो रही है।

एक खबर और फैली है कि गोल्डा शरीफ के पीर आये हैं। "पीर साहब काफिरो को हाथ नही लगाते, काफिरो से नफरत करते हैं।"[१५] इस तरह साम्प्रदायिकता की यह आग भडक रही है। यह सब जिस सुअर के कारण हुआ, उसे मारने वाला नत्थू चमार परेशान है। वह बार बार इस बात पर पछता रहा है कि उसने गलत काम कर लिया गया है। उसी रात मण्डी मे आग लगा दी गई। घडियाल बडे जोरो से बजाया जाने लगा। "इस घडियाल को सुनते हुए लगता है जैसे समुद्र मे तूफान उठा हो और कोई जहाज खतरे की घण्टी बजा रहा हो।"[१६] घडियाल की यह भयावह आवाज डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड भी नीद मे सुन रहे हैं। पत्नी लीजा घबरा गई है। वह बार-बार रिचर्ड से कह रही है कि वह इस फिसाद को रोकें। परन्तु रिचर्ड का एक ही तर्क है कि हम उनके धार्मिक झगडो मे दखल नही देते।" लीजा ने यह पूछा कि "ये लोग आपस मे लडे; क्या यह अच्छी बात है।"[१७] रिचर्ड ने उत्तर दिया है कि "क्या यह अच्छी बात होगी कि ये लोग मिलकर मेरे खिलाफ लडे, मेरा खून करें।?" रिचर्ड के इस वाक्य मे अंग्रेजो की नीति बहुत स्पष्ट हो गई है। अंग्रेज यह जान चुके थे कि जब तक ये लोग आपस मे नही लडेंगे तब तक हमे कोई खतरा नही है। परन्तु जैसे ही यह आपस मे लडना छोडकर एक हो जाएँगे, खतरा हमें है। इसलिए वे तटस्थता की भूमिका अपना रहे थे। रिचर्ड के तर्क को सुनकर लीजा केवल यही सोच सकी कि "जैसे मानवीय मूल्यो का कोई महत्त्व नही होता, वास्तव मे महत्त्व केवल शासकीय मूल्यों का होता है।"[१८] रात के इस घुप्प अन्धेरे मे लाला लक्ष्मीनारायण परेशान हैं। क्योकि उनका बेटा रणवीर अभी तक घर लौटा नही है। लाला जी पैसे वाले जाने-माने व्यक्ति हैं, ऊँचे मकान मे रहते हैं,

किसका हाथ उन पर उठ सकता था ? आस-पास मुसलमान लोग रहते थे लेकिन सभी छोटे तबके के थे। शहर के अनेक मुसलमान व्यापारियों के साथ लाला जी व्यापार करते थे। "उन्हें मुसलमानो के खिलाफ गुस्सा तो अक्सर आता था, पर उन्हे इस बात का विश्वास था कि अंग्रेज उन्हें दबाकर रखेंगे।"[१५] यह विश्वास न केवल लाला जी को था, अपितु उन लाखो हिन्दुओ और मुसलमानो को था जो पूर्वी और पश्चिमी पजाब मे इस समय सांस ले रहे थे। और आश्चर्य इस बात का है कि जिस पर विश्वास था वह इस समय चैन की नींद ले रहा था।

दूसरे दिन सवेरे ही उस रात को घटना के ब्योरे मिले। कुल सत्रह दुकानें जलकर राख हो चुकी थी। इस प्रकार सुअर वाली घटना के चौबीस घण्टो के भीतर ही सारा माहौल बदल-सा गया है। आगजनी की इस घटना से पूरे शहर भर की मानसिकता मे आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ है। "मुहल्लो के बीच लीकें खिच गईं थी, हिन्दुओ के मुहल्ले मे मुसलमानो को जाने की अब हिम्मत नही थी और मुसलमानो के मुहल्लो मे हिन्दू सिख अब नही जा सकते थे। आंखो मे सशय और भय उतर आये थे।"[१६] सुअर की उस घटना से लाखो का नुकसान हुआ था। केवल नुकसान ही नही सबकी दृष्टि बदल गई थी, एक दूसरे के लिये सब अजनबी बन गये थे।"[१७] हर दरवाजे बन्द थे, शहर का कारोबार, स्कूल, कालिज, दफ्तर सभी ठप हो गये। और ऐसे सशय भरे, नफरत मे जलते हुए माहौल मे कांग्रेसी जरनैल चबूतरे पर खड़े होकर जोर जोर से तकरीर दे रहा था—"साहिबान्, चूंकि आज सभी बुजदिल चूहो की तरह घरो मे घुसे बैठे हैं, मुझे अफसोस करना पड़ता है कि आज प्रभातफेरी नही होगी आप सब शहर मे अमन बनाए रखें। यह शरारत अंग्रेज की है जो भाई-भाई को आपस मे लड़ाता है।"[१८] परन्तु इस जरनैल की कौन सुनने वाला है ? इस तनाव भरे वातावरण मे शाहनवाज अपने दोस्त के लिए कई खतरे उठा रहा है। तो दूसरी ओर मुस्लीम लीगी मौला दाद हैं जो इस वातावरण को और भयावह बनाने की फिक्र मे हैं। कम्युनिस्ट कार्यकर्ता कॉमरेड देवदत्त कस्बे की इस बदली हुई परिस्थिति से परेशान है। अमन के लिए वह सर्वपक्षीय बैठक बुलाने के लिए प्रयत्नशील है। अपने दो साथियो जगदीश और कुर्बान अली के साथ इसी चर्चा मे वह व्यस्त है। एक साथी के अनुसार, "सभी पार्टियो के नुमाइन्दे की मीटिंग हो नही सकती। क्योंकि कांग्रेस के दफ्तर पर ताला है। लीगवालो से बात करो तो वे पाकिस्तान के नारे लगाने लगते हैं। वे हर बात मे कहते हैं, पहले कांग्रेस वाले कबूल करें कि कांग्रेस हिन्दुओ की जमात है, फिर हम उनके साथ बैठने के लिए तैयार हैं।"[१९] देवदत्त यह समझ नही पा रहा है कि इस जड़ता को कैसे तोड़े। अगर नेतृत्व करने वाले ही खामोश बैठ जाएँ तो दगे रुकेंगे कैसे ? और उसी समय यह खबर आई है कि, "मजदूरो की बस्ती मे भी फिसाद हो गया है और दो सिख बढ़ई मारे

गये हैं। ........ देवदत्त की समझ में यह नहीं आ रहा है कि अब आगे क्या होगा? क्योंकि कम्युनिस्ट विचार प्रणाली के अनुसार तो मजदूर आपस में लड़ते नहीं, अथवा उन्हें लड़ना नहीं चाहिए। अगर मजदूर ही आपस में लड़ते हैं तो यह विष बहुत गहरा असर कर चुका है।"* इसी दोपहर एक और मौत हुई। जरनैल मारा गया। लाठी के एक ही भरपूर वार से उसकी खोपड़ी लीगियों ने फोड़ दी। इस कस्बे में अमन के लिए प्रयत्नशील एक शक्ति का अन्त हुआ। भावुक देवदत्त पराजित हो गया है। बाकी कांग्रेसी हिन्दू-मुसलमानों से मेल-मिलाप कर रहे हैं और अंग्रेज रिचर्ड फिसाद को लेकर निष्क्रिय है। विवेक की शक्तियाँ समाप्त हुई हैं। बच गये हैं केवल वे ही सर जो मध्ययुग में जाकर सोच रहे हैं। इसके प्रमाण हैं आर्यवीर दल और लीगियों के काम। एक ओर आर्यवीर दल नौजवानों को छुरे भोंकने और लाठियाँ चलाने की शिक्षा दे रहा है तो दूसरी ओर लीग हिन्दुओं को लूटने की योजनायें बना रहे हैं। इस कुशिक्षा का परिणाम यह हुआ कि १२-१५ वर्ष का रणवीर मासूम इत्रफरोश का खून कर देता है।

इस कस्बे में पिछले ३०-३५ घण्टों में चार छः खून हो चुके हैं। सत्रह से अधिक दुकानें जल चुकी हैं। और यह सब हुआ है नत्थू द्वारा सुअर को हत्या करने के कारण। इस सारे पाप का भागी मैं ही हूँ ऐसा वह समझ रहा है। परन्तु उसने जान-बूझकर तो ऐसा नहीं किया है। "मैंने जो कुछ किया वह अनजाने में किया, ये लोग जो आग लगा रहे हैं और राह चलते लोगों को मार रहे हैं, ये आँखें खोलकर सब काम कर रहे हैं, ये क्यों बुरा काम कर रहे हैं?"** उसकी पत्नी उसे बार-बार समझा रही है कि "पर इसमें तेरा क्या दोष? तुझसे लोगों ने धोखे से काम करवाया है"*** फिर भी नत्थू ऐसा अनुभव कर रहा है कि कोई अदृश्य छाया उसका पीछा कर रही है।

प्रथम खण्ड की कथावस्तु यहाँ समाप्त हो जाती है। कुल तेरह प्रकरणों में प्रातः चार बजे से लेकर दूसरे दिन के दोपहर तक का चित्रण किया गया है। अर्थात् केवल ३०-३५ घण्टों का चित्रण। सुअर की लाश मस्जिद की सीढ़ियों पर दिखलाई देने के बाद ३०-३५ घण्टों में जो विभिन्न प्रतिक्रियायें हुई—उनका विवरण इस प्रथम खण्ड में दिया गया है। इस खण्ड की कथावस्तु का सम्बन्ध एक जिले से है, विविध प्रकार के दफ्तर हैं, नगर परिषद है। पढ़े-लिखे लोगों की संख्या भी यहाँ काफी है। जब इतने सुबुद्ध नागरिकों के होते हुए भी सारे शहर में आगजनी, खून और इसी प्रकार की भयावह एवं क्रूर घटनाएँ घटी हैं तो फिर इस जिले से दूर बसे हुए उन देहातों की कल्पना हम कर सकते हैं; जहाँ फिसादों को रोकने वाली शक्तियाँ नहीं के बराबर हैं। इस जिले में पिछले दो दिनों में जो कुछ हुआ है, उसने नफरत की आग तेजी से फैलाई गयी है। आस-पास के देहातों में इसकी प्रतिक्रिया

होना स्वाभाविक है। देहात मुस्लिमबहुल हैं। इनमें हिन्दुओ की अपेक्षा सिख अधिक हैं। परिणामस्वरूप उपन्यास के दूसरे खण्ड मे सिख और मुसलमान ही आये हैं।

'ढोक इलाहीबख्श' एक ऐसा ही छोटा सा देहात है। हरनाम सिंह और बन्तो नामक वृद्ध सिख दम्पत्ति यहाँ एक छोटा सा होटल लगाकर अपनी उपजीविका चला रहे हैं। शहर मे जिस दिन सुअर वाली घटना घटी है, उसके दूसरे ही दिन के दोपहर से कथा आगे बढती है। केवल परिवेश बदल जाता है। हरनाम सिंह और बन्तो से इसी देहात के करीमखान ने कहा है कि वे तुरन्त इस गांव को छोड कर चले जाएँ, वरन् बलवाई उनकी हत्या कर देंगे। करीमखान यह नही चाहता कि ये दोनो नाहक मारे जाएँ। इसीलिए वह उन्हें आगाह कर रहा है। "बन्तो और हरनाम सिंह अपने तीन कपडो मे और थोडी बहुत पूंजी और बन्दूक सँभाले दुकान को ताला लगाकर बाहर निकल आए। घर के बाहर कदम रखते ही सारा प्रदेश पराया हो गया।"[1] उनके निकलने के थोडी ही देर बाद बलवाई वहाँ आए और उन्होंने उनकी होटल लूट ली। रात भर ये दोनो चलते रहे, अपनी जान बचाने के लिए। सबेरे वे ढोक मुरीदपुर पहुँच गए। यहाँ पर भी यही स्थिति है—मुस्लिम बहुसंख्यक देहात। फिर भी मजबूरी से वे एक का दरवाजा खटखटाते हैं और उन्हे वहाँ एक मुस्लिम स्त्री अपने यहाँ आसरा देती है, जबकि वह यह जानती है कि उसके बेटे और पति को यह बिल्कुल पसन्द नही आएगा। क्योंकि वे दोनो बलवाई बनकर गाँव के गाँव लूट रहे हैं और काफिरो को सरे आम हत्या कर रहे हैं। परन्तु यह मुस्लिम स्त्री इन दोनो बूढे बुढियो की मजबूरी देखकर उन्हें शरण दे देती है। इसी कारण हरनाम सिंह कहता है कि, "सलामत रहे करीमखान उसने हमारी जान बचा दी। और सलामत रहो तुम बहन, जिसने आसरा दिया है।"[2] मौत के कगार पर खडे इन दोनो को इस स्त्री ने सहारा दिया है। यह स्त्री मानो साक्षात् स्नेह और मानवीयता की मूर्ति है। इन दोनो को घर के ऊपरी हिस्से मे छिपाया गया। थोडी ही देर बाद उस स्त्री का पति एहसानअली और बेटा रमजान वहाँ आ गए। और यह बात भी खुल गयी कि घर मे काफिरो को छिपाकर रखा गया है। रमजान आग बबूला हो गया। उन दोनो को खत्म करने की उसकी इच्छा है। परन्तु जब वह मारने जाता है तब, "काफिरो को मारना और बात है, अपने घर के अन्दर के जान-पहचान के पनाहगजीन को मारना दूसरी बात। उसका खून करना पहाड की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल मे एक पतली-सी लकीर कही पर अभी भी खिची थी जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।"[3] यही वह पतली-सी लकीर है जिस कारण रमजान उनकी हत्या न कर सका और यही वह पतली लकीर है जिस कारण उन दोनो को वहाँ दिनभर आसरा मिला। रात के समय रमजान की माँ राजो उन्हें गाँव के आखिरी

छोर पर छोड़ने आयी । वह कहती है, "मैं नहीं जानती मैं तुम्हारी जान बचा रही हूँ या तुम्हें मौत के मुँह में झोंक रही हूँ ।"[११] अपने पुत्र इकबाल सिंह और बेटी जसबीर की याद हरनाम को बहुत सता रही है । ये दोनों पास के देहातों में ही रहते थे । लेखक अब हमें इकबाल और जसबीर की ओर ले जाता है ।

अपने बाप की इकबाल सिंह अपनी जान बचाते हुए भाग रहा था । परन्तु रास्ते में ही बलवाईयों ने उसे देख लिया । और वे पत्थर लेकर उसका पीछा करने लगे । बड़ा ही क्रूर और करुण दृश्य है यह ! अकेला इकबाल सिंह और १०-१२ मुसलमान । क्या करेगा वह ? आखिर उसको पकड़ा गया और इस शर्त पर उसकी जान बख्श दी गई कि वह इस्लाम कबूल करेगा और कलमा पढ़ेगा । मौत और जिन्दगी में से किसी एक को चुनना था । धर्म परिवर्तन से ही जिन्दगी सम्भव थी । इकबाल सिंह सिवा हाँ के और कुछ नहीं कह सका । उसके हाँ कहने से माहौल बदल गया । उसके खून के प्यासे उसके गले मिलने लगे ।" इकबाल सिंह को यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी माहौल बदल जायगा कि उसके खून के प्यासे लोग उसे छाती से लगाने लगेंगे ।[१४] दिन ढलते ढलते इकबालसिंह से वह शेख इकबाल अहमद हो गया । उसकी सुन्नत भी हुई । "शाम ढलते ढलते इकबालसिंह के शरीर पर की सब अलामतें दूर कर दी गई थी और मुसलमानों की सभी अलामतें उतर आई थीं । पुरानी अलामतें हटाकर नई अलामतें लाने में देर थी कि इनसान बदल गया था, काफिर नहीं था, मुसलमान था ।"[१६]

हरनामसिंह की बेटी जसबीर इस समय सैयदपुर के गुरुद्वारे में सुरक्षित है । इस गाँव में सिखों की संख्या अधिक है । परन्तु यहाँ बाहर से बलवाई बहुत बड़ी संख्या में आ रहे हैं । इस कारण गाँव के सभी सिखों ने गुरुद्वारे में शरण ली है और वहाँ से युद्ध की तैयारियाँ की जाने लगी है । "गुरुद्वारा खचाखच भरा था और संगत मस्ती में झूम रही थी । "संगत में सबके हाथ जुड़े हुए, आँखें बन्द और सिर वजद में हिलते हुए । यह कुर्बानी की आवाज शताब्दियों के फासले लाँघकर फिर से गूँज रही थी । तीन सौ साल पहले भी ऐसा ही गीत दुश्मन से लोहा लेने के पहले गाया जाता था । आत्म-बलिदान की भावना से ओत-प्रोत वे सब कुछ भूले हुए थे ।"[१७] रिटायर जत्थेदार किसनसिंह बन्दूक सँभाले खड़े हैं । हरिसिंह, निहालसिंह, विशनसिंह आदि सभी तैयारी में हैं । नफरत की इस आग ने गाँव की एकता को खत्म कर दिया है ।' गुरुद्वारे में एक बूढ़ा प्रवचन कर रहा है कि "आज फिर खालसा पंथ को गुरु के सिंहों के खून की जरूरत है । हमारे इम्तहान का वक्त आ गया है, हमारी आजमाइश का वक्त आ गया है । महाराज का इस वक्त एक ही हुक्म है—कुरबानी ! कुरबानी ! कुरबानी ! राज करेगा खालसा, बाकी रहे न कोय ।"[१८] इस प्रकार के आवाहनों से वहाँ का वातावरण तप्त हो रहा था ।

इनमे से कोई यह सोच नही पा रहा था कि युद्ध का निर्णय कितना बेवकूफी से भरा हुआ है। इससे दोनो पक्षो की जबरदस्त हानि होने वाली है। और जब वे सभी ओर से घिरे हुए हैं तब तो युद्ध ठान लेना कोई अच्छी रणनीति भी नही है। शस्त्र के बजाए बुद्धि से काम लेना जरूरी था। परन्तु यह समझाए कौन ? फिर भी कम्युनिस्ट सोहन सिह बीच मे ही उठकर इस बात को स्पष्ट करना चाहता है कि, 'हम लोगो को मुसलमानो के खिलाफ भडकाया जा रहा है। और मुसलमानो को हमारे खिलाफ। हम झूठी अफवाहे सुनकर एक दूसरे के खिलाफ तैश मे आ रहे हैं। हमे अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिए कि गाँव के मुसलमानो के साथ मेल-जोल बनाए रखें और हत्तलकसा कोशिश करें कि गाँव मे कोई फिसाद न हो।'"[५१] परन्तु उसके इन विचारो को सुनकर उसे गद्दार कह कर चुप कर दिया जाता है। मीरदाद, हरबससिंह और सोहनसिंह कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता हैं। ये अपने तरीके से इन वारदातो को रोकने की कोशिश करते हैं। परन्तु इनकी कोई नही सुन रहा है। साँझ होते-होते गुरुद्वारे मे खामोशी बढती गई। लगा कि आज रात निश्चित हमला होने वाला है। सिहो की स्त्रियाँ गुरुद्वारे के दूसरे हिस्से मे बैठी थी। और उसी समय यह खबर आ गई कि 'तुर्क आ गए।" ढोल बजने लगे। "अल्ला हो अकबर" और "जो बोले सो निहाल सत् सिरी अकाल" के नारे लगने लगे। "तुर्कों के जेहन मे भी यही था कि वे अपने पुराने दुश्मन सिखो पर हमला बोल रहे हैं और सिखो के जेहन मे भी वे दो सौ साल पहले के तुर्क थे जिनके साथ खालसा लोहा लिया करता था। यह लडाई ऐतिहासिक लडाइयो की श्रृंखला मे एक कडी थी। लडने वाले के पाँव बीसवी सदी मे थे, सिर मध्ययुग मे।'"[५१] घमासान युद्ध हुआ। दो दिन और दो रात तक चलता रहा। अमन के लिए प्रयत्नशील सोहनसिह मारा गया। अडतालीस घण्टो के युद्ध के बाद दोनो पक्ष समझौते की बात करने लगे। सभी सिखो को नदी पार सुरक्षित पहुँचाने के लिए तुर्क दो लाख माँग रहे थे। दो लाख की यह राशि तुरन्त इकट्ठी हो सकती थी। परन्तु ऐसे समय भी सौदेबाजी। आखिर एक लाख पर सौदा तय करने के लिए ग्रथीजी को भेजा गया। और उसी समय 'अल्लाहो अकबर' के नारे गुजने लगे। अर्थात् दुश्मनो को कुमक मिल गई। स्पष्ट है अब समझौता नही होगा। ढोल पीटते और आगे बढते जा रहे थे। तलवारें हवा मे उठी। स्त्रियाँ आत्म-बलिदान के लिए तैयार हुयी। गाँव के सिखो के मकानो मे आग लगाई गई। स्त्रियो का झुण्ड पक्के कुएँ की ओर बढता जा रहा था।" सबसे पहले जसबीर कौर (हरनामसिंह और बन्तो की बेटी) कुएँ मे कूद गई। और देखते-देखते गाँव के दसियो औरतें अपने बच्चो को लेकर कुएँ मे कूद गई।'"[५१] रात के किसी पहर लूट-पाट बन्द हो गई थी। सुबह होने पर आग की लपटें मन्द पड गई थी। छोटे छोटे घर जलकर राख हो गये थे। कुएँ मे लाशें

फूलने लगी थी। गलियाँ सुनसान पड़ी थी। लाशें बिखरी हुई थी। एक खूबसूरत गाँव में बेहद खामोशी थी। युद्ध निर्णायक नहीं हुआ था। गुरुद्वारे में युद्ध-परिषद की बैठक चल रही थी। और सहसा वायुमंडल में एक अजीब-सा शब्द सुनाई देने लगा : गहरा, धीमा, थरथराता-सा शब्द। सभी ठिठक गये। मोटे कसाई का बेटा भी ठिठक गया जो गुरुद्वारे को आग लगाने जा रहा था।"[१] धीरे-धीरे सभी हाथ थम गये अब और कुछ नहीं होगा, अंग्रेज तक फिसाद की खबर पहुँच गई है, अब कोई आग नहीं लगायेगा, बन्दूक नहीं चलायेगा।"[१]

११७ गाँव और एक शहर की बरबादी के बाद अंग्रेजों के हवाई जहाज आकाश में मंडरा रहे हैं। पाँच दिन तक अंग्रेज खामोश रहा। क्या वह जान-बूझकर इन्हें आपस में लड़ा रहा था? जिस दिन मरा हुआ सुअर मस्जिद की सीढ़ियों पर डाला गया था और वातावरण में तनाव बढ़ रहा था उसी दिन कांग्रेसी बख्शीजी ने डिप्टी कमिश्नर साहब से कहा था कि "इस वक्त हालत नाजुक है। अगर मारकाट शुरू हो गई तो उसे सँभालना कठिन होगा। अगर एक हवाई-जहाज ही शहर के ऊपर उड़ा दिया जाये तो लोगों को कान हो जाएँगे कि सरकार खबरदार है। फिसाद को रोकने के लिए इतना भी काफी होगा।"[१] अगर उसी समय यह सुझाव मान लिया जाता तो? खैर पाँच दिन के बाद जब दोनों ओर के लोग थक गये थे तब हवाई-जहाज उड़ा और फिसाद रोकने का श्रेय अंग्रेजों को मिला। इन तीन-चार दिनों में नफरत की जो आग सब के दिलों में घर कर गई है वह कब निकलने वाली है? हवाई-जहाज के कारण, "कस्बे का माहौल बदल चुका था। लोग बाहर आने लगे थे, लड़ाई बन्द हो गई, लाशें ठिकाने लगीं · दोनों सम्प्रदायों के लोग अपने-अपने धर्म-स्थान को धो-धोकर साफ कर रहे थे।"[१]

इधर शहर का भी माहौल बदल गया है; जहाँ से नफरत की आग फैली थी। फिसादों के चौथे दिन डिप्टी कमिश्नर साहब ने कर्फ्यू लगा दिया था। (हालांकि पहले ही दिन कर्फ्यू लगवाने का आग्रह किया गया था।) इन चार-पाँच दिनों में हजारों लोग बेघरबार हुये थे। उनके लिये रिफ्यूजी कैम्प लग रहे थे। डिप्टी कमिश्नर साहब की फिर तारीफ शुरू हुई थी। वे लगातार आज्ञायें दे रहे थे। रिफ्यूजी-कैम्प के सम्बन्ध में, कुएँ के लाशों को निकालने के सम्बन्ध में। और कम्युनिस्ट देवदत्त अभी भी अमन के लिए प्रयत्नशील था। लीजा रिचर्ड की इस व्यवस्था से अस्वस्थ है। उसे यह बात समझ में नहीं आ रही है कि रिचर्ड इस फिसाद को पहले क्यों नहीं रोक सका? जान-बूझकर वह तटस्थ क्यों रहा? तीन दिन पहले अगर वह थोड़ी-सी सुरक्षा की व्यवस्था करता तो हजारों लोग बेघरबार न होते, गाँव न जलते, शहर की मण्डी में आग न लगती। रिचर्ड के अनुसार 'सिविल सर्विस' में तटस्थ बनना पड़ता है। हम यदि हर घटना के प्रति भावुक होने लगे तो

प्रशासन एक दिन भी नहीं चलेगा।"[१८] रिफ्यूजी कैम्प बन गये है। रिलिफ-कमेटी बन गई है। नुकसान के आँकडे इकट्ठे किए जा रहे हैं। अनेक सिख और हिन्दू आँकडा बाबू के इर्द गिर्द बैठे हैं। कोई अपनी लडकी ढूंढना चाह रहा है, कोई लडका, कोई अपने मकान की कीमत लिखवा रहा है, कोई कुछ! देवदत्त इस बात की फिक्र मे अधिक है कि "गरीब कितने मरे और खाते-पीते कितने मरे।"[१९] *कॉग्रेसियो का विश्वास अहिंसा पर से उठ गया है।* एक पडित और उनकी पत्नी अपनी जवान और खूबसूरत लडकी को अब स्वीकार करना नही चाहते क्योकि "अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, बुरी वस्त तो उसके मुंह मे उन्होंने पहले ही डाल दी होगी।" इनकी बेटी प्रकाशो अब अल्लाहरखा के घर पर रखैल के रूप मे है। माँ बाप अब उसे स्वीकार को करने तैयार नही है। असहाय्यता, सनातनी वृत्ति, कट्टरता, क्रूरता, जीवन प्रियता, सपत्ति-मोह आदि की विभिन्न मानवी प्रवृत्तियो के दर्शन यहाँ होते है।

अमन कमेटी बनने वाली है। मालदार हिन्दू, सिख और मुसलमान एक दूसर से बडे प्यार से मिल रहे हैं। उनके इस मेल-मिलाप को देखकर दो चपरासी आपस मे यह कह रहे हैं कि *"हम जाहिल लोग लडते हैं, समझदार खानदानी लोग* नही लडते। यहाँ सभी आये हैं हिन्दू भी, सिख भी, मुसलमान भी, मगर कैसे प्यार-मुहब्बत से बातें कर रहे हैं।"[२०] परन्तु क्या यह सही है? परदे के पीछे क्या यही पढे लिखे और खानदानी लोग नही हैं जो आम-आदमी को लडा रहे हैं? हिन्दू, सिख और मुसलमानो मे से कितने प्रतिनिधि लिये जाए इस पर वाद-विवाद हो रहा है। इतना सब कुछ हो जाने के बाद भी कुर्सी के प्रति मोह कम नही है। अकेला देवदत्त अन्त तक समझौते की कोशिश कर रहा है। अमन कमेटी जब सारे शहर मे *घुमने वाली है। 'हिन्दू मुस्लिम एक हो" के नारे लगाने वाली है। आश्चर्य* इस बात का है कि अमन कमेटी की बस मे सबसे आगे बैठा हुआ और एकता का नारा जोर-जोर से लगाने वाला मुराद अली था—वही मुराद अली जिसने नत्थू चमार से सुअर मरवाकर मस्जिद की सीढियो पर फिकवा दिया था। केवल उसी घटना के के कारण चार दिन तक यह फिसाद हुआ।

( १ )

विवेचना—हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच अलगाव की भूमि पहले ही तैयार हो चुकी थी। मुस्लिम लीग, हिन्दू-महासभा तथा आर्य समाज इस अलगाव को बढ़ा रहे थे। इस अलगाव के कारण ही ये दोनो समुदाय एक-दूसरे से दूर जा रहे थे। केवल दूर ही नही, इनके भीतर एक दूसरे के प्रति नफरत भी फैलायी जा रही थी। मुस्लिम लीग ने यह काम सर्वाधिक किया। नफरत की यह आग फैलने से जिस प्रकार की प्रतिक्रिया हुई और दोनो ओर के लोगो को कैसी तकलीफ हुई—

इसका जीवन्त चित्रण इस उपन्यास में किया गया है। विभाजन-पूर्व की यह कथा है। १४ जून १९४७ को विभाजन को मान्यता मिली। इसके पूर्व ही पाकिस्तान की निर्माण की बात की जा रही थी। परन्तु पाकिस्तान बनेगा—ऐसा विश्वास दोनों वर्गों में से किसी को नहीं था। इसलिए इस उपन्यास का सम्बन्ध विभाजन की समस्या से नहीं है। विभाजन-पूर्व साम्प्रदायिक समस्या से इसका सम्बन्ध है। हिन्दू और मुसलमानों में आन्तरिक एकता स्थापित करने के लिए कई शक्तियाँ पिछले कई वर्षों से प्रतिबद्ध हैं। ठीक इसी प्रकार इनमें अलगाव बढ़ाने वाली शक्तियाँ भी हैं। इस दूसरी शक्ति के उभरने से हिंसा किस प्रकार से उभरती है तथा किस-प्रकार मानवीय मूल्यों की होली होती है—इसे यह कथावस्तु स्पष्ट करती है। इस प्रकार इसकी कथावस्तु इस देश के एक नाजुक परन्तु उतने ही महत्त्वपूर्ण मसले को लेकर चलती है। इस मसले को यथातथ्य रूप में यहाँ प्रस्तुत किया गया है। सामान्य आदमी इस नफरत की आग में किस प्रकार झुलसता गया इसका सहज चित्रण इसमें हुआ है।

( २ )

इसके पहले खंड का सम्बन्ध नागरी जीवन से है। इस खंड में "नगर जीवन में साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना कैसे उभरी, अंग्रेजी नौकरशाही ने वैमनस्य की आग को कैसे भड़का दिया, परिणामतः हिन्दू और मुसलमानों के संगठन कैसे बनते गये और एक-दूसरे के गली-मुहल्लों में जाना कैसे खतरनाक हो गया—इत्यादि बातों का वर्णन किया गया है।"[1] पहला प्रकरण तेरह प्रकरणों में विभाजित है। ( पृष्ठ १ से १७६ ) इसमें प्रातः चार बजे से दूसरे दिन दोपहर तक का अर्थात् ३०-३५ घण्टों का मात्र चित्रण किया गया है। मुराद अली नामक मुसलमान धोखे से नत्थू चमार से सुअर मरवा लेता है और उसे किसी ईसाई व्यक्ति के सहारे मस्जिद की सीढ़ियों पर फेंक देता है। मस्जिद की सीढ़ियों पर सुअर दिखलाई देने के पहले यह नगर रोज की तरह की जिन्दगी जी रहा था। परन्तु जैसे ही सुअर की लाश दिखलाई देती है, वैसे ही पूरे नगर का संगीत रुक-सा जाता है। इस प्रकार प्रथम खंड में घटना एक ही है—सुअर की लाश का मस्जिद की सीढ़ियों पर पा जाना। इस घटना की विभिन्न प्रतिक्रियाओं को प्रथम खंड में रखा गया है। ताज्जुब की बात यह है कि इस घटन के मूल में कोई जाना नहीं चाहते। न हिन्दू न मुसलमान न अंग्रेज। इस घटना के कारण सब एक-दूसरे को सन्देह की नजर से देखने लगते हैं और खुद को असुरक्षित अनुभव करते हैं। ऐसा लगता है कि मानो बहुत पहले से ही सबके भीतर शंका, भय और असुरक्षितता की भावना थी। इस घटना ने उसे अभिव्यक्ति मात्र दी। लीगियों ने इस घटना का तुरन्त फायदा उठाना शुरू कर दिया है। प्रतिक्रियास्वरूप ही आर्य-समाजी, सिख और सनातनी हिन्दू एकत्र हो रहे हैं। उनके इस संगठन से खतरे और

बढ रहे हैं। अंग्रेज कमिश्नर इस घटना की कोई जाँच नही करवा रहा है मानो वह चाहता था कि ऐसा कुछ हो। इन ३०-३५ घण्टो मे पूरी मडी जल चुकी है। और लाखो का नुकसान हुआ है। दो हिन्दू मारे गये हैं। खोमचेवाला इत्रफरोश (मुसलमान) का खून कर दिया गया है। इन घटनाओ से अंग्रेजो की नीति स्पष्ट होती है। अलावा इनके मुस्लिम लीग, आर्य समाज, कम्युनिस्ट, काँग्रेसी तथा आम आदमियो की मनोवृत्ति तथा नीतियों का पर्दाफाश हुआ है। तथाकथित बुद्धिवादी और पढे-लिखे लोग साम्प्रदायिक तनाव बढाने मे कितने प्रयत्नशील होते हैं यह भी स्पष्ट किया गया है। तो दूसरी ओर इस तनाव भरे वातावरण मे भी एकता और भाई चारे का नाता दृढ करने वाली शक्तियाँ भी हैं। शाहनवाज, जरनैल और देवदत्त इसी शक्ति के प्रतीक हैं। यह दुर्भाग्य है कि एका बढाने वाली शक्तियाँ धीरे-धीरे कमजोर पडने लगी। यहाँ तक कि जरनैल का खून कर दिया गया।

( ३ )

राजनीतिक एव सामाजिक विचारो के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली भावनात्मक स्थितियों तक ही लेखक ने अपने परिदृश्य को सीमित रखा है। राजनीतिक घटनाओ, दाँवपेंचो और बौद्धिक उहापोह से लेखक ने अपने को पूर्णत बचाया है"—डॉ० बाँदिवडेकर जी का यह मत पूर्णत स्वीकार किया जा सकता है। लेखकीय प्रतिमा की मर्यादा के रूप मे नहीं अपितु शक्ति के रूप मे। इसी कारण तो यह उपन्यास अधिक जीवन्त, सच्चा और यथार्थ लगता है। कथावस्तु इसी कारण सरल और सपाट है। समाज के विभिन्न स्तरो पर जीने वाले लोगो की प्रतिक्रियाओ को लेकर लेखक चला है। वह राजनीतिक घटनाओ की विवेचना नही करता। आम आदमी घटनाओ की गहराई मे उतरना नही चाहता। उन घटनाओ की बौद्धिक उहापोह की अपेक्षा वह तुरन्त अपनी प्रतिक्रियाओ को व्यक्त करते चलता है। इसी आम आदमी की अधिकता के कारण उपन्यास मे बौद्धिक उहापोह नही है।

( ४ )

१९४७ के अप्रैल माह के दूसरे अथवा तीसरे सप्ताह की यह कहानी है। पजाब के सभी जिलो और देहातो मे इस समय भय और आशका व्याप्त थी। अधिकतर लोगो को ऐसा सन्देह था कि कुछ अप्रत्याशित होने वाला है। परन्तु क्या होने वाला इसकी स्पष्ट कल्पना किसी को नही थी। सैकडों वर्षों से वे इस भूमि पर रह रहे थे। उनके कई वशजो की कहानियाँ इसी भूमि से जुडी हुई थी। ६ मार्च १९४७ को काँग्रेस कार्यकारिणी ने पजाब विभाजन का प्रस्ताव पारित किया। पजाब के अलग-अलग जिलो और देहातो मे रहने वाले हिन्दू अथवा मुसलमान यह समझ नही पा रहे थे कि उनकी जमीन किधर जायेगी। पाकिस्तान के बहाने लीग मे इकट्ठे चद आवारा लोग हिन्दुओ और सिखो को परेशान कर रहे थे। मुअर वाली घटना

से इन गुण्डो को यह अवसर मिल गया। इस प्रदेश मे जीने वाले लोगो की अप्रैल माह की मानसिकता को पकडने का प्रयत्न भीष्म सहानी ने इस उपन्यास मे किया है।

( ५ )

इसकी कथावस्तु समस्यामूलक है। "दो सम्प्रदायो के बीच के तनाव" की समस्या को यहाँ लिया गया है। इस समस्या को लेखक नये ढग से देख रहा है। धर्म, राजनीति और सम्प्रदाय से एकदम अलग हटकर शुद्ध मानवीय धरातल से। देवदत्त के प्रति लेखक के अनावश्यक मोह से यह भी स्पष्ट है कि वे अपनी तटस्थता को पूर्णत निभा नही सके हैं। कम्युनिस्ट पार्टी और उसके कार्यकर्ताओ के प्रति लेखक पूर्णत तटस्थ नही रह सका है। कम्युनिस्ट पार्टी का रोल अगर सचमुच इस प्रकार का रहा होगा तो फिर कोई आरोप नही। परन्तु यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि कम्युनिस्ट पार्टी विभाजन के विरोध मे नही थी।

साम्प्रदायिक समस्याओ पर हिन्दी मे अनेक उपन्यास लिखे गये हैं। परन्तु तमस इन सब मे विशिष्ट है। क्योकि इसमे समस्या को आम आदमी की दृष्टि से देखा गया है। कोशिश ऐसी की गई है कि "मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल मे इन्सानियत की वही कोई एक पतली-सी लकीर है अथवा वह भी लुप्त हो गई है।" कमलेश्वर ने अपने उपन्यास मे इसी की तलाश की है। भीष्म साहनी भी इस समस्या के मूल मे जाकर यही खोज कर रहे हैं कि ऐसे तनाव एव नफरत के वातावरण मे सब वहशी हो चुके थे अथवा कही कोई करुणा और मानवीयता की रेखा थी। शाहनवाज, राजो, जरनैल, वख्शी आदि मे उन्हे यह रेखा दिखलाई देती है।

( ६ )

उपन्यास के दूसरे खण्ड का सम्बन्ध देहाती इलाको से है। ढोक इलाही बख्श, खानपुर, मीरपुर, ढोक-मुरीदपुर, मीरदाद, सैयदपुर, नूरपुर आदि देहातो का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष उल्लेख हुआ है। पहले खड के पात्र नागरी जीवन से सम्बन्धित पढे-लिखे एव कुछ सीमा तक बुद्धिजीवी हैं तो दूसरे खड के पात्र केवल देहाती। शहर की घटनाओ की प्रतिक्रियायें देहातों मे हो रही हैं। और काफी क्रूरता के साथ हो रही हैं। यहाँ सिख और मुसलमान दो ही जमात के लोग हैं। दूसरे खड की शुरुवात ढोक इलाही बख्श के हरनाम सिंह और बन्तो से हो जाती है। प्रकरण चौदह और सोलह मे इन दोनो की असहाय्यता का तथा सत्रह मे इनके बेटे इकबाल सिंह के क्रूर धर्म-परिवर्तन का बडा ही करुण और भयावह चित्रण किया गया है। प्रकरण पन्द्रह और अठारह मे सैयदपुर के गुरुद्वारे का तथा मुस्लिम-सिख के सघर्ष और युद्ध का चित्रण है। इस प्रकार इन पाँच प्रकरणो मे देहाती जीवन का अत्यन्त

तटस्थ, सपाट और करुण चित्रण मिलता है। यहाँ जबरदस्ती और क्रूरता के साथ धर्म-परिवर्तन करने वाले हलवाई भी हैं और जान बचाने वाले मानवीय पात्र भी।

यह दूसरा खड पहले खड मे एकदम अलग और टूटा हुआ-सा लगता है। पहले खंड मे व्याप्त भय, सशय, करुणा और प्यार यहाँ भी व्याप्त है। दोनो खडो मे चित्रित जीवन का सम्बन्ध एक विशिष्ट वातावरण से है। नागरी और देहाती जीवन के चित्रण के बहाने जीवन की समग्रता को पकडने का प्रयत्न साहनी कर रहे हैं। आम आदमी की प्रतिक्रियाओ को इस दूसरे खड मे अधिक अभिव्यक्ति मिली है। इस प्रकार ये दोनो खड एक दूसरे के पूरक है।

( ७ )

उन्नीस, बीस और इक्कीसवें प्रकरण मे लेखक ने दोनो खडो की की कथा को जोडने का प्रयत्न किया है। पहले खड मे चित्रित डिप्टी कमिश्नर के कार्यालय से उन्नीसवें प्रकरण की शुरुवात हो जाती है। इस सारे हादसे को रोकने की कोशिश अग्रेज कमिश्नर कर रहे हैं। रिफ्यूजी कैम्प खोले गये हैं। रिलीफ कमेटी के बाबू लोग नुकसान से आँकडे इकट्ठे कर रहे हैं। दूसरे खड के पात्र यहाँ अपनी तकलीफो के साथ इकट्ठे हुए हैं। इक्कीसवें प्रकरण मे फिर अमीर और बुद्धिजीवी लोगो की चालबाजियो का चित्रण हुआ है। इस प्रकार अन्तिम तीन प्रकरणो के कारण कथावस्तु फिर जुड जाती है।

सुअर की लाश दिखलाई देना कथावस्तु का आरम्भ है। इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप कथावस्तु का विकास होता है। आगजनी, खून आदि विकास मे ही लिये जा सकते हैं। फिर कथा रुक-सी जाती है। फिर दूसरा खड—यहाँ भी कथावस्तु का आरम्भ है, विकास है। उन्नीस, बीस और इक्कीसवें प्रकरण मे दोनो कथावस्तुएँ एक दूसरे-से मिलकर समाप्ति की ओर बढ़ते हैं। स्पष्ट है कि यहाँ दो स्वतन्त्र कथावस्तुएँ हैं। वास्तव मे परम्पराबद्ध समीक्षा के चौखट मे बिठलाकर समीक्षा करना कठिन ही है। क्योकि कथावस्तु का सम्बन्ध किसी व्यक्ति अथवा परिवार से नही एक सम्पूर्ण प्रदेश और विशिष्ट राजनीतिक घटनाओ से है। इन घटनाओ की प्रतिक्रियाएँ एक शहर और कुछ देहातो पर किस प्रकार हुई—यही लेखक बतलाना चाहता है।

( ८ )

इसकी कथावस्तु अत्यन्त यथार्थ है। अप्रैल १९४७ से सितम्बर १९४७ तक पंजाब और बगाल मे इससे भी अधिक भयावह एव क्रूर घटनायें हुई हैं। एक सरकारी रपट के अनुसार इन छ महीनो मे छः लाख व्यक्तियो के खून हुए और चौदह लाख से भी अधिक लोगो को अपने प्रदेश से हटकर दूसरे प्रदेशो मे शरण लेना

पड़ा । औरतो के शरीर के साथ जो क्रूर खेल खेले गये उसे मनुष्य जाति के इतिहास मे दूसरी मिसाल नही है । उलटे कहना होगा कि साहनी इस प्रकार के चित्रण मे अत्यधिक सयमी हैं । आगजनी, खून, धर्म-परिवर्तन के जो चित्र यहाँ आये हैं वे अत्यधिक यथार्थ और मार्मिक हैं । यथार्थ पर की उनकी पकड मे कही पर भी ढील नही है । उलटे, आलोचको का यह आरोप है कि इस उपन्यास मे कल्पना की कमी है । "प्रसगो को उभारने मे कल्पना का जो स्पर्श स्थान स्थान पर अपेक्षित होता है, उससे भीष्म सहानी का व्यक्तित्व वचित है । परिणामत यथातथ्यता बेहद आती है ।"[११] वास्तव मे यथार्थ की यह अधिकता साहनी की कमजोरी नही, शक्ति है । वे इस यथार्थ को कलात्मक स्तर पर ले जाने मे सफल रहे हैं । इसी कलात्मकता के कारण ही यह उपन्यास नीरस नही लगता ।

[ ९ ]

विभाजन के पूर्व तथा विभाजन के बाद पजाब और बगाल मे जो कुछ घटित हुआ उस पर अनेक उपन्यास लिखे गये हैं । मनुष्य की क्रूरता, उसकी पशुवत् प्रवृत्ति तथा उसकी मानवीयता के जो दर्शन इस समय हुए हैं—उन्हे शब्दबद्ध करना वास्तव मे किसी भी कलाकार के लिए चुनौती ही है । हमारे यहाँ विभाजन की इस घटना को लेखको ने मुख्यत तीन दृष्टिकोणो से देखा है । (अ) एक राजनीतिक समस्या के रूप मे :—इस प्रकार के लेखको ने इस समस्या के लिए जिम्मेदार राजनीतिक व्यक्तियो अथवा तत्कालीन परिस्थितियो का ही चित्रण अधिक किया है । उदा. गुरुदत्त । (आ) इस घटना को सस्ते और रोमाटिक ढग पर प्रस्तुत करने वाले लेखक । (इ) तटस्थ और मानवीय दृष्टिकोणो से इस समस्या को देखने वाले लेखक । साहनी तीसरे प्रकार के लेखक हैं । आम आदमी की दृष्टि से इस समस्या को देखा गया है । इसी कारण यहाँ पात्रो की विविधता है । कुल २८४ पृष्ठो के उपन्यास मे सत्तर से भी अधिक पात्र हैं । बौद्धिक ऊहापोह के चक्कर मे न पडते हुए सामान्य मनुष्य की प्रतिक्रियाओ को रेखाकित करने का प्रयत्न यहाँ हुआ है । ऐसा करते समय प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजो की तोड फोड नीति का, बुद्धिजीवियो की अलगाव की नीति का, आर्य-समाजी एव मुस्लिम लीगियों की कट्टरता तथा धार्मिक श्रद्धाओ के आधार पर सामान्य आदमी को गुमराह करने की वृत्ति का भण्डाफोड किया गया है । ऐसा करते समय कम्युनिस्ट पार्टी एव उसके कार्यकर्त्ताओ को लेखक की अधिक सहानुभूति मिल गई है । अर्थात् यह उनके लेखकीय व्यक्तित्व की सीमा है ।

[ १० ]

इसकी कथावस्तु की कुछ सीमायें डा० वान्दिवडेकर जी ने स्पष्ट की हैं । उनके अनुसार (१) कथावस्तु मे बौद्धिकता को तिलाजलि दी गई है जिससे उपन्यास

उच्चस्तर पर पहुँच नही सका है। (२) नत्थू चमार और उसकी पत्नी के मधुर-प्रेम सम्बन्ध अपने आप मे उत्तेजक होने पर भी उपन्यास के मूल स्वर से असम्बद्ध लगते हैं। (३) प्रकाशो और रक्खा का प्रेम प्रसग गलत स्थान पर रखा गया है जो उपन्यास के स्वर को विकृत कर देता है। (४) प्रसगो को उभारने मे कल्पना के स्पर्श की अपेक्षा थी, उसका यहाँ अभाव है। (५) उपन्यास मे गति बहुत ही धीमी और सपाटता अधिक है। (६) ऐसे प्रसगो को, जिनका विस्तार में चित्रमय रूप अपेक्षित नही होता, बल्कि संक्षिप्त वर्णन ही पर्याप्त होता है, परिश्रमपूर्वक उपस्थित करना अपव्यय लगता है और यह अपव्यय तमस में खूब हुआ है।"

इनमें से कुछ आरोपो की चर्चा अब तक के विवेचन मे की गई है और उसका यथास्थान समाधान भी किया गया है। नत्थू चमार और उसकी पत्नी का प्रेम सम्बन्ध उत्तेजक नहीं लगता क्योकि एक तो यह पति पत्नी का प्रेम है और दूसरी बात यह है कि नत्थू जिस मानसिकता से गुजर रहा था यह प्रसग उसके द्योतक हैं। (विस्तार के लिए देखें नत्थू का चरित्र चित्रण) प्रकाशो और रक्खा का प्रेम निश्चित रूप से गलत स्थान पर रखा गया है। अन्य दोनो आरोपो में कुछ सीमा तक तथ्य है।

इस प्रकार कुल मिलाकर हम कह सकते है कि तमस की कथावस्तु यथार्थ और जीवन्त है। तमस का अर्थ है अन्धकार' अन्धकार भरे इतिहास के पृष्ठो को एक लेखक की दृष्टि स देखने का प्रयत्न यहाँ हुआ है और आश्चर्य इस बात का है कि इस घुप्प अंधेरे मे भी जरनैल, देवदत्त और राजो रूपी प्रकाश रेखाएँ दिख रही हैं। यह प्रकाश रेखाएँ ही तमस को खत्म करने वाली हैं। इन छिटपुट प्रकाश के टुकडो के कारण ही यह उपन्यास अधिक गहरे मे स्पर्श करके चला जाता है। यही इसकी कथावस्तु की शक्ति है।

**चरित्र-चित्रण**—कथावस्तु के विवेचन मे एक स्थान पर यह कहा गया है कि इसमे पात्रो की खूब भरमार है। किसी विशिष्ट पात्र का विस्तार से चित्रण करने के बजाए लेखक ने आम आदमियो की प्रतिक्रियाओ को ही अधिक महत्त्व दिया है। परिणामत यहाँ प्रातिनिधिक पात्र ही अधिक हैं।

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन पात्रों का वर्गीकरण विभिन्न पद्धतियो से किया जा सकता है—(१) क्षेत्रीय आधार पर नागरी 'अनागरी। (२) धर्म के आधार पर हिन्दू, मुस्लिम, सिख एव ईसाई। (३) विचारधारा के आधार पर कांग्रेसी, कम्युनिस्ट, मुस्लिम लीग, आर्य-समाज, साम्राज्यवादी इत्यादि। इनमे से किसी भी एक पद्धति को स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ विचारधारा अर्थात् जीवन दृष्टिकोण के आधार को स्वीकार किया गया है।

**(१) साम्राज्यवादी अर्थात् अंग्रेजी सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाले पात्र :**

इसमे शासक दल के ही पात्र आते हैं। डिप्टी कमिश्नर रिचर्ड ब्रिटिश साम्राज्य-वाद का प्रातिनिधिक पात्र है। पूरे उपन्यास पर उसकी अदृश्य काली छाया मंडरा रही है।

रिचर्ड—रिचर्ड एक सरकारी अफसर है। इतिहास विशेषत भारतीय इतिहास का सजग विद्यार्थी भी है। इस देश के इतिहास, शिल्प तथा बौद्ध धर्म से वह प्रभावित है। इस देश के इतिहास के प्रति उसकी इस लगन को देखकर जब उसकी पत्नी लीजा यह कहती है कि, "तुम तो रिचर्ड यो बातें कर रहे हो जैसे यह देश तुम्हारा अपना देश है"—तब उसका यह उत्तर कि "देश अपना नही है, पर इतिहास का विषय तो अपना है"—उसके इतिहास प्रेम को स्पष्ट करता है। ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तुओ का सग्रह वह करता रहता है। रिचर्ड को इस बात का दु ख है कि "भारतीय अपने इतिहास को जानते नही हैं, उसे केवल जीते भर हैं।"[१३] वह अक्सर यह अनुभव करता है कि "बगले के बाहर होता हूँ तो हिन्दुस्तान के किसी शहर मे होता हूँ। बंगले मे लौटता हूँ तो पूरे हिन्दुस्तान मे लौटता हूँ।"[१४] क्योकि बगले के हर कमरे मे भारतीय इतिहास से सम्बन्धित दर्जनो वस्तुएँ करीने से सजा कर रखी गयी थी। "इन कमरो मे घूमते रिचर्ड को देखकर कोई नही कह सकता था कि वह जिले का सबसे बडा अफसर है। यहाँ पर तो वह भारतीय इतिहास का मर्मज्ञ था, भारतीय कला का पारखी। हाँ, जब वह प्रशासन की कुर्सी पर बैठता तो वह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि था और उन नीतियो को क्रियान्वित करता जो लन्दन से निर्णीत होकर आती थी।"[१५]

रिचर्ड का यह आरम्भिक चरित्र देखकर उसके प्रति कुछ क्षणो तक आत्मीयता उभर आती है। परन्तु इतिहास का अध्येता रिचर्ड साम्राज्यवादियो का सच्चा एव ईमानदार प्रतिनिधि है। उसके आदर्श अलग हैं और आचरण अलग। इसी कारण वह सोचता है कि "यह विचार कि हमारा आचरण हमारी मान्यताओ के अनुरूप होना चाहिए, एक ऐसा मोडा आदर्शवाद है जिससे सिविल-सर्विस मे नाम लिखाते ही अफसर अपना पिण्ड छुडा लेता है।"[१६] आचरण और आदर्श की यह विसगति रिचर्ड मे आरम्भ से अन्त तक है। [और लीजा इस विसगति को समझ नही पाती।] हिन्दुस्तानी लोगो के स्वभाव का उसका अध्ययन बहुत ही पक्का है। वह यहाँ की जनता की दुखती नस को जानता है। "सुनो ! सभी हिन्दुस्तानी चिड-चिडे मिजाज के होते हैं, छोटे-से तनाव पर भडकने वाले, धर्म के नाम पर खून करने वाले, सभी व्यक्तिवादी होते हैं।"[१६] इस स्वभाव का फायदा अंग्रेज उठा रहे थे। रिचर्ड भी यही कर रहा है। उसके अनुसार "भारतीय धर्म के नाम पर आपस मे लडते हैं, देश के नाम पर हमारे साथ लडते हैं।"[१७] परन्तु असलियत लीजा जानती है। इसी कारण वह कहती है कि देश के नाम पर ये लोग तुम्हारे साथ लडते हैं और

धर्म के नाम पर तुम इन्हें आपस मे लडाते हो।"[४४]

कॉंग्रेस तथा शहर के अमनपसन्द लोग रिचर्ड से बार बार यह आग्रह करते हैं कि फिसाद शुरू होने से पहले वह उसे रोके। कम-से-कम एक हवाई-जहाज तो उडायें। परन्तु रिचर्ड इस बात को किसी-न किसी बहाने टालता रहा। सुअर वाली घटना की उसने कोई जाँच नही करवाई। क्योकि वह और उसकी सरकार यह चाह रहे थे कि भारतीय लोग धर्म के नाम पर आपस मे खूब लडें। जब तक ये आपस मे लडेंगे तब तक वे सुरक्षित हैं। फिसाद होने के पाँचवें दिन बाद सुरक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न वह करता है। और आश्चर्य है कि लोगो की सहानुभूति उसे मिल जाती है। जानबूझकर नजर-अन्दाज करना और काफी कुछ होने के बाद बहुत कुछ करने का नाटक करना—अग्रेजो की इस नीति का प्रतिनिधित्व करता है रिचर्ड। उसके अनुसार "प्रजा अगर आपस मे लडे तो शासक को किसी बात का खतरा नही होता।"[४५] हिन्दू और मुस्लिमो मे अलगाव बनाये रखने की कोशिश अग्रेज हमेशा करते रहे हैं। रिचर्ड भी यही कर रहा है। "डार्लिंग, हुकूमत करने वाले यह नही देखते कि प्रजा मे कौन सी समानता पाई जाती है, उनकी दिलचस्पी तो देखने मे होती है कि वे किन किन बातो मे एक दूसरे से अलग हैं।"[४६] हिन्दुओ और मुस्लिमो मे तनाव बढ रहा है—इसकी खबरें डिप्टी कमिश्नर साहब को मिल रही हैं। परन्तु वह इन दोनो के झगडों को निपटाना नही चाहता। उल्टे वह उन्हे समझाता है कि "तुम्हारे धर्म के मामले तुम्हारे निजी मामले हैं, इन्हे तुम्हें खुद सुलझाना चाहिए।"[४७] सच्चे इतिहास को वह जानता है परन्तु यहाँ के लोगो से यह सच्चा इतिहास वह छिपाता है। मण्डी मे आग लगा दी जाती है तब भी वह खामोश है। मानवीय मूल्यो के सामने शासकीय मूल्य जीत जाते हैं।

अग्रेज सरकार की तरह रिचर्ड की यह कोशिश है कि जनता का असन्तोष ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध न भडके। अप्रैल १९४७ मे तो सारे देश की जनता ब्रिटिश सरकार विरोधी बन गई थी। पजाब मे स्थिति और नाजुक थी। जनता अगर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध चली जाए तो सैंकडो अग्रेज नागरिको की जान खतरे मे आ सकती थी। इसलिए रिचर्ड यह कोशिश करता है कि जनता आपस मे लडे। उसके कैरियर मे यह निर्णायक घडी थी। वह एक अजीब-सा सन्तुलन बनाए रखने मे सफल हो चुका था। उन्हे लडा भी रहा था और उनके मन मे ब्रिटिशो के प्रति धाक भी जमा रहा था। इसी सन्तुलन के कारण लोग उसकी ईमानदारी से प्रभावित हुए थे। किसी भी घटना के प्रति वह भावुक नही होता। इस देश के इतिहास से प्रभावित हो जाने के बावजूद भी इस देश के प्रति उसके मन मे कोई लगाव नही। "यह मेरा देश नही है। नही ये मेरे देश के लोग हैं।"[४८]

सम्पूर्ण उपन्यास मे रिचर्ड का प्रशासकीय रूप ही अधिक उभरा है। वह

अंग्रेज सरकार के एक ईमानदार नौकर के रूप मे ही हमारे सम्मुख आया है। इस देश का इतिहास, यहाँ की नस्लें, हिन्दू-मुस्लिमो की एकता भिन्नता आदि के बारे मे वह सब कुछ जानता है। यह उसका गम्भीर, चिकित्सक अध्येता रूप है। दूसरी ओर वह एक कठोर प्रशासक है। साम्राज्यशाही का सरक्षक है। अध्येता और प्रशासक को वह निकट आने नहीं देता। उसके व्यक्तित्व के ये दो परस्पर-विरोधी रूप हैं। इन दोनो रूपो मे वह सन्तुलन बनाये रख सका है। यह उसकी शक्ति है अथवा कमजोरी नही मालूम! परन्तु इतना सच है कि वह अंग्रेजो के गुण दोषो का सही रूप मे प्रतिनिधित्व करता है।

लीजा—डिप्टी कमिश्नर की पत्नी लीजा "अबकी बार छ महीने के बाद विलायत से लौटी है।"[२] अक्सर चार छः महीने मे ही वह नई जगह से ऊब जाती है और विलायत लौटती है। रिचर्ड उसकी इस आदत से परेशान है। वह चाहता है कि लीजा उसके साथ यही भारत मे रहे। परन्तु लीजा दिनभर बड़े बंगले मे बैठकर क्या करे? एक अजीब-सा खालीपन और निरर्थकता के बोझ को वह निरन्तर अनुभव करती है। इन दोनो के स्वभाव मे समानता कम और विरोध अधिक है। लीजा बड़ी भावुक और मानवीय दृष्टि से सम्पन्न है। रिचर्ड गम्भीर, तटस्थ धूर्त और निर्ममता के साथ आज्ञाओ का पालन करने वाला व्यक्ति है। उसे इतिहास मे अधिक रुचि है, लीजा इतिहास से दूर भागती है। और सबसे मुश्किल बात यह है कि लीजा रिचर्ड के आचार और विचारो की विसंगति से नफरत करती है। एक ओर वह बुद्ध के करुणा के सन्देश को महान और ठोस बतलाता है। बुद्ध की करुण आँखो से वह अत्यधिक प्रभावित है तो दूसरी ओर खून, आगजनी की घटनाओं को रोकने के बजाए बढ़ाता है। उसके इस विसगत व्यवहार से लीजा चिढ़ जाती है। रिचर्ड के साथ रहने से वह अंग्रेज सरकार की चालबाजी को, तोड फोड की नीति को जान चुकी है। वह यह समझ नही पाती कि हिन्दुओ और मुसलमानो मे अलगाव कहाँ पर है?

पृष्ठ ९१ पर उसकी मन स्थिति का बड़ा स्वाभाविक चित्रण किया गया है। वह अकेलेपन से त्रस्त है। 'जब वह भारत आई थी तो बहुत-सी योजनाएँ बनाकर कि वह भारत की दस्तकारी के नमूने इकट्ठे करेगी, खूब घूमेगी, तसवीरें उतारेगी, शेर की पीठ पर बैठकर तस्वीर खिचवाएगी, साड़ी पहनकर घूमा करेगी और जाने क्या क्या? परन्तु यहाँ उसे मिली थी चिलचिलाती धूप, बड़े बंगले का कारावास, कभी न खत्म होने वाला दिन और गौतम बुद्ध के बुत और छिपकलियाँ और शॉ . .. "[३] इस अकेलेपन से ऊबकर वह शराब पीती और बेहोशी मे रहने की कोशिश करती।

उसे बड़ा ताज्जुब होता है कि शहर के डिप्टी कमिश्नर की हैसियत से रिचर्ड

फसादो को रोकने की कोशिश क्यो नही करता । उस रात जब मंडी जल रही थी, खतरे की घटी बज रही थी, तब भी रिचर्ड आराम से नींद ले रहा था । "लीजा सिर से पाँव तक काँप उठी । उसे लगा जैसे मानवीय मूल्यो का कोई महत्व नही होता, वास्तव मे महत्व केवल शासकीय मूल्यो का होता है ।"[९७] दगे शुरू हो जाने के बाद की रिचर्ड की खामोशी लीजा कतई पसन्द नही है । वह इस बात को समझ नही पाती कि फसादो को रोकने की शक्ति होने के बावजूद भी रिचर्ड खामोश क्यो है ? इस प्रकार की तटस्थता से वह घृणा करती है । पाँच दिनो के बाद जब रिचर्ड सुरक्षा के प्रपच करने लगता है तब लीजा को हँसी आती है । इसलिए वह पूछती है कि 'इतने गाँव [१०३] तो जल गये रिचर्ड, अभी भी तुम्हे काम है ?" रिचर्ड ठिठक गया । क्या लीजा व्यग्य कर रही है ? क्या उसके दिल मे मेरे प्रति घृणा पैदा होने लगी है जो इस तरह की बातें करने लगी है ।"[९८]

अकेलेपन के बोझ से त्रस्त, मानवीय मूल्यो की हत्या से अस्वस्थ एव रिचर्ड के विसगत व्यवहार से परेशान—इन विभिन्न मानसिक स्थितियो को लेकर लीजा यहाँ उपस्थित हुई है । एक अग्रेज डिप्टी कमिश्नर की पत्नी के बावजूद पाठको की सहानुभूति इसे चली जाती है ।

(२) **काग्रेसी विचारधारा के पात्र**—देश के अन्य हिस्सो की तरह पजाब मे भी काग्रेस पार्टी जिलो तथा तालुकाओ के स्तर तक फैल चुकी थी । गाधी जी के व्यक्तित्व और कृतित्व से प्रभावित होकर उनके नेतृत्व मे ये लोग सगठित हुए थे । हिन्दू मुसलमान और सिख तीनो सम्प्रदायो के लोग इस पार्टी मे थे । चौधरी हयातबख्श, मास्टर रामदास, मि० मेहता, कश्मीरीलाल, जरनैल, अब्दुलगनी तथा सरदार बिसनसिंह इस जिले के प्रमुख काग्रेस कार्यकर्ता है । सभी सम्प्रदायो मे अमन बनाये रखने का प्रयत्न ये लोग करते हैं । रोज सवेरे प्रभात फेरी निकालना, चरखा कातना, शहर की गन्दगी को कम करना आदि विधायक कार्य ये करते रहते हैं । मु० लीग काग्रेस का जबरदस्त विरोध कर रही है । फिर भी ये अपने काम पर डटे हैं ।

(१) **बख्शी जी**—अग्रेज हिन्दू मुस्लिम तनाव को बढा रहे हैं और लीगी इस तनाव का फायदा उठा रहे है—इसे काग्रेसी बख्शी जी बखूबी जानते हैं । परन्तु वे अकेले पडते जा रहे है । दुर्भाग्य से इस इलाखे मे काग्रेस मे हिन्दुओ की सख्या अधिक है । और बख्शीजी मुसलमान हैं । अधिकतर मुसलमान लीग मे ही हैं । इस कारण इन्हें मुस्लिमो से ही अधिक तकलीफ होती है । लीगी बख्शी जी को बार-बार यह समझाते हैं कि 'काग्रेस हिन्दुओ की जमात है और लीग मुसलमानो की ।"[९९] परन्तु बावजूद इसके बख्शी जी यही उत्तर देते हैं कि "काग्रेस मे हिन्दू भी हैं, मुसलमान भी हैं और सिख भी हैं ।"[१००] लीगियो के इस आरोप को कि काग्रेस के

पीछे घूमने वाले मुसलमान असली मुसल्मान नहीं हैं, मौलाना आजाद हिन्दुओं का सबसे बड़ा कुत्ता है"[¹]—बख्शी जी चुपचाप सह लेते हैं और अमन के रास्ते से पीछे *नहीं हटते। वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि यह सब अंग्रेजों के कारनामे हैं।* "फिसाद करवाने वाला भी अंग्रेज, फिसाद रोकने वाला भी अंग्रेज, भूखो मारने वाला भी अंग्रेज, रोटी देने वाला भी अंग्रेज, घर से बेघर करने वाला भी अंग्रेज घरों में बसाने वाला भी अंग्रेज । जब से फिसाद शुरू हुए हैं बख्शी जी के दिमाग में धूल से उड़ने लगी थी, बस केवल इतना भर ही बार-बार कहते रहे कि अंग्रेज फिर बाजी मार ले गया।"[¹] वे हिंसा और अन्याय के विरोधी थे। फिसादों के बाद जब सब कांग्रेसी इकट्ठे हो जाते हैं, और बीती घटनाओं पर चर्चा करने *लगते हैं, तब अधिकतर कांग्रेसियों का यही स्वर होता है कि अहिंसा से काम नहीं* चलेगा। काफी सस्ते मजाक भी हो रहे हैं। जैसे "अगर कोई तुम पर हमला करे तो तू उसे कहना, ठहर मैं कांग्रेस के दफ्तर से पूछ आऊँ कि मुझे अपना बचाव करना या नहीं।"[⁴] तब बख्शीजी अहिंसा पर अपने दृढ़ विश्वास को व्यक्त करते हैं। उनके अनुसार बुरी से बुरी स्थिति में भी व्यक्ति को दृढ़ता से अहिंसा का रास्ता अपनाना चाहिए। "तू खुद तशद्दुद नहीं कर। नम्बर एक। तू तशद्दुद करने वाले को समझा भी, अगर समझाने का मौका हो तो। नम्बर दो। और अगर वह नहीं मानता तो डटकर मुकाबला कर। यह है नम्बर तीन।"[⁵] अन्य कांग्रेसियों की अपेक्षा बख्शी जी अधिक शान्त, गम्भीर और अपनी निष्ठा के प्रति वफादार हैं।

(२) जरनैल—इस वर्ग का एक और ईमानदार कांग्रेसी सैनिक। उम्र पचास के ऊपर। बरसों की जेल के बाद शरीर में कुछ नहीं रह गया था। "जहाँ शहर के अन्य कांग्रेसियों को कम-से कम बी क्लास मिलता था, जरनैल को हमेशा सी-क्लास में डाला जाता रहा, जिससे वह बीमार भी पड़ता रहा और बालू से भरी रोटी भी खाता रहा। पर जरनैल ने न तोबा की, न अपनी जरनैली वर्दी को छोड़ा। जवानी के दिनों में लाहौर-कांग्रेस के समय वह अपने शहर से लाहौर में वालण्टियर बनकर गया था। नेहरूजी के साथ वह भी रावी के किनारे नाचा था जब पूर्ण स्वराज्य का नारा लगाया गया था। उसी दिन से वह वालण्टियर की वर्दी पहनता आया था। जब दिन अच्छे होते तो उस वर्दी में कभी सोटी लग जाती, कभी तिरंगे की डोरी बंध जाती। ··· न जरनैल को कोई काम मिला, न उसने किया। कांग्रेस के दफ्तर से पन्द्रह रुपये महीना प्रचारक का मेहनताना लिया करता था। मन में सनक थी, उसी के बल पर जिन्दगी के दुःख और क्लेश पार कर जाता था। उसका न घर था न घाट, न बीवी न बच्चा, न काम न धाम।"[⁶] अन्य किसी भी पात्र की अपेक्षा जरनैल के भूतकाल के सम्बन्ध में लेखक ने अधिक लिखा है। जरनैल को भाषण देने की आदत है। दस-बीस लोगों का समूह दिखलाई दिया कि वह झट

से किसी ऊँची जगह पर खडा होकर अग्रेजो के खिलाफ और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के एक जोशीली तकरीर देने लगता । इस दृष्टि से वह कुछ सीमा तक विक्षिप्त है । हिन्दुस्तान की आजादी के स्वप्न को लेकर वह जी रहा है । "साहिबान, मैं आपको यकीन दिलाता हूँ कि वह दिन दूर नही है जब हिन्दुस्तान आजाद होगा । काँग्रेस अपने मक्सद मे जरूर कामयाब होगी । जो शपथ मैंने रावी के किनारे "[६१] इस वाक्य का वह बार-बार दुहराता रहता है । वह एक ऐसा आदमी था, "जो आन्दोलन हो या न हो, जेल जाता रहता था, जलसे हो या न हो, शहर मे स्वय तकरीरे करता फिरता था, हर आये दिन शहर मे कही-न-कही उसकी पिटाई हो जाया करती थी । बगल मे छोटा-सा बेत दबाये वह सदा कभी एक मुहल्ले मे, कभी दूसरे मे मुहल्ले मे घूमता नजर आता था ।"[६२]

जरनैल सनकी है, अशिक्षित है, लेकिन निर्भय है । सुअर की लाश मस्जिद की सीढियो पर दिखलाई देने के बाद केवल जरनैल ही यह सोचता है कि यह किसी की शरारत है । और इसीलिए वह चिल्ला चिल्ला कर कहता है कि, "यह अग्रेज की शरारत है, मैं जानता हूँ ।"[६३] शहर मे जिस दिन फिसाद शुरू हुआ उसी दिन दोपहर को जरनैल मारा गया । सनकी तो था ही । सारे शहर मे तनाव छाया हुआ है । कोई भी अपने घर से अकेले निकल नही रहे थे । लीगियो के जत्थे लूट-पाट का काम बडे आराम से कर रहे थे । ऐसे मे जरनैल अकेला निकला, दगा रोकने के लिए वह यह सोचते हुए निकला था कि शहर मे दगा हो रहा था, यह क्या कोई अच्छी बात है और वे सभी कांग्रेसी गद्दार हैं जो घर पर बैठे हैं ।"[६४] वह निकला और जगह-जगह सडक के किनारे कभी एक चबूतरे पर तो कभी दूसरे चबूतरे पर खडा होकर लेक्चर दने लगा । वह लगातार भटक रहा था । अमन के लिए चिल्ला रहा था । उसे यह भी मालूम नही था कि वह किस मुहल्ले मे है, कहाँ है वह केवल कहता जा रहा था, साहिबान, मैं आपसे कहता हूँ कि हिन्दू-मुसलमान भाई भाई हैं, शहर मे फिसाद हो रहा है, आगजनी हो रही है और उसे कोई रोकता नहीं ।

मैं कहता हूँ कि हमारा दुश्मन अग्रेज है । गाधीजी कहते हैं कि वही हमे लडाता है और हम भाई-भाई हैं । हमे अग्रेज की बातो मे नही आना चाहिए । और गांधी जी का फर्मान है कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा । मैं भी यही कहता हूँ कि पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा । हम एक हैं, हम भाई-भाई हैं, हम मिलकर रहेगे "[६५] और इसी समय उसके सर पर लाठी का एक भरपूर वार पडा । खोपडी फूट गई । जरनैल वहीं ढेर हो गया ।

अमन और एकता के लिए अन्तिम सास तक जरनैल सघर्ष करता रहा । वह गाधी जी का सच्चा सिपाही था । ईमानदार कांग्रेसी । और इन सबके परे एक भावुक मनुष्य ! हिंसा और बदले की भावना से भी खून हुए और अमन कायम करने

मे प्रयत्नशील लोगों के भी खून हुए। परन्तु इन दोनों मृत्युओं मे कितना बड़ा अन्तर है। जरनैल उस पीढी का प्रतिनिधित्व कर रहा है जो किसी श्रेष्ठ मूल्य के लिए जीते थे और उसी की पूर्ति के लिए मृत्यु के अधीन हो जाते थे। उसका खून वास्तव मे शान्ति, अहिंसा, मैत्री और भाई चारे का ही खून है।

(३) साम्प्रदायिक शक्तियाँ और उनसे परिचालित पात्र—एक ओर एकता को बढाने वाली क्षीण शक्तियाँ कार्यरत हैं तो दूसरी ओर अलगाव बढाने वाली शक्तियाँ। इनमे से प्रत्येक का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) आर्य-समाजी दृष्टि और उससे सम्बन्धित पात्र—हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान के लिए आर्य-समाज का निर्माण हुआ। हिन्दू धर्म को अधिक शास्त्र शुद्ध और और बौद्धिकता प्रदान करने का ऐतिहासिक कार्य आर्य-समाज ने किया है। परन्तु बाद मे धीरे-धीरे आर्य-समाज राजनीति के क्षेत्र मे उतरने लगा। अपने कार्य को धर्म और समाज-सुधार तक सीमित रखने के बजाए दूसरे धर्म पर कठोर प्रहार करना उसने शुरू किया। परिणामस्वरूप अलगाव की वृत्ति शुरू हुई। प्रस्तुत उपन्यास मे इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व पुण्यात्मा वानप्रस्थीजी, मन्त्रीजी, देवव्रत, शोधराज, लाला लक्ष्मीनारायणलाल, उनका बेटा रणवीर आदि करते हैं।

वानप्रस्थीजी का तो नारा है कि 'फैलाये घोर पाप यहाँ मुसलमीन ने। अमन फलक ने छीन ली, दौलत जमीन ने।" शहर के हिन्दुओं से वे बार बार यह आग्रह करते हैं कि वे अपनी रक्षा का प्रबन्ध करें। "सभी सदस्य अपने-अपने घर मे कनस्तर कड़वे तेल का रखें, एक-एक बोरी कच्चा या पक्का कोयला रखें। उबलता तेल शत्रु पर डाला जा सकता है, जलते अगारे छत पर से फेंके जा सकते हैं।"[१९] हिन्दू-मुसलमान इस प्रदेश मे सैकड़ो वर्षो से जी रहे थे परन्तु अब उन्हे एक-दूसरे के शत्रु के रूप मे उभारने का कार्य वानप्रस्थीजी कर रहे है। युवक समाज को लाठी सिखलाने का कार्य शुरू किया जा रहा है। इन सब बातो की प्रतिक्रिया मुस्लिम-समाज पर क्या होगी—यह सोचने को कोई तैयार नही है। मुस्लिम बहुसख्यक प्रदेश मे हम जी रहे हैं, इस प्रकार की तैयारियो से आम आदमी पर क्या परिणाम होंगे, देहातो मे जहाँ हिन्दू कम सख्या मे हैं उनका क्या होगा—इस पर विस्तार से ये लोग सोचना ही नही चाहते। कांग्रेसियों की निन्दा ये लोग हमेशा करते रहे हैं—"नालियाँ साफ करने से स्वराज्य नही मिलता।"[२०] अथवा "यह सारा काम कांग्रेसियो ने बिगाडा है। उन्होने ही मुसलमानो को सिर पर चढ़ा रखा है।"[२१]

अधिकतर आर्यसमाजियो मे विवेकहीन आवेश है। "गो वध हुआ तो यहाँ खून की नदियाँ बह जाएँगी।"[२२] मुसलमानो के प्रति नफरत फैलाने के प्रत्येक अवसर का ये उपयोग कर लेते हैं। "म्लेच्छ तो गंदे होते हैं, म्लेच्छ नहाते नही, पाखाना करके हाथ नही धोते, एक दूसरे का झूठा खा लेते हैं, समय पर शौच नही जाते "[२३]

गलतफहमियां फैलाने का यह सबसे गन्दा और निचला स्तर है। इससे अलगाव की भूमि विस्तृत होने लगी। हिन्दू धर्म के झूठे अभिमान को आर्य-समाजी बढाते रहे। वेदो मे सब कुछ है, दुनिया के बाकी सब धर्म गलत और असारनीय हैं, हिन्दू जाति की तेजस्विता को फिर से प्राप्त करा देना है-आदि बातें युवको में भरा देते हैं। इसमे दोनो कौमो मे नफरत बढती गई। अलगाव को बढाने की उनकी इस वृत्ति के कारण दूसरी ओर ऐसी ही उग्र प्रतिक्रिया हुई है।

**(आ) मुस्लिम लीग और उससे सम्बन्धित पात्र**—आर्य समाज की ही तरह अथवा उससे भी अधिक भयावह कार्य मुस्लिम-लीग मुस्लिम समाज मे कर रही थी। अलगाव की नीति को बढाना, नफरत के जहर को फैलाना यही लीग का कार्य रहा है। *लीग का मामूली-सा कार्यकर्ता भी जिन्ना के शब्दो मे बोल रहा था*-"कांग्रेस हिन्दुओ की जमात है। इसके साथ मुसलमानो का कोई वास्ता नही है। कांग्रेस मुस्लिमो की रहनुमाई नही कर सकती।"[11] मौलाना अबुल कलम आजाद इनकी *नजरो मे गांधीजी के कुत्ते हैं।* वे इस बात को मानने को तैयार नही हैं कि असली शत्रु तो अंग्रेज है। "हमारा अंग्रेजो ने क्या बिगाडा ओए? हिन्दू मुसलमान की अदावत पुराने जमाने से चली आ रही है। काफिर-काफिर है और जब तक दीन ईमान नही लायेगा वह दुश्मन है। काफिर को मारना सवाब है।"[13] इसी धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दू हजारो की सख्या मे मारे गये, स्त्रियो पर बलात्कार हुए और क्रूर धर्म-परिवर्तन किये गये। इकबाल सिंह का धर्म-परिवर्तन इस बात का प्रमाण है। मुबारक अली और मौला दाद इनके नेता हैं। और सामान्य मुसलमान *एहसान अली, रमजाना, अकरीं आदि इनके स्वय सेवक।*

गोल्डा दारीफ के पीर भी इसी साम्प्रदायिक कट्टरता का प्रतिनिधित्व करते हैं। "पीर साबह काफिरो को हाथ नही लगाते, काफिरो से नफरत करते हैं।"[14] पीर साहब भी अलगाव बढाने मे सक्रिय सहयोग देते हैं।

मुराद अली भी इसी प्रकार का व्यक्ति है। अन्य मुसलमानो की तुलना मे मुराद अली अधिक बुद्धिमान, षड्यन्त्रकारी और दुहरे व्यक्तित्व को लेकर आया है। एक ओर वह भाई भाई का नारा लगाता है, अमन कमेटी मे तकरीर देता है दूसरी *ओर नत्थू चमार के माध्यम से सुअर की हत्या करके मस्जिद की सीढियो पर फिकवा* देता है। मुराद अली के कारण ही नफरत की आग फैलती गई है। इस कस्बे मे आगजनी, खून और बलात्कार की जो घटनायें हुई उसके लिए मुराद अली ही जिम्मेदार है। बुद्धिजीवी हमेशा अलगाव की राजनीति खेलते रहे हैं और आम आदमी के शांत जीवन को उध्वस्त करते रहे हैं—इस बात का प्रमाण है मुराद अली का व्यवहार।

**(इ) सिख समाज**—उपन्यास के दूसरे खड मे सिख पात्र सर्वाधिक आये हैं।

था यूँ कहें कि दूसरे खड का सम्बन्ध सिख और मुस्लिम समाज से ही है। हरनाम सिह, बन्तो, उनका बेटा इकबाल सिह, बेटी जसबीर, किशन सिह, सरदार हरिसिंह, तेजसिह, प्रीतमसिंह, निहगसिंह, गोपालसिंह, मगलसिंह सुनार, प्रीतमसिंह बजाज, मगतसिंह पसारी, ग्रन्थी साहिब आदि अलग-अलग देहातो के सिह यहाँ आये है।

सिक्ख जाति मूलत लडाकू रही है। इनके धर्म का इतिहास मुस्लिमो के सघर्ष के साथ जुडा हुआ है। इसी कारण "मुस्लिमो के विरोध मे युद्ध करना"— धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में वे स्वीकार करते हैं। इसी धार्मिक दृष्टि से इन्हे आह्वान भी किया जाता है—"तीन सौ साल पहले भी ऐसा ही गीत दुश्मन से लोहा लेने के लिए गाया गया था। उनकी चेतना फिर से शताब्दियो पहले के वायुमडल मे सास लेने लगी। सगत का प्रत्येक सिंह सिर हथेली पर रखे बैठा था।"[९९] "आज फिर से खालसा पथ को गुरु के सिंहो के खून की जरूरत है।"[१००]

परिस्थिति का तटस्थ विश्लेषण करने की जरूरत ये लोग भी महसूस नही कर रहे हैं। कम्युनिस्ट विचारो का सोहनसिह गुरुद्वारे मे इकट्ठे सभी सिंहो के इस अविवेकी निर्णय को (मुस्लिमो के साथ युद्ध करना) रोकने की पूरी कोशिश करता है और यह समझाता है कि "हमे यह नही भूलना चाहिए कि हम लोगों मुसलमानो के खिलाफ भडकाया जा रहा है और मुसलमानो को हमारे खिलाफ। हम झूठी अफवाहे सुन-सुनकर एक दूसरे के खिलाफ लैस मे आ रहे हैं। हमे अपनी तरफ से पूरी कोशिश करनी चाहिये कि गाँव के मुसलमानो के साथ मेल जोल बनाये रखें और कोशिश करें कि गाँव मे फिसाद न हो।"[१०१] परन्तु उसे गद्दार कहकर चुप बिठलाया जाता है। धार्मिक कट्टरता के सम्मुख विवेक हार जाता है। इसी अविवेकी दृष्टि के कारण दो दिन और दो रात ये लगातार लडते रहे। इस समय की इनकी मानसिकता को लेकर लेखक ने ठीक ही लिखा है कि "लडने वालो के पाँव बीसवी सदी मे थे और सर मध्ययुग मे।"[१०२]

इस युद्ध का परिणाम इन्हे ही भुगतना पडा। गाँव की अधिकतर सिख स्त्रियो ने कुएँ मे डूबकर आत्महत्याएं कर ली। १५ से अधिक सिंह मारे गये। लाखो की जायदाद जलकर राख हो गई। वस्तुस्थिति का तटस्थ निरीक्षण करके निर्णय लेने की वृत्ति अन्य साम्प्रदायिक गुटो की तरह इनमे भी नही थी।

(४) कम्युनिस्ट दृष्टि से परिचालित पात्र—देवदत्त, रामनाथ, जगदीश, अजीज, सोहनसिंह, हरवंससिंह, मीरदाद—ये कम्युनिस्ट विचारो के पात्र इस उपन्यास मे आये हैं। लेखक भीष्म साहनी इस विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध हैं। शायद इसी कारण इन पात्रो के प्रति उनमे अधिक सहानुभूति भी है। इन सात कॉमरेडो मे देवदत्त का ही थोडा-सा विस्तार से विवेचन सम्भव है। इन पर विचार करने से पूर्व विभाजन के सम्बन्ध मे पार्टी के विचारो का सक्षेप मे अध्ययन जरूरी है।

१९३०-४० के बीच कांग्रेस और लीग के बाद तीसरा महत्त्वपूर्ण स्थान कम्युनिस्ट पार्टी का ही था। विशेषत मेरठ षड्यन्त्र तथा अन्य इसी प्रकार की विस्फोटक कारवाइयो के कारण बुद्धिजीवियो और अन्य नेताओ की सहानुभूति पार्टी को मिल रही थी। दिसम्बर १९३० के अपने एक प्रस्ताव मे पार्टी ने कांग्रेस को 'पूँजीपतियो की सस्था' कहा था। स्वतन्त्रता-सग्राम मे कांग्रेस के साथ हाथ मिलाने की इच्छा इनकी कभी नही रही। दिसम्बर १९४० के कम्युनिस्ट विद्यार्थी सम्मेलन मे भविष्य के भारत का जो चित्र खीचा गया है उसमे उन्होने अधिकाधिक स्वायत्तता के साथ प्रान्तो की रचना का आग्रह किया है। कुछ सीमा तक वे भारत मे छोटे-छोटे स्वतन्त्र राष्ट्रो के सपने देख रहे थे। १५ अप्रैल १९४६ को कैबिनेट मिशन के सम्मुख इन्होने जो स्मरण-पत्र दिया है उसमे स्पष्ट कहा गया है कि "प्रान्त रचना के लिए तुरन्त सीमा आयोग की घोषणा कर दी जाये तथा भाषिक एव सास्कृतिक एकता के आधार पर प्रान्त रचना की जाये। सिंध, पठान प्रदेश, बलूचिस्तान, पश्चिम पजाब आदि प्रदेशो के लोगो को इस बात की स्वतन्त्रता दी जाये कि वे भारत के किसी प्रान्त मे रहना चाहते हैं अथवा किसी दूसरे स्वतन्त्र राष्ट्र मे अथवा केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण मे।"[१०३] स्पष्ट है कि विभाजन के प्रस्ताव को कम्युनिस्ट पार्टी १९४६ के पूर्व ही स्वीकार कर चुकी थी। इसके बहुत पहले से ही हिन्दू-मुस्लिम एकता का आग्रह पार्टी कर रही थी। तत्कालीन परिस्थिति मे यह विसगत व्यवहार ही था। लाहौर, अलीगढ तथा पजाब के अन्य स्थानो मे पार्टी का कार्य अधिक था। विभाजन के पूर्व इस पार्टी के सामान्य कार्यकर्ता अपने तरीके से साम्प्रदायिक तनाव को कम करने की कोशिश कर रहे थे। प्रस्तुत उपन्यास के कम्युनिस्ट पात्र भी इसी दिशा मे प्रयत्नशील हैं।

**देवदत्त**—शहर मे फिसाद शुरू हो जाने के बाद विभिन्न पार्टियो की बैठक लेने का पहला प्रयत्न देवदत्त करता है। 'शहर मे दगो को रोकने के लिए एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरो को इकट्ठा करना होगा। साथियो की कमी है परन्तु जहाँ तक बन पडे दगो को रोकने का काम करना होगा।'"[१०४]

देवदत्त अत्यन्त निर्भय एव साहसी है। माँ पिता का वह लाडला बेटा है। परन्तु उनकी बात वह कभी नही मानता। माँ पिता की इच्छा है कि वह ऐसे समय शहर मे न घूमे, परन्तु देवदत्त अपने विचारो के प्रति प्रतिबद्ध है। पिता की दृष्टि से 'सभी गालियाँ देते हैं, न काम, न धाम। दो दो पैसे के पाडियो, मजदूरो, कुलियो को इकट्ठा करता फिरता है, उन्हे लेकर लेक्चर झाडता फिरता है, हरामी मुँह पर दाढी नहीं उतरी लीडर बन गया है।"[१०५] कम्युनिस्ट विचारधारा का उसका ज्ञान बहुत गहरा नही है। फिर भी अपने काम के स्वरूप को जानता है। "सडको पर खुलने वाले मकान मध्यमवर्ग के, गलियो मे खुलने वाले मकान निम्न वर्ग

के।"[१०४] शहर की रचना का उसका यह साम्यवादी विश्लेषण है। हिन्दू आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हैं, इसलिए उनकी सहानुभूति मुस्लिमो के साथ अधिक है। इस कारण वह हिन्दुओ मे बदनाम भी अधिक है। आज सवेरे की घटना के कारण उसके एक मुस्लिम कॉमरेड का विश्वास पार्टी पर से उठ चुका है और वह देवदत्त के इस तर्क का कि यह शरारत अंग्रेजो की है यह जवाब दे रहा है कि, "अंग्रेज की शरारत, इसमे अंग्रेज कहाँ आ गया। मस्जिद के सामने सुअर फेंकते हैं, मेरी आँखो के सामने तीन गरीब मुसलमानो को काटा है। हटाओ जी, सब बकवास है।"[१०५] देवदत्त केवल इतना ही कहता है कि "हम मध्यमवर्ग के लोग हैं, पुराने सस्कारो का हम पर गहरा प्रभाव है। मजदूर वर्ग के होने तो हिन्दू मुसलमान का सवाल तुम्हे परेशान नही करता।"[१०६] उसके इस उत्तर से स्पष्ट है कि वह पार्टी का एक ईमानदार स्वय सेवक मात्र है; उस विचारधारा का गहन अध्येता नही। उसका विश्वास है कि समाज के उच्च और मध्यम वर्ग के लोग ही धर्म के नाते पर लडते और लडाते हैं। मजदूर कभी आपस मे धर्म के नाम पर लडते नही हैं। परन्तु जब उसे यह खबर मिलती है कि दो सिख बढई मारे गये तब "उसे लगा कि अगर मजदूर आपस मे लड सकते हैं तो यह विष बहुत ही गहरा असर कर चुका है।"[१०७] इसका सोचने का तरीका बडा ही फार्मूलाबद्ध है। इसी कारण फिसाद रुक जाने के बाद आँकडा-बाबू से बार बार पूछता है कि गरीब कितने मरे और अमीर कितने। उसका दृढ विश्वास है कि फिसादो के मूल मे अंग्रेजो की तोड फोड नीति ही है। उसे लगता है कि अंग्रेज और पूँजीपति वर्ग समाज के अन्य वर्गो को धर्म के नाम पर लडा रहे हैं और खुद अधिक सुरक्षित हैं। आश्चर्य इस बात का है कि देवदत्त भी इस बात की खोज नही करता कि मस्जिद की सीढियो पर सुअर आया कहाँ से ? उसे किसने मारा अथवा मरवाया है ? शान्ति स्थापना करने का उसका तरीका भी बडा मामूली है। सर्वपक्षीय बैठक लेकर एक पत्रक निकाला जाये अथवा सर्वपक्षीय नेता सारे शहर मे एकता के लिए घोषणा देते हुए घूमे—समस्या के समाधान का बस यही एक तरीका उसके पास है।

एक सच्चे, ईमानदार कम्युनिस्ट कार्यकर्ता के रूप मे वह हमारे सम्मुख उपस्थित हुआ है।

**अन्य कार्यकर्ता**—दूसरे खड मे कामरेड सोहनसिंह का चित्रण हुआ है। सिख जमात गुरुद्वारे मे युद्ध की तैयारियाँ कर रहे हैं तब दुबला-पतला सोहनसिंह उन्हें समझाने की कोशिश कर रहा है कि हम लोगो को मुसलमानो के खिलाफ भडकाया जा रहा है हमे अपनी तरफ से कोशिश करनी चाहिये कि गाँव के मुसलमानो के साथ मेल-जोल बनाये रखे और कोशिश करें कि गाँव मे फिसाद न हो। यहाँ के अमन पसन्द सिख और मुसलमान मिलकर उन्हें रोकें। वह हमारे डर से असला

इकट्ठा कर रहे हैं, हम उनके डर से असला इकट्ठा कर रहे हैं।"[१११] परन्तु सोहन सिंह की इस बात को कोई नही मानता। उसे गद्दार कह कर चुप बिठाया जाता है।

**मीरदाद** भी अपने तरीके से फिसाद रोकने की कोशिश कर रहा है। मीरदाद मुस्लिमो को समझाते हुए कहता है कि असली शत्रु तो अंग्रेज है सिख अथवा हिन्दू नही। "अगर हिन्दू-मुसलमान-सिख मिल जाते हैं, उनमे इत्तहाद हो जाता है, तो अंग्रेज की हालत कमजोर पड जाती। अगर हम आपस मे लडते हैं तो उसकी हालत मजबूत बनी रहती है।"[१११] *"जबसे फिसादो का तनाव शुरू हुआ था मीरदाद* कस्बे मे जगह-जगह, नानबाई की दुकान पर, गंडा सिंह चाय वाले की दुकान पर, शेख की बैठक मे, कुएँ-झलार पर, जहाँ चार-पाँच आदमी बैठे हुए होते हैं यही चर्चा बैठता था, मगर कस्बे मे तनाव बढने पर और बाहर से तरह-तरह की खबरें आने पर, वह उत्तरोत्तर अकेला होता गया था। उसकी बात मे वजन इसलिए भी नही था कि *उसके पास जमीन नही थी, न जमीन न मकान।"*[१११] *बडी अजीब* स्थिति है यह। कम्युनिस्टों की विचारधारा जनसामान्य शायद तभी मानेंगे जब कोई पूँजीवादी समझायेगा।

मोरदाद, सोहनसिंह, हरबंशसिंह आदि सामान्य कार्यकर्ताओ ने जान धोके मे डालकर फिसादो को रोकने की कोशिश की है। इस कोशिश मे सोहन सिंह मारा *भी गया।*

(५) **सहज मानवीय दृष्टि से परिचालित पात्र**—इस तनाव भरे वातावरण मे ऐसे भी पात्र हैं जो मनुष्य को केवल मनुष्य के रूप मे देख रहे हैं। धर्म, जाति अथवा किसी पार्टी की विचारधारा से ऊपर उठकर मात्र मनुष्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का यह प्रयत्न अधिक वैज्ञानिक, मानवीय एव लाभदायक है। परन्तु दुर्भाग्य से यही शुद्ध दृष्टि तिरोहित हो जाती है। एक सवेदनशील लेखक इसी दृष्टि की खोज तटस्थता से करता रहता है। इस प्रकार की मानवीय दृष्टि को लेकर जीने वाले पात्र सभी सम्प्रदायो और धर्मों मे थे। सख्या की दृष्टि से ये बहुत कम थे। या कहना होगा कि इनकी आवाज दबा दी गई है। प्रस्तुत उपन्यास मे डिप्टी कमिश्नर की पत्नी लीजा, कांग्रेसी स्वय सेवक जरनैल शाहनवाज, एहसान अली की पत्नी राजो—इसी प्रकार के पात्र हैं। विशेषत लीजा, शाहनवाज एव राजो अधिक प्रभावित करते हैं। वे इस सम्पूर्ण समस्या को शुद्ध मानवीय दृष्टिकोण से देखते हैं। इसी *कारण लीजा रिचर्ड को बार-बार कहती* है कि वह फिसाद को रोके। उसके अनुसार, "मैं तो तभी तक हिन्दू और मुसलमान को अलग-अलग पहचान भी नही सकती। तुम पहचान लेते हो रिचर्ड कि आदमी हिन्दू है या मुसलमान।"[१११] रिचर्ड यह अच्छी तरह जानता है कि इन दोनो कौमो मे अलगाव की अपेक्षा एकता ही

अधिक है। पर वह मौन है और लीना बार-बार उसे मानवीय दृष्टि से समस्या को देखने का आग्रह करती है।

शाहनवाज—ऊँचा रोबीला शाहनवाज अमीर खानदान से सम्बन्धित है। किसी भी राजनीतिक विचारधारा से उसका कोई मतलब नहीं है। लाला लक्ष्मी॰ नारायण, उनकी पत्नी और बेटी जब अपने ही घर में करीब-करीब कैद हैं तब उन्हें उस बस्ती से सुरक्षित निकालने का काम शाहनवाज ही करता है। लालाजी की पत्नी के अनुसार, 'ऐसे लोगों के दिलों मे भगवान बसता है जो मुसीबत मे लोगों का हाथ पकड़ते हैं।'"[१११] इस नफरत भरे वातावरण मे एक मुसलमान द्वारा हिन्दुओं को बचाना बड़ी हिम्मत की बात है। "शाहनवाज के चेहरे की ओर देखते हुए यह नहीं लगता था कि कभी उसके मन मे ओछे या शुद्ध विचार उठ सकते होंगे। रोबीला जवान, छाती तनी रहती, तुर्रा लहराता रहता, बूट चमचमाते रहते, सदा सरसराती बोबी के धुले कपड़े पहनता था। अब वह धीर-गम्भीर दुनियादार आदमी था, पेट्रोल की दो पम्पों का मालिक दोस्त परवर, मिलनसार, हँसमुख जब्वाती।"[११३] जब शहर मे गड़बड़ी शुरू हुई तो वह अपने सब हिन्दू मित्रो की खबर लेने आता था। उन्हें सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाना, आर्थिक सहायता करना, उनकी कीमती वस्तुएँ सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाना—संक्षेप मे "दोस्त परवरी उसका ईमान थी।"[११३] एक ओर शहर के सारे मुसलमान हिन्दुओं को खत्म करने की योजनाएँ बनवा रहे थे तो दूसरी ओर अकेला शाहनवाज उन्हें बचाने की कोशिश कर रहा था। इतना ही नहीं वह हिन्दुओं के आसपास के घरों मे रहने वाले मुसल-मानों को यह कहकर आता है कि, 'देख, फकीरे, कान खोलकर सुन ले। अगर मेरे यार के घर को किसी ने बुरी नजर से देखा तो मैं तुझे पकड़ूँगा। कोई उस घर के नजदीक नहीं आये।'"[११४] अपने इस नेक काम के कारण वह लीगियों की गालियाँ भी सुनता है। लीगी उसका कुछ बिगाड नहीं सकते थे क्योंकि वह रईस है। रघुनाथ उसका एक और निकटस्थ मित्र है। उसके गहने वह सुरक्षित लाकर देता है। शाह-नवाज के इस साहस को देखकर "रघुनाथ अन्दर-ही-अन्दर उसके चरित्र, उसके ऊँचे विचारों की प्रशंसा कर रहा था जिनके कारण आज के जमाने मे इन चारों ओर आग की लपटें उठ रही थी, एक मुसलमान दोस्त उसके प्रति इतना निष्ठावान् था।"[११५] और रघुनाथ की पत्नी "इस बात पर भी शाहनवाज की कृतज्ञ थी और उसके ऊँचे प्रशस्त ललाट, दमकते चेहरे को देख-देखकर उसे लग रहा था जैसे वह किसी पुण्यात्मा के दर्शन कर रही है।"[११६] वास्तव मे इस कस्बे की राजनीतिक पार्टियाँ, आर्य-समाज तथा इस प्रकार के दलों ने शाहनवाज की तरह कार्यरत शक्तियों को इकट्ठा करते तो यह सारी बातें नहीं होती। दुर्भाग्य से एका बढाने वाली शक्तियों को यहाँ कभी उभारा नहीं गया। उलटे कोशिश ऐसी की गई कि ये

शक्तियाँ अकेली पड जाएँ। परन्तु बावजूद अपने इस अकेलेपन के इन शक्तियो ने बहुत बडा काम किया है।

**राजो** हरनामसिंह और बन्तो जब ढोक इलाही बख से निकाल दिये जाते हैं तब अपनी जान बचाते-बचाते वे ढोक-मुरीदपुर मे आते हैं। दिन निकल आया है। अब उन्हे कोई मुस्लिम देख ले तो तुरन्त मार डालेगे। किसके यहाँ आसरा मागेगे ? "जहाँ सबको जानना था, वहाँ किसी ने सहारा नही दिया यहाँ न जानने वालो से क्या उम्मीद हो सकती है ?"[111] परन्तु कई बार ऐसा होता है कि अपने पराये हो जाते हैं और पराये अपने। हरनामसिंह के साथ यही हुआ। ढोक-मुरीदपुर मे जब वे किसी अजनबी का दरवाजा खटखटाते हैं तब एक मुस्लिम स्त्री दरवाजा खोलती है। "क्षणभर के लिए वह औरत ठिठकी, खडी रही, वह निर्णायक क्षण जब मनुष्य अपने समस्त सस्कारो, विचारो, मान्यताओ के पुंजीभूत प्रभाव के आधार पर निर्णय लेता है। औरत कुछ देर तक उसकी ओर देखती रही। फिर उसने दरवाजा खोल दिया।"[111] यह औरत एहसानअली की पत्नी राजो है। इसका पति और बेटा (रमजान) कट्टर मुस्लिम-लीगी है। जब राजो इस सिख दम्पति को अपने घर मे शरण दे रही है उसी समय इसका पति और बेटा दूसरी ओर सिखो को मार रहे हैं, उनके घरो को लूट रहे हैं, आग लगवा रहे हैं। और सयोग की बात यह कि इसी दम्पत्ति की होटल लूटकर वे दोनो घर की ओर निकले हैं।

राजो अपनी मर्यादा जानती है और इसी कारण थोडी देर बाद कहती है कि, "सुनो, सरदारजी, मैं तुमसे कुछ छिपाऊँगी नही, मेरा घरवाला और बेटा दोनो गाँव वालो के साथ बाहर गये हुए हैं। वे अभी लौटते होगे। मेरा घरवाला तो अल्लाह से डरने वाला आदमी है, तुम्हे कुछ नही कहेगा, पर मेरा बेटा लीगी है और उसके साथ और लोग भी हैं। तुम से वे कैसा सलूक करेगे, मैं नही जानती।"[111] यह सुनकर हरनामसिंह निराश होकर वहाँ से उठा और यह कहते हुए कि "तेरे दिल मे रहम जागा, तूने दरवाजा खोल दिया। अब तू कहेगी बाहर चले जाओ तो हम बाहर चले जाएँगे। चल बन्तो [111]" राजो ज्यो-की-त्यो आगन के बीचो-बीच खडी रही और उसकी ओर देखती रही। और जब हरनामसिंह ने साँकल खोलने के लिए हाथ उठाया तो औरत फिर बोल उठी, "न आओजी, रुक जाओ, साँकल चढा दो। तुमने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया है, दिल मे कोई आस लेकर आये हो। जो होगा देखा जायगा।" राजो की द्वन्द्वात्मक मन स्थिति क्षण भर की है। उसके भीतर की मनुष्यता अधिक शक्तिशाली है। वह इस दम्पति की असहायता से परेशान है। इसी कारण वह बहुत बडा खतरा मोलकर उन्हे अपने घर मे पनाह देती है।

राजो का पति और बेटा आ जाते हैं। पति एहसानअली हरनामसिंह से

परिचित है। वह तो कुछ कहता नही। परन्तु लीगी वेटा काफिर को पनाह देने की बात सुनकर चिढ़ जाता है। इच्छा होते हुए भी वह उन दोनो को मार नही सकता। "काफिर को मारना और वात है, अपने घर के अन्दर जान-पहचान के पनाह-गजीन को मारना दूसरी वात। उनका खून करना पहाड की चोटी पार करने से भी ज्यादा कठिन हो रहा था। मजहबी जनून और नफरत के इस माहौल मे एक पतली-सी लकीर कही पर अभी भी खिंची थी जिसे पार करना बहुत ही मुश्किल था।"[११४] यही वह पतली-सी लकीर है जो राजो मे सुरक्षित है।

लगभग आधी रात के समय राजो हरनाम और बन्तो को गाँव के उस पार सुरक्षित छोडने के लिए लेकर निकलती है। *गाँव के पार आने के बाद वह बडी* गम्भीरता से कहती है। "सीधे किनारे-किनारे चले जाओ। आगे जो तुम्हारी किस्मत। आई हो उठी। ..."मैं नही जानती कि मैं तुम्हारी जान बचा रही हूँ या तुम्हे मौत के मुह मे झोक रही हूँ। चारो तरफ आग लगी है।"[११५] चारो तरफ लगी इस आग मे राजो का व्यक्तित्व शीतल जल की तरह है।

राजो के इस चरित्र को पढते समय वरवस कमलेश्वर के "लौटे हुए मुसाफिर" की नसीबन याद आती है। नफरत की उस भयावह आग मे नसीबन भी इसी प्रकार के मानवीय भावो से प्रेरित थी।

क्या हिन्दू, क्या मुसलमान दोनो सम्प्रदायो मे इस प्रकार के शुद्ध मानवीय धरातल पर आकर सोचने वालो की सख्या की कमी नही थी। कमी थी केवल उन राजनीतिज्ञो और नेताओ की जो इस प्रकार की शक्तियों को उभारते।

(६) **सामान्य पात्र** . इसके अन्तर्गत यहाँ उन चरित्रों पर विचार किया जा रहा है जो समाज के विभिन्न स्तरो से आए हुए हैं परन्तु जो किसी भी राजनीतिक विचारधारा से सम्बन्धित, प्रेरित अथवा प्रभावित नही है। ये पात्र अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी मे ही परेशान हैं। इन्हे लीग, कांग्रेस, विभाजन अथवा अन्य किसी से भी कोई मतलब नहीं है। आम भारतीयो की तरह ये अपनी छोटी-छोटी समस्याओ से जूझ रहे हैं। ऐसे मे अचानक नफरत की आग फैलने लगती है। और दुर्भाग्य से इस आग मे सर्वाधिक रूप से ये ही झुलस जाते हैं। उपन्यास का आरम्भ ही इस प्रकार के सामान्य व्यक्ति द्वारा हुआ है।

(१) **नत्थू** ' इस उपन्यास का सबसे अभागा पात्र है नत्थू। नत्थू व्यवसाय से चमार है। मुरादअली नामक इस कस्बे के एक प्रमुख व्यक्ति ने उस पर एक जिम्मेदारी सौंपी है। हमारे सलोतरी साहिब को एक मरा हुआ सुअर चाहिए, डाक्टरी काम के लिए।[११६] नत्थू सुअर मारना नही चाहता। उसने कहा भी है कि "हमने कभी सुअर मारा नहीं मालिक, और सुनते हैं सुअर मारना कठिन काम है। हमारे बस का नहीं होगा हुजूर! खाल-वाल उतारने का काम हो तो दें। मारने का

काम तो पिगरीवाले ही करेंगे।"[११९] परन्तु मुरादअली जब पाँच रुपये की नोट उसके जेब में ठूस देता है तो नत्थू इस काम के लिए विवश हो जाता है। एक अत्यन्त सामान्य और गरीब व्यक्ति के लिए पाँच रुपये बहुत बडी राशि है। फिर काम भी केवल इतना कि सुअर को जान से मार देना। बस ! और सुअर ! पिगरीवालों के सुअर बहुत घूमते हैं। एक को पकड लो। सलोतरी साहिब खुद बाद मे पिगरीवालों से बात करेंगे।"[१२०] मुरादअली तो मामूली आदमी है नहीं। नगरपरिषद का मेम्बर है। उनसे अक्सर काम पडता है। और वह इस काम के लिए पाँच रुपये दे रहा है और सुअर तो सलोतरी साहब को चाहिए डाक्टरी काम के लिए। भोला नत्थू इस काम को बडा सहज समझ रहा था। वह इसके पीछे की राजनीति नहीं जानता था। इस कारण वह इस काम को स्वीकार कर लेता है। हलाँकि सुअर मारने मे उसे बहुत तकलीफ होती है। पाँच छ घण्टे सघर्ष के बाद प्रात वह इस काम मे सफल हो जाता है।

काटे हुए सुअर को वहीं फेंककर वह घर की ओर निकलता है। उसके मन मे कई सवाल उठते रहे हैं, सलोतरी साहब को मरे हुए सुअर की जरूरत क्यों पडी। जरूर कहीं सुअर का मांस बेचने के लिए उसे मरवाया गया होगा "[१२१] सुअर ने नत्थू को बहुत परेशान किया था। उसे इस प्रकार के काम का अनुभव भी नहीं था। वह बहुत अस्वस्थ्य हो गया है। उसकी यह अस्वस्थ्यता पश्चाताप मे परिवर्तित हो जाती है। जब उसे पता चल जाता है कि सुअर की लाश मस्जिद की सीढियो पर फेंकी गई है। इस घटना के कारण सारे शहर मे तनाव छा गया है। मार-काट शुरू हुई है।" जब से वह उस सुअर के दडबे मे से निकला था, वह कभी शहर के एक हिस्से मे तो कभी दूसरे हिस्से मे चक्कर काट रहा था। जहाँ बैठता लोग सुअर की चर्चा करते सुनाई देते।"[१२२] वह अन्दर ही अन्दर बडा परेशान था। उसके साथ बहुत बडा धोखा हुआ था। वह डर रहा था कि अगर लोगों को मालूम हो जाए कि उसी ने सुअर को काटा है तो फिर उसका क्या होगा ? उसे थोडे ही मालूम था कि मुरादअली सुअर की लाश का इस प्रकार उपयोग करेगा ? अगर उसे मालूम था तो वह इस पापकार्य को थोडे ही करता ? अब वह घर जाने से भी घबरा रहा है। शहर के इस तनाव भरे वातावरण के लिए वह खुद को अपराधी समझ रहा है। वह बहुत दु:खी हुआ है। "दुख से छुटकारा पाने के लिए आदमी सबसे पहले औरत की तरफ ही मुडता है।"[१२३] दोपहर तक शहर का वातावरण पहले जैसा होने लगा। नत्थू हल्का-हल्का-सा अनुभव कर रहा है। उसे विश्वास होने लगा कि उसका यह काम किसी को मालूम नहीं हुआ है। बाजार मे एक स्थान पर उसकी भेंट मुरादअली से हो जाती है। परन्तु मुरादअली अजनबी बनकर आगे चला जाता है। नत्थू फिर अस्वस्थ हो जाता है। पृष्ठ ११५ से १२० तक में उसका और

वर्ग से आया है, उसमे इसका उत्तर निहित है। अगर वह यह कहता कि यह सब मुरादअली का काम है तो उस पर कोई विश्वास न करते और उसकी ही पिटाई होती। दूसरी बात, मुरादअली इतना प्रतिष्ठित है कि उसके विरोध मे नत्थू कुछ न कह सकता। व्यक्ति किस विशिष्ट जाति का है, उसकी आर्थिक स्थिति क्या है--इस पर से ही उसके द्वारा कही गयी बातो पर समाज विश्वास करता है। नत्थू अपनी जाति के कारण उपेक्षित रहा है।

**आम आदमियो की प्रतिक्रियायें** इस उपन्यास मे सामान्य जनता के दर्शन अधिक होते हैं। "भीष्म साहनी ने सामान्य जनता के स्तर पर रहकर ही लेखन किया है जिससे उपन्यासकार की जन-जीवन की सन्मुखता अवश्य प्रकट होती है।"[१११] "कमलेश्वर के लौटे हुए मुसाफिर" मे भी सामान्य आदमी ही केन्द्र मे हैं। यहाँ पर भी आम आदमी की प्रतिक्रियाओ को रेखांकित करने का प्रयत्न हुआ है। शहरी और देहाती इलाको के ये पात्र पाठको का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। इनमे से कुछ की प्रतिक्रियाएँ —

[१] **दर्जी खुदाबख्श** *इसके यहाँ शहर के सभी हिन्दू, मुस्लिम और सिख* औरत कपडे सीने डालती हैं। हरेक के साथ इसका व्यवहार अत्यन्त स्नेह भरा है। उस दिन चौकवाले मन्दिर के उपर का घडियाल दुरुस्त किया जा रहा था। उसे देखकर ही खुदाबख्श घवडा गया। वह अन्दाजा लगाता है कि "फिसाद होने का डर है।" इस घडियाल की आवाज सुनकर रूह काप जाती है।"[११२]

[२] **मजदूर** - इस शहर के मजदूर आजादी, विभाजन आदि विषयो पर अक्सर चर्चा करते हैं। कई बार इनकी इन चर्चाओ से उनकी आतरिक वेदना अचानक व्यक्त हो जाती है। उदा "बाबू ने कहा आजादी आने वाली है। मैंने कहा, आए आजादी, पर हमे क्या ? हम पहले भी बोझा ढोते थे, आजादी के बाद भी *बोझा ढोवेंगे।"[११३] अधिकतर लोग आस्तिक, पापभीरू और भाग्य पर* भरोसा रखने वाले हैं। एक बूढे ने कहा है, "सभी कुछ मालिक के हाथ मे है, इनसान के हाथ मे कुछ भी नही। सब काम पाक परवरदिगार के हुक्म से होते हैं। उसका जो हुक्म होगा, वही होगा।[११४] दुर्भाग्य से इस प्रकार की मनोवृत्ति के कारण ही फिसाद अधिक हुए। क्योकि हिन्दुओ को मारना खुदा का हुक्म माना गया।

[३] **एक कार्यकर्त्ता** विभाजन सभव नही है अगर हो भी जाए तो आज जो जहाँ है वही रहेगा—ऐसा अधिकतर लोगो का विश्वास था। उदा .-' छोडो बादशाह, यह सयासतदानो के चोचले है। बन भी गया तो क्या होगा, लोग तो यही पर रहेंगे, कहीं भागे तो नही जा रहे "[११५] यह विश्वास कितना गलत था, यह आगे की घटनाओ ने सिद्ध किया है। इसी विश्वास के कारण लोग वहाँ से निकले नही। परिणामत' अधिक सकते मे आ गए। इस फिसाद के कारण इतना तो जरूर

हुआ कि, "अब हिन्दुओ के मुहल्ले मे न तो कोई मुसलमान रहेगा और न मुसलमानो के मुहल्ले मे कोई हिन्दू । इसे पत्थर की लकीर समझो । पाकिस्तान बने या न बने, अब मुहल्ले अलग-अलग होंगे, साफ बात है ।"[१३१]

[४] दो चपरासी  फिसाद के बाद अमन कमेटी की बैठक बुलवाई गई है । हिन्दू, मुस्लिम और सिख भारी सख्या मे उपस्थित हैं । सब एक-दूसरे के गले मिल रहे हैं । इन्हें इस स्थिति मे देखकर बाहर बैठे हुए दो चपरासी आपस में कह रहे हैं कि, "हम जाहिल लोग लडते हैं, सगझदार, खानदानी लोग लडते नही । यहाँ सभी आए हैं हिन्दू भी, सिख भी, मुसलमान भी, मगर कैसे प्यार-मुहब्बत की बातें कर रहे हैं ।"[१३२] परन्तु क्या यह सही है । यहाँ इकट्ठे लोगो ने तो झगडे लगवाये हैं । इस भीड मे वही मुरादअली भी है, जो सबसे गले मिल रहा है । चपरासियो के इस कथन द्वारा लेखक ने बुद्धिजीवियो पर जबरदस्त व्यग्य किया है ।

[५] सैयदपुर का पसारी  इस फिसाद और दगो मे भी लोग अपनी ईमानदारी पर आँच नही आने देना चाहते । सैयदपुर के सारे सिख गुरुद्वारे मे घेर लिये गये हैं । वे गाँव के बाहर सुरक्षित जाना चाह रहे हैं । समझौते शुरू हुए हैं । सैयदपुर के मुसलमान इस काम के लिए दो लाख रुपये माँग रहे हैं । अर्थात् सिख रुपये पहले दें फिर वे उन्हे सुरक्षित पहुँचाएँगे । इसी कारण एक सरदार जब यह सवाल उठाता है कि 'अगर कहो धोखा हुआ तो ? "तब मुस्लिम पसारी तैश मे आकर कहता है, "क्यो, क्या हम लाहौरिये हैं ? अमृतसिये हैं ? कि आज कुछ कहे, और कल कुछ ? हम सैयदपुर के रहने वाले हैं, हमारी जबान पत्थर की लकीर होती है ।"[१३३]

**विभिन्न मनोवृत्तियो का चित्रण**  सभी दिशाओ से जब मानवीमूल्यो की हत्या होने लगती है, जीवन का जो कुछ भी अच्छा, पावन और श्रेष्ठ जल जाने लगता है, जब सभी आखो मे भय, सन्देह और अत्याचार उभरने लगता है तब मानवी-मन की असहाय्यता, क्रूरता, जीवनप्रियता, मोह आदि के दर्शन होने लगते हैं । प्रस्तुत उपन्यास मे भी इन विविध भावो के सकेत मिलते हैं, उनम से कुछ इस प्रकार हैं—

[१] सनातनी वृत्ति  हरनामसिह और उनकी पत्नी बन्तो असहाय्य अवस्था मे शरण के लिए मारे-मारे घूम रहे हैं । ऐसी स्थिति मे एहसानअली की पत्नी राजो उन्हें अपने घर में शरण देती है । ये दोनो पूरे तीस घण्टे भूखे हैं और कई मील चल कर आए हैं । इस असहाय्य अवस्था मे एक मुस्लिम स्त्री ने इन्हें शरण दिया है । परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि वे उसका छुआ खाना पसन्द नही करते । जो स्त्री अनेक खतरे मोलकर इन्हें शरण दे रही है, उससे बढकर और कौन से हाथ पवित्र हो सकते हैं ? अन्त मे मजबूर होकर वे उसका छुआ खा लेते हैं । अर्थात् केवल

मजबूरी से ही ।

एक दूसरा दृश्य किसी ब्राह्मण पंडित पंडितानी का है। फिसाद मे इनकी जवान लडकी प्रकाशो को कोई उठाकर ले गया है। फिसाद खत्म हो जाने के बाद इनको कहा गया है कि इनकी बेटी मिली है, उसे वे जाकर ले आएँ। परन्तु ये दोनो स्पष्ट रूप से नकारते हैं। क्योकि "अब हमारे पास आकर क्या करेगी जी, बुरी वस्तु तो उसके मुह मे उन्होंने पहले से ही डाल दी होगी।"[१५] सनातनी वृत्ति के सम्मुख वात्सल्य का गला घोट दिया गया है। प्रकाशो को गुडा उठा ले गया है। इसमे प्रकाशो का क्या दोष ? अब प्रकाशो क्या करें ? माँ-बाप स्वीकार करने को तैयार नही हैं। सिवा वेश्या बनने के अब दूसरा मार्ग उसके सम्मुख नही है। वह भ्रष्ट हो गयी है अब उसे हिन्दू-समाज मे स्थान नही है। धार्मिक कट्टरता के नाम पर ये अपनी लडकी को दुतकार रहे हैं। ऐसी कई घटनाएँ विभाजन के समय हुई हैं ।

**धार्मिक क्रूरता**—हिन्दुओ को जबरदस्ती मुस्लिम बनाया गया। इतिहास इसका साक्षी है। प्रस्तुत उपन्यास का सत्रहवाँ प्रकरण इसी क्रूरता को स्पष्ट करता है। हरनामसिंह का बेटा इकबालसिंह लीगियो के हाथ मे पड गया। उस पर अनेक प्रकार के अत्याचार हुए। उसकी धार्मिक भावनाओ की क्रूर हँसी उडाई गई। गो-मास का टुकडा जबरदस्ती से उसके मुँह मे डाला गया। बडी क्रूरता के साथ उसका सुन्ता किया गया। और कुछ ही घटो मे सिख धर्म के सारे बाह्य चिन्ह उतारकर उसे इकबाल-अहमद बनाया गया। उसके इस धर्म-परिवर्तन का बडा ही सशक्त, करुण और यथार्थ चित्रण किया गया है।

क्रूरता के कुछ अन्य प्रसग प्रकरण अठारह मे मिलते हैं। 'हम जब गली मे घुसे हिन्दुओ की एक लडकी अपने घर की छत पर चढ गई। हमने देख लिया जी। सीधे दस-बारह आदमी उसके पीछे छत पर पहुँच गये जब हमने उसे पकड लिया तब बारी-बारी से उसे दबोचा। जब मेरी बारी आई तो नीचे न हूँ, न हाँ, वह हिले ही नही, मैंने देखा तो लडकी मरी हुई मैं लाश से ही जना किए जा रहा था।'[१६]

**जीवन-प्रियता**—एक ओर हरनाम की लडकी जसबीर और सैयदपुर की दर्जनो सिख औरतें हैं, जो मुस्लिमो के हाथ मे पडने के बजाए सामूहिक आत्महत्याएँ कर लेती हैं, तो दूसरी ओर एक स्त्री इस प्रकार की भी है, जो दगे-खोरो से कह रही है,—"मुझे मारो नही, मुझे तुम सातो अपने पास रख लो, एक-एक करके जो चाहो कर लो। मुझे मारो नही।"[१७] सचमुच बडी असहाय्य और करुण स्थिति है यह !

**सम्पत्ति-मोह**—एक सरदार रोज आँकडा बाबू को परेशान कर रहा है कि कुएँ मे कूदकर आत्महत्या करने वाली उसकी स्त्री की लाश उसे बतलाई जाए।

क्योंकि उसकी पत्नी के शरीर पर उस वक्त काफी गहने थे । "पाँच-पाँच तोले का एक-एक कडा है । गले मे सोने की जजीरी है । अब घरवाली डूब मरी, जो सबके साथ हुई है, वह मेरे साथ भी हुई है, पर मैं कड़े और जजीरी मैं कैसे छोड़ दूँ।"[१४८]

देश-काल वातावरण—कथावस्तु के विवेचन मे यह स्पष्ट किया गया है कि इसकी कथा का सम्बन्ध पजाब के एक जिले से है । यह जिला ऐतिहासिक तक्षशिला से सत्रह मील दूरी पर है । इस शहर की कथा पहले खड मे तथा इस जिले के अन्य छोटे देहातो-खानपुर, ढोक मुरीदपुर, सैयदपुर, ढोक इलाही बक्श, नूरपुर की कथा दूसरे खड मे रखी गई है । इस प्रकार शहरी और ग्रामीण अचल—इन दोनो को समेटती हुई इसकी कथा आगे बढती है । इन प्रदेशो का बडा ही जीवन्त चित्रण इसमे किया गया है ।

इस शहर की रचना अन्य शहरो जैसी नही है । "यह शहर ही इस बेढब्बे से बना है कि, हर मुहल्ले मे हिन्दू भी रहते है और मुसलमान भी रहते हैं।"[१४९] पिछले सैकडो वर्षों से यहाँ हिन्दू-मुसलमान बस रह हैं । दोनो का जीवन एक दूसरे के साथ गहरे रूप से जुडा हुआ था । एक-दूसरे के प्रति किसी के मन मे सन्देह या नही । इसी कारण घर बनाते समय किसी ने यह नही सोचा कि आस-पास हिन्दू हैं अथवा मुसलमान । बडा खूबसूरत शहर है यह । "एक घर के सामने एक आदमी गली मे बँधी गाय के पास खडा सानी-पानी कर रहा था । चाय तैयार हो रही थी । इतने मे सामने से कोई और दुपटटे मे मुँह सिर लपेटे मुँह से गुनगुनाती हुई पास से गुजरी । पास ही किसी घर मे से प्याले खनकने और साथ मे चूडियाँ खनकने की आवाज आई । चाय तैयार हो रही थी । बडे सहज सामान्य ढग से दिन का व्यापार शुरू हो रहा था । ' प्रभात के झुटपुटे मे एक फकीर इकतारा बजाता हुआ और धीमी आवाज मे गाता हुआ शहर की गलियो मे से गुजर रहा था ।"[१५०] अथवा "शहर मे सब काम जैसे बँटे हुए थे · कपडे की ज्यादातर दूकानें हिन्दुओ की थी, जूतो की मुसलमानो की, मोटर-लारियो का सब काम मुसलमानो के हाथ मे था अनाज का काम हिन्दुओ के हाथ मे । छोटे-मोटे काम हिन्दू भी करते थे, मुसलमान भी ।"[१५१] कही कोई दुराव नही था । शहर की इस व्यवस्थित जिन्दगी को देखकर लगता मानो इस शहर का कार्य-कलाप फिर से जैसे किसी सगीत की लय पर चलने लगा हो । सगीत की किसी धुन पर सारा शहर उठता हो और उसी धुन पर कार्य करता हो ।' लगता इसकी एक कडी टूटेगी तो साज के तार टूट जाएँगे । "आप इसे संगीत कह लीजिए या नाजुक-सा सन्तुलन जिसमे व्यक्तियो के आपसी रिश्ते, जन-समूहो के आपसी रिश्ते एक विशेष धारा पर स्थिर हो चुके होते हैं ।"[१५२]

ऐसे शहर मे १९२६ मे एक बार दगा हुआ था । "पहले फिसाद मे जब यह घडियाल बजा था तो मडी मे आग लगी थी और शोले आधे आसमान को ढके

थे ।'[१५३] परन्तु १९२६ के बाद धीरे-धीरे वातावरण ठीक होता गया । लोग उस घटना को करीब करीब भुल चुके थे । परन्तु सुअर वाली घटना से आज फिर-से वातावरण मे तनाव छा गया है । और उस रात मडी मे आग लग जाने के बाद तो वातावरण पूर्णत बदल गया । "मुहल्लो के बीच लीकें खिच गई थी, हिन्दुओ के मुहल्ले मे मुसलमान को जाने की अब हिम्मत नही थी और मुसलमानो के मुहल्ले मे हिन्दू या सिख अब नही आ-जा सकते थे । आँखो मे सशय और भय उतर आया था ।'[१५४] स्पष्ट है कि लेखक फिसाद के पूर्व का हँसते भरे वातावरण का तथा फिसाद के बाद के सन्देह भरे वातावरण का तटस्थता से चित्रण करता है । परिवर्तित वातावरण तथा उसके पूर्व के वातावरण मे केवल ३०–३२ घटे भर का अन्तर है । ३०–३२ घटो की भयावह घटनाओ ने सैकडो वर्षों की एकता, प्यार तथा अपनत्व को खत्म कर दिया है । आरम्भ के चित्रण के कारण तो बाद के परिवर्तित वातावरण की तीव्रता अधिक बढ गयी है । प्रथम खड मे इसी शैली को अपनाया गया है।

द्वितीय खड मे भी लेखक ने इसी शैली को अपनाया है । देहाती जीवन का बडा मार्मिक किन्तु सक्षिप्त चित्रण यहाँ किया गया है । "यो देखा जाय तो यह गाँव बडा सुदर था, अमन-चैन के दिन कोई यहाँ आए तो इसकी खूबसूरती पर मुग्ध हुए *बिना नही रह सकता था । लगता भगवान ने अपने हाथ से इसे बनाया है ।* छोटी-सी नदी के ऊपर एक छोटी-सी पहाडी पर घोडे की नाल की शक्ल मे यह गाँव खडा गा । नदी के नीले जल प्रवाह के पार लुकाटो के घने बाग थे जहाँ अनेक झरने बहते थे, इन दिनो लुकाट पक रहे थे और तोते के झुड पेडो मे बसे हुए थे । इन दिनो नदी का रग भी आसमान के रग की तरह गहरा नीला लग रहा था । इसी प्रकृति-स्थल की गोद मे इस गांव के सभी लोग पीढी-दर-पीढी रहते चले आये थे ।"[१५५] फिसाद के कुछ घटो बाद इसी गाँव की स्थिति "गाँव पर साये उतर उतर आए थे । नारो की गूंज और अधिक तेज होने लगी थी । बाईं ओर ढलान के ऊपर *सचमुच किवाड तोडने और चिघाडने की आवाजें आने लगी थी ।*"[१५६] इन दगो मे जो लूटे गए, अपनी जमीन से उखाड दिए गए, जिनके घरवाले बिछड गए—उनकी मन स्थिति का और उस समय के वातावरण का बडा ही उत्कट चित्रण एक स्थान पर किया गया है । 'रिफ्लि ऑफ्सि के आँगन मे घूमता प्रत्येक व्यक्ति अपना विशिष्ट अनुभव लेकर आया था । लेकिन इस अनुभव को जाँचने, परखने, उसम से निष्कर्ष निकालने की क्षमता किसी मे नही थी । आगे क्या होगा उसकी धुँधली-सी रूपरेखा भी किसी की आँखो के सामने नही थी । लगता, जैसे कोई अनिवार्य घटना चक्र चल रहा है, जिस पर किसी का बस नही, न किसी के हाथ मे निर्णय है, *न सचालक, न सचालन की क्षमता, कठपुतलियो की तरह सब घूम रहे थे,* भूख लगती तो उठकर इधर-उधर से कुछ खा लेते, याद आती तो रो देते और बान

लगाए सुबह से शाम तक लोगों की बातें सुनते रहते।"[३२]

इस प्रकार वातावरण का तुलनात्मक चित्रण यहाँ किया गया है। इस तुलनात्मकता के कारण ही यह चित्रण अधिक यथार्थ लगता है। इस वातावरण चित्रण में कल्पना का सूक्ष्म सौन्दर्य नहीं है, प्रकृति चित्रण का करीब-करीब अभाव-सा है। अप्रैल के दूसरे-तीसरे सप्ताह के काल को स्वीकार करने के कारण भी प्रकृति चित्रण पर मर्यादा आ गई है।

## टिप्पणियाँ


१ सचेतना जनवरी-मार्च १९७६ पृ० २७
२ तमस पृ० ५१
३ वही पृ० २५४
४. वही, पृ० ४९
५ वही, पृ० ३४-३५
६-७ वही, पृ० २७८
९ सचेतना जनवरी-मार्च १९७६
१०-११. तमस : पृ० १९७
१२ वही, पृ० २३१
१३ वही, पृ० १०
१४ वही, पृ० ११
१५ वही, पृ० ६०
१६ वही, पृ० ६६
१७ वही, पृ० ७०
१८ वही, पृ० ७२
१९ वही, पृ० ८१
२० वही, पृ० १२२
२१ वही, पृ० ८१
२२, २३, २४ वही, पृ० ८२—८३
२५, २६ वही पृ० ८४
२७ वही, पृ० ८५
२८ वही, पृ० ८९
२९ वही, पृ० ९८
३० वही, पृ० १०१
३१ वही, पृ० ११०
३२ वही, पृ० १२१

३३ तमस पृ० १२२
३४ वही, पृ० १२३
३५ वही, पृ० १२६
३६ वही, पृ० १३५
३७, वही, पृ० १३६
३८ वही, पृ० १५३
३९, ४० वही, पृ० १५५
४१ वही, पृ० १६९
४२, वही, पृ० १७३
४३ वही, पृ० १८४
४४ वही, पृ० २०९
४५ वही, पृ० २२०
४६ वही, पृ० २२२
४७ वही, पृ० २२७
४८. वही, पृ० २३०
४९ वही, पृ० १९०
५० वही, पृ० १९५
५१ वही, पृ० १९७
५२ वही, पृ० २३१
५३ वही, पृ० २३९
५४ वही, पृ० २४०
५५ वही, पृ० १४१
५६ वही, पृ० ८३
५७ वही, पृ० २४३
५८ वही, पृ० २५५
५९ वही, पृ० २६३
६०. वही, पृ० २७७
६१ धर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर १९७४ डॉ चन्द्रकान्त बांदिवडेकर जी का लेख, "इधर के कुछ सफल उपन्यास" पृ० १८
६२ धर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर १९७४ पृ० १९
६३ वही, पृ० १९
६४ तमस पृ० ३८
६५ वही, पृ० ४०

६६, ६७ तमस पृ० ४४
६८ वही, पृ० ४८
६९, ७० वही, पृ० ४८
७१, ७२ वही, पृ० ५१
७३ वही, पृ० ४९
७४ वही, पृ० २५५
७५ वही, पृ० ३७
७६ वही, पृ० ९३
७७ वही, पृ० १२३
७८ वही, पृ० २५३
७९, ८० वही, पृ० ३४
८१ वही, पृ० ३५
८२ वही, पृ० २५०
८३ वही, पृ० २६४
८४ वही, पृ० २६५
८५ वही, पृ० २६
८६ वही, पृ० २७
८७ वही, पृ० २०
८८ वही, पृ० ६१
८९ वही, पृ० १५६
९० वही, पृ० १५७
९१ वही, पृ० ६६
९२ वही, पृ० ५७
९३, ९४ वही, पृ० ६८
९५ वही, पृ० ७५
९६ वही, पृ० ३४
९७ वही, पृ० १९९
९८ वही, पृ० ११०
९९ वही, पृ० १९०
१०० वही, पृ० १९५
१०१ वही, पृ० १९७
१०२ वही, पृ० २३१
१०३ आई० ए० आर० १९४६ खड १ पृ० २२०

१४६, १४७  तमस  पृ० २३५
१०५, १०६  वही, पृ० १५१
१०७, १०८  वही, पृ० १५५
१०९  वही, पृ० १५५
११०  वही, पृ० १९७
१११  वही, पृ० १९९
११२  वही, पृ० २००
११३  वही, पृ० ४१
११४  वही, पृ० १३७
११५, ११६  वही, पृ० १३८
११७  वही, पृ० १३८
११८, ११९  वही, पृ० १४८
१२०  वही, पृ० १८८
१२१  वही, पृ० २०९
१२२, १२३  वही, पृ० २११
१२४  वही, पृ० २२०
१२५  वही, पृ० २२१
१२६, १२७  वही, पृ० १०
१२८  वही, पृ० ११
१२९  वही, पृ० ३१
१३०  वही, पृ० १०४
१३१  वही, पृ० १०७
१३२  वही, पृ० १६८
१३३  वही, पृ० १६९
१३४  वही, पृ० २८२
१३५  धर्मयुग (साप्ताहिक) २२ दिसम्बर ७४ पृ० १९
१३७  वही,
१३८  तमस : पृ० १०१
१३९, १४०  वही, पृ० १०८
१४१, १४२.  वही, पृ० २७३
१४३  वही, पृ० २७७
१४४.  वही, पृ० २३४
१४५.  वही, पृ० २६७
१०४  तमस · पृ० १४९, १५०
१४८  वही, पृ० २६२
१४९  वही, पृ० ६९
१५०  वही, पृ० ३०
१५१  वही, पृ० ९८
१५२  वही, पृ० ९९
१५३  वही, पृ० १०१
१५४  वही, पृ० १३५
१५५  वही, पृ० १९४
१५६  वही, पृ० २०७
१५७  वही, पृ० २७१